(ब्रज भाषा)

हिन्दी वीरकाव्य मे सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति

हिन्दी-वीरकाव्य में
सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति

[दिल्ली विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबंध]

डॉ० राजपाल शर्मा
एम० ए० पी-एच० डी०

आदर्श साहित्य प्रकाशन
दिल्ली-३१

हस्तिनापुर कालिज (सान्ध्य), मोती बाग, नयी दिल्ली २१

प्रकाशक
आदर्श साहित्य प्रकाशन
वेस्ट सीलमपुर,
दिल्ली ३१

●

प्रथम संस्करण १९७४

●

मुद्रक
सतीश क० एजेंसी द्वारा
विकास प्रिंटिंग प्रेस
शाहदरा, दिल्ली ३२

मूल्य
पचास रुपये
(५० ००)

Published by R S CHAUHAN

सहपाठी एवं प्रेरणा-स्रोत

सुहृद्‌वर श्री कृष्णकुमार गिलानी

को

सादर—सप्रेम !

भूमिका

हिन्दी साहित्य का सबसे अधिक समृद्ध अंग ब्रजभाषा काव्य है। ब्रजभाषा-काव्य मे जितने अधिक काव्यरूपो का समावेश हुआ और जितने अधिक विषयो को कवियो ने स्वीकार किया उतना अधिक विस्तार और वैविध्य हमे परवर्ती खडी बोली म भी लक्षित नही होता। खडी बोली मे आचार्य कोटि के कवि नही हुए और रीति शली का काव्य भी नही लिखा गया। नायिका भेद, षडऋतुवणन बारहमासा आदि परम्परा शली का काव्य भी खडी बोली म स्वीकृत नही हुआ। भक्ति आदि आध्यात्मिक विषयो का बाहुल्य ही ब्रजभाषा की विशेषता है। वीरकाव्य की दृष्टि से भी हम ब्रजभाषा के काव्य को अत्यत समृद्ध पाते हैं। जिन कवियो ने वीरकाव्य-प्रणयन किया उनकी दृष्टि वीररस के साथ अय रसो पर भी गई और उन्होने ब्रजभाषा के माध्यम से केवल रसव्यजना ही नही की वरन् तत्कालीन समाज का चित्र भी अकित किया था।

ब्रजभाषा के वीरकाव्य का हिन्दी म अनुसधानपरक दृष्टि से कई विद्वानो ने अध्ययन किया है। उनके अध्ययन म वीरकाव्य के विविध पक्ष उद्घाटित हुए हैं किन्तु समाज को केन्द्र बिन्दु बनाकर इस काव्य का अध्ययन अभी तक नही हुआ था। डॉ० राजपाल शर्मा ने वीरकाव्य म सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति को अपने अध्ययन का लक्ष्य बनाकर उस काव्य मे से ऐसे तत्त्वो का अनुसधान किया है जो समाज की यथाथ स्थिति को समझने म योग देते हैं।

वीरकाव्य म केवल प्रशस्ति या युद्ध वणन ही नही होता वरन् समाज-रचना के विविध पहलू भी उजागर होते हैं। वर्ण व्यवस्था या जाति-सगठन, आश्रम-व्यवस्था आदि पर भी कवियो की दृष्टि रहती है यह पहली बार इस प्रबन्ध म स्पष्ट हुआ है। वीरकाव्य म सामान्य जनता के रहन सहन की प्रक्रिया और पद्धति के साथ उनके मनोरजन के साधन पारिवारिक सम्बन्ध, सस्कार आदि का भी वणन रहता है, यह इस प्रबन्ध से स्पष्ट होता है। धार्मिक विश्वास, अर्थ-व्यवस्था, राजनीतिक स्थिति आदि भी प्रासगिक रूप से वीरकाव्य म प्रतिफलित होती है, यह अनुसधान की प्रविधि से जाना जा सकता है।

डॉ० शर्मा ने अपने शोध प्रबध म इन तथ्यो की छानबीन की है और जो

निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं वे विश्वसनीय होने के साथ तत्कालीन सामन्ती समाज की स्थिति को भी उजागर करते हैं।

वीरकाव्य को केवल वीररस की चमत्कारी उक्ति तक ही सीमित न मानकर उसे सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति का भी अंग मानना चाहिए और वीरकाव्य के अध्येता को अपना दृष्टिकोण व्यापक बनाकर इस काव्य का अध्ययन करना चाहिए यह इस प्रबंध से स्पष्ट होता है। डॉ० शर्मा ने अध्यवसाय पूर्वक अपना प्रबंध तैयार किया है, जो अनुसंधान की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। डॉ० शर्मा साधुवाद के पात्र हैं। उन्होंने एक शुष्क और उपेक्षित विषय को सरस और बोधगम्य बनाया है।

—विजयेन्द्र स्नातक
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

निवेदन

हिन्दी साहित्य के आदिकाल से लेकर रीतिकाल तक उसमे पिंगल और ब्रजभाषा के नाम भेद से जिस वीरकाव्य का प्रणयन हुआ है, वह उसकी अमूल्य निधि है। उसकी रचना मठ और मंदिरो की सीमित परिधि से सम्बन्धित भक्त-कवियों अथवा राजदरबारो के विलासपरक वातावरण से आबद्ध शृंगारी कवियो के स्थान पर ऐसे कवियो द्वारा हुई है, जो प्राय करवाल के भी धनी थे और जिन्होने देश और धर्म की रक्षा के लिए जन मानस म युद्धोन्माद जाग्रत करने का बीड़ा उठा रखा था। इस कालावधि म रचा गया हिन्दी वीरकाव्य मूलत ब्रजभाषा की थाती है जो मध्य युग म अनौपचारिक रूप से राष्ट्रभाषा का जसा स्थान ग्रहण किए हुए थी और उसम राजस्थान, गुजरात, पजाब, असम और बगाल तक के कवियों ने वीर रसात्मक एव भक्ति-काव्य की रचना की है। हिन्दी वीरकाव्य के अन्तगत हमने अपनी आधार सामग्री के रूप म पिंगल, ब्रजभाषा की कृतियाँ ही ग्रहण की हैं डिंगल (राजस्थानी) की रचनाएँ सम्मिलित नही की और किसी कालावधि की कृतियो मे उपलब्ध निर्देशो के आधार पर उस समय की सामाजिक दशा के निरूपण की शोध परम्परा म एक नवीन कडी जोडने का विनम्र प्रयास किया है।

प्रस्तुत अध्ययन को पृष्ठभूमि के अतिरिक्त छह अध्यायो म विभक्त किया गया है। पृष्ठभूमि के अन्तगत हिन्दी-काव्य के आधार पर अब तक हुए सामाजिक चित्रण सबधी शोध काय की समीक्षा करते हुए, इस सदभ म वीरकाव्य की उपादयता प्रदर्शित की गई है। तदुपरान्त वीरकाव्य सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण करते हुए वीरकाव्य की कालक्रमानुसार तालिका दी गई है और समाज चित्रण से गृहीत अभिप्राय तथा उसके विविध पक्षो पर प्रकाश डाला गया है।

प्रथम अध्याय म तत्कालीन समाज की वर्णाश्रम और जाति-व्यवस्था सम्बन्धी धारणाओ को प्रकाशित करते हुए, वर्ण और जातियो की तुलनात्मक सामाजिक स्थिति का आकलन किया गया है। इस विवेचन क्रम का मूलाधार विभिन्न वर्ण और जातियो की बाह्याकृति के मुख्य प्रतीक, उनके कत्तव्य-कर्म तथा चारित्रिक विशेषताएं रही हैं। वीरकाव्य के नायक मुख्यतया क्षत्रिय नरेश होने के कारण, उन्ही के सम्बन्ध मे अधिक तथ्य उपलब्ध हुए थे, जिससे इस अध्याय का लगभग तृतीयांश क्षत्रियो से सम्बद्ध है। अध्याय के अन्त म यह निर्दिष्ट करने का प्रयास किया गया है कि आश्रम-व्यवस्था का आलोच्यकाल म किस सीमा तक अनुपालन होता था।

द्वितीय अध्याय में खान-पान, वस्त्राभरण, शृंगार प्रसाधन, आवास तथा यातायात और मनोविनोद के साधनों पर प्रकाश डालते हुए, सामान्य जीवन दशा का चित्रण किया गया है। सामान्य-जीवन में प्रमुख उपादानों में स्थापत्य तथा निर्माण विधि पर प्रकाश डालने से ग्रंथ का आकार बढ़ जाता, अतः यथासाध्य उनकी नामावली मात्र देकर ही संतोष करना पड़ा है।

तृतीय अध्याय में आलोच्य समाज के पारिवारिक जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। इसमें परिवार के सदस्य और सम्बन्धियों का पारस्परिक दृष्टिकोण, विविध संस्कार, त्योहार तथा अभिवादन और अतिथि सत्कार की रीतियों पर प्रकाश डाला गया है। वीरकाव्य के वर्ण्य विषय में युद्ध के सदृश विवाह प्रसंगों की भी प्रधानता है, जिससे उसमें आलोच्य काल में प्रचलित चार प्रकार की विवाह-पद्धतियों और देश विधि से सम्पन्न किए जाने वाले विवाहों के नाना लोकाचार एवं कुलाचारों का वर्णन मिलता है। यही कारण है कि विवाहोत्सव का विवेचन कुछ लम्बा हो गया है।

चतुर्थ अध्याय में तत्कालीन धार्मिक स्थिति प्रस्तुत की गई है। इसके अन्तर्गत विभिन्न धर्मावलम्बियों के धर्म के प्रति दृष्टिकोण पर प्रकाश डालते हुए जप-तप और दानादिक, उन कृत्यों का विवेचन किया है जिनका सामाजिकों द्वारा परलोक सुधारने की कामना से आश्रय लिया जाता था। अन्त में उनकी स्रष्टा और सृष्टि, अवतार, वरदान और शाप, शपथ, भाग्यवाद, कर्मफल और पुनर्जन्म, ज्योतिष शकुन, अपशकुन, स्वप्न फल, जन्त्र मन्त्र और भूत प्रेतादि सम्बन्धी आस्था एवं विश्वासों पर प्रकाश डाला गया है।

पंचम अध्याय में विवेच्यकाल की आर्थिक स्थिति का निरूपण है। इसमें आर्थिक उत्पादन के प्रमुख स्रोत – कृषि उद्योग तथा व्यवसायों पर प्रकाश डालते हुए, आयात निर्यात तथा नगर दशा का चित्रण किया गया है। अन्त में राज्यों की आय के प्रमुख स्रोतों का स्पष्टीकरण किया गया है। द्वितीय अध्याय की सामान्य जीवन सम्बन्धी सामग्री भी प्रकारांतर से आर्थिक स्थिति का ही मूर्तिमत रूप है, अतः प्रस्तुत अध्याय का कलेवर लघु रह जाना स्वाभाविक था।

षष्ठ अध्याय में आलोच्यकाल की राजनीतिक स्थिति का चित्रांकन किया गया है। अध्याय के आरम्भ में शासक और शासित का एक दूसरे के प्रति दृष्टिकोण, तथा शासन संचालन में सहायक मंत्री और अधिकारियों का स्पष्टीकरण किया गया है। तदुपरान्त सैन्य व्यवस्था में उमराव और सामन्तों का योगदान, सेना के प्रमुख अंग, उनकी पताकाएँ, वाद्य यंत्र सैनिकों के अंगत्राण तथा अस्त्रशस्त्रों पर प्रकाश डाला गया है (शस्त्रास्त्र और अंगत्राणों के विषय में आवश्यक जानकारी देने के लिए, शोधार्थी अलवर भरतपुर, मथुरा और दिल्ली के पुरातत्व संग्रहालयों के अधिकारियों का आभारी है)। अन्त में युद्धों के प्रमुख कारण तथा जागीरदारी प्रथा आदि अन्य [illegible] तथ्यों का स्पष्टीकरण किया गया है।

अपनी आधार सामग्री के विषय में हम यह निवेदन करना आवश्यक समझते हैं कि ब्रजभाषा की वीरकाव्य धारा के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ ही प्रकाशित हैं तथा अप्रकाशित ग्रंथ ऐसे राजकीय पुस्तकालयों और व्यक्तिगत अधिकार में हैं—जहां से शोधार्थी प्रयत्न करने पर भी उन्हें पाने में असमर्थ रहा है। अतः ब्रजभाषा के वीरकाव्य में से जिन प्रकाशित और अप्रकाशित ग्रंथों को प्रस्तुत उपक्रम में मूलाधार बनाया गया है, वे अधोलिखित हैं—

पृथ्वीराज रासो, परमाल रासो, कीर्तिलता, रणमल छंद, राव जैतसी री रासो, नरहरि, तानसेन और गंग के प्रशस्ति परक छंद, रतन बावनी, वीरचरित्र, जहांगीर जसचंद्रिका, खुमाण रासो, अलिफखां की पैडी, गोरा-बादल की कथा, शिवराज भूषण, शिवा-बावनी छत्रसाल दशक, छत्रप्रकाश, राजविलास, जंगनामा, हम्मीर-रासो, सुजान चरित, रासो भगवंतसिंह का, हिम्मतबहादुर विरुदावली, प्रताप-सिंह विरुदावली, प्रताप-रासो, हम्मीर हठ (चन्द्रशेखर वाजपेयी-कृत) और आल्ह-खण्ड—प्रकाशित ग्रंथ तथा हम्मीर-हठ (ग्वाल-कृत), भगवंतराय की विरुदावली और भगवंतराय खीची का जंगनामा—अप्रकाशित कृतियाँ।

हमारे प्रबन्ध की पूर्वापर कालसीमा वीरगाथाकाल से रीतिकाल पर्यन्त है। इस काल को हमने समाज चित्रण की दृष्टि से, हिन्दी साहित्य के इतिहास की भांति उपकालों में विभक्त करने के स्थान पर, उसका युगपत् ही समग्र चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

हमारी आधार सामग्री के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ पृथ्वीराज रासो का रचनाकाल यद्यपि विक्रम की तेरहवीं शताब्दी है, तथापि यह निश्चित न हो पाने के कारण कि उसका मूलरूप कौन सा है, हमने उसके सभी प्रकाशित संस्करणों में से समाज चित्रण की दृष्टि से उपयोगी सामग्री का चयन किया है। इस विषय में हमारा विनम्र निवेदन है कि इनमें से तेरहवीं शताब्दी में विरचित 'पृथ्वीराज रासो' का मूलरूप चाहे कोई सा भी हो, किन्तु वे सभी हमारे विवेच्यकाल में प्रणीत हुए हैं। 'रासो' के मूलरूप में प्रक्षिप्त अंशों की योजना करने वाले कवि भी तो इसी समाज के प्राणी थे, अतः प्रक्षिप्त अंशों का प्रणयन चाहे जिस कवि अथवा कवियों ने किया हो, उनमें हमारे मध्यंतयकालीन सामाजिक जीवन का प्रतिबिम्बित होना निर्विवाद है।

परमाल रासो और आल्हखंड के विषय में भी दो शब्द अपेक्षित हैं। यद्यपि इन दोनों ग्रंथों का रचयिता जगनिक भाट माना जाता है, तथापि हमारे द्वारा आधार-सामग्री में गृहीत दोनों ग्रंथों में से कोई भी कदाचित् जगनिक प्रणीत नहीं है। परमाल रासो में स्थल स्थल पर उसके रचयिता के रूप में कवि चन्द का नामोल्लेख मिलता है, जबकि डॉ॰ श्यामसुन्दर दास ने उसके संपादकीय लेख में उसे विक्रम की सत्रहवीं या अठारहवीं शताब्दी में रचित किसी बुन्देलखंडी कवि की रचना होने का मत व्यक्त किया है। परमाल रासो के विषय में भी हम इस विवाद में उलझने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि उसकी जिस प्रति का हमने समाज-

चित्रण की दृष्टि से उपयोग किया है। उसकी रचना कवि चन्द, जगनिक या किसी बुन्देलखण्डी कवि में से किसी ने भी की हो। हम तो यह मानकर चले हैं कि उसका रचयिता भी हमारे आलोच्य समाज में जन्मा व्यक्ति था और उसने काव्य-सामग्री में अपने इलाके के सामाजिक पर्यावरण की ही सामग्री की नियोजना की है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रणयन काल में श्रद्धेय गुरुवर डॉ० नगेन्द्र, डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, डॉ० उदयभानुसिंह, (स्व०) डॉ० सावित्री सिन्हा तथा डॉ० ओमप्रकाश जी के बहुमूल्य सुझावों ने मेरा समय-समय पर जो पथ प्रशस्त किया था, उसका आभार शब्दों में प्रकट नहीं किया जा सकता। डॉ० महेन्द्रकुमार ने ग्वालियर 'हम्मीर-हठ', कैप्टेन शूरवीरसिंह ने भगवतराय की विरुदावली और भगवतराय खीची का 'जगनामा' तथा डॉ० महेन्द्रप्रतापसिंह ने 'राजा भगवतसिंह का' शीर्षक कृतियों की हस्तलिखित प्रतियाँ प्रदान करने की अनुकम्पा की थी, जिनके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। बन्धुवर दामोदरदास एवं श्रवणकुमार उपाध्याय इस कृति को छपी देखकर प्रसन्न होंगे ही, क्योंकि इसके मूल में उन्हीं का प्रच्छन्न हाथ रहा है।

मित्रवर कृष्णकुमार गिलानी के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करने की औपचारिकता निभाना मुझे इस दृष्टि से अवांछनीय प्रतीत होता है कि उनके सभी प्रकारीय सहयोग के अभाव में मेरी शोध कार्य की बेल मंढे न चढ़ पाती। मित्रवर बालकृष्ण शर्मा, राधेश्याम शर्मा, गोपीचन्द आत्रेय, मुलराम शर्मा तथा सहधर्मिणी नवलेश ने टाइप्ड थीसिस को मूल से मिलाने में जो रात दिन परिश्रम किया था, उसके लिए मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हूँ। डॉ० मनमोहन गौतम के सक्रिय दिशा-निर्देश और प्रोत्साहन के फलस्वरूप ही मैं शोध-सागर को पार कर सका था अतः उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन का शिष्टाचार निभाने के स्थान पर यह कहना उपयुक्त है कि इस प्रबन्ध में जो कुछ भी सुन्दर बन पड़ा है वह उन्हीं की कृपा का फल है, प्रबन्ध की न्यूनताएँ अवश्य मेरी अपनी हैं। शीघ्रता में छपी कृति में कुछ त्रुटियों का रह जाना स्वाभाविक ही था। मैं आदर्श साहित्य प्रकाशन के बन्धु आर० एस० चौहान का भी आभारी हूँ, जिन्होंने इस कृति को छापने का कष्ट उठाया है।

विदुषां अनुचर
—राजपाल शर्मा

प्रमोद जन्म दिवस,
C २/७५,
जनकपुरी कॉलोनी,
नयी दिल्ली।

विषय-सूची

पृष्ठभूमि

विषय-प्रवेश —

समाज की वर्तमान-युगीन अवस्था को भली भाँति समझने के लिए उसकी अतीत परम्परा का ज्ञान परमावश्यक होता है, क्योंकि वर्तमानकालीन सभ्यता अपने सम्पोषक तत्त्वों के लिए विगत युगीन मान्यताओं पर आधृत रहती है। विगत सामाजिक दशा का परिज्ञान इस दृष्टि से भी विशेष उपादेय होता है कि उसमें परिव्याप्त कुप्रवृत्तियों के दुष्परिणामों तथा सत्प्रवृत्तियों के सुफलों के दिग्दर्शन द्वारा हम सामाजिकों में तद्गत कार्यों के प्रति विगर्हा अथवा अभिरुचि जाग्रत करके वर्तमान दशा में सुधार एवं जन कल्याण का बीज वपन कर सकते हैं। इसी दृष्टिकोण से अनुप्रेरित होकर सभी देशों में विविध उपकरणों के माध्यम से भूतकालीन दशा का प्रासाद निर्मित करने की चेष्टा की गई है।

प्राचीनकालीन सामाजिक अवस्था के स्पष्टीकरण के लिए आरम्भ में ऐतिहासिक विवरणों, भग्नावशेषों से उपलब्ध उपकरणों, शिलालेखों तथा ताम्रपत्रादि से प्राप्त तथ्यों को आधार बनाया गया। इन आधारों पर प्रस्तुत किया गया कार्य समाज की अनाविल झाँकी प्रस्तुत करने में अपर्याप्त रहा है, क्योंकि ऐतिहासिक ग्रंथों में विभिन्न राजाओं के वंशानुक्रम तथा जय-पराजयों सम्बन्धी विवरण का प्राधान्य रहने के कारण समाज के एक वर्गविशेष राजनीतिक जीवन पर ही प्रकाश पड़ पाता है। भग्नावशेषों से प्राप्त सामग्री तथा शिलालेखादि व्याख्यापेक्ष अधिक थे, अतः विभिन्न विद्वानों ने उनकी स्वमतानुकूल व्याख्या करके पृथक् पृथक् तथ्यों की स्थापना की है। साथ ही इन उपकरणों से तात्कालिक समाज की स्थापत्यकला और लेखन प्रणाली आदि कुछ सामान्य स्थितियों का ही स्वरूप स्पष्ट हो पाता है। अतः प्राचीन समाज का अधिकाधिक पूर्ण एवं विश्वसनीय स्वरूप प्रस्तुत करने के लिए जब अन्य माध्यमों की ओर दृष्टिपात किया गया तो सर्वाधिक सम्भावनाएँ तात्कालिक साहित्य में दृष्टिगोचर हुईं, जिससे अनुप्रेरित होकर संस्कृत, अंग्रेजी तथा हिन्दी के प्राचीनकालीन साहित्यों को आधार बनाकर, उनसे रचनाकालीन जनजीवन को स्पष्ट करने के प्रयास किए गए हैं।

हिन्दी काव्य के आधार पर हुआ समाज चित्रण सम्बन्धी शोधकार्य —

साहित्य के आधार पर मध्ययुगीन सामाजिक दशा पर प्रकाश डालने का शोधकार्य इतिहास विभाग के अन्तर्गत आरम्भ किया गया और सन १९५२ ई० में प्रयाग विश्वविद्यालय ने श्री आनन्दप्रकाश माथुर को १६वीं १७वीं शताब्दी का हिन्दी साहित्य के आधार पर अध्ययन नामक शोधप्रबन्ध पर डी० फिल० की उपाधि प्रदान की। इन्होंने अपने विवेचन का आधार कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, रहीम, देव, बिहारी, मतिराम, भूषण और घनानन्द की कृतियों को बनाया है।[1] इसके उपरान्त हिन्दी विभाग ने साहित्याधार पर समाज चित्रण विषयक कार्यों को अपनी थाती समझ कर शोधकार्य कराना आरम्भ किया। सन १९५५ ई० में सुश्री गायत्री वैश्य ने राजस्थान विश्वविद्यालय के अन्तर्गत आधुनिक हिन्दी कविता में समाज नामक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया जिसमें सन १८५० ई० से १९५० ई० तक की सामाजिक दशा निरूपित की गई है। १९५६ ई० में आगरा विश्वविद्यालय ने मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में चित्रित समाज नामक शोधप्रबन्ध पर श्री गणेशदत्त को पी एच० डी० की उपाधि प्रदान की। यह प्रबन्ध मुख्यतः दो खण्डों में विभाजित है—काव्याधार पर समाज चित्रण तथा वार्ता साहित्य आदि गद्य कृतियों के आधार पर समाज चित्रण। काव्य सामग्री के विषय में अनुशोधक की स्वीकारोक्ति है— इस विषय की आधारशिला तो तुलसी, रहीम और जायसी के ग्रन्थों पर रखी गई है। सूर के उद्धरणों का भी खुलकर उपयोग किया है किन्तु वे साम्प्रदायिक अधिक हो गये हैं।[2] इस क्रम में चतुर्थ शोधप्रबन्ध डा० सोमनाथ गुप्त का हिन्दी साहित्य के आधार पर भारतीय संस्कृति है जिसे सन १९५८ ई० में आगरा विश्वविद्यालय ने पी एच० डी० की उपाधि के लिये स्वीकृत किया है। समग्र हिन्दी साहित्य को अपने विवेचन का आधार बनाने का शीर्षक देकर कुछ ही कवियों की कृतियों को अपने विवेचन का आधार बनाने वाले शोधप्रबन्धों में अन्तिम है श्री सुरेन्द्रबहादुर त्रिपाठी का मध्यकालीन हिन्दी कविता में भारतीय संस्कृति (सन १७०० से १९०० ई० तक) जिस पर गोरखपुर विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि दी गई है। इन शोधप्रबन्धों की काव्य-सामग्री पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि इनका काव्याधार भक्त और शृंगारी कवियों तक परिसीमित रहा है।

पूर्वोक्त शोधकार्यों के अतिरिक्त काव्यधारा विशेष के कवियों की कृतियों के माध्यम से भी तद्युगीन सामाजिक जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत करने सम्बन्धी शोधकार्य किये गये हैं। इन शोधप्रबन्धों में लगभग सभी अनुशोधकों ने अपने तथ्याधार के लिए कृष्ण काव्य का आश्रय ग्रहण किया है। उदाहरणार्थ १९५९ ई० में श्री श्यामप्रकाश का अष्टछाप काव्य में वर्णित ब्रज संस्कृति, १९६० ई० में सुश्री मायारानी टंडन

---

१ देखिए— हिन्दी के स्वीकृत शोधप्रबन्ध पृ० ११६

२ मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में चित्रित समाज टंकित प्रति, पृ० ७८

की 'अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन' १९६१ ई० में श्री वेंकटरमण का 'कविवय (कबीर, सूर, तुलसी) का सामाजिक पक्ष', तथा १९६४ ई० में श्री हरगुलाल का 'मध्ययुगीन कृष्णकाव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति' शीर्षक शोध प्रबंधों पर क्रमशः अलीगढ़, प्रयाग, उस्मानिया और दिल्ली विश्वविद्यालय से पी एच० डी० की उपाधियाँ प्रदान की गई हैं।

समाज चित्रण विषयक अद्यावधि हुए शोध कार्य की समीक्षा —

अष्टछाप, गोस्वामी तुलसीदास, संत कबीर और दरबारी शृंगारिक कवियों के काव्याधार पर प्रस्तुत किए गए शोधप्रबंधों के विषय में कहा जा सकता है कि यद्यपि इन अनुसंधाताओं ने अपने आधार ग्रंथों से उपलब्ध सामग्री का विद्वत्तापूर्ण उपयोग करके यथासंभव तात्कालिक जीवन का पूर्ण स्वरूप प्रदर्शित करने का प्रयास किया है तथापि उनके वर्ण्यविषय के अनुरूप ही सामाजिक जीवन की भी सुस्पष्ट झाँकी प्रोद्भासित नहीं हो सकी है। कृष्ण भक्त कवियों का अभिप्रेत अपने आराध्य युगल की सत्रभावेन भक्ति तथा सांसारिक मायाजाल से छुटकारा पाने के लिए उनके अनुग्रह की याचना करना था। आध्यात्मजगत् की तुलना में—कृष्ण राधा और गोपियों के महारास के समक्ष—उनके लिए समस्त सांसारिक भोग और प्रलोभन हेय ही रहे। अपने नायक श्रीकृष्ण की गौरव गरिमा के अनुकूल सर्वत्र अतिमानुषिक वैभव और कार्यकलापों की परियोजना करना, उनके लिए अवश्यम्भावी भी था। काव्य परिमाण की दृष्टि से इस धारा के अवशिष्ट कवियों की सम्मिलित रचनाओं से भी अधिक परिमाण में रचना करने तथा समाज चित्रण का मूलाधार बनने वाले प्रज्ञाचक्षु सूरदास का नेत्राभाव में समसामयिक जीवन का प्रत्यक्ष दर्शन करने से वंचित रह जाना तो स्वतः सिद्ध है ही, उनकी कृतियों से उपलब्ध होने वाले विवरणों के विषय में एक आपत्ति यह भी है कि उनके द्वारा प्रदर्शित कृष्ण और गोपियों के उच्छल सम्बन्धों को सूरदास-कालीन व्रज समाज का वानक समझा जाए, अथवा उस काल का जिसमें श्रीकृष्ण का आविर्भाव हुआ था ? इस प्रकार या तो इनको प्रतीक रूप में ग्रहण करके किसी भी काल के जीवन का प्रतिनिधि स्वीकार नहीं किया जा सकता अथवा उसे श्रीमद्भागवत के रचनाकाल का स्वीकृत करना अधिक निरापद है क्योंकि इस कृति में ही ऐसे विवरण मिलते हैं और सूरदास पर भी इसका अत्यधिक प्रभाव है। सभ्यता की अजस्र परम्परा प्रवाहित होने रहने के कारण, इन विवरणों का आंशिक तादात्म्य सूरदासकालीन सामाजिक दशा से भी हो जाता है तथापि वे अधिकांशतया प्राचीनकालीन जीवन-दशा का ही प्रतिनिधित्व करते हैं।

कबीरदास की वृत्ति भक्ति परम्परा में विद्यमान अनेक रूढ़ियों के खण्डन-मण्डन में ही अधिक रमी है जिसके कारण समाज के अन्य विविध पक्ष उनकी दृष्टि से ओझल रहे हैं। गोस्वामी तुलसीदास की कृतियों से उपलब्ध समाज विषयक निर्देश भी उनके परिनिष्ठित लोकादर्श और अध्यात्मप्रधान विचारधारा के कारण

सामाजिकों के तथाविधि चारित्रिक एवं पारिवारिक जीवन सम्बन्धी उत्कृष्ट गुणों के प्रतीक नहीं माने जा सकते। कलियुग वर्णन' के रूप में प्रस्तुत समाज की भाँति भी तात्कालिक समाज का सहज रूप न होकर, एक भक्त द्वारा समाज को अपने दृष्टिकोण से परखने और उसके दुर्बल पक्षों का अतिरंजित स्वरूप प्रदर्शित करने के कारण एकांगी रह जाती है। निस्संग दृष्टि से गोस्वामीजी ने समाज पर दृष्टिपात बहुत कम किया है जिसके कारण उनकी रचनाओं में सामाजिक दशा का यथातथ्य चित्र नहीं उभर पाया है।

यह तथ्य तो निर्विवाद है कि भक्तकवि राजनीतिक सम्पर्क से विच्छिन्न ही रहे। समकालीन नृपों से मिलन तक को इहान (हरि स्मरण) में बाधक होने के कारण बेगार ही समझा था। सतन को कहा सीकरी सो काम तथा "काउ नृप होउ हमहिं का हानी' आदि उक्तियों द्वारा उन्होंने अपनी राजनीतिक उदासीनता को स्वयं ही अभिव्यक्त किया भी है। वस्तुत राजनीतिक उदासीनता और मंदिरों तक ही इन कवियों का परिवेश सीमित रहने के कारण इनकी कृतियों में राजनीतिक पक्ष की अपेक्षाकृत उपेक्षा मिलती है जिसके फलस्वरूप इनके आधार पर प्रस्तुत किए हुए समाज चित्रण में भी इस पक्ष को उचित स्थान नहीं मिल सका है। राज्य प्रश्रय में रहने वाले शृंगारिक कवियों की रचनाएं भी राजनीतिक जीवन पर विशेष प्रकाश न डालकर विलास-परक जीवन का ही उद्घाटन करती है।

निष्कर्षत भक्तिकाव्य के माध्यम से किए गए जो सांस्कृतिक अध्ययन और समाज चित्रण विषयक कार्य हुए हैं वे न तो अपने रचनाकाल के समाज का यथातथ्य समग्र स्वरूप ही प्रदर्शित करते है और न समाज के सभी पक्षों को उनमें उचित महत्त्व ही मिल सका है। कृष्णकाव्यधारा पर आश्रित सामाजिक जीवन के विवरण अधिकांशत पूर्ववर्ती-कालीन जीवन का प्रतिनिधित्व करते है। इसी तरह गोस्वामी तुलसीदास की कृतियों पर आधृत समाज चित्रण का उनके समसामयिक जीवन का अभिद्योतक न होकर त्रेताकालीन औचित्य दशा का परिचायक अथवा अपने मूल रूप से भी अधिक गर्हित एवं कुत्सित बन जाना स्वाभाविक है। मुख्य अवधारणीय तथ्य तो यह है कि इन अनुशीलकों ने वीरकाव्य कृतियों की इस दृष्टि से सर्वथा उपेक्षा कर दी है जिनमें समाज चित्रण सम्बन्धी इतनी प्रचुर सामग्री विद्यमान है कि उससे इन शोधकार्यों की ही पूर्णता नहीं मिलती, अपितु स्वतन्त्र रूप से भी सामाजिक-दशा का एक अधिकाधिक यथातथ्य एवं परिपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है।

वीरकाव्य की समाज चित्रण की दृष्टि से विशेष उपादेयता —

वीरकाव्य के आधार पर अधिकाधिक पूर्ण तथा यथातथ्य समाज चित्रण प्रस्तुत करने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं —

(क) वीरकाव्यकारों के नायक पूर्वकालीन ईश्वरीय अवतारों के स्थान पर

प्राय सममामयिन नरेश रहे हैं अत उन्हें देश काल और वातावरण के प्रतिबन्धानुकूल, अपने काव्य विवरणों में समकालीन जीवन के स्थान पर त्रेता और द्वापर युगीन सामाजिक मान्यताओं की अवतारणा करने की विवशता नहीं रही है जिससे वे स्व रचनाकालीन सामाजिक जीवन का यथातथ्य निदर्शन करते है।

(ख) वीरकाव्य प्रणेताओं का प्रतिपाद्य भक्ति पद्धति और दार्शनिक तथ्यों की मीमासा, अथवा नायिकाभेद रस अलकारादि का निरूपण नहीं है अपितु समाज के प्रतिनिधि नरेशों के विविध जीवन प्रसगों का चित्राकित करना रहा है। "यद वक्ता भवति राजान, तदवक्ता हि भवन्ति प्रजा" की लोकोक्ति के अनुरूप इन नरेशों के चरित्र समकालीन जन जीवन का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। वीरकाव्य के युद्ध वर्णनों से जहा नाना प्रकार के शस्त्रास्त्र और कवच आदि की जानकारी प्राप्त होती है वहीं उनमें मिलने वाले मन्त्रियों और राज्य-कर्मचारियों सम्बन्धी निर्देशों से तात्कालिक शासन-व्यवस्था को समझने की कुजी मिल जाती है। उनमें, प्रसगानुकूल दड-व्यवस्था सधि विग्रह के नियम, राजा और प्रजा का सम्बन्ध, तथा क्षत्रिय नरेशों की पराजय के मूल कारणों पर प्रकाश डालने वाले निर्देश भी प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होते है। विवाह के प्रसगों में शृगार-वर्णन के अतगत जहा आलोच्यकालीन वस्त्र और आभरणों पर प्रकाश डालने वाले निर्देश मिलते हैं वहीं भोजों के वर्णनों से खाद्य-पदार्थों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। विविध जातियों की सामाजिक स्थिति मनोविनोद के साधन अभिवादन की प्रणालियाँ, अतिथि सत्कार, पारिवारिक जनों का पारस्परिक सम्बन्ध देवी-देवता, शकुन अपशकुन, भूत प्रेत और जन्त्र-मन्त्र आदि में विश्वास आदि तथ्यों का भी, विभिन्न प्रथों की मुख्य और अवान्तर कथाओं में अभिव्यजन हुआ है। तात्पर्य यह कि व्रजभाषा का वीरकाव्य समाज चित्रण की दृष्टि से अति समृद्ध है और समकालीन नायकों की जीवनी पर आधृत होने के कारण, रचनाकालीन सामाजिक जीवन का भक्ति-काव्य की अपेक्षा कहीं अधिक यथा-तथ्य निरूपक है। तथापि न जाने क्यों अनुशोधकों ने इस अतीव महत्त्वपूर्ण काव्य धारा की उपेक्षा करके समाज चित्रण के लिए प्राय भक्ति काव्य का ही प्रयोग करके, चर्वित चर्वण में अनुरक्ति प्रदर्शित की है। प्रस्तुत प्रबन्ध में इस उपेक्षित काव्य क्षेत्र को ही लेकर समाज चित्रण प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध की मौलिकता —

जैसाकि कहा जा चुका है, वीरकाव्य को आधार बनाकर समाज चित्रण प्रस्तुत करने सम्बन्धी अद्यावधि कोई भी शोधकार्य नहीं हुआ है। हाँ, वीरकाव्यधारा पर शोध कार्य करते हुए विद्वानों ने या तो समाज चित्रण की दृष्टि से वीरकाव्य में उसकी सभाव्यता की ओर इंगित किया है अथवा आनुषंगिक रूप में सामाजिक स्थिति विषयक संकेत दिए हैं। उदाहरणार्थ डा० टीकमसिंह तोमर ने 'हिन्दी-वीरकाव्य' का कथानक, चरित्र चित्रण, रस, अलकार, प्रकृति चित्रण, भाषा शैली तथा ऐतिहासिक दृष्टिकोण से

विवेचन करते हुए इसमें समाज चित्रण सम्बन्धी सामग्री की विद्यमानता का निर्देश किया था, और भविष्य में वीरकाव्य के आधार पर समाज चित्रण प्रस्तुत करने का विचार भी व्यक्त किया था[1] किन्तु उनकी योजना अभी तक कार्यरूप में परिणत नहीं हो सकी है। इसी तरह डा० विपिनबिहारी त्रिवेदी के 'चन्दवरदाई और उनका काव्य' नामक शोधप्रबंध का उद्देश्य—चन्दवरदाई की यथासाध्य प्रामाणिक जीवनी प्रस्तुत करना और पृथ्वीराजरासो की वर्णन सौष्ठव भाव-व्यंजना, अलंकार छन्द-समीक्षा, और भाषा-सम्बन्धी विशेषताओं का उद्घाटन करना था। यही कारण है कि उनके द्वारा द्वितीय अध्याय में वस्तुवर्णन के अन्तर्गत प्रस्तुत—व्यूह-वर्णन नगर वर्णन उत्सव वर्णन, ज्योनार-वर्णन स्त्रीभेद वर्णन षटऋतु और बारहमासा वर्णन नखशिख और शृंगार वर्णन तथा द्वन्द्वयुद्ध-वर्णन सम्बन्धी सामग्री तात्कालिक सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालने की अपेक्षा, कवि चन्द के वर्णन सौष्ठव का प्रकाशन अधिक करती है।

डा० त्रिवेदी की भांति डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल का भी अभिप्रेत नरहरि ब्रह्म तानसेन गंग और रहीम की जीवनियों पर प्रकाश डालने के साथ साथ उनकी अज्ञात और अप्रकाशित कृतियों को हिन्दी संसार के समक्ष प्रस्तुत करना रहा है। यही कारण है कि उनके शोधप्रबन्ध अकबरी दरबार के हिंदी कवि के पंचम अध्याय में इन कवियों की कृतियों के आधार पर किए गए समाज चित्रण को इस प्रबन्ध में मात्र बीस पृष्ठ (२७६ से २९६) ही मिल पाए हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में विविध धारा की पृष्ठभूमि के रूप में दिया हुआ सामाजिक स्थिति सम्बन्धी विवरण भी इतिहासादि ग्रंथों की आधारशिला पर आधारित होने के कारण अनुल्लेख्य है।

निष्कर्षत वीरकाव्य का समाज चित्रण की दृष्टि से उपयोग अभी तक नहीं हुआ है। वीरकाव्य धारा अथवा उसकी विशिष्ट कृतियों पर जो शोधकार्य हुए हैं, उनमें अनुशोधकों की दृष्टि इन ग्रंथों की भाषा के स्वरूप पात्रों की ऐतिहासिकता, तथा काव्य मानदंडों के निकष पर उनकी रसवत्ता और सौंदर्य विवेचना करने तक सीमित रही है। यदि समाज चित्रण की दृष्टि से इस काव्यधारा के ग्रंथों का उपयोग हुआ भी है तो अत्यल्प और आनुषंगिक रूप में। फलत ब्रजभाषा के वीरकाव्य का समाज चित्रण की दृष्टि से उपयोग करने वाले प्रस्तुत उपक्रम को इस दिशा में प्रथम और मौलिक प्रयास होने का गौरव स्वयं ही मिल जाता है।

---

१ प्रारम्भ में यह विचार था कि उक्त पक्षों के अतिरिक्त सामाजिक दृष्टि से भी इस साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत किया जाय। इसी भावना से प्रेरित होकर सामग्री भी एकत्र की गई थी। पर इस निबन्ध का आकार अधिक बढ़ जाने के कारण सामाजिक अध्ययन सम्बन्धी सामग्री का यहाँ उपयोग नहीं किया जा सका है। आशा है निकट भविष्य में उस सामग्री के आधार पर अपना अध्ययन की धारणाओं को पाठकों के समक्ष रखा जा सकेगा।

— हि० वीर० डा० टी० सि० तो०, पृ० १५

ब्रजभाषा के वीरकाव्य का सामान्य सर्वेक्षण —

आचार्य भिखारीदास ने अनेक कवियों का उदाहरण देते हुए बहुत पूर्व ही निर्दिष्ट कर दिया था कि ब्रजभाषा की कृतियों के प्रणयन के लिए ब्रजप्रदेश में निवास आवश्यक नहीं है।[1] अधुना प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक और भाषा सम्बन्धी शोधकार्य करने वाले विद्वानों का भी मत है कि ब्रजभाषा-काव्य का रचना क्षेत्र पंजाब, राजस्थान, गुजरात, असम, बंगाल आदि तक विस्तृत था और पिंगल ब्रजभाषा का ही आरम्भिक रूप था। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० मोतीलाल मेनारिया, डा० शिवप्रसादसिंह प्रभृति भाषा वैज्ञानिक एवं शोधकों द्वारा व्यक्त किए गए अभिमतों से इस तथ्य की पुष्टि होती है।[2] सम्प्रति पृथ्वीराजरासो और विजयपाल-

---

१ 'सूर केसो मंडन बिहारी कालिदास ब्रह्म,
चिंतामणि मतिराम भूषन सु जानिये।
लीलाधर सेनापति निपट निवाज निधि,
नीलकंठ मिश्र सुखदेव देव मानिये।
आलम रहीम रसखानि सुन्दरादिक
अनेकन सुमति भए कहा लौं बखानिये।
ब्रजभाषा हेत ब्रजवास ही न अनुमानो,
ऐसे ऐसे कविन की बानी हू सो जानिये।'
—'काव्य निर्णय', पृ० ५, छ० १७

२ (क) 'फिर यह शौरसेनी अपभ्रंश साहित्यिक भाषा, पूर्व से बदलती गई इसका एक नवीनतर या अर्वाचीन रूप पिंगल नाम से राजस्थान और मालव के कवियों में गृहीत हुआ।"
—'राजस्थानी भाषा', डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पृष्ठ ६५

(ख) 'राजपूताना में काव्य की भाषा होने के कारण, ब्रजभाषा पिंगल कहलाई'
—'ब्रजभाषा साहित्य', डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ १

(ग) 'हिन्दी क्षेत्र के कुछ भागों में, विशेषकर राजस्थान में ब्रजभाषा के लिए पिंगल नाम प्रचलित है"
—'राजस्थान का पिंगल साहित्य' डा० मोती० मेना०, पृष्ठ १३

(घ) "शौरसेनी अपभ्रंश से उत्पन्न ब्रजबोली में साहित्य की रचना बारहवीं शताब्दी से आरंभ हुई। उस समय इसका नाम पिंगल था।"
—हि० सा० का आ० इति० डॉ० राम० वर्मा पृष्ठ ३८

(ङ) 'सन्ता से पहले एक सुनिश्चित काव्यभाषा थी अर्थात शौरसेनी अपभ्रंश जो बाद में विकसित होकर ब्रजभाषा के प्राचीन रूप पिंगल के नाम से प्रसिद्ध हुई। पिंगल उस काल की सर्वव्यापक साहित्य भाषा थी।'
—'सूरपूर्व ब्रज और उ० सा०, डा० शिवप्रसाद सिंह, पृ० ...

रासो आदि कृतियों भाषा सम्बन्धी अध्ययन के प्रकाश में पिंगल या साहित्यिक ब्रज भाषा की ही सिद्ध स्वीकार की जाती है।[1] इसी भाँति विद्यापति की चारण शैली में राजस्तुति के लिए प्रयुक्त अवहट्ठभाषा ब्रजभाषा मानी जाती है।[2] जबकि बंगाल और असम के ब्रजबुलि में काव्य रचना करने वाले गोविन्ददास और चतुर्भुज आदि कवियों की कृतियाँ[3] तथा गुरु गोविन्दसिंह और उनके दरबारी कवियों की गुरुमुखी लिपि में लिखित रचनाओं की[4] भाषा भी ब्रजभाषा ही स्वीकार की जाती है। तात्पर्य यह कि देश और काल के अन्तराल से ब्रजभाषा के स्वरूप में यत्र तत्र परिवर्तन एवं नामों में अन्तर अवश्य आता गया है किन्तु उसकी काव्य-परम्परा हिन्दी-साहित्य के आदि-

१ पृथ्वीराज रासो पिंगल की कृति है इस मत की पुष्टि के लिए द्रष्टव्य —
(क) गार्सां द तासी ने रायल एशियाटिक सोसायटी में विद्यमान पृथ्वीराज रासो फारसी शीर्षक का उद्धृत करते हुए लिखा है ' इसका आशय है पृथूराज का इतिहास पिंगल भाषा में अर्थात भारतीय छन्दों में कविचन्द बरदाई द्वारा।'
—हि० हिन्दुई सा० का इति० अनु० डॉ० लक्ष्मीसागर वा० पृ० ६६
(ख) भाषाविद् जार्ज ग्रियर्सन पृथ्वीराज रासो को ब्रजभाषा की आदि कृति मानते हैं तथा चार सौ वर्ष पश्चात होने वाले सूरदास को ब्रजभाषा का दूसरा कवि। —दे० लि० सर्वे आ० इं० खण्ड ९ भाग १ पृ० ६६
(ग) राजस्थान का पिंगल साहित्य, डॉ० मोतीलाल मेनारिया पृष्ठ १५
(घ) पृथ्वीराज रासो की भाषा डा० नामवरसिंह पृष्ठ ४४ तथा ५३
(ङ) रासो को डिंगल की रचना बताने वालों के मत का खण्डन करने के लिए लिखा गया नरोत्तम स्वामी का लेख — राजस्थान भारती भाग १ सं० १, सन् १९४६
(च) डा० शिवप्रसादसिंह भी पृथ्वीराजरासो विजयपालरासो आदि कृतियों को ब्रजप्रदेश की बोलचाल की ब्रजभाषा से भिन्न साहित्यिक प्रयोग के लिए विकसित हुई ब्रजभाषा अर्थात पिंगल की कृतियाँ मानते हैं। द्रष्टव्य है— 'सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य' डा० शिवप्रसादसिंह पृ० १२३

२ 'कीर्तिलता का कवि जब जनता के मनोभावों को समझते हुए प्रेम शृंगार या भक्ति के गीत लिखता है, तब तो अपनी जनभाषा यानी मैथिली का प्रयोग करता है किन्तु जब राजस्तुति के प्रयोजन से काव्य लिखता है तब ब्रजभाषा की चारण शैली और उसके तत्कालीन अवहट्ट रूप को ही स्वीकार करता है क्योंकि यह उस काल की सर्वमान्य पद्धति थी।
— सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य डा० शिवप्रसादसिंह पृष्ठ ९३

३ दे०—वही पृष्ठ २ तथा २२७

४ दे०— गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य —डा० हरभजनसिंह, पृष्ठ ४

काल से अद्यावधि अजस्र रूप म प्रवाहित रही है और उसम काव्य रचना करन वाले कवियों का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक रहा है। हमने भी ब्रजभाषा को इसी व्यापक अर्थ म ग्रहण करत हुए वीर-काव्य का चयन किया है।

वीरकाव्य शब्द से ऐसा आभासित होता है कि हमारी आधार-सामग्री म मात्र युद्ध चित्रण प्रस्तुत करनेवाले ग्रथो का समावेश होगा कितु हमने वीरकाव्य को इस बोलचाल वाले सकुचित अथ के स्थान पर काव्यशास्त्रीय अथ म ग्रहण किया है। अत ब्रजभाषा के वीरकाव्य के सर्वेक्षण से पूव सक्षेप म वीर रस के स्वरूप का स्पष्टीकरण उपयुक्त रहेगा।

आचार्यों न उत्तम प्रकृति वाले आश्रय म उत्साह नामक स्थायीभाव को वीर रस की निष्पत्ति का निमित्त स्वीकार किया है।[1] उत्साह की परिभाषा के विषय म विद्वान मत वभि य रखत हैं। उदाहरणाथ नयायिको ने उत्साह को 'अय लोगो के लिए अशक्य काय को अवश्य कर सकन की बुद्धि'[2] माना है। आचाय विश्वनाथ ने 'काय करन म स्थय और उत्कट आवेश'[3] को उत्साह का मूल लक्षण स्वीकार किया है। पण्डित राज जगनाथ के मत स 'दूसरो के पराक्रम और दानादि की स्मृति से जन्मा औनत्य उत्साह कहलाता है।'[4] आचाय रामचद्र शुक्ल उत्साह को 'साहसपूण आनद की उमग'[5] मानते हैं जबकि पडित विश्वनाथप्रसाद मिश्र उसे महत्काय सम्पन्न करने म प्रवत्त करने वाला मनावेग[6] स्वीकार करते हैं। इन परिभाषाओ के औचित्य पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि नयायिको द्वारा प्रदत्त परिभाषा स यह स्पष्ट नही हो पाता कि उत्साह का साहस शब्द से कस पार्थक्य किया जाय? क्योकि दूसरो के लिए अशक्य कार्यों को करन का साहस दिखान की मूल प्रेरणा आनदानुभूति के स्थान पर किसी प्रकार का प्रलोभन अथवा विवशता भी हो सकती है। आचाय विश्वनाथ की परिभाषा म कर्त्ता के प्रयोजन का उल्लेख नही है जिससे असत कार्यों म प्रदर्शित उत्साह के भी वीररस के अतगत समाविष्ट हो जाने की सम्भावना रहती है। पडितराज जगनाथ की परिभाषा से नायक के महत्काय की ओर प्रेरित होने की ध्वनि तो निकलती है, कितु उन्होन कर्त्ता की आनदानुभूति तथा स्वात प्रेरणा को महत्त्व न देकर उत्साह का

१ (क) 'अथ वीरो नाम उत्तमप्रकृतिरुत्साहात्मक।' —'नाट्यशास्त्र', छ० ६६ ग
(ख) 'उत्तम प्रकृतिवीर उत्साह स्थायिभावक।' —'साहित्यदपण', प० ११७

२ "अयरशक्यतया अवधतप्यवश्यकत्तव्यताबुद्धि।"
— मतिराम कवि और आचाय', डा० महेद्रकुमार पष्ठ १०६ पर उद्धत।

३ 'कार्यारम्भेषु सरम्भ स्थेयानुत्साह उच्यत।' — सा० दपण' पष्ठ १०५

४ 'परपराक्रमदानादि स्मृतिजन्मा औनत्याख्य उत्साह।' —'रसगगाधर', प० ३६

५ 'साहसपूण आनद की उमग का नाम उत्साह है।' —'चितामणि पृ० ६

६ "उत्साह वह मनोवेग है जो किसी महत्काय के सम्पन्न करने म प्रवत्त करता है।
— हिदी साहित्य का अतीत, पृष्ठ ६६६

पर अनुकरण-जन्य मात्र बना दिया है। आचार्य शुक्ल ने साहस के साथ आनन्द की योजना द्वारा उत्साह का साहस से व्यावर्तक लक्षण तो दिया है किन्तु सत असत कार्यों का इस परिभाषा से भी स्पष्टीकरण नहीं हो पाता। पंडित विश्वनाथप्रसाद मिश्र की परिभाषा का भी मनोवेग शब्द व्याख्यापेक्ष है। हमारी दृष्टि में उत्साह' की यह परिभाषा अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है कि लोकहित अथवा स्वाभिमान रक्षण की धारणा से अनुप्रेरित कार्य सम्पादन की लालसा उत्साह कहलाती है।

मानव कार्यक्षेत्र अति व्यापक होने के कारण स्वाभिमान रक्षण और लोक कल्याण सम्बद्ध कार्यों में उत्साह प्रदर्शित करने की अनेक स्थितियाँ समुपस्थित हो सकती है। इन स्थितियों के अनुरूप ही वीररस के अनेक भेद हो सकते हैं, किन्तु आचार्यों ने उनका उल्लेख करते हुए भी—दानार्थ सम्पत्ति लुटा देने में तत्परता स्वधर्म की रक्षा के लिए तन मन-धन न्योछावर करने की कामना, पर-पीड़न से द्रवित होकर अपने जीवन को संकट में डाल देने की आतुरता तथा त्रस्तजन और अपनी मर्यादा की रक्षा करने की अन्तःप्रेरणा से रिपुदलन में प्रवृत्त होने वाले व्यक्तियों के आधार पर वीररस के दानवीर धर्मवीर दयावीर और युद्धवीर चार भेद ही माने हैं।[१]

निष्कर्षतः वीरकाव्य के अन्तर्गत हमने वे रचनाएँ परिगणित की हैं जिनका प्रतिपाद्य किसी लोकरक्षक अथवा स्वाभिमानी वीर पुरुष के दान दया धर्मरक्षण अथवा युद्धविषयक कार्यकलापों को अभिव्यक्त करना रहा है।

ब्रजभाषा में उपलब्ध वीरकाव्य की संक्षिप्त विवरणयुक्त तालिका कालक्रमानुसार आगे दी जा रही है। वीरकाव्य का सर्वेक्षण करते हुए यद्यपि हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों और पत्र पत्रिकाओं का भी उपयोग किया गया है तो भी मूलाधार रहे हैं—

(क) हिन्दी वीरकाव्य (पिंगल भाषा में रचित वीरकाव्य)—डा० टीकम सिंह तोमर
(ख) राजस्थान का पिंगल साहित्य —डा० मोतीलाल मेनारिया
(ग) अकबरी दरबार के हिन्दी कवि —डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल
(घ) सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसके कवि —डा० शिवप्रसाद सिंह
(ङ) गुरमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी काव्य —डा० हरभजनसिंह
(च) मत्स्यप्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन —डा० मोतीलाल गुप्त

अन्य स्रोतों से ज्ञात ग्रंथों का विवरण उनके साथ दे दिया गया है। जिन रच

---

१ वस्तुतः तु बहवो वीररसस्य शृंगाररसस्येव प्रकारा निरूपयितुं शक्यन्ते। तथाहि प्राचीन एव सपदि विनयमतुं सत्यवीरस्य संभवात्। एव पाण्डित्य वीरोऽपि प्रतीयते। क्षमावीरे किं ब्रूयाः। — रसगंगाधर पृष्ठ ४६ ५०

२ (क) स च दानधर्मयुद्धै दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात
— साहित्यदर्पण ३/२३४

(ख) वीरश्चतुर्धा दान दया युद्ध धर्मैस्तदुपाधेस्तस्य चतुर्विधत्वात
— रसगंगाधर' पृष्ठ ३६

नाओ के विषय म कोई भी टिप्पणी नही दी गई है, वे प्राय डा० तोमर के 'हिन्दी वीरकाव्य' नामक शोधप्रबन्ध से उद्धत हैं।

ब्रजभाषा मे रचित वीरकाव्य की कालक्रमानुसार तालिका

क्रम स०	रचना काल	ग्रथ का नाम	रचयिता	प्रका० या अप्रकाशित	प्रतिपाद्य तथा विशेष विवरण
१	१३वी से १६वी शता०	पृथ्वीराज रासो	चन्द वरदाई	प्रका०	उनहत्तर समय एव २६१५ पृ० के इस वृहदाकार ग्रथ का मुख्य प्रतिपाद्य महाराज पृथ्वीराज के शाह गौरी महाराज जयचन्द तथा भोला भीम आदि म हुए युद्धो का वणन करना है।
२		परमाल रासो	अज्ञात	प्रका०	इस कृति का कुछ अ श पृथ्वीराज रासो के अन्तिम भाग मे प्रकाशित महोबा खण्ड से साम्य रखता है जबकि शेष भाग म चदेल वश की उत्पत्ति बनाफलो को दिव्य अश्वो की उपलब्धि, आदि कुछ नवीन प्रसगो की योजना की गई है। ग्रथ म स्थल स्थल पर उसके रचयिता के रूप म कवि चन्द के नाम की छाप मिलती है, किन्तु इसके सम्पादक डा० श्यामसुन्दर दास न यह सत्तरह या अठारहवी शताब्दी के किसी बुन्देलखण्डी कवि की कृति होने का मत व्यक्त किया है।[२]
३		आल्हखड	जगनिक	प्रका०	परम्परा से जगनिक द्वारा आल्हखण्ड की रचना किया जाना विश्रुत है, किन्तु आल्हखण्ड की जिस प्रति का प्रस्तुत अध्ययन म उपयोग किया गया है वह

१ 'सूरपूव ब्रजभाषा और उसके कवि', पृ० १०९

२ दे०— परमालरासो की भूमिका, पृष्ठ ३

					चाल्स इलियट द्वारा भाटा से सुनकर सग्रह की गई सामग्री के आधार पर सवत १९२४ वि० मे प्रकाशित की गई थी ।
४	१३वी शता०	विजयपाल रासो	नल्लसिंह	प्रका०	ग्रथ का मुख्य विषय महाराज विजयपाल की दिग्विजय है । इस समय इसके मात्र ४२ छद ही उपलब्ध हैं ।[1]
५	१४२० वि० लग०	हम्मीर रासो	शार्ङ्गधर	प्रका०	सम्प्रति इस कृति मे से महाराज हम्मीर देव की रणसज्जा से सम्बद्ध मात्र आठ छद ही उपलब्ध हैं जो 'प्राकृत पैगलम' नामक कृति मे सगृहीत है ।
६	१४५७ वि० लग०	कीर्तिलता	विद्यापति	प्रका०	महाराज कीर्तिसिंह द्वारा स्व पिता के वध कर्ता असलान को परास्त करके राज्यसत्ता प्राप्त करना ।[2]
७	१४५७ वि० लग०	रणमल छद	श्रीधर	प्रका०	सत्तर छन्दो की इस कृति म ईडर के शासक रणमल तथा पाटण के सूबेदार जफर खाँ के मध्य हुए युद्ध का वर्णन है । इसका प्रकाशन प्राचीन गुजर काव्य तथा रास और रासा न्वयी काव्य नामक कृतिया म हो चुका है ।
८	१६२७ वि० लगभग	स्फुट छद	नरहरि	प्रका०	नरहरि ने शाह बाबर शेरशाह हुमायूँ और अकबर आदि की प्रशस्ति म भी स्फुट छन्द लिखे हैं । इनका सकलन और प्रकाशन अकबरी दरबार के हिंदी कवि नामक शोधग्रथ के परिशिष्ट म किया गया है ।

१ सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका कवि, पृष्ठ १२१
२ वही, पृष्ठ ६३

९	१६३२ वि० लग०	स्फुट छन्द	तानसेन	प्रका०	शाह अकबर और उनके पूर्वजों आदि का प्रशस्ति वर्णन उपर्युक्त ग्रंथ में ये छन्द भी संकलित हैं।
१०	१६४७ वि०	स्फुट छन्द	कवि गंग	प्रका०	शाह हुमायूँ, अकबर और जहाँगीर आदि का प्रशस्ति वर्णन।
११	१६४८	रतनबावनी	केशवदास	प्रका०	इन कृतियों में क्रमशः महाराज रतनसिंह, वीरसिंह देव और शाह जहाँगीर की दान और युद्धवीरता का वर्णन किया गया है।
१२	१६६५	वीरचरित्र	वही		
१३	१६६६ वि०	जहाँगीर जस-चन्द्रिका	वही	प्रका०	
१४	१६७५ वि०	राणा रासो	दयाल कवि	अप्रका०	सीसोदिया वंश का इतिहास वर्णन प्रतिपाद्य विषय है। डा० मोतीलाल मेनारिया ने इसका रचनाकाल १६७५ वि० माना है[1], जबकि डा० शर्मा इसे १७३७ वि० से १७५८ वि० तक मानते हैं।[2]
१५	१६७५ वि०	मानचरित्र	महा० मानसिंह	अप्रका०	—
१६	१६८१ वि०	क्यामखाँ रासा	जान	प्रका०	क्यामखाँ चौहान तथा उनके वंशजों के युद्धादि का वर्णन। डा० मेनारिया के अनुसार यह पिंगल की कृति है।[3]
१७	१६८८ वि०	अलिफखाँ की पैड़ी	जान	प्रका०	अलिफखाँ चौहान के वीर-कृत्यों का वर्णन।
१८	१६८५ वि०	गोरा बादल की कथा	जटमल	प्रका०	महा० रतनसेन की पत्नी पद्मावती को प्राप्त करने के लिए शाह अलाउद्दीन के आक्रमण तथा गोरा और बादल की अद्भुत सूझबूझ और पराक्रम का वर्णन।

---

१ दे०—'राज० का पिंगल सा०', पृ० ६५

२ दे०— हिन्दी वीरकाव्य, पृष्ठ १८

३ दे०— राज० का पिंगल सा०', पृ० ८०

१९	१६६० वि०	स्फुट छन्द	बनवारी	अप्रका०	अमरसिंह राठौर द्वारा सलावतखाँ को मारने का स्फुट छन्दों में वर्णन।
२०	१७०५ वि०	जगतसिंह उद्योत	कवीन्द्र मिश्र	अप्रका०	महाराज जगतसिंह का यश वर्णन।
२१	१७१० वि०	शत्रुसाल रासो	डूंगरसी	अप्रका०	शत्रुसाल हाड़ा के वीरतापूर्ण कार्यों का वर्णन।
२२	१७१० वि०	जयसिंह चरित्र	राम कवि	अप्रका०	मिर्जा राजा जयसिंह का चरित्र वर्णन।
२३	१७१२ वि०	स्फुट कविता	रत्नाकर	अप्रका०	शाह शुजा की प्रशंसा।
२४	१७३० वि०	शिवराज भूषण	भूषण	प्रका०	महाराज शिवाजी तथा छत्रसाल के दान और युद्धवीरता सम्बन्धी गुणों का वर्णन।
२५		शिवाबावनी	भूषण	प्रका०	
२६		छत्रसाल दशक	भूषण	प्रका०	
२७	१७२६ वि०	हिम्मत प्रकाश	श्रीपति	अप्रका०	सैयद हिम्मत खाँ (खान) की प्रशस्तिमूलक रचना है।
२८	१७३२ वि०	रतन रासो	कुम्भकर्ण	अप्रका०	महाराज रत्नसिंह द्वारा औरंगजेब के पुत्रों में उत्तराधिकार हेतु हुए युद्ध में वीरता दिखाने का वर्णन।
२९	१७३७ वि०	राजपट्टन	रणछोड़	अप्रका०	मेवाड़ के राजघराने के इतिहास का वर्णन।
३०	१७३७ वि०	छत्रसाल विरुदावली	निवाज तिवारी	अप्रका०	छत्रसाल की प्रशंसापरक रचना है।
३१	१७३७	राजविलास	मान कवि	प्रका०	उदयपुरेश राजसिंह और औरंगजेब के मध्य हुए युद्ध।
३२	१७३८ से १७५७वि०	जयचन्द वंशावली	सतीप्रसाद	अप्रका०	महाराज जयचन्द के वंशजों का प्रशस्तिपरक वर्णन।
३३	१७४० से १७५४	केसरीसिंह समर	हरिनाथ	अप्रका०	खण्डेला नरेश केसरीसिंह का यश वर्णन।
३४	१७४२ वि०	साहिजादे मोजम के कवित	जसतसिंह महापात्र	अप्रका०	मुअज्जमशाह का प्रशस्ति गान।[1]

[1] दे०— हस्त० हि० ग्र० का अठा० त्रैमासिक वि० १९४१-४३ भा० १, पृ० १२

३५	१७६० वि०	ग्लीर-रजिनी	उत्तमचन्द	अप्रका०	महाराजा दिलीपसिंह के वंश तथा विविध कृत्यों का प्रशस्ति वर्णन।
३६	१७६२ वि०	वचनिका	वन्द कवि		महाराजा राजसिंह की वीरतादि का प्रशस्तिपरक वर्णन।
३७	१७६४ वि०	सत्य स्वरूप		अप्रका०	
३८	१७६७ वि०	छत्र प्रकाश	गोरेलाल	प्रका०	महाराज छत्रसाल बुन्देला के युद्धादि का वर्णन।
३९	१७७० वि०	जंगनामा	श्रीधर	प्रका०	दिल्ली सल्तनत हस्तगत करने के लिए फर्रुखसियर और जहाँदार शाह के मध्य हुए युद्धों का वर्णन।
४०	१७७५ वि०	खीची जाति की वंशावली	मूकजी	अप्रका०	खीची वंश के विविध नरेशों का प्रशंसापरक वर्णन।
४१	१७८३ वि०	वाणी विलास	केवलराम	अप्रका०	जूनागढ के नवाबों की प्रशंसा।
४२	१७८७ वि०	जगत दिग्विजय	हरिकेश	अप्रका०	जगतसिंह (जयपुर नरेश) तथा अन्य राजवंशों का वर्णन।
४३	१७८९ वि०	हम्मीर-रासो	जोधराज	प्रका०	अलाउद्दीन और महाराज हम्मीर देव के मध्य हुए युद्धों का वर्णन।
४४	१७९१ वि०	साभर युद्ध			
४५		जाजव युद्ध		अप्रका०	सवाई जयसिंह द्वारा लडे गये
४६		बहादुर विजय	श्रीकृष्णभट्ट	अप्रका०	युद्धों का वर्णन एवं यशगान।
४७		जयसिंह गुण सरिता	"	"	
४८	१७९२ वि०	रासो भगवतसिंह	सदानन्द	अप्रका०	भगवतराय खीची (असोथर) के युद्धों का वर्णन।
४९	१८०७ वि०	भगवन्तराय विरदावली	कवि गोपाल	अप्रका०	भगवन्तराय की दान दया तथा युद्ध वीरता सम्बन्धी प्रशस्तिपरक रचना है। संवत १९१० वि० की प्रतिलिपि की एक अनुलिपि कप्तान सूरवीरसिंह एम० ए० पीएच० डी० अलीगढ के पास विद्यमान है।
५०	१८०८ वि० लगभग	श्री भगवन्तराय खीची का जंगनामा	मुहम्मद खाँ	अप्रका०	सहादत खाँ और भगवंतराय के मध्य हुए युद्ध का वर्णन करना मुख्य प्रतिपाद्य है। सं० १९११ की एक प्रतिलिपि कप्तान सूरवीर सिंह के पास है।

५१	१८१० वि० लगभग	भगवन्तराय यश वणन	शम्भुनाथ मिश्र	अप्रका०	महाराज भगवन्तराय का यश वणन। ग्रथ की प्रतिलिपि प० रामप्रसाद द्विवेदी, गोपालपुर डाक० असनी, जिला फतहपुर के पास उपलब्ध है।[1]
५२	१७९४	बुन्देल वशावली	शाहजू	अप्रका०	बुन्देलखडी नरेशों की वशावली का वणन।
५३	वि०	लक्ष्मणसिंह प्रकाश	पडित		महाराजा लक्ष्मण सिंह का प्रशस्तिगान।
५४	१८९७ वि०	स्फुट-कविता	मोहन भट्ट	अप्रका०	विविध नरेशों के युद्ध और दान वीरता सम्बन्धी वणन।
५५	१८०२ वि०	जग जस	यदुनाथ		वृत्तविलास के रचयिता के रूप म ही प्रसिद्ध कवि यदुनाथ की 'जग जस' नामक एक अन्य कृति का पता चला है जो 'खाण्डेराय रासा' नामक एक वृहत सग्रह ग्रन्थ म सकलित है।[2]
५६	१८०७ वि०	अजमतिखाँ प्रकाश	बलदेव मिश्र	अप्रका०	बलदेव मिश्र आजमगढ़-नरेश अजमतखाँ के राजकवि गुरु और मत्री थे। अजमतखाँ के पिता विक्रमसिंह को तत्कालीन बादशाह ने मुस्लिम बना लिया था, किन्तु अजमतखाँ स्वय को राजपूत कहते थे। ग्रन्थ म महाराज का यश-वणन है।[3]
५७	१८१० वि०	सुजान चरित	सूदन	प्रका०	महाराजा सूरजमल द्वारा लड़ी गई सात लड़ाइयों का वणन।
५८	१८१२ वि०	ब्रजेन्द्र वशावली	मोती राम	अप्रका०	भरतपुर राज्यवश का सविस्तर वणन किया गया है।

१ दे०— हिन्दी के हस्तलिखित ग्रथों की खोज भाग २ पृष्ठ ९३
२ विशेष विवरण के लिए देखिए 'ओझा निबन्ध सग्रह' चतुर्थ भाग की प्रस्तावना।
३ 'हस्तलिखित हिन्दी ग्रथों का अठारहवाँ त्रैवार्षिक विवरण', सन १९४१-४३, भाग १ पृ० ९७
४ दे०— मध्यप्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन, डा० मोतीलाल गुप्त पृ० २१३

५९	१८१५ वि०	हरदौल-चरित्र	विहारी लाल	अप्रबा०	राजा हरदौल के वीर-कृत्यों का वर्णन।
६०	१८१८ वि० लगभग	ब्रजभाषा पचासा	दत्तू (देवदत्त)		राजा ब्रजराजदेव का पराक्रम वर्णन।
६१	१८२४ वि०	करहिया को रायसो	गुलाब कवि	प्रबा०	परमारों (आंतरी) और भरतपुर-नरेश जवाहरसिंह के युद्धों का वर्णन।
६२	१८२७ वि०	साखा	रंगलाल	अप्रबा०	रंगलाल महाराज जवाहरसिंह के आश्रित कवि थे। ग्रंथ में महाराज की वंशावली और प्रशस्ति वर्णित है।[1]
६३	१८३२ वि० लगभग	हम्मीर रासो	महेश कवि		अलाउद्दीन और राव हम्मीर के मध्य हुए युद्धों का वर्णन।
६४	१८३२ वि०	कवित्त	लाल कवि	,,	महाराज महीपनारायण सिंह का पराक्रम वर्णन।
६५	१८३७ वि०	प्रताप रासो	जाचीक जीवण	प्रबा०	ग्रंथ में अलवर राज्य के संस्थापक प्रतापसिंह जी के साहसिक कार्यों और युद्धों का वर्णन है।[2]
६६	१८३७ वि०	करनपी घाट की लड़ाई (भा)	लाल	अप्रबा०	दरभंगा नरेश नरेन्द्रसिंह का यश वर्णन।
६७	१८३५ वि०	वीर हजारा	गणपति भारती	,,	सवाई प्रतापसिंह का यश वर्णन।
६८	१८३७ सं १८६४ वि०	रतना हमीर की बात	उत्तमचन्द भण्डारी		
६९	१८४५ वि०	नरेन्द्र भूषण	मान	,,	रणजीतसिंह का यश-वर्णन।
७०	१८४७ वि०	प्रताप पचीसी	शिवराम भट्ट		ओड़छा नरेश प्रतापसिंह का यश वर्णन।
७१	१८४९ वि०	हिम्मत बहादुर विरुदावली	पद्माकर	प्रबा०	महाराज हिम्मत बहादुर और अर्जुनसिंह का युद्ध-वर्णन।

१ दे० श्री हिन्दी साहित्य समिति भरतपुर, स्वर्ण जयन्ती ग्रंथ पृष्ठ ३४

२ दे० 'मत्स्य० हि० सा० को देन' पृष्ठ १७८

७२	१८५१ वि०	प्रतापसिंह विरुदावली	पद्माकर	प्रका०	महाराज प्रतापसिंह के दान और युद्धवीरता का वर्णन।
७३	१८५२ वि०	समर सार	मान (खुमान)	अप्रका०	राजकुमार धर्मपाल द्वारा किसी अंग्रेज अधिकारी को वश में करने का वर्णन।
७४	१८५७ वि० लगभग	राठौड़ चरित्र	मंडन भट्ट		मंडन भट्ट महाराज जयसिंह तृतीय (जयपुर) के आश्रित कवि थे। ग्रंथों में आश्रयदाता की प्रशस्ति गाई गई है।
७५		रावल चरित्र			
७६		जयशाह सुजश-प्रकाश			
७७	१८५३ वि०	रासा भैया बहादुरसिंह का	शिवनाथ		बलरामपुर के राजकुमार बहादुरसिंह का युद्ध वर्णन।
७८	१८५३ वि०	अजीतसिंह फत्ते या नायक रासा	दुर्गादास	अप्रका०	महाराज अजीतसिंह और मराठों में हुए युद्ध का वर्णन।
७९	१८५७ वि०	रायसा	शिवनाथ	अप्रका०	धारा नरेश जसवंतसिंह तथा रीवा नरेश अजीतसिंह के मध्य हुए युद्ध का वर्णन।
८०	१८६७ वि०	बघेलवंश वर्णन	अजवेस	अप्रका०	अजवेस नरहरि भाट के वंशज और रीवा के महाराज जयसिंह तथा विश्वनाथ के आश्रित कवि थे। ग्रंथ में वंशावली का वर्णन है।[1]
८१	१८७९ वि०	उदितकीर्ति प्रकाश	ब्रजनाथ भट्ट	अप्रका०	काशीनरेश महाराज उदितनारायणसिंह का यश वर्णन।
८२	१८८२ वि०	विजय संग्राम	खुशाल	अप्रका०	थाना के ठिकाने के लिए विनयसिंहजी और बख्तसिंह के मध्य हुए झगड़े का वर्णन।[2]
८३	१८८३ वि० लगभग	हम्मीर हठ	ग्वाल	अप्रका०	महाराज हम्मीरदेव और शाह अलाउद्दीन के मध्य हुए युद्धों का वर्णन। कृति की एक अनुलिपि

१ दे०—हस्त० हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण भाग १, पृ० १२
२ दे०—वही, पृ० ८६
३ दे०—'मत्स्यप्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन' पृ० १८९

					डा० महेन्द्रकुमार, रीडर दिल्ली विश्वविद्यालय के पास विद्यमान है जिसकी पुष्पिका में ग्रंथ का रचना-काल १८८५ वि० दिया हुआ है।
८८	१९०२	हम्मीर हठ	चन्द्रशेखर वाजपेयी	प्रका०	महाराजा हम्मीरदेव और शाह अलाउद्दीन के युद्धों का वर्णन।

गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध ब्रजभाषा का वीरकाव्य

१	१६८० वि०	हनूमान नाटक	हृदयराम भल्ला	अप्रका०	संस्कृत के हनुमन्नाटक का भाषानुवाद है।[1]
२	ग ठा	वचित्र-नाटक	गुरु गोविन्द सिंह	प्रका०	यह एक संग्रह ग्रंथ है। इसमें अवतार कथाओं का गुरु गोविन्दसिंह ने वीररस में वर्णन किया है। इस ग्रंथ में अपनी कथा शीर्षक के अन्तर्गत उनके 'भंगानी युद्ध' 'नादौन युद्ध', 'खानजादे का आक्रमण तथा 'हुसैनी युद्ध भी संकलित हैं जिनका उन्होंने एक भुक्तभोगी के रूप में वर्णन किया है।[2]
	ह वी श				
३	ता ब्दी	गुरु शोभा ग्रंथ	सेनापति	अप्रका०	यह गुरु गोविन्दसिंह का प्रथम पद्यबद्ध जीवन चरित्र है।[3]
४	का ग थ मा	जंगनामा	अणीराय	अप्रका०	औरंगजेब के सेनापति अजीम खां और गुरु गोविन्दसिंह के मध्य आनन्दपुर के स्थान में हुए युद्ध का वर्णन।[4]
५	द	गुर विलास	सुक्खासिंह	१७९७ ई०	गुरु गोविन्दसिंह का जीवन चरित्र होने के कारण उनके विभिन्न युद्ध और दानादि का भी वर्णन किया गया है।[5]

---

१ गुर० लि० में हिन्दी का०', पृ० १६०

२ से ५—वही, पृ० १६०, ८६४ ९६, ५०६ २८०

६	स्फुट छंद	हरि-कवि	अप्रका०	गुरु गोविन्दसिंह के युद्धों का स्फुट छंदों में वर्णन।[1]
७	करण मरण	हंसराम	अप्रका०	ग्रंथारंभ में आश्रयदाता गुरु गोविन्दसिंह की प्रशंसा की गई है। वर्ण्य विषय महाभारत के 'करण मरण' नामक पर्व का ब्रज भाषा में अनुवाद करना है।[2]
८	सलय परब	मंगल	अप्रका०	महाभारत के 'शल्य पर्व' का अनुवाद है। ग्रंथारंभ में आश्रयदाता गुरु गोविन्दसिंह की प्रशस्ति की गई है।[3]
९	स्फुट छंद	सुंदर	अप्रका०	स्फुट छंदों में गुरु गोविन्दसिंह की दानशीलता, प्रताप, यश आदि का वर्णन है।
१०	अश्वमेध भाषा	टहिकण	अप्रका०	महाभारत के अश्वमेध पर्व का अनुवाद है। ग्रंथारंभ में आश्रयदाता का प्रशस्ति-वर्णन किया गया है।[4]
११	द्रोण-पर्व	कुवरेश	अप्रका०	महाभारत के द्रोण पर्व का अनुवाद करते हुए कुवरेशजी ने अपने आश्रयदाता गुरु गोविन्दसिंह का यश-वर्णन किया है।[5]
१२	वीर अमरसिंह	बलवनराम	अप्रका०	ग्रंथ का रचनाकाल लगभग १७७० ई० है। वर्ण्य विषय पटियाला-नरेश अमरसिंह द्वारा उनकी भट्टी मुसलमानों का पराभव करना है।
१३	स्फुट-छंद	आलम		गुरु गोविन्दसिंह का प्रशस्ति वर्णन किया है।[6]

१ ब्रजभाषा के वृद्ध पंजाबी लेखक—भगवान आयर, नागरी प्रचारिणी पत्रिका सं० २०१६ अंक ३ ६ पृष्ठ १०८

२ से ७—वही पृष्ठ १३१ १३६ १३३ १३८ १०८ १३८

८ गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य पृष्ठ ९ १

समाज का स्वरूप एवं समाज-चित्रण से अभिप्राय —

उदभव की दृष्टि से 'समाज' शब्द संस्कृत के 'समाज' शब्द से सम्बद्ध है। उसकी व्युत्पत्ति सम' उपसर्ग-पूर्वक 'अज' धातु में 'घञ' प्रत्यय के योग से मानी जाती है, तथा उसके कोशगत अर्थ—'पशुओं से भिन्न समूह', 'सभा' तथा 'हाथी' हैं।[1] प्राचीन संस्कृत साहित्य में से वाल्मीकि रामायण में 'समाज' शब्द का प्रयोग ऐसी प्रदर्शनी या क्रीडास्थली के अर्थ में किया गया है जिसमें नटनर्तकादि भाग लेते थे।[2] महाभारत में उसका प्रयोग क्रीडास्थली के साथ साथ प्रतियोगिता और क्रीडार्थ एकत्र जनसमूह' के भी अर्थों में किया गया है।[3] मनुस्मृति में 'समाज' शब्द से प्रदर्शनी का बोध होता है जबकि पतंजलि ने विशेषतया 'क्रीडार्थ एकत्र जनसमूह' और सामान्यतः किसी भी प्रकार के जन समवाय के लिए समाज' संज्ञा प्रयुक्त की है।[5] कामसूत्रकार वात्स्यायन के समय में रसानापादि सम्बन्धी गोष्ठियाँ समाज कहलाती थीं[6] जबकि सम्राट अशोक के काल में असभ्य और हिंसक कार्यों से परिपूर्ण समाजों की भी आयोजना की जाने लगी थी, जिससे विक्षुब्ध होकर उन्होंने उन समाजों पर प्रतिबन्ध लगा दिया था।

हरिदत्तजी वेदालंकार ने मौर्य-युग में समाजों के अन्तर्गत पशु और रथों की दौड़ों की आयोजना दिखाते हुए मत व्यक्त किया है कि परवर्तीकाल में वे प्रेक्षागार भी जहाँ नाटकादि का प्रदर्शन होता था समाज' कहलाते थे।[8] तात्पर्य यह कि प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में 'समाज' शब्द का प्रयोग, प्रदर्शनी क्रीडास्थली, गोष्ठी, प्रेक्षागार और पशु प्रतियोगिता आदि ऐसे अर्थों का बोध कराता था, जो अब अप्रचलित हो गए हैं।

---

१ समाज, पु० (समीयन्तेऽत्रेति। सम्+अज+घञ्) 'अजेर्व्यघञपोः २।४।५६, इति वीभावाभावः। (अजि व्रज्योश्च। ७।३।६०। इति कुत्व निषेधः) पशुभिन्नानां समूहः। इत्यमरः॥ सभा। इति हेमचन्द्रः × × × हस्ती इति अनेकार्थ कोषः। शब्दार्थ कल्पद्रुम', ५।३७१

२ नाराजके जनपदे प्रहृष्टा नट नर्तकाः।
उत्सवाश्च समाजाश्च वर्धन्ते राष्ट्रवर्धनाः। 'वा० रा०, (अयो० का०) ६७।१५

३ (क) 'नन्दी मृग समाजे च वादित्रस्य च निस्वनः।' 'महा०', आ० प० १३७।३ ६

(ख) 'स समाजजनः सर्वो निश्चलः स्थिरलोचनः।' वही, १३८।७

४ सभा प्रपापूशालावेशमद्यान्नविक्रयाः।
चतुष्पथाश्चैत्यवृक्षाः समाजाः प्रेक्षणानि च।' 'मनु० ६।२६४।

५ दे०— पतञ्जलिकालीन भारत डा० प्रभुदयाल मित्तल, पृ० २४८

६ ७—देखिए— प्रा० भा० के क० विनोद', डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ६१

८ देखिए— भा० का सा० इति०, पृ० १२८

समाज शब्द का उसके अपने अर्थ से प्रभृत सम्बद्ध अर्थ में प्रयोग भर्तृहरि के नीतिशतक में मिलता है, जिसमें 'विद्वज्जन' का समाज की संज्ञा दी गई है।[1] श्रीमद्भागवत में समाज को सभा के साथ साथ 'सम्बन्ध-सूत्र' अर्थ में भी प्रयोग किया गया है।[2] प्राचीन हिन्दी साहित्य में भी वर्ग विशेष के लोगों के संगठन को 'समाज' अभिहित करने की प्रवृत्ति मिलती है। पृथ्वीराजरासो में उसे राज-सभा,[3] मित्रों की गोष्ठी,[4] सामंतियों का संगठन[5] तथा परिजनों के समूह[6] के अर्थ में प्रयोग किया गया है जबकि गोस्वामी तुलसीदास ने भी उसका साधु-समाज[7] राज-समाज[8] और 'खलजन मंडली'[9] के रूप में उसका वर्ग विशेष के संगठन के अर्थ में प्रयोग किया है।

'समाज' शब्द के अंग्रेजी पर्याय 'सोसायटी' शब्द का भी प्रायः इन्हीं अर्थों में प्रयोग मिलता है। यूरोपीय में उसके अर्थ विकास पर प्रकाश डालते हुए 'सोसायटी' शब्द को अंतरंगता, साथ की इच्छा करना मानवों के समागम तथा जनसमूह जैसे अर्थों में प्रयुक्त दिखाया गया है।[10] तात्पर्य यह कि हिन्दी और अंग्रेजी दोनों के ही साहित्यों में उसका व्यापक अर्थ के स्थान पर संकुचित अर्थ में प्रयोग मिलता है। इस दृष्टि से समाज शास्त्रियों ने 'समाज' शब्द से क्या अभिप्राय ग्रहण किया है इस तथ्य पर दृष्टिपात करना अनुपयुक्त न होगा।

समाज शास्त्रियों द्वारा समाज की जो परिभाषाएँ दी गई हैं उनमें भी पर्याप्त अंतर मिलता है। अर्थशास्त्री एडम स्मिथ के मत में—'पारस्परिक हित व्यक्तियों की कृत्रिम विधि के आधार पर संगठित समूह को समाज कहते हैं'[11]

---

१ विशेषतः सर्वविदां समाजे विभूषणं मौनमपण्डितानाम्। नीति० श्लोक ८६

२ (क) 'धर्मव्यतिक्रमोह्यस्य समाजस्य ध्रुवं भवेत्।' श्रीमद्भा० १०।४४।६

(ख) तथा विभो समुचितो भवतः समाज

पुंसः स्त्रियाश्च रतयोः सुखदुःखविनोन।' वही १०।६०।३८

३ लरन हथ्थ लिय तेग कर। वर्गमि राज तव बाज।

लिय कूरंभ कुल उज्जरा। सीम नवाइ समाज। पृ० रा०' का० ११५६।१०

४ उर सरल सजोग मत्त सभरि नाथ समाज। पृ० रा० मो० ३।५५२।१५

५ 'हज्जार बीस उदिग्ग समाज। कूदे सुपग पर उमगि साज।

पृ० रा० क० २५८०।५४०

६ भूमि कलिजर जाहु। मिलौ परिमान समाजहु। वही २८७५।५००

७ चढ़ मधूरें चग जथा ग्यान ज्यों साधु समाज। दोहा० दो० स० ५।३

८ (क) प्रभु कर सेन पदादिका बालक राज समाज। वही दो० स० ५२५

(ख) रजत राज समाज घर तन धन धरम सुबाहु। वही दो० स० ५२१

९ तुलसी ते दमकत ज्यों जइहं सहित समाज। वही दो० स० ४१६

१० द०—'ए न्यू इंगलिश डिक्शनरी आन हिस्टारीकल प्रिंसिपल्स' भा० ९, पृ० ३७६

११ समाजशास्त्र की विवेचना पृ० १८ पर उद्धृत।

जबकि राजनीति पर विशेष बल देने वाले थॉमस हॉब्स के अनुसार — मानव (समाज) के अपने ही अनिरुद्ध स्वभाव के परिणाम से बचने के लिए मनुष्य ने जो साधन बनाया है, वह समाज कहलाता है।"[1] दुर्खीम का धार्मिक धारणाओं पर विशेष बल रहा है, अतः उन्होंने समाज को धर्म की भाँति भावात्मक, आदर्शात्मक और भावना-प्रधान बताते हुए मत व्यक्त किया है कि समाज मानवों का समूह नहीं है, अपितु उन विचारों की समष्टि है, जिनका वह समुदाय परस्पर आदान प्रदान करता है।[2] एफ० एच० हाकिन्स का प्रजाति के अविरल प्रवाह को बनाए रखने पर विशेष बल रहा है, अतः उन्होंने पुरुषों बच्चों और स्त्रियों के उस स्थायी समूह को समाज कहा है, जो सांस्कृतिक स्तर पर स्व प्रजाति के सातत्य को बनाए रखने और उसका परिपोषण करने में समर्थ होता है।[3] जे० गिलिन ने 'किसी निश्चित भूखण्ड के समान ध्येय और जीवन विधि में विश्वास रखने वाले परस्पर सम्बद्ध मानवों के समुदाय को समाज की संज्ञा दी है'[4] जबकि समाजशास्त्र के विश्वकोश में मानव के अपने साथियों के साथ विविध प्रकार के सम्बन्धों को समाज बताया गया है।[5] मैकाइवर ने समाज को एक ऐसी सुगठित व्यवस्था बताया है जिसमें विविध प्रकार के चलन और विधि निर्देशों की, स्वामित्व और पारस्परिक सहयोग की, स्वतन्त्रता और मानव आचरण के नियमन की, समूहों और समुदायों की सतत परिवर्तनशील प्रक्रिया

१ 'समाजशास्त्र के मूल तत्त्व' पृ० ३४ पर उद्धृत।

२ Society is essentially a set of ideas shared by individuas Social facts are things but things that exist only in the minds of individuals Society like religion is abstract, normative and emotional '
'The ways of men , p 340

३ "We may for our purpose have define a society as any permanent or continuing grouping of men, women and children, able to carry on independently the process of racial perpetuation and maintenance on their own cultural level'
'An introduction to the study of society , p 444

४ "A society is the largest relatively permanent group who share common 'esprite de cropes or belongingness, whereby they distinguish themselves from others
The ways of men , p 340

५ Society may be regarded as the most general term referring to the whole complex of the relat ons of man to his fellows "
'Ency of Social Sc , Vol IVX p 225

कायरत रहती है।¹ वेब्स्टर ने समाज का—समान ध्येया के कारण लागा का स्वत सभूत समागम अथवा ऐसा सगठित समूह कहा है जो साथ साथ रहता या काम करता हो, निश्चित अवधि के पश्चात समान न्याय, विश्वास या व्यवसाय के कारण मिलता अथवा पूजा करता हो।² प्रोफेसर रामपाल सिंह के शब्दो म, 'समाज एक ऐसा सगठन है जिसम परिवार पशा, पतक सम्पत्ति राजनतिक सत्ता और सस्कृति के विभिन्न विभागा की व्यवस्था और प्रतिमाना का प्रवश रहता है।'

समाज' की उपयुक्त परिभाषाओ के आधार पर कहा जा सकता है कि किसी प्रदेश के निवासियो की ऐसी जटिल व्यवस्था को जिसम वे व्यावसायिक पारिवारिक धार्मिक आर्थिक या राजनीतिक सम्बन्धा की दृष्टि से असम्बन्धित रहत है समाज कहते है। अत किसी देश और कालविशेष का समाज चित्रण प्रस्तुत करन के लिए आलोच्य समाज की इन्ही व्यवस्थाओ पर दृष्टिपात करना प्रयोजनीय सिद्ध होता है। हमारी दृष्टि म इनके साथ साथ सामाजिक दशा के दो अन्य महत्त्वपूण पक्षा का उदघाटन भी आवश्यक है। प्रथम को सामान्य जीवन की सज्ञा दी जा सकती है। इसके अन्तगत सामाजिका के खान पान वस्त्राभरण और मनोविनोद के साधन आदि ऐसे तथ्य समाहित किये जा सकते हैं जिन पर किसी समाज की पूर्वोक्त सभी प्रकार की व्यवस्थाओ का सम्मिलित प्रभाव रहता है। द्वितीय तथ्य ऐसा है, जिस पर भारतीय समाज का अध्ययन करत हुए ही प्रकाश डालने की आवश्यकता पडती है। कारण यह है कि विभिन्न देशा की सामाजिक स्थिति पर वहाँ के पयावरण तथा समाज के सदस्यो के चिन्तन की अमिट छाप होती है। उसके मूल म सावकालिक और सावभौमिक सिद्धान्त भी नही होते जिससे विभिन्न देशा के समाजो की कुछ अन्यतम विशेषताएँ हुआ करती है। भारतीय समाज की चतुवण और चतुराश्रम व्यवस्थाए इसी कोटि म आती हैं। वण-व्यवस्था म विकसित हुए जातिवाद का सामाजिक उथल पुथल म भी पर्याप्त हाथ रहा है। अत भारतीय समाज के चित्रण को तब तक पूणता प्राप्त नही हो सकती जब तक उसकी इन जातियो की स्थिति पर प्रकाश नही डाला जाता। इस प्रकार भारतीय समाज का चित्रण प्रस्तुत करन

---

१ Society is a system of usages and procedures of authority and mutual aid of many groupings and divisions of controls of human behaviour and liberties This ever changing complex *system we call society* *Society, p 5*

२ A voluntary association of individuals for common ends especially meeting or worshiping together because of a community of interests or beliefs, or a common profession '

International Dictionary, p 2162

३ दे०—'समाजशास्त्र परिचय पृ० ४

के लिए हम उसके छ पक्षों की स्थिति प्रदर्शित करना उचित प्रतीत है—वर्णाश्रम-व्यवस्था या सामाजिक गठन, सामान्य जीवन, पारिवारिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन से सम्बद्ध व्यवस्थाएँ। हमने अपने अध्ययन को इन्हीं छ वर्गों में विभक्त करते हुए समाज चित्रण प्रस्तुत किया है। इस विषय में यह तथ्य निवेदनीय है कि मानव-सम्बन्धों की जटिलता के कारण सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालने वाले बहुत से तथ्य ऐसे हैं जो कई पक्षों में अनुस्यूत रहते हैं। ऐसी दशा में उनका किसी पक्ष विशेष में ही आकलन करते समय हमने प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति के सूत्र को आधार बनाया है। समाज के इन छ पक्षों की स्थिति प्रदर्शित करते समय हमारा अधोलिखित दृष्टिकोण रहा है।

विविध विद्वानों के वर्ण-व्यवस्था सम्बन्धी अभिमतों से ज्ञात होता है कि वह आरम्भ में कर्माधृत थी और शूद्रों के अतिरिक्त अन्य त्रिवर्णों की सन्ततियाँ त्रिवर्ण में से चाहे जिस वर्ण के लिए निर्धारित कार्य कर सकती थीं। कालान्तर में यह व्यवस्था जन्मना आधृत हो गई और किसी वर्ण का सदस्य होने के लिए, उस वर्ण का कार्य करने के स्थान पर वर्ण विशेष में जन्म लेना मूलाधार माना जाने लगा। प्रमुख चार वर्ण भी अनेक वर्गों और उपजातियों में विभक्त होते चले गए तथा विविध कारणों से कुछ ऐसी जातियाँ भी उत्पन्न[1] हुईं जिन्हें निर्विवाद रूप से किसी भी वर्ण में स्थान नहीं दिया जा सकता। इन वर्णों और जातियों के पृथक् पृथक् कर्तव्य कर्म रूढ़ हो गए थे, और तदनुकूल उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में भी अन्तर था। अत समाज चित्रण की दृष्टि से हमने कीरवाव्य में उल्लिखित वर्ण और जातियों की स्थिति का आकलन करते हुए उनकी प्रमुख चारित्रिक विशेषताओं, सामाजिक प्रतिष्ठा-अप्रतिष्ठा और परम्परागत कार्यों में आए हुए वैषम्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इसी भाँति चतुराश्रम-व्यवस्था को कीरकाव्य के परोक्ष कसौटी के निकष पर परीक्षा करके, यह प्रदर्शित करने की चेष्टा की गई है कि आलोच्यकाल में कुछ कीरकाव्य प्रणेताओं द्वारा उसका अनुपालन दिखाना किस सीमा तक सत्य है, क्योंकि उसे हमारे आलोच्यकाल से पूर्व जैन और बौद्धकाल में ही पर्याप्त ह्रासोन्मुख बताया जाता है।[2]

---

१ स्मृतियों के जाति प्रकरणों तथा विविध पुराणों के तद्वत प्रसंगों में अनुलोम और प्रतिलोम विवाह-पद्धतियों तथा सामाजिक नियमों का पालन न करने पर *जाति च्युति के लिए दिए गए दण्डों द्वारा अनेक* वर्ण संकर तथा अधम जातियों का जन्म दिखाया गया है—शोधक।

२ "धर्मशास्त्र व्यर्थ ही राजाओं से वर्ण धर्म चलाने की प्रेरणा करते रहे। पेट के सवाल के सामने वर्ण व्यवस्था चुपचाप खड़ी रह गई। आश्रम व्यवस्था भी मुख्यत पुस्तकों की ही व्यवस्था है। जातकों के समय में भी इसके सिद्धान्त में विश्वास किया जाता था पर बहुत से बालक तो कभी गुरु के यहाँ पढ़ने ही न जाते थे और न सब गृहस्थ समय आने पर वानप्रस्थ बनते थे।"

— हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, डा० बेनीप्रसाद पृ० २७६

सामान्य जीवन के अन्तर्गत खान पान, वस्त्राभरण, शृंगार प्रसाधन तथा आवागमन और मनोविनोद के साधनों पर प्रकाश डालते हुए तत् तत् सम्बन्धी विशेष धारणाएँ भी प्रदर्शित की गई हैं। विविध उपकरणों का परिचय देने से ग्रंथ का आकार अति स्थूल हो जाता अतः यथासाध्य उनकी नामावली देकर ही संतोष करना उचित समझा गया है।

परिवार को सामाजिक जीवन का मूलाधार स्वीकार किया जाता है। काम्टे[1] तथा दूरखिले[2] आदि विद्वानों के मत में व्यक्ति के स्थान पर परिवार ही समाज की इकाई हुआ करता है। समाज परिवार का प्रति क्षण इस दृष्टि से ऋणी रहता है, कि वह उसके अंगभूत सामाजिकों को शिष्टाचार के नियम, भाषा का ज्ञान तथा धार्मिक एवं राजनीतिक आदि विचारों की परम्परागत विरासत प्रदान करता है। मनुष्य जाति के अविरल प्रवाह को बनाए रखने तथा उच्छृंखल यौन भावना के नियमन की समस्या भी परिवार के ही माध्यम से सुलझती है। अतः परिवार को किसी समाज की ऐसी धुरी माना जाता है, जिसकी चार छः पीढ़ियों के इतिहास पर दृष्टिपात करके समूचे समाज की दशा के विषय में धारणाएँ बनाई जा सकती हैं।[3] इस प्रकार पारिवारिक जीवन व्यवस्था के स्पष्टीकरण के लिए हमने परिवार के सदस्य और सम्बन्धियों के पारस्परिक दृष्टिकोण, बालकों के सर्वांगीण विकास हेतु किए जाने वाले संस्कार आदि कृत्य तथा अतिथि सत्कार और शिष्टाचार के नियमादि पर प्रकाश डालना उचित समझा है।

प्राचीनकालीन समाज-व्यवस्था पर धर्म का सर्वाधिक प्रभाव रहा है। एफ०डी० कुलांजीज आदि विद्वानों के मत का सार देते हुए सारोकिन ने कहा कि प्राचीन काल में सामाजिक-व्यवस्था का धर्म पूर्णतः स्वामी था—धार्मिक समुदाय राज्य थे तथा उनके राजा या पुरोहित न्यायाधिकारी थे। धार्मिक नियम कानून थे, शुचिता ही

---

१ काम्टे के अनुसार समाज की इकाई व्यक्ति नहीं अपितु परिवार है। परिवार का महान कार्य उन बुनियादी सामाजिक और मानसिक गुणों का सृजन करना रहा है जो कि अन्ततोगत्वा राज्य को जन्म देते हैं।

—सामाजिक विचारक, अनु० रघुराज गुप्त, पृ० १७

२ सारोकिन ने परिवार को समाज व्यवस्था में अप्रतिम स्थान देने वाले दूरखिले आदि विद्वानों के मत का समापन इन शब्दों में किया है—

In short the family is the universal and the simplest model of society and contains all of its essential characteristics

— Contemporary Sociological Theories, Sorokin p 67

३ एक सामान्य भारतीय घर का अध्ययन करके ही एक प्रकार से भारत की संस्कृति का पता का अनुमान लगाया जा सकता है। भारतीय घर की भाँति ही समस्त समाज का रूप बनता है।

— मध्य० हि० सा० का लो० अध्य० डा० सत्येन्द्र, पृ० १०

राज्य भक्ति थी, जबकि, धम से च्युत कर दना देश निष्कासन के सदश (दड व्यवस्था) था।[1] दुर्खीम के भी मत का सार है कि प्राय सभी महत्त्वपूण सामाजिक संस्थाएँ धार्मिक आस्थाओ के कारण विकसित हुई हैं। समाज (सगठन) के लिए आवश्यक तत्त्वो का मूलस्थान धार्मिक धारणाएँ होने का कारण यह है कि सामाजिकता की भावना का प्राण ही धम है।[2] तात्पय यह कि समाज के स्वरूप निधारण म धार्मिक आस्था और विश्वासो का अप्रतिम योगदान रहता है, और किसी समाज की दशा के चित्रण स सम्बद्ध अध्ययन तब तक अपूण ही रहता है जब तक उसम इनका आकलन नही किया जाता।

प्राय सभी देश के निवासियो की अपन म भिन्न मत और धम के अनुयायियो के प्रति सहिष्णु अथवा असहिष्णु धारणाएँ हुआ करती हैं। आलोच्य समाज म भी हिन्दुओ के विभिन्न मतो के अनुयायी तथा हिन्दू और मुस्लिम आदि धमावलम्बी निवास करते थे। आक्राता और विजेता मुसलमानो की जीवन और शासन पद्धति म धम का अपरिहाय स्थान भी स्वीकृत किया जाता है[3] इस दृष्टि स हमने विभिन्न मत और धर्मो के अनुयायियो के अन्यो य के प्रति दृष्टिकोण का स्पष्ट करना प्रयोजनीय समझा है। विभिन्न देवी देवताओ म सम्बद्ध धारणाओ तथा परलोक सुधारने की कामना स किये जाने वाले जप-तप और तीर्थाटन आदि कृत्य भी किसी समाज के सदस्यो की जीवन विधि पर प्रकाश डालते हैं अत हमारी दृष्टि म उनका विवेचन करना भी आवश्यक रहा है। शकुन अपशकुन भूत प्रेत जन्त्र मन्त्र आदि म विश्वास करना भी एस तथ्य हैं जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्षत धार्मिक धारणाओ म उत्स

१ 'In the social system of ancients religion was absolute master the state was a religious community, the king a plentiff the magistrate a priest and the law a sacred formula patriotism was piety, and exile, excommunications, individual liberty was unkown " —'Contemp Socio Theo p 664

२ ' Nearly all the great institutions have been born in religion If the religion has given birth to all that is essential in society it is because the religious idea is soul of society ' Ibid, p 667

३ "The Muslim state in India was a theocracy the existence of which was theoretically justified by the needs of religion The Sultan was considered to be Caesar and Pope combined in one In theory, indeed his authority in religious matters was limited by the Holy Law of the Quran and with the exception of Ala ud-din, no Sultan could clearly divorce religion from politics " — An Advanced History of India p 391

रखते है। डा० सत्येन्द्र ने मध्य में (मध्यकालीन) भारतीय धर्म के इन पर्तों पर दृष्टि डालें तो पहला स्तर टोने टोटकों का मिलेगा। किसी भी प्रकार का अनुष्ठान हो, कोई संस्कार हो, कोई उत्सव हो, एक न एक टोना टोटका उसके साथ लगा हुआ होगा। दूसरे स्तर पर दई देवताओं की भावना है। इन दई देवताओं में पितरों की मृतात्माएं भूत प्रेत हवाएं, सत फकीरों की मृतात्माएँ विविध देवियाँ तथा अनेक अन्य देवता सम्मिलित हैं।[1] आज चाहे इन विश्वासों को अंधविश्वास की श्रेणी में ही परिगणित किया जाए, किन्तु मध्ययुगीन सामाजिक जीवन को पूर्णत समझने के लिए इन विश्वासों पर प्रकाश डालना भी हमने आवश्यक समझा है।

अर्थ को पुरुषार्थ चतुष्टय में स्थान मिलना उसकी सामाजिक महत्ता का अभिसूचक है। अर्थ का सर्वाधिक प्रभाव सामान्य जीवन या खान पान वस्त्राभरण आदि पर पड़ता है। इसके साथ ही साथ वित्त के अभाव में न तो पारिवारिक जीवन शान्तिपूर्वक चल सकता है, न राज्य की सुरक्षा के लिए सैन्य और पुलिस की ही व्यवस्थाएँ हो सकती है और न धनापेक्षी धार्मिक कृत्य ही सम्पन्न हो सकते है। तात्पर्य यह कि समाज के प्राय सभी पक्षों पर अर्थ-व्यवस्था का स्पष्ट प्रभाव रहता है। समाज चित्रण की दृष्टि से हमने उसके इन तथ्यों का स्पष्टीकरण आवश्यक समझा है कि अर्थोपार्जन के प्रमुख साधन क्या थे उस काल की प्रमुख उपज तथा खनिज पदार्थ क्या थे किन उद्योग धंधों का उस काल में विशेष प्रचलन था व्यापार के प्रमुख उपादान क्या थे दैनिक उपभोग की वस्तुओं का मूल्य क्या था तथा राज्यों की आय के प्रमुख स्रोत क्या थे—आदि।

सामाजिक जीवन का राजनीतिक पक्ष भी बड़ा महत्वपूर्ण है। कॉम्ट के मत में—सरकार के अभाव में समाज की सत्ता उतनी ही असम्भव है जितनी समाज के अभाव में सरकार की।[2] कॉम्ट के मत का अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि समाज की विविध व्यवस्थाओं के नियमन में जब धार्मिक नियम असमर्थ हो जाते हैं तो उनके नियमन का भार राज्य को संभालना पड़ता है। आततायियों के सदृश आक्रान्ताओं से सामाजिकों की रक्षा करने का भार भी राज्य को ही वहन करना पड़ता है। यदि सदय राज्य की सत्ता न हो तो परतन्त्रता को प्राप्त हुए समाज की सभी प्रकार की व्यवस्थाएँ छिन्न भिन्न हो सकती है। 'यथा राजा तथा प्रजा' की लोकोक्ति में भी राजनीति के नियन्ता नरेशों की जीवन विधि का समाज पर अप्रतिम प्रभाव पड़ने का तथ्य झलक रहा है। अत समाज के राजनीतिक पक्ष के ऐसे तथ्यों का ज्ञान प्राप्त किए बिना जो सामाजिकों के चिन्तन मनन और जीवन विधि को प्रभावित करते हैं—सामाजिक दशा का चित्रण अपूर्ण ही रहता है। यह तथ्य अवश्य निवेदनीय है कि समाज-व्यवस्था में राजनीतिक पक्ष की महत्ता स्वीकार करते हुए

१ 'म० हिन्दी-साहित्य का लोक तात्त्विक अध्ययन' पृ० १०

२ द०— सामाजिक विचारक अनुवादकर्ता रघुराज गुप्त पृ० १६

भी हमने विशुद्ध राजनीतिक तथ्यों को अपनी विषय सीमा में स्थान नहीं दिया है। हमने इन तथ्यों पर प्रकाश डालना उचित नहीं समझा है कि विभिन्न प्रदेशों के शासक कौन कौन थे, उनकी जन्म और मरण तिथियां क्या थीं, उन्होंने कितने वर्ष राज्य किया, उन्होंने किन प्रदेशों पर आक्रमण किए तथा उनकी वंशावली क्या थी आदि। हमने तो राजनीति के उन पहलुओं पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है जो सामाजिक दशा के निरूपण से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखते हैं। उदाहरणार्थ आलोच्यकाल के युद्धों का कारण राज्यलिप्सा मात्र नहीं थी अपितु उसमें शरणागत-वत्सलता प्रजा रक्षा धर्म प्रचार, विवाह और धर्म रक्षार्थ आदि ऐसे कारणों का प्राधान्य मिलता है जो राजनीति के स्थान पर अन्य प्रकार की सामाजिक धारणाओं से अनुप्रेरित है। नरेशों में देवी अंश मानना और अपने हित अथवा अहित के राज्य-कार्यों पर हर्ष या रोष व्यक्त करना आदि तथ्य जन चिन्तन का स्वरूप स्पष्ट करते हैं। इसी प्रकार मन्त्री और राज्याधिकारियों के विवरण विविध प्रकार के सैन्य उपकरण दंड व्यवस्था जौहर प्रथा और जागीर प्रदान करना आदि ऐसे तथ्य हैं, जिनके मूल में यद्यपि राजनीति विद्यमान है तथापि ये समाज के गठन से स्पष्टतः सम्बंधित हैं। अतः सामाजिक स्वरूप के पूर्ण परिज्ञान के लिए उपर्युक्त राजनीतिक व्यवस्थाओं पर भी संक्षिप्त दृष्टि डालना आवश्यक समझा गया है।

पहला अध्याय

सामाजिक गठन

(क) वर्ण और जाति सम्बन्धी विश्वास -

व्रजभाषा के वीरकाव्य में उपलब्ध निर्देशों में ऐसे उल्लेखों की प्रधानता है जिनसे समाज का गठन परम्परागत वर्ण चतुष्टय में ही स्वीकार करने की धारणा का प्रकटन होता है। साथ ही, उसमें इन और अनेक जातियों के विषय में भी उल्लेख मिलते हैं।

चार वर्णों का सर्वाधिक उल्लेख पृथ्वीराजरासो में मिलता है। उसमें महाराज सोमेश्वर 'पृथ्वीराज' और सलख पंवार' के राज्यों में चारों वर्णों को सुखमय जीवन व्यापित करते तथा होलिकावसर पर चारों वर्णों का सभी प्रकार के भेद भावों को तिलांजलि देकर परस्पर क्रीड़ा-कलाप करते चित्रित किया गया है। कवि नरहरि[1] केशव 'भूषण' मान 'गोरेलाल' जोधराज' और सूदन[11] ने भी विविध सन्दर्भों में चार वर्णों का उल्लेख किया है। कवि सूदन ने विराट पुरुष के शरीरांगों से चतुर्वर्ण की उत्पत्ति सम्बन्धी परम्परागत[12] धारणा में भी आस्था प्रकट की है।[13]

पृथ्वीराज रासो परमाल रासो जहाँगीर जस चन्द्रिका और राजविलास में षट्-वर्ण इतर षट अथवा षटभेद सम्बन्धी उल्लेख मिलता है। महाराज पृथ्वीराज

---

१ से ११—द्र०-- पृ०रा० मा० ३।१।३ पृ०रा० भा० ८०।१४६ पृ० रा०' मा० १।३२२।७० पृ० रा० का० ६१७।३ सूरपूर्व व्रज० और उसका का० ३२२।१२१ वी० च० १४।६३ शि० बा० २० रा० वि० १५।३६ छ० प्र० १२।१० ह० रा ६५० सु० च० ६।६१७।

१२ ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण भुजाओं से क्षत्रिय जंघाओं से वैश्य और पगों से शूद्रों की उत्पत्ति दिखाई गई है।

—द्र० ऋग्० , १०।९०।१२

१३ 'विप्र वदन बहु सीस बाहु अवनीस बाहु भव।
बनिन अंत्यज चरन चय चरन भाग सब॥ —'सु० च०', ४।२।२

के राज्याभिषेक के अवसर 'पट-दरस' उन्हें दर्शन और आशीर्वाद प्रदान करते हैं, तथा महाराज उनके प्रति शीश झुकाकर विनम्रता प्रकट करते हैं।[1] पदमावती का अपहरण और शाह गोरी का पराभव करके दिल्ली लौटने पर दिल्लीश्वर पटभेष का दान और मान प्रदान करते हैं।[2] अन्यत्र कवि चन्द ने महाराज पृथ्वीराज के राज्य में पट-वर्ण का सुखमय निवास[3] तथा शाह गोरी के अंतिम आक्रमण से पूर्व प्रजा-जनों के साथ साथ पट-वर्ण का भी चिन्ताकुल होना चित्रित किया है।[4] कवि चन्द ने गजनी-गमन के समय स्वयं को पट-वर्णों में श्रेष्ठ बताकर आत्मश्लाघा भी की है।

परमालरासो में विजयी आल्हा के गृहागमन पर रानी मल्हना उनकी आरती उतारकर पटभेष को दान देती है[5] तथा महाराज पृथ्वीराज चंडी की पूजा के उपरान्त पटभेष का दान प्रदान करते चित्रित किये गये हैं।[6] केशवदासजी ने सम्राट जहाँगीर की प्रशस्ति में कहा है कि उनका शीश 'पट दरस' के अतिरिक्त अन्य किसी को भी नहीं झुकता।[7] केशव ने वीरचरित्र में पंडितों के लिए भी पट दरसन विशेषण प्रयुक्त किया है[8] किन्तु प्रतीत होता है कि उनका अभिप्रेत उन्हें पट शास्त्रों का मूर्तिमंत रूप प्रदर्शित करना रहा है। कवि चन्द ने भी ब्राह्मणों को पट कर्मी कहा है।[11]

कवि मान ने महाराज गहादित्य को नवग्रहों में दरस-पट की पूजा करते और

---

१ 'पट दरस दरसि आसिष्य दन। प्रथिराज वंदि सिर भेजि लेत।'
—पृ० रा०, का० ६००।६०

२ 'द दान मान पटभेष को। चल राज दुग्गा हुजर।' —वही, ६४१।६६

३ 'आव न पार लच्छी महल। पट्ट बरन सुप्पह रुगन।' —वही, ६६३।१७८

४ ग्रह वमन ग्रहवार नर ग्रह छिनी छह ब्रन।
सुणी वत्त नर नारि मुख मह लग्ग सनमन॥ —स० पृ० रा० पृष्ठ १४६

५ पट्ट दरन भर भट्ट की। दटि निरद बर छोह। —वही २३६६।६१

६ कर आरती मल्हन द, वचन थार उतारि।
दियवदान पटभेष कह, गावन मंगलचारि। —प० रा० ६।६५

७ 'दियव दान पट भष कह चाहुवान सुखपाय। —वही, ४।२५

८ दरसें मुग्ग स प्रेम भिर नाव निन पट दरसन हीको सिर नाइयतु है।''
—'ज०ज०च०, छ० ३४

६ ''पडित करत विचार अनत, पट दरसन ज मूरति मत।' —वी०च०' १६।२६

१० ब्राह्मणों को अपने छ कर्मों—पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना यज्ञ कराना, दान लेना और देने के आधार पर पटकर्मी कहा जाता है।
—देखिए— ना० वि० श० सा०, पृष्ठ १३७०

११ 'फुनि पंडित मंडप मंडिय वेद पाठ आधार।
खट करमी मरमी अधिक गुन सगह गुर भार।'' —'प०रा०, मो०, १।३११।४५

नाद का निर्देश किया है। [राव छत्रसाल हाड़ा ने युद्ध में पज्जियारमर] पर षट दरस को अगणित दान देकर सन्तुष्ट करता है।[1] भगवन्तसिंह ने भी पट दरसन के लिए मन्दिर पर ऊँचा स्थान बनवाने के रूप में प्रशस्ति की गयी है।[2] राजविलास में शाह औरंगजेब का पट दरसन के नाम से विरोध प्रदर्शित की है[3] तथा उदयपुर में पट दरसनों का बहु सम्मान दिखाते हुए वहाँ पर उनके आश्रम और शाला निर्माण दिखाई है।[4] कवि मान के शब्दों में वे अमित दान और मान प्राप्त करते हुए नगरागियों में उल्लसित रहते थे।[5]

पट दरसन, पट दरसन या पटभेष सम्बन्धी उपर्युक्त विवरण से उनमें ऐसे संन्यासी और गृहस्थ पुरुषों का सम्मिलित होना सिद्ध होता है जो पूज्य समझे जाते थे और जिन्हें विविध अवसरों पर दान प्रदान किया जाता था। राजस्थानी सबद कोस' के अनुसार ब्राह्मण जोगी जंगम भाट संन्यासी और साधु—ये छः समूह 'षटदरसण' या 'खटदरसण' कहलाते थे।[6] डॉ० मोतीलाल मेनारिया ने उनमें ब्राह्मण यति योगी संन्यासी जंगम और चारणों का परिगणन किया है।[7] इसके विपरीत 'जाति भास्कर' नामक ग्रन्थ में 'षटदर्शनों' के अन्तर्गत बहुत सी जातियों के भिक्षुक पुरुषों का मिलकर व्यवहार होना उल्लिखित किया गया है। उसमें कहा गया है कि ये मारवाड़ में बाईस हजार लोग पाये जाते हैं और किसी समय इनका न्याय चारण जाति के व्यक्ति किया करते थे। इनमें पहले कुछ भी भेदभाव न था और सब एक रूप से रहते थे।[8] कदाचित् योगी यती संन्यासी ब्राह्मण जंगम और भाटों के दर्शनों को शुभ समझने की धारणा से उनके लिए षट दरसन या षटभेष अभिधान का प्रचलन प्रारम्भ हुआ होगा और साधारणतया उन्हें षट वर्ण भी कह दिया जाता होगा।

अठारह वर्णों का पृथ्वीराज रासो और राजविलास में उल्लेख मिलता है। रासोकार ने रावल समरविक्रम का मकर संक्रान्ति के अवसर पर अठारह वर्णों का

---

१ 'सकल देव सवत भितिप पूजत दरस पट।
देत नवग्रह दान हत्थि हय हेम हीर पट। — रा० वि० १।१२५

२ (क) 'हान नरिंद मडयो हरप सतोप पटवरन युत। —वही २।१००
(ख) वर सतोप पटवरन हृदय सु पूरिय हाभ। —वही २।१०१

३ महाराइ अरिसिंह नद पटदरस ऊच कर। —वही १८।१८

४ न सुहाइ जास पट दरस नाउ, घीघिटठ दुट्ठ बहु पाप धाउ। —वही, ६।१६

५ [विन] पट दरसन आसम अ[न्न] साना जल वाग समेत सघन।
लहै बहु दानर मान भुगति सव जग सवत याग युगति। —वही २।१३८

६ देखिए—भाग १, पृ० ५८४

७ देखिए—राजविलास पृष्ठ २१९

८ देखिए—'जाति भास्कर' सपादक प० ज्वालाप्रसाद मिश्र, पृष्ठ ३९६

ब्राह्मण अपने खान पान में आचार विचार का बहुत ध्यान रखते थे। ऐसे अवसरों पर जब उन्हें भोजन पकाने और खाने से सम्बद्ध आचारों की रक्षा करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता था वे फलाहार मात्र पर निर्वाह करते चित्रित किए गए हैं।[1] वारुणी का सेवन, उनके लिए नितांत वर्ज्य समझा जाता था। वारुणी का सेवन तो दूर रहा, उसकी इच्छा मात्र करने से ही उनके सुख और सम्पत्ति विनष्ट हो जाने की धारणा प्रचलित थी।[2]

कर्त्तव्य-कर्म —

ब्राह्मणों के प्रमुख कर्त्तव्य-कर्म वेदाध्ययन दान लेना और देना, पौरोहित्य अध्यापन और यज्ञ कराना थे। वे ज्योतिष शास्त्र और व्याकरण आदि में भी नैपुण्य प्राप्त करते थे, तथा अवसर आने पर शास्त्रों के स्थान पर शस्त्र धारण करने में भी नहीं हिचकिचाते थे।

वेदाध्ययन —

ब्राह्मणों के परम्परागत कर्त्तव्य—वेदाध्ययन का आलोच्यकाल में भी पर्याप्त प्रचलन और महत्त्व था। वेदों का ज्ञान न रखने वाले ब्राह्मणों की पृथ्वीराजरासो में खंडित कहकर अवमानना की गई है।[3] कीर्तिलता वीरचरित,[4] सुजानचरित[5] राजविलास[6] और आल्हखण्ड[7] में विप्र वेदाध्ययन करते चित्रित किए गए हैं। वेदों के अतिरिक्त वे पुराण ज्योतिष, व्याकरण और स्मृतियों में भी पारंगत दिखाए गए हैं।[8]

प्रतिग्रहण —

ब्राह्मण दान के लेने को अपना जन्मसिद्ध ईश्वर प्रदत्त अधिकार समझते थे। कवि केशव ने ब्राह्मण वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए यह धारणा व्यक्त की है कि परमात्मा ने हमें उत्पन्न करते समय ही मांगने का अधिकार प्रदान कर दिया था।[9] ब्राह्मणों को नरेशादि से नमित क्रिया, पारिवारिक संस्कार युद्ध अभियान विजय, तथा त्यौहारों के अवसर पर दान में अनेक प्रकार के उपादान मिलते चित्रित किए गए हैं, जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि उनकी भौतिक आवश्यकताओं की बहुत कुछ पूर्ति, दान में मिले वित्त पर निर्भर रहती होगी।

अध्यापन —

क्षत्रिय और वैश्यों में वेदाध्ययन का अप्रचलन होते जाने के कारण, ब्राह्मण

१ से ३ देखिए—क्रम कीर्ति० पृ० ७०, वी० च०, ११।२६, 'पृ० रा०, मा० १२४८।४८

४ से ६ देखिए—क्रम कीर्ति०', पृ० ८, वी० च०', १६।२७, २८।१६, , 'सु०च०', ४।६ रा० वि०', ३।६८ 'आ० ८४।१३ 'वी० च०', १८।७

१० देखिए—क्रम ज० ज० च०, १६

उनको वेद पढ़ाने तो नहीं मिलते किन्तु वीरकाव्य में अध्ययन सम्बंधी जो उल्लेख मिलते हैं, उनमें ब्राह्मण ही शिक्षण कार्य करते चित्रित किये गए हैं। इनके आधार पर कहा जा सकता है कि आलोच्यकाल में भी अध्यापन कार्य मुख्यतया ब्राह्मण वर्ग के ही हाथों में था। पृथ्वीराजरासो में पृथ्वीराज का गुरुराम पुरोहित वर्णमाला सिखाने के पश्चात् चौदह विद्या बहत्तर कला और चौरासी विद्याओं में पारंगत करते हैं।[1] उसमें संयोगिता और उसकी सखियों को विनय मंगल की शिक्षा भी एक ब्राह्मणी ही प्रदान करते प्रदर्शित की गई है।[2] आल्हखण्ड में भी प्रहलाद का ज्ञान हेतु एक ब्राह्मण पंडित के नियुक्त करने का उल्लेख किया गया है[3] जो पाठन कार्य का श्रीगणेश ओनामासी धम के मंत्र से करता है।[4] पृथ्वीराजरासो में महाराज पृथ्वीराज को भी अक्षर ज्ञान कराने से पूर्व ओ३म नमः सिद्धम् का मंत्र सिखाया जाता है।

पौरोहित्य —

ब्राह्मणों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थिति पुरोहितवर्ग की थी। उनको अपने कुल का पुरोहित निश्चित करते समय ही यह वचन दिया जाता था कि यजमान और उसकी भावी संततियाँ उनके पैर पूजा करेंगे।[5] नये नगर बसाते समय नृपतिगण स्व पुरोहित के वहाँ बसाने का प्रबंध करते थे।[6] यजमानों की दृष्टि में वे—कुल देवता कुल की परिपाटियों के विधाता तथा भूत और भविष्य की घटनाओं का सार समझने वाले समझे जाते थे।[7] यजमान दुहिताओं के लिए वर निर्धारित करने में कुल पुरोहितों का प्रमुख हाथ रहता था। बहुधा उन्हें लग्न-सामग्री सौंप कर यह अधिकार प्रदान कर दिया जाता कि वे कन्या पक्ष की मर्यादा को दृष्टिगत करते हुए जिस किसी भी वर को कन्या के लिए उपयुक्त समझें उसका तिलक करके वर मनोनीत कर आयें। पारिवारिक विवादों को सुलझाते समय कुल पुरोहितों को मध्यस्थ बनाने का प्रचलन था।[8] यजमान नरेशों पर भी उनका पर्याप्त नैतिक प्रभाव होता था और विविध राजमंत्रणाओं में नरेश कुल पुरोहितों की भी सम्मति लिया करते थे।

नैमित्तिक यज्ञ कराना —

ब्राह्मणों का एक वर्ग विशेष यज्ञ के शास्त्रोक्त कर्म-काण्ड और वेद-मंत्रादि में अधिक पारंगत होता था। इनका प्रमुख कर्त्तव्य नैमित्तिक यज्ञ सम्पन्न कराना होता था। वीरकाव्य में इनके लिए यद्यपि वेदान्ती और पंडित संज्ञाओं का भी प्रयोग मिलता है तथापि प्रधानतया उन्हें भूदेव विप्र या द्विज ही कहा गया है। प्रतीत होता

१ से ३ देखिए— पृ०रा० मा० १।२८।६०६१ वही ३।२७६ आ० ६०६।९ १०
४ ओ३म नमो सिद्ध प्रथम पढाय। सब भाव भेद अक्षर बताय।
— पृ० रा०' का० १५४।७३०
५ से ८ देखिए—क्रम वी० च० २।२३ १८।६३ १०।४०४१ ४।३७

है कि यज्ञ कराने वालों के लिए पंडित शब्द आलोच्यकाल में आजकल की भांति रूढ़ नहीं हो पाया था।

महाराज वीसलदेव, पृथ्वीराज, वीरसिंह देव, और गजसिंह के राज्याभिषेकों के अवसर पर यज्ञ-वेदी की रचना करके वेदज्ञ विप्रों द्वारा यज्ञ और हवन किये जाते हैं।[1] विवाह आदि संस्कार[2] महल या सरोवर के निर्माण,[3] तथा अनिष्ट ग्रहों के उपशमनार्थ[4] भी ब्राह्मणों को पंडितवर्ग ही यज्ञ करते चित्रित किया गया है।

इन वेदान्ती या पंडितों को ज्योतिष की भी सामान्य जानकारी होती थी। महाराज पृथ्वीराज संयोगिताअपहरण के लिए जाने का शुभ मुहूर्त पंडित से पूछते हैं।[5] आल्हखण्ड में भी नौरंगे डालने, वधू को विदा करने[6] या विधवा की चूड़ियाँ गिराने[7] जैसे अवसरों पर पंडितों से साइत पूछी जाती है, जो आजकल के पंडितों के कार्यों के अधिक निकट है। इसके विपरीत पृथ्वीराजरासो, हम्मीररासो और राजविलास आदि ग्रंथों में महत्त्वपूर्ण कार्यों के मुहूर्त शोधन तथा ग्रह नक्षत्रादि की स्थिति पूछने के लिए ज्योतिषी या गणकों को बुलाने के निर्देश किये गये हैं जिससे स्पष्ट होता है कि ज्योतिष शास्त्र में विशेष दक्ष ब्राह्मण ज्योतिषी कहलाते थे।

ज्योतिष-कर्म —

वीरकाव्य में ज्योतिषियों को प्रातःकाल ग्रह नक्षत्रों की स्थिति बताने, स्वप्नफलों की व्याख्या, मुहूर्त शोधन, शकुन विचार तथा जन्मपत्री लेखन जैसे प्रसंगों में गुनान का चित्रण किया गया है जिससे प्रतीत होता है कि उनके मुख्य कार्य यही रहे होंगे।

महाराज सोमेश्वर प्रातःकाल जगकर आलस्य भी नहीं त्याग पाते थे कि उनका ज्योतिषी उन्हें उस दिवस की तिथि, योगिनी विचार तथा नवग्रह की उनके लिए शुभाशुभ स्थिति बताने आ पहुँचता था।[8] महाराज वीरसिंह देव का भी उनका गणक, प्रातःकाल आकर आशीर्वाद प्रदान करते तथा ग्रह नक्षत्रादि की स्थिति बताते चित्रित किया गया है।[9]

महाराज अनंगपाल यमुना पार के एक सिंह को दिल्ली की ओर आते देखन

१ से ४—देखिए—क्रम प० रा० का० ६६।३८१-८६।७१, वी० च०, ३३।२, रा० वि०, ५।१४, प० रा० मो० ११।७१।६८, १।३११।४८, रा०वि० ८।१।५, प० रा०, का० ७८७।४३८

५ 'बोल्यो बमन सूर तहँ, कही सु मन की बान।
ता दिन पंडित दहि हम, जिहि दिन चले सथान।'

—'प० रा०', मो० ३।२५६।१६

६ से ८ 'आ०, ३५०।२१, २३१।२०, ६२।१२

६ १०—दे०—क्रम प० रा० मो० ३।१०।२१।२१ २२, 'वी०च०', २२।६-१०, ...

है जो इस तट के सिंह के साथ क्रीडा करता है। उसी रात्रि में वे तोमरों को दक्षिण की ओर यात्रा करते देखते हैं। इन स्वप्नों की व्याख्या के लिए वे ज्योतिषी बुलाते हैं, और उन्हें आसन और ताम्बूल प्रदान करके अपने स्वप्न सुनाते हैं।[१] ज्योतिषी उन्हें स्पष्ट कर देते हैं कि शीघ्र ही तोमरों का विनाश होने वाला है और दिल्ली पृथ्वीराज के आधिपत्य में जाने वाली है।[२] इसी भाँति कुँअर पृथ्वीराज स्वयं को योगिनी द्वारा दिल्ली के राज्य पर अभिषिक्त करने का स्वप्न देखते हैं। उनकी माता इस स्वप्न की व्याख्या के लिए ज्योतिषियों को बुलाती हैं।[३] जो भविष्यवाणी करते हैं कि पाँच दिवस की अवधि में पृथ्वीराज वस्तुतः ही दिल्लीपति बन जायेंगे।[४]

महाराज अनंगपाल किले की नींव रखने की शुभ लग्न पूछने के लिए विप्र गणक बुलाते हैं।[५] पितृ वैर शोधन के आकांक्षी महाराज पृथ्वीराज को उनके सामंतों द्वारा परामर्श दिया जाता है कि आप ज्योतिषी से यात्रारम्भ की शुभ लग्न पूछ लीजिए।[६] ज्योतिषी शुभ लग्न बताते हुए कहता है कि—दस घड़ी में आक्रमण करने से आप अवश्य ही वैर शोधन में कृतकृत्य होंगे। महाराज सोमेश्वर[७] और अर्जुन सिंह[८] भी युद्ध अभियान से पूर्व ज्योतिषियों से तदर्थ शुभ लग्न पूछते चित्रित किए गए हैं।

ज्योतिषी जप मंत्रों से अशुभ ग्रहादि के उपशमन और अभिमंत्रित कीली आदि उपकरणों के माध्यम से स्व यजमानों के राज्यों को अचल बनाने के भी प्रयास करते थे। खट्टवन में गड़े हुए धन को निकालने से पूर्व ज्योतिषी जप मंत्रों से अरिष्टग्रहों को शान्त करते चित्रित किए गए हैं।[९] तोमर वंश का दिल्ली पर अविच्छिन्न रूप से राज्य स्थिर रखने के लिए महाराज बल्हन के ज्योतिषी द्वारा एक अभिमंत्रित कीली गाड़ी जाती है। महाराज अनंगपाल के निष्पुत्र होने के कारण पूर्वोक्त ज्योतिषी की भविष्यवाणी असत्य प्रतीत होने लगती है अतः उनका ज्योतिषी शुभ लग्न में उस कीली को पुनः गाड़ता है और कहता है कि यदि इसे पाँच घड़ी तक न हिलाया जायगा, तो तोमर-वंश ध्रुव-तुल्य अचल रहेगा।[१०]

ज्योतिषियों का अन्य काम जन्म पत्रियाँ बनाना था। महाराज अनंगपाल स्व दौहित्र पृथ्वीराज के जन्मावसर पर ज्योतिषी बुलाकर उनकी जन्म पत्रिका निर्मित कराते हैं। उस जन्म पत्रिका के आधार पर महाराज सोमेश्वर का ज्योतिषी

---

१ से ५—द्रष्टव्य— पृ० रा० का० ६६३।१८ वही ६६३।१६ पृ० रा० मा० १।८४।६ वही १।८६।१० ह० रा० छ० ८१

६ से ६—द्रष्टव्य—क्रम पृ० रा० का० १२०१।१८ वही १२०१।१६ पृ० रा०, मा० १।१७६।८ वि० व० वि० छ० २०

१० गत्त मत्त जानियौ। मध्य नाग उत्तार।
दिष्ट राह ग्रह दुष्ट। मंत्र जप्य वर टार॥'—पृ० रा० का० ७३५।३६७

११ पृ० रा० मा० १।८६।१८।१६

भाज वने चित्रित किया है।[1] कवि 'मान' ने उदयपुर में अठारह वर्णों के व्यक्तियों को अपनी उपजातियों, गोत्र और वंशों के साथ निवास करते प्रदर्शित किया है।[2] कवि मान द्वारा इन वर्णों को स्व स्व कर्मों में निपुण प्रदर्शित करने से[3], इन अठारह वर्णों का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है कि कवि चंद और मान का अभिप्राय शूद्रों की परम्परागत अठारह श्रेणियों अथवा प्रकृतियों की ओर इंगित करने से रहा है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने अभिमत व्यक्त किया है कि पाणिनि काल में बुनकर, तेली मात्री आदि शिल्पियों के जातीय और आर्थिक संगठन 'श्रेणि' कहलाते थे और ऐसी अठारह श्रेणियों की सूची प्रसिद्ध हो गई थी।[4] डा० दशरथ शर्मा ने भी 'कान्हड़ प्रबन्ध' नामक कृति में अठारह वर्ण शब्द का प्रयोग मिलने तथा उससे कमकर जातियों की अठारह श्रेणियों के निर्दिष्ट होने का मत व्यक्त किया है।[5] मत्स्यपुराण में शूद्रों की अग्रलिखित अठारह प्रकृतियाँ प्रदर्शित की गई हैं—१ शिल्पी २ नतक, ३ काष्ठकार, ४ प्रजापति ५ वर्धिक, ६ चित्रक, ७ सूतक, ८ रजक, ९ गन्धक १० तन्तुकार ११ वणिक, १२ चर्मकार १३ सूनिक १४ ध्वनिक १५ कौलिहक, १६ मत्स्यघातक १७ औनामिक और १८ चाण्डाल।[6] इनमें से छः प्रकृतियाँ उत्तम पाँच अधमाधम और सात अन्त्यजा के वर्गों में रखी गई हैं तथा प्रत्येक प्रकृति पुनः अनेक उपवर्गों में विभक्त दिखाई गई है।[7] कवि मान ने भी, अठारह वर्णों का उल्लेख करने के पश्चात कमकर जातियों की एक दीर्घ नामावली दी है जिससे प्रतीत होता है कि उसका अभीष्ट इन प्रकृतियों का ही विवरण देना

---

१ "भु जाइ रावर समर। जात्र वग्न अठार।
नह को पूज अप्प पर। दिज्ज अन अपार।" — पृ० रा० का०, २११६।६६

२ (क) 'जाति गोत बहु वंश युत बसत अठारह वर्ण।
निय निय कर्म, गव निपुन, सघन सुवाय, सुवर्ण। — रा० 'वि०', २।८५
(ख) "उदपुर इन्द्रलोक अनुहार, बसे सुक्खवासहिं वर्ण अठार।" —वही, २।८७

३ देखिए—उ० स०—२ (क)

४ देखिए—'पाणिनिकालीन भारत' पृ० २५२

५ देखिए— अर्ली चौहान डाइनस्टीज, पृ० २५२

६ शिल्पी च नतकश्चैव काष्ठकार प्रजापति। धर्मकश्चित्रकश्चैव सूतको रजकस्तथा। गन्धकस्तन्तुकारश्च वणिकश्चर्मकारक। सूनिको ध्वनिकश्चैव कौलिहको मत्स्यघातक। औनामिकस्तु चाण्डाल प्रकृत्यष्टादशैव ता।"
— मत्स्यपुराण, ६।२०,२१

७ इनमें से शिल्पी स्वर्णकार दारुक कसेरे काठुक और कुम्भकार को उत्तम खरवाही, उष्ट्रवाही हयवाही ग्वाल और इष्टकाकार (इस जातिभास्कर में इटपज कहा गया है—देखिए पृष्ठ ३३३) को अधमाधम तथा रजक, चमकार, नट, वारुणी, ववत, मेद और भीलों की अन्त्यजों में गणना की गई है।
—देखिए—वही, ६।२२ २४

रहा है। हाँ उसने इन प्रकृतियों के लिए कन्हड़ प्रबन्ध के रचयिता ने सहज वर्ण शब्द प्रयुक्त किया है, तथा उनके उपवर्गों का भी मिश्रण करते हुए लगभग पचास जातियों की नामावली दी है।[1] निर्भ्रान्त धारणाओं के अभाव म, उसने निरण तथा कायस्थ और भाट आदि जातियाँ भी इन्हीं म सम्मिलित कर दी हैं।

पृथ्वीराजरासो म भाटों के लिए जाति शब्द प्रयुक्त हुआ है[2] जबकि हम्मीर रासो म क्षत्रिय-वर्ण के स्थान पर क्षत्रिय जाति शब्द का प्रयोग मिलता है।[3] इसम न ब्राह्मणों को द्विज जाति की सज्ञा से अभिहित किया है। राजविलास कार मान के शब्दों म तो जगत म जितने प्रकार के कार्य हैं उतने ही प्रकार की जातियाँ हैं। क्यामखाँ रासो[6] और आल्हखण्ड म वर्ण शब्द का प्रयोग ही नहीं मिलता और विविध प्रसगों म जातियों का ही उल्लेख किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि—समाज का गठन वर्णों के स्थान पर जातियों म समझने की धारणा भी प्रचार पाती जा रही थी।

निष्कर्षत विवेच्यकाल म समाज का सघटन अधिकतया परम्परागत चतुर्वर्ण म ही स्वीकार किया जाता था। ब्राह्मण योगी, यती, सन्यासी जगम और भाटों के लिए षट वर्ण षट भेस या षट दरस शब्द प्रयुक्त किये जाते थे जबकि शूद्रों को परम्परागत अठारह श्रेणी या प्रकृतियों को अठारह वर्ण कहकर अभिहित किया जाता था। व्यवसायों के आधार पर चतुर्वर्ण भी विविध वर्ग एव उपजातियों म विभक्त थे। इन वर्ण और जातियों की सामाजिक प्रतिष्ठा और प्रमुख कर्तव्य कर्मों पर आगे प्रकाश डाला जा रहा है।

---

१ देखिए— रा० वि० २।८७ ६७

२ बरदाय द्रुग्ग द्रुग्गह सुजिय। भट्ट जाति तीह दुनो।
— पृ० रा० का० २१७६।४६

३ (क) रह्यौ नहिं क्षत्रिय जाति विरूप। भए निमूल जो क्षत्रि अशेष।
— ह० रा०, छ० ३६

(ख) दूज तीज उपज क्षत्रि जाति पड़िहार। —वही छ० ४५

४ जिती जग जाति तिते तिन कर्म। सब सुखलोक बढ धन धर्म।
— रा० वि० २।१३६

५ "जहं तहं वेद पढ द्विज जाति जहं तहं होम होत बहु भाति।
— वी० च० ३३।२

६ यक यक त जात बहु कीनो है जग माँहि। — क्या० रा० छ० ६

७ "नौ स बिटियाँ तम्बलिनि की, और बारह स सातौ जाति।"
—'आ० १६२।११

ब्राह्मण

ब्राह्मणों के लिए प्रयुक्त संज्ञाएँ —

वीरकाव्य में उपलब्ध निर्देशों से ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों के लिए विप्र[1] और द्विज[2] संज्ञाओं का सर्वाधिक प्रचार था। इसके अतिरिक्त त्रिवर्ण या द्विजातियों में उनका मूर्धन्य स्थान सूचित करने वाली द्विजराज[3], तथा उन्हें भूतल के देव समझने की जनधारणा का प्रकाशन करने वाली भूदेव, भूसुर और सुर संज्ञाएँ प्रचलित थी।[4] उनके लिए यत्र-तत्र बंभन या बाँभन[5] शब्द का भी प्रयोग मिलता है।

बाह्याकृति —

केशवदासजी ने महाराज वीरसिंह देव के दरबार में आने वाले ब्राह्मण पीली धोतियाँ बाँधें तथा ऊपरी अंग में उपरना ओढे चित्रित किए हैं,[6] जो कदाचित उनका पर्वों पर पहना जाने वाला पहनावा रहा होगा। कवि चंद, विद्यापति और केशव के निर्देशों से ब्राह्मणों की बाह्याकृति के अन्य प्रतीकों में—उनका स्व-काया को चंदन चर्चित रखने मस्तक पर तिलक लगाने तथा यज्ञोपवीत धारण करने का मुख्य स्थान परिलक्षित होता है।[7] स्व ललाट को तिलक मंडित रखना, उनके लिए इतना आवश्यक था कि तिलक-हीन ब्राह्मणों को जनता अपशकुन का निमित्त स्वीकार करती थी। कवि चंद ने तिलकहीन ब्राह्मण के सम्मुख पड़ने पर यात्रा ही स्थगित कर देने का परामर्श देकर[8] उक्त धारणा की अभिव्यक्ति प्रदान की है।

---

१ (क) "कोटि विप्र प्रथिराज, तत्त बुद्धी अधिकारिय। देखिए—क्रम प० रा०' का० ११८२।१२७ और भी देखिए— र०बा०', छ० २३, वी० च०, २६।३५, 'रा० वि०' २।८८, 'गो० क०, छ० ३१

२ देखिए—क्रम प०रा०, मा० ३।१०।२२ और भी देखिए— कीर्ति०', प० ५४, वी० च० ३३।२ 'पृ० रा०, १४१

३ देखिए—क्रम प० रा० मो० ३।१०८।३६, हु० रा०, छ० ७

४ देखिए - क्रम प० रा०', मा० १।६६।३६ ज०ज०च० छ० १७२ पदमा० ग्र०', प्रकीर्णक, छ० २३, 'हि० व० वि' छ० २२

५ देखिए—क्रम 'प० रा०', मा० २।६२२।१५, 'कीर्ति०, प० ४४, वी०च०' १०।८० देखिए — शि० भू०' छ० ७८

६ "महाराज द्व विप्र उदार। अद्भुत दुति ठाढे दरबार।
पीत धोवती पहिर गात। ऊपर उपरना अवदात।' — वी० च०', २८।१२

७ देखिए—क्रम, 'प० रा० मो० ८।६५४।२२, 'प० रा०', का० २१३४।१८६ कीर्ति०', प० ४४, 'वी० च० २८।३

८ 'अतिलक बंभ स्याम असु जोगी हीन विभुत्त।
समुह राजपरल्लिय। गमन वरज्ज नित्त॥" — पृ०रा०', मो०, ४।६०६।६७

सामाजिक प्रतिष्ठा —

ब्राह्मणों की जातीय श्रेष्ठता पर विश्वास करने से ज्ञात होता है कि उनका समाज में बड़ा सम्मान प्राप्त था। ऐसा विश्वास किया जाता था कि ब्राह्मण में विशेष प्रकार की दैवी शक्ति विद्यमान रहती है।[1] उनके आगमन पर उठकर उनका स्वागत करते, उनके चरण पखारते तथा उनके आशीर्वाद को सत्कर्मों का सूचक स्वीकार किया करते थे।[2] प्रातःकाल विप्र मुख का दर्शन करना एक प्रकार के मांगलिक-लक्षण के रूप में समझा जाता था। महाराज पृथ्वीराज की नित्य क्रिया का यह एक आवश्यक अंग चित्रित किया गया है।[3] ब्राह्मणों के सम्मान में स्वच्छाचार का विधान भी अतीव पुण्यकर समझा जाता था तथा यह धारणा व्याप्त थी कि, ब्राह्मण अनाचारी और मूर्ख भी क्यों न हो फिर भी उसको आत्मीय ही समझना चाहिए। ब्राह्मणों के अन्य सभी प्रकार के कार्यों का विरोध सहन करते थे[4] तथा उन्हें अवध्य समझने की धारणा भी प्रचलित थी। विश्वास किया जाता था कि तीर्थ यात्रा और दानादि कृत्यों से अन्य पापों का तो प्रक्षालन किया जा सकता है किन्तु ब्रह्म हत्या एक ऐसा जघन्य कृत्य है कि ये पुण्य कार्य भी उसके पाप का परित्राण नहीं दिला सकते। सम्भावित ब्रह्म हत्या के पातक से बचने के लिए महाराज वीरसिंह देव द्वारा भाइयों से किये गये युद्ध करने से विरत होना भी प्रदर्शित किये गये हैं।[6] आल्हखण्ड में थोड़ा ब्राह्मण द्वारा ब्रह्म हत्या की धमकी देकर अपनी इच्छा-पूर्ति करने के लिए विवश करने के मूल में भी उक्त लोक धारणा ही भाव रही है। परमालरासो में तो सामान्य-स्थलों में ही नहीं अपितु युद्ध स्थल में भी ब्राह्मणों पर प्रहार करने वाले नरक गामिता के भागी बताए गए हैं।[1]

ब्राह्मणों की वृत्ति का अपहरण करना अतीव गर्हित एवं पाप का मूल स्वीकार करते हुए विश्वास किया जाता था कि वृत्ति हरने वालों को सहस्रों वर्षों तक विष्ठा-कीट के रूप में जन्म लेना पड़ता है।[11]

---

१ देखिए—क्रम 'वी० च०' २१।२२ १४।१६ वी०च० २१।२२ वही १४।१६
२ देखिए - क्रम वही २८।६ १२, —ज० ज० च० १६१
३ 'प्रात रात जग प्रथम गा दुज दरसन किन्न। — प०रा०' मा० १।१२८।६४
४ 'द्विज चरनादक वु दव सीचत सुख यढित्य। — र० वा० १४
५ अनाचार साचार असाधु। मूरख पढयो कि साधु असाधु।
बिप्र होत जग जुग अनुरूप। तातें विप्र अतिथि को रूप।
— वी० च०', २८।२२ २३
६ "भली बुरी विप्रन की सहै। सुत ज्यों प्रजा पालि सुख लहै। —वही ३१।३०
७ ब्रह्मघात क पातकहि तारथ दान सक न हरि। — ज० ज० च० छ० १६
८ से ११—देखिए, क्रम, 'वी०च० , १०।४६ ५१ , आ०' ५६५।१८ पर० रा०, ३५।२८ , वी० च० , ३०।११ 'सु० च० , ७।२।२६

महत्त्व अभिवृद्ध हुआ था, और विवाहादि सम्बन्ध परस्पर इन्हीं कुलों में मर्यादित कर दिए गए थे।[1]

वीरकाव्य प्रणेताओं ने छत्तीस राजवंशों की जो तालिकाएँ दी हैं उनमें कुछ वंशों के नाम समान हैं, जबकि अन्य वंशों की नामावली ग्रन्थानुसार भिन्न भिन्न है। पृथ्वीराजरासो के छत्तीस वंशों का नामोल्लेख करने वाले छन्द के आधार पर कर्नल टाड ने तीस वंशों के नाम दिए हैं।[2] रासो के सम्पादकों ने उसके आधार पर छत्तीस वंशों की नामावली दी है जबकि चिन्तामणि विनायक वैद्य[3] और डा० राजबली पाण्डेय ने उसमें चवालीस वंशों का नामोल्लेख प्रदर्शित किया है।[4] वह छन्द निम्नलिखित है —

रवि ससि जादव बंस ककुस्थ परमार सदावर।
चाहुआन चालुक्क छन्द सिलार आभीयर।
दोयमत्त मकवान, गरुअ गोहिल्ल गुहिलपुत्र।
चापोत्कट परिहार, राव राठौर रोसजुत।
देवरा टांक सैंधव अनिग, यौतिक प्रतिहार दधिपट।
कारट्टपाल कोटपाल हुल, हरितट गौर कलाप भट।
धन्यपालक निकुंभ वर राजपाल कविनीस।
काल छुरक्के आदि दे बरने बंस छत्तीस।[5]

प्रस्तुत छन्द में छत्तीस वंशों की नामावली का स्पष्ट उल्लेख किया गया है जिनकी नामावली रासो सम्पादकों ने इस प्रकार दी है — १ रविवंश २ चन्द्रवंश ३ यादव वंश ४ कछवाह ५ परमार ६ सदावर (तोमर) ७ चौहान ८ चालुक्य ९ छन्द (राठौड़) १० सिलार ११ आभीर १२ दोयमत्त (दाहिमा)

---

१ देखिए— हिन्दू भारत का अन्त, पृष्ठ ५८६ ९०

२ कर्नल टाड ने उपर्युक्त सूची के १—यौतिक २—हरितट ३—दधिपट, ४—आभीयर ५—सदावर और छन्द शब्दों को राजवंश सूचक न मानकर शेष तीस नाम ही दिए हैं। दे०—'एनल्स एण्ड एंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान' पृष्ठ ६९

३ देखिए—'हिन्दू भारत का अन्त', पृष्ठ ७८ से ७८

४ डा० राजबली पाण्डेय ने उपरिलिखित कुलों के अतिरिक्त १—रोसजुत २—गौर (गौड) तथा कविनीस नामक तीन अन्य कुलों की भी नामावली दी है, और अभिमत व्यक्त किया है कि प्रथम तीन वंश (मूल क्षत्रिय वंश) मध्ययुग में भी दुहरा दिये गये हैं। अर्थात् सूर्य, चन्द्र और यदुवंश को पृथक् करने पर मध्ययुग में शेष छत्तीस वंश थे।

—देखिए हि० सा० का बृ० इ०, भाग १, पृष्ठ १०७

५ 'पृ० रा०', स०, ५३।२७८

१३ मकवाना १४ गौर १५ गाहिल १६ गहिलौत १७ चापोत्कट (चावड़ा) १८ परिहार १९ राठौर २० देवड़ा २१ टाँक २२ सैंधव २३ अनिग २४ यौतिक २५ प्रतिहार २६ दधिपट २७ कारट्टपाल २८ कोटपाल २९ हूण ३० हरितट (हाड़ा) ३१ गौड़ (कमण) ३२ भट (जट) ३३ निकुम्भ ३४ धान्यपालक ३५ राजपाल ३६ कालच्छुर।[1]

छत्तीस वंशों के निर्धारण के लिए जब हम उत्तर उल्लिखित ग्रंथों की नामावलियों पर दृष्टिपात करते हैं तो पृथ्वीराजरासो में उल्लिखित राजकुलों में तीन 'कुमारपालचरित' में सात और आल्हखण्ड में अठारह वंशों का नामोल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त कुमारपालचरित में तीन और कर्नल टॉड के विवरणों में भी छत्तीस राजकुल वंशों का नामोल्लेख मिलता है। विभिन्न ग्रंथों में उल्लिखित वंशों पर पुनरुक्त रूप से विचार करने पर उनकी संख्या छत्तीस के स्थान पर उन्यासी बैठती है—
१ गहड़वाल २ चौहान ३ गौर ४ पवार ५ परिहार ६ राठौर ७ तोमर ८ यादव ९ हाड़ा १० बघेल ११ चन्देल १२ बैस १३ गहलोत १४ मौर १५ सोनगरिया १६ बुन्देल १७ कन्नौज १८ रघुवंशी १९ धाकर २० पुण्डीर २१ मालवी २२ बनाफर २३ भदौरिया २४ सेंगर २५ बड़गूजर २६ गौरव २७ चन्द्रवंशी २८ माहिया २९ जादौन ३० गहर ३१ आभीर ३२ खीची ३३ दहिया ३४ टाक ३५ निकुम्भ ३६ भट्टिया ३७ झाली ३८ चावड़ा ३९ नाहर ४० झाला ४१ गूजर ४२ तोमर ४३ चालुक्य ४४ मकवाना ४५ प्रतिहार ४६ गहड़न ४७ सिलार ४८ अनिग ४९ यौतिक ५० दधिपट ५१ कारट्टपाल ५२ कोटपाल ५३ हूण ५४ धनाप ५५ धान्यपालक ५६ राजपाल ५७ अनंगपाल ५८ सरसार ५९ गुरया ६० टाक ६१ दुर्गमी ६२ पवया ६३ कौसल ६४ कवेय ६५ दहिया ६६ डाभि ६७ वारड ६८ राघुन ६९ सगार ७० बघेर ७१ रम बाग्न ७२ मुहरवार ७३ गौतम ७४ इटारिहा ७५ कुर ७६ गिपरिहा ७७ बिनवन ७८ कविनीग ७९ साडा।

उपर्युक्त तालिका से प्रतीत होता है कि क्षत्रियों के छत्तीस वंशों के विषय में निश्चित धारणाएँ न होने के कारण रासोकाव्य प्रणेताओं ने स्वेच्छानुसार उनके वंश और उनमें से निकली उपशाखाओं का मिश्रण करके उनकी छत्तीस संख्या पूरी करने का प्रयास किया है। ऐतिहासिक साक्ष्यों से भी यह गुत्थी सुलझ नहीं पाती। श्री वैद्य पृथ्वीराजरासो में प्रदत्त तालिका को बारहवीं शताब्दी में स्वीकृत छत्तीस वंशों की सूचक तो अवश्य बताते हैं किन्तु उन्होंने छत्तीस वंशों की नामावली देने की जो

१ से ६ देखिए— पृ०रा० १।५३, बी०च० ८।१४ २०, रा०वि० ६।१८७ ८९, हृ०रा० छं० ११८, आ० २५।८ १६, हि० ब० वि० छं० २७ ३८

७ देखिए— हिन्दू भारत का उत्कर्ष, पृष्ठ ७९

चेष्टा की है उसमें वे मात्र इक्कीस राजवंशों का ही उल्लेख करते हैं।[1] उन्होंने मराठों के द्वारा अपनी ९६ कुलियाँ निर्धारित करने का भी उल्लेख किया है।[2] कर्नल टाड ने छत्तीस वंशों सम्बन्धी चार भिन्न सूचियाँ देकर अन्त में स्वयं एक नवीन सूची दी है[3] किन्तु वह भी विद्वानों को ग्राह्य नहीं है। अबुल फजल ने खवास में क्षत्रियों की पाँच सौ से अधिक उपजातियाँ बताते हुए उनमें से बावन कुलियाँ सर्वोत्तम और बारह सामान्य महत्त्व की बताई हैं।[4] इस विषय में हमें डा० दशरथ शर्मा का अभिमत अधिक समीचीन प्रतीत होता है जिनके अनुसार 'राजपूत क्षत्रियों के ३६ वंशों का निर्धारण तो अवश्य किया गया था किन्तु उनमें से कुछ वंश ऐसे थे जिनकी इन छत्तीस वंशों में परिगणना स्थानीय अथवा अधिक से अधिक प्रान्तीय मात्र ही थी।' तात्पर्य निष्कर्ष यह कि देश के विभिन्न भागों में क्षत्रियों के छत्तीस वंशों की सर्वमान्य तालिका के स्थान पर कुछ राजवंश ऐसे थे, जिनकी स्वीकृति सार्वभौमिक थी, तथा उनमें सम्मिलित कुछ वंश ऐसे थे जिन्हें उनके प्रांत विशेष में ही यह गौरव प्रदान करने का प्रयास किया जाता था। वीरकाव्य प्रणेताओं के सम्मुख भी यही व्यवधान रहा है, और उन्होंने अपने आश्रयदाताओं की इच्छाओं के अनुरूप छत्तीस वंशों की तालिकाएं देने की चेष्टा की है। इन आधार पर कि किस कुली का अधिक से अधिक कवियों ने उल्लेख किया है वीरकाव्य के आधार पर छत्तीस-वंशों की अधोलिखित सूची प्राप्त होती है — १ कछवाह २ चौहान ३ गौर ४ पवार ५ पड़िहार ६ राठौर और ७ सामरा का सातों सूचियों में उल्लेख मिलता है। इसी भांति ८ यादव ९ हाडा और १० बघेला का छः सूचियों में ११ चंदेल १२ वंस और १३ *गौहिल वंशों का पांच सूचियों में, १४ मौर्य १५ शीशादिया और १६ बुंदेला* का चार सूचियों में, १७ गहलोत १८ रघुवंशी १९ धवल २० पुंडीर २१ सालंकी २२ बनाफर २३ भदौरिया २४ सेंगर २५ बड़गूजर २६ सूर्यवंशी और २७ पौरव वंशों का तीन सूचियों में तथा २८ चन्द्रवंशी २९ दाहिमा ३० चावडा ३१ सधव ३२ खीची ३३ दवडा ३४ टाक ३५ निकुंभ ३६ डाभिया ३७ भाटी ३८ कचुली ३९ नाहर और झाला वंशों का दो सूचियों में उल्लेख मिलता है। इनमें से सूर्यवंश, चन्द्रवंश और रघुवंश को इस तालिका में सम्मिलित करना उचित नहीं है, क्योंकि रघुवंश तो सूर्यवंश की ही एक शाखा है। जबकि सूर्य वंश से ही अन्य समस्त क्षत्रिय वंशों का विकास माना जाता है। बनाफरों का भी अपना कोई स्वतंत्र राज्य न था, अतः उन्हें भी राजवंशों में सम्मिलित नहीं किया

---

१ हिन्दू भारत का अन्त, पृष्ठ ५९३
२ वही, पृष्ठ ५८८ ८९
३ देखिए— ए० ए० आ० राज०, पृष्ठ ६९
४ देखिए— आइन ए अकबरी', भाग ३, पृष्ठ १३०
५ देखिए—'अर्ली चौहान डाइनेस्टीज, पृष्ठ २४५

जा सकता । अतः छत्तीस कुल ही वीरकाव्य में विशेष प्रसिद्ध सिद्ध होते हैं । यद्यपि यह निश्चय भी अप्रामाणिक न होगा कि रासो में आये चौहान और यादव आदि क्षत्रिय राज-वंश के रूप में उल्लिखित किये गये हैं तथापि वे कयामखाँ रासा के अनुसार चौहान वंश की उपशाखा-मात्र थे । इससे स्पष्ट होता है कि वीरकाल में क्षत्रियों के नवीन राजकुलों का उदय तथा प्राचीन राजकुलों का ह्रास होता जा रहा था । फिर भी एक बार निश्चित की गई छत्तीस संख्या परम्परित रूप में ही चली जिससे उनकी संख्या अधिक या अधिक होते हुए भी क्षत्रियों की छत्तीस राजकुलीय मानने का ही परिपाटी चलती रही ।

विविध कुलों की सामाजिक प्रतिष्ठा

पृथ्वीराजरासो में एक प्रसंग में यद्यपि क्षत्रियों के छत्तीसों कुलों की समान सामाजिक प्रतिष्ठा होने का मत व्यक्त किया गया है तथापि प्रधानता उस उल्लेख की है जिसमें चौहान समस्त कुलियों में सर्वश्रेष्ठ बताये गये हैं ।[3] कयामखाँ रासा में भी चौहानों की समस्त राजपूतों में गुणों की ... वाङ्मय में यत्र-तत्र निर्देश से उपस्थित किया गया है । यदि आज भी चौहानों की अपराजेयता इस तथ्य पर आधृत बताई है कि भारत के अन्य क्षत्रिय वंश चौहानों की शौर्य भीत से तिरछाना गया समझे जाते हैं जिससे वे उनके विरुद्ध लड़ना समय ज्यादा समझते हैं ।[6]

पृथ्वीराजरासो में कई प्रसंगों में रासोकार ने गूजरों को अन्य सामन्त शूर कह कर सम्बोधित करते हैं । यही नहीं वह स्वयं भी अत्यन्त उपयुक्त परामर्श देते हुए भी अपने आपको ग्रामीण गूजर अपनी मन्त्रणा को हास्यास्पद बताकर [8] इस धारणा

---

१ देखिए – क्या० रा०' छ० ५८

२ छित्रीन वंश छत्तीस कुल सम समान गनिय अवर । प०रा० मो० ४।६२०।१*

३ (क) सुरनाथ सम सुर सकल साभ । कहह छत्तीस चहुआन जोप ।
— प०रा० का० ३००।४

(ख) पुत्री पुत्र पवित्र पथ अधनो छत्तीस वसा वन ।
— प० रा० मो० १।२१२।६

४ जिती जात रजपूत की सगरे हिंदुसतान ।
सबम निहच जानियो बडा गात चहुवान । — क्या० रा० छ० ६८

५ जसे सब बाजिन म है वडडो नीसान ।
तस सबही जात म बडा गात चहुआन । —वही छ ६३७

६ वही छ० ८० ५१

७ (क) रे गुजर गवार राज ल मत न होई । प०रा०, मो० २।७६४।१८

(ख) गुज्जर गमार सस्नेह वली । मत देव दुग्गन गन । प०रा०, का० २१३३।
१८५ और भी दे०—२१८४।४८४ २१८७।४६५ २१८६।४६१ २१६२।५११

८ 'म्ह गामी गुज्जर गल्हियाँ । हसाई हँसाइयाँ । —वही, २१८५।४८७

यह भविष्यफल सुनाता है कि यह शिशु बड़ा होकर दिल्ली और पंचाद प्रदेश तक के भू भाग का अधीश्वर होगा, तथा गजनीपति को बन्धन ग्रस्त करके यश सुयश प्राप्त करेगा। राजविलास में महाराज जगतसिंह ज्योतिषी से स्व पुत्र की जन्म पत्रिका लिखवाते तथा प्रतिदान में अपार द्रव्य प्रदान करते हैं।

वीरकाव्य में ज्योतिषियों के लिए प्रयुक्त आदरास्पद विशेषणों तथा उनके निर्भीक होकर नरेशों तक को भूत प्रति अभिहित करने, और निकट-भविष्य में उनके विनाश या पराजय तक का स्पष्ट उद्घाटन कर देने सम्बन्धी तथ्यों से प्रतीत होता है कि उनकी स्थिति अति सम्मान्य थी। महाराज अनंगपाल जब अपने व्यास के कथन पर विश्वास न करके यह परीक्षा करने के लिए कि क्या कीली वस्तुतः शेषनाग के शीश में जा धंसी है—उसे उखाड़ लेते हैं, तो वह उन्हें भूतमति बताता है और भविष्यवाणी करता है कि आप चौहानों से और चौहान तुर्कों से पराभूत होंगे।[1] इसी भाँति प्रियाकुंवरि के विवाहावसर पर होने वाले अपशकुनों की व्याख्या करते हुए ज्योतिषी की यह भविष्यवाणी करते चित्रित किया गया है कि मेरे कथन का चाहे सम्मान करो अथवा उपहास किन्तु दिल्ली राज्य इक्कीस वर्ष मात्र ही निरापद रहेगा। तत्पश्चात् हिन्दू या तुर्कों में से किसी एक की ही कीर्ति शेष रहेगी।[2]

ज्योतिषियों के विषय में कुछ हीन धारणायें भी प्रचलित थीं। कदाचित् आलोच्यकाल में भी कुछ ज्योतिषी अपने कपटपूर्ण हथकण्डों द्वारा जनता का धन ऐंठने का प्रयत्न करते थे यही कारण है कि रासोकार ने एक स्थल पर ज्योतिषियों को छल प्रपंच के मूर्तिमंत रूप गणिकाओं की कोटि में स्थान दिया है।[3]

अन्य वर्ग —

ब्राह्मण मात्र शास्त्रजीवी ही नहीं होते थे, अपितु वे खड्ग संचालन में दक्ष योद्धा भी होते थे। परमालरासो,[4] सुजानचरित,[5] छत्रप्रकाश[6] और आल्हखण्ड[7] में ब्राह्मण युद्ध करते मिलते हैं। कुछ ब्राह्मण रसोइयों का भी कार्य करते थे। कवि चन्द ने गजनी में कभी महाराज पृथ्वीराज का खाना पकाने के लिए दस ब्राह्मण नियुक्त किये हैं।[8]

---

१ 'पृ० रा०' सा० १।८६।२२
२ वही ११३९०।२१४६ ४७
३ गनिका गनिक कायस्थ की ठग विद्या परवीन। —वही, ३।१९५।१९
४ चलति विप्र नागर। करत नाह आगर। — 'पर० रा०', २१।३९
५ "विन विप्र वरि धनुष रंग जगगु वे जेता।
विन रथनु असवार सुजस कीरति वे देता।" — सु० च०, ४।६।७
६ से ८—द्रष्टव्य—क्रम छ० प्र० ७।७६, आ० ६१८।२३ २४, 'पृ० रा०', सा० २३७८।१६६६

क्षत्रिय

क्षत्रिय के लिए उनकी परम्परागत संज्ञा—क्षत्रिय[1] के समान ही राजपूत[2] शब्द का भी बहुत प्रचलन था। उनके लिए क्षितिपति[3] जगदीश और ठाकुर[4] संज्ञाएँ भी प्रचलित थीं जो उनका शासन सचालन से घनिष्ठ सम्बन्ध सूचित करती हैं। कीर्तिलता में राजपुत्त शब्द का प्रयोग मिलता है[5] जो उनका सम्बन्ध राजपुत्रों से मानने के तथ्य की पुष्टि करता है[6] किन्तु पृथ्वीराजरासो में क्षत्रियों के लिए राजपूत शब्द का प्रचलन आरम्भ होने के मूल में एक अन्य धारणा प्रकट की गई है। इसके अनुसार परशुरामजी ने क्षत्रिय वंशोन्मूलन की प्रतिज्ञा करके जिस समय धरा के

---

१ देखिए—क्रम प० रा०, ना० २५।६२ ६७८।८७ ११३६।६८ २१६६।५०० २१८१।४६२ २१८६।४९० २१६०।५०४ परं० रा० १ ८० ३।१११ २१।२० २११६७ २७।२० २५।४५ ३८।५७ वी०च० १३।११ १८।२६, र० वा० छं० ५२ ५३ छं० प्र० १।६ ८।८ १।१७ ११।५० १२।७ १८।१० ह०रा० छं० ४५० ५८३ ६०५ ६५२ ७०० ह०ह० न० छं० १४५ १४६ १४७ २७६, ६५२ ७०० रा० वि० छं० ७।८६ ८।१०५ ३।७० ६।५४ गा० म० छं० १३२ आ० ११।१५ १५।१२ १५। ५ १६।२४

२ देखिए—प० रा० ना० २५०६।१५ २५१०।२१ २५११।५४ २५१२।३६ र०बा० छं० ४६।४६ ५२ ५५, वी०च० ३।५६ ८।५६ ५।१० १४।३५ १६।१० २६।५७ गा० म० छं० १२।१३१ १३२ १५७ सु० च० ५।४।४४ शि० वा० छं० ८८ प्र० रा० छं० ५५ रि० व० वि० छं० ३१ ३२

३ परसराम छितिपति हत छिति अप्पी निज क्रम।
— प०रा० ना० २१०।२६४ और भी देखिए—प० रा० ना० २५६४।५१७

४ देखिए—क्रम सु० च० ४।२।२

५ देखिए—क्रम प० रा० ना० १५२४।२३१ वी० च० २६।१६ परं० रा० १०।७५ १५।१४६ १५।१५८ १५।१६५ ३५।५७ सु० च० ५।२।२५ ५।२।२८ ४।५।२८ छं० प्र० ७।१६ ८।१५ आ० १५।२१

६ श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य ने अभिमत व्यक्त किया है कि राजपूत शब्द का प्रयोग अधिकतर राजपुत्र के अर्थ में होता था। उन्होंने दक्षिणी भारत आन्ध्र (प्रदेश) और महाराष्ट्र के लिखित ग्रन्थों के साक्ष्य पर यह भी सिद्ध किया है कि क्षत्रिय राज्याधिकारी न होने पर भी राजपूत कहे जाते थे।
—देखिए हिन्दू भारत का उत्कर्ष पृष्ठ ८३ ८८

७ वरन बम्हण बहुत वा अथ राजपुत्त कुल बहुत जानि मिलि वइस चत्तार।
—कीर्ति० पृष्ठ ३२

समस्त क्षत्रियों का संहार कर लिया था, उस समय धरा ने दस हजार गर्भवती क्षत्राणियाँ स्व उदर में छिपा ली थी। जब परशुराम भूमण्डल क्षत्रिय को मारकर तपस्यार्थ चले गये तो धरा ने अपनी रक्षा की कामना से उन गर्भवती स्त्रियों का रजगर्भ से मुक्त कर दिया। उनसे जो संतानें उत्पन्न हुई, वे रज की अत नदनुकूल उन्हें 'रजपूत' संज्ञा प्रदान की गई।[1] तात्पर्य यह कि राजपूतों को राजपुत्रों के वाचक मानने के साथ साथ, रज अथवा पृथ्वी के पुत्र मानने का भी विश्वास किया जाता था।

उत्पत्ति — ब्रजभाषा के वीरकाव्य में कुछ क्षत्रिय वंशों की उत्पत्ति-कथाएं दी गई हैं। पृथ्वीराजरासो और हम्मीररासो से ज्ञात होता है कि क्षत्रियों के प्रतिहार चालुक्य, परमार और चौहान कुलों की उत्पत्ति दुष्ट दलन के निमित्त आबू पर्वत पर वशिष्ठ आदि ऋषियों द्वारा किए गए यज्ञ से मानी जाती थी।[2] पृथ्वीराजरासो में दी हुई सूर्य और चन्द्र वंश की उत्पत्ति कथा के अनुसार मार्तण्ड का वीर्य कामवश शिव शापित वन में आने से स्त्री हो गया था। चन्द्र सुत बुध उस पत्नी के रूप में स्व गृह ले गया जिससे चन्द्र वंश चला है। मार्तण्ड का वीर्य एक माह पश्चात पुरुष भी हो जाता था जिससे सूर्य-वंश की नींव पड़ी है।[3] पृथ्वीराजरासो में चौहान की हाडा शाखा का उद्भव एक अस्थि-खंड से दिखाया गया है।

परमालरासो में पृथ्वी की करुण पुकार सुनकर ब्रह्मा आश्वासन देते हैं कि शीघ्र ही बलि और मलि आल्हा और ऊदल के रूप में अवतार लेकर तुम्हारा भार कम करेंगे। उसमें चन्देल-वंश के आदि पुरुष चन्द्रब्रह्म का दिखाते हुए उनके मातृपक्ष का सम्बन्ध एक विधवा ब्राह्मणी से समझने की धारणा प्रकट की गई है।[4]

क्यामखाँ रासा में चौहान, नूह के ज्येष्ठ पुत्र साम के वंशज दिखाए गए हैं। कवि जान ने उनके पूर्वजों की जो क्रमागत नामावली दी है उसमें पर्वत समुद्र नाग आदि भी ब्रह्मा के वंशज चित्रित किए गये हैं। ब्रह्मा का भी वह साम की सातवीं

---

१ दस हजार ग्रभवत । रिपि त्रिय ढकि धरनी ।
परसराम के करत । वार उन वीरन पिश्री ।
षागिन ष, ल ढ्रियो । उदिर मागो महिमटन ।
तपन तात पन छडि । गयो गन ग्रहे वभडन ।
वसुधा विचार तब चढिढ । तिज रक्षा कारन क्षत्रिय ।
उत्पन्न सूर तिनके गरज । दिखि नाम रजपूत (रजपूज) दिय ।'
— पृ० रा०' का० २११८।८६

२ देखिए—पृ० रा० का० ४८।२४३ से ४३।२७५ ह० रा०, छ० २७ ६६

३ पृ०रा० का० २११८।८७ ८८

४ देखिए—'पृ० रा०' का० १४६१।१६६ से १४६२।२०६

५ देखिए—प०रा० रा०, ११६। ७३ ११७७ १४४

पीढ़ी में राजस्थान दिखाया है यथा परशुराम गजा की चौथी पीढ़ी में राजा बनाए गए ।' राजा न होने पर भी उनके विस्तार का सिद्धि भी वर्णन में उल्लिखित है।

पृथ्वीराज रासो में आदि वंश का मूल पुरुष ... कुमार का प्रदर्शन किया गया है जो राम द्वारा विध्वंसित ... की चौहान ... बाद में उनकी ग्रीवा में ... में घिर गया विस्तृ में उत्पन्न हुआ था।' शिवराज भूषण में चौहानों का मूलाधार ... प्रभावी पुरुष द्वारा शिव की चौहानी ... के मध्य पर आधार दिखाया गया है' ... आल्हखंड में बनाफरों की उत्पत्ति क्षत्रिय पिता और अहीर माताओं से संगत में दिखाई गई है।

क्षत्रियों के कुछ वंशों की उत्पत्ति में गम्य था ... जिन मतों का पीछे उल्लेख किया गया है उनके विषय में हमारा निवेदन है कि ये मत चाहे इतिहासकारों की दृष्टि से तथ्यात्मक न हों तथापि आलोच्यकालीन जन धारणाओं पर प्रकाश डालने की दृष्टि से उनका पर्याप्त महत्त्व है।

क्षत्रियों के वंश क्षत्रिय वंशों के विषय में यह तथ्य अवधारणीय है कि पृथ्वीराजरासो[५] रणमल छंद[६] वीरचरित्र[७] राजविलास[८] हम्मीररासो[९] भूषण के स्फुट पद[१०] और आल्हखंड[११] में युद्ध में विवाह राज्याभिषेक एवं युद्ध आदि के अवसर पर उनका छत्तीस वंश या कुल रूप होना प्रदर्शित किए गए हैं जिससे स्पष्ट होता है कि हमारे समग्र आलोच्यकाल में क्षत्रियों के छत्तीस राजवंश या कुल मानने की प्रसिद्धि थी। श्री चिंतामणि विनायक वैद्य के अनुसार छत्तीस राजकुलों की तालिका के नाम महाभारत में उपलब्ध नहीं होते। छत्तीस धर्मनिष्ठ राजकुलों की यह सूची सन् ११०० के लगभग तैयार की गई थी जिसमें परिगणित प्रत्येक राजकुल का

---

१ ४ द०— मया०रा० ...० ३ म ४७ छ०प्रा०, ...० १६ 'शि०भू० छ० ५ ... १४/१/ ६

५ (क) छत्तीस कुली वर वंस लिय। चलि प्रथिराज नरिंद चलि।'
प० रा० रा० ७४६।२४२

(ख) विगसत वरन छत्तीस वंस। जदुनाथ जन्म जनु जदुन वंस।
वही १६८।७१/ ६७।२६० १४८।७२८ ३००।४ ८४६।४६, ६८८।२६
११६६।२ ९२२४।३६

६ 'छत्तीस कुल्ह वन वसिसु घण पय भणि सु रा हम्मीर तण। रण०छं० छं० ३१

७ 'राम रत छतीसा कुली। मानो रामच द्र की पुरी। — वी० च० १८।५

८ वस तह राजकुलीस छत्तीस। हयद्दल गयन्द पयद्दल ईस। रा०वि० २।८८

९ छत्तीस वश छत्री चले जिमि पावस बद्दर बहे।' — ह० रा० छं० ७००

१० भई है नदानी वंस छत्तिस में क्वरी। — भू० ग्र० स्फुट छं०, १६

११ 'कुरी छत्तीसो सो सजवाई टका होन गान म लाग। १२३।१६

का प्रकाशन करता है कि गूजरो द्वारा सामान्यतया बुद्धि से काम न लेने की प्रसिद्धि व्याप्त थी।

राजविलास में राठौर वंशी महाराज जसवंतसिंह और सूर्यवंशी महाराजा राजसिंह की बारातें एक ही तिथि में आने पर—तोरण वंदन पहले कौन सा राजवंश करे इस तथ्य पर विवाद उठ खड़ा होता है। महाराज राजसिंह राठौरों की अवमानना के लिये यह तथ्य प्रस्तुत करते हैं कि वे मुगलों के अधीन हैं तथा उन्होंने मुगलों को अपनी पुत्रियाँ दे रखी हैं[1] जिसका राठौर कोई उचित प्रत्युत्तर नहीं दे पाते। महाराज छत्रसाल हाडा के कथन से भी मेवाड़ के सूर्यवंशी महाराणाओं को अन्य क्षत्रिय वंशों से उच्च समझने की धारणा व्यक्त होती है। वे कहते हैं कि हमारा और आपका मेवाड़ नरेशों की समता करने का प्रयत्न करना दुरभिमान मात्र है क्योंकि हम म्लेच्छों के अधीन हैं।

आल्हखंड में बनाफरों को ओछी-जाति का बताते हुए[2] स्थल स्थल पर यह मत व्यक्त किया गया है कि उनके साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध करने वालों के कुल को कलंक लग जायगा।[3]

ब्रह्म क्षत्रिय —

पृथ्वीराज रासो में क्षत्रियों के चालुक्य कुल को ब्रह्म चालुक्य[4] तथा चालुक्य द्विज[5] संज्ञाओं से अभिहित किया गया है, तथा उनकी उत्पत्ति के प्रसंग में, उनके आदि पूर्वज को भी ब्रह्मचर्य व्रतधारी और कुशा मंडित शरीर वाला प्रदर्शित किया गया है।[6] 'परमालरासो' में महाराज परमाल से पूर्व के नरेशों के नामों में 'ब्रह्म' शब्द जुड़ा दिखाते हुए[7] उनके मातपक्ष का सम्बन्ध एक विधवा ब्राह्मणी से जोड़ा गया

१ "तुम आसुर आधीन धीय द धरनि सु रक्खहु।
इन करनी हम अग्ग ऊँच मुँह करि करि अक्खहु।" —'रा०वि० ३।६१

२ "जाति बनाफर की ओछी है, सब जानित स जाति उतार।"
—आ० १२५।११ और भी दे०—१३६।१०, २०६।२१ ६०६।१५

३ 'जो कहु ब्याहि जायँ महुवे के काहु न पियहि घड़ा को पानि।
लील का टीका तुमको हुइहै, हमरी जियत मरन हुइ जाय।"
—वही, १३६।२३,२४ और भी दे०—२२१।४, २२५।१

४ ' रट्ठौर पवार मरस्थलिय। ब्रह्म चालुक जंगल भरा।
—'पृ० रा०', का० २३६५।३७२

५ ' चालुक्क वाह चालुक्य दुज। कुसित कुसन मंडित तन।' —वही, ५५।२७६

६ पुनि प्रगट्यौ चालुक्क। ब्रह्मचारी व्रतधारिय।' —वही, ४६।२५०

७ चन्देल वंश की वंशावली में सभी नरेशों के नाम के पीछे ब्रह्म शब्द दिखाया गया है। दे०—'पर० रा०', का 'चंदेल वंश-वर्णन' शीर्षक द्वितीय अध्याय।

है।¹ इसी भाँति कवि जान ने चौहान ब्राह्मण वंशी परशुराम से उत्पन्न और वत्स गोत्रीय बताये हैं² जबकि जोधराज ने भी चौहानों को भृगुवंशी अभिव्यक्त किया है।³ उनके उद्भव हुए रूप में परशुरामजी का यजमान के रूप में उल्लेख किया गया है जिससे यह धारणा भी की गई है कि वे परशुरामजी के यजमान हैं।⁴ तात्पर्य यह कि आलोच्यकाल में चाहुवान वंश और भार्गव वंश का ब्राह्मण-वंश से घनिष्ठ सम्बन्ध स्वीकार किया जाता था—यह सम्बन्ध चाहे जैसा भी रहा हो। अथवा क्षत्रिय-वर्गों में समाहित था। सम्भावना यही है कि कुछ ब्राह्मणों ने शासकीय क्षत्रियवत् कार्यों के कारण क्षत्रियत्व की श्रेणी में स्थान प्राप्त कर लिया था अथवा कुछ क्षत्रिय अपने ब्राह्मण पद कर्मों के लिए ब्राह्मणों की श्रेणी में स्थान पाते जाते थे। इस प्रकार जाति का बोध कराने के लिए किसी शब्द की खोज की गई और अन्त में उन्हें अभिधानों से सम्बोधित किया जाने लगा जिनसे उनके ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्व—दोनों का गुणगान ही सम्भव हो जाता था। चाहुवान और परमारों के नामों के साथ तो 'ब्रह्म क्षत्र' शब्द स्पष्टतः जोड़ दिया गया था जबकि चौहानों को भृगु-वंशी और वत्सगोत्रीय मानते हुए भी 'ब्रह्म क्षत्र' विशेष धारणा से नहीं जोड़ा गया था।

ऐतिहासिक विवरणों से भी बारहवीं शताब्दी में पूर्व ब्रह्म-क्षत्रिय नामक एक नवीन जाति की उद्भावना का पता चलता है।⁵ बंगाल के सेन राजाओं के पटट परवानों में, डा० वासुदेव उपाध्याय ने उनकी ब्रह्म-क्षत्रिय जाति दी हुई होने का उल्लेख किया है तथा इस जाति के विषय में मत वैभिन्य पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि डा० सेन बंगाल के सेन राजाओं को जन्म से क्षत्रिय किन्तु संस्कृति की दृष्टि से ब्राह्मण होने के कारण 'ब्रह्म-क्षत्रिय' स्वीकार करते हैं जबकि भण्डारकर उन्हें जन्मना ब्राह्मण किन्तु कर्मणा क्षत्रिय मानते हैं।⁶ डॉ० गौ० हीरा० ओझा ने अभिमत व्यक्त किया है कि मुंज के काल तक परमार ब्रह्म क्षत्र कहे जाते थे।⁷ डा० दशरथ शर्मा ने भी एक

---

१ (क) षोडस वर्ष सुता तब भई इद्रशाप से विधवा भई। — पर०रा० १।१०१
(ख) 'ता दुजवर की कन्यका प्रगटे वंस चंदेल। —पर० रा०' १।७८
२ परसराम सुत सूर है ताके बछ बछ जोन।
चाहुवान है जगत में ते सब बछ सगोत। — क्या०रा० छं० ४७
३ भृगुवंश सुनो अतिशय उदार चाहुवान भए तिनतें अपार। ह०रा० छं० २६
४ परशुराम जजमान करि होम करन मुनि लाग। —वही २६
५ In the last quarter of this period under review, an unique caste known as Brahm Kshatriya came into existence'
—The Scio Rel Cond of N India, p 32
६ दे०—The Socio Rel Cond of N India Dr Vasudeva Upadhyaya p 32
७ देखिए—राजपूताने का इतिहास, जिल्द ३, भा०, १ पृष्ठ ५१

ऐसा तथ्य प्रस्तुत किया है जो ब्रह्म-क्षत्रिय जाति के आविर्भाव की पुष्टि करता है। उनके अनुसार नवीं से तेरहवीं शताब्दी के मध्य चाहे क्षत्रिय अधिक संख्या में ब्राह्मण न हो पाये हों, किन्तु बहुत से ब्राह्मण क्षत्रिय-वंशों के प्रतिष्ठाता अवश्य बन गए थे।[1] अतः कर्मों के आधार पर ब्राह्मण से क्षत्रिय अथवा क्षत्रिय से ब्राह्मण बन पुरुषों तथा उनकी सन्तानों के लिए कल्पित ब्रह्म-क्षत्रिय संज्ञा प्रचलित हुई थी, जो कालक्रम में लुप्त हो गई है। परमालरासो में तो यह उल्लेख किया भी गया है कि महाराज परमाल ने अपने वंश-नाम से ब्रह्म संज्ञा को हीनता-सूचक मानकर (उसका सम्बन्ध विधवा ब्राह्मणी से होने के कारण) उसे पृथक् कर दिया था।[2]

क्षत्रियों की बाह्याकृति

आल्हखंडकार ने आल्हा की आकृति का वर्णन करते हुए रासोकार की मनःस्थिति में एक प्रकार से समग्र क्षत्रिय वर्ग की रूपाकृति प्रस्तुत करने का लक्ष्य रहा है जिससे अभिप्रेरित होकर उसने उन्हें उत्तुंगकाय, उन्नत-स्कंध, प्रचंड भुजाएँ, विशाल-वक्ष, आरक्त-पृथुल-नेत्र, बालारुणवत् रक्तिम-आनन एवं क्रूर भ्रू निक्षेप वाला चित्रित किया है।[3] मान ने भी महाराज राजसिंह के पूर्वपुरुष बाप्पारावल को नवहस्त लम्बी काया वाले एवं सवा मन का आहारी प्रदर्शित करके क्षत्रियों के दीर्घकाय होने पर प्रकाश डाला है।[4] क्षत्रियों के अतिमानुषिक कार्यों के विवरण भी उनके अपरिसीम शारीरिक पौरुष के निदर्शक हैं।[5] क्षत्रियों की चौड़ी छातियों और आरक्त-नयनों का आल्हखंड में मनोरंजक वर्णन मिलता है।[6] छलनीति का आश्रय लेते हुए बनाफर भ्राता जहाँ कहीं भी जोगी-वेश में अरि भेद लेने जाते हैं, वहीं उनकी गजभर चौड़ी छातियाँ और मशाल-वत् जलते हुए नेत्र उनके क्षत्रिय पुत्र होने का रहस्योद्घाटन करके उन्हें विपत्ति में फँसा देते हैं।[7] केशवदास ने रक्त-वर्ण अश्वों को क्षत्रिय जाति में परिगणित करके[8] प्रकारान्तर [illegible] क्षत्रियों का स्वाभाविक रंग लाल होना अभिद्योतित किया है।

क्षत्रियों की बाह्याकृति में उनकी बलखाती हुई मूछों का अप्रतिम स्थान होता था। वीरकाव्य में महाराज पृथ्वीराज[9] जयचन्द[10] हम्मीरदेव,[11] छत्रसाल[12] शिवाजी[13], और अर्जुनदेव[14] की प्रभावशाली मूछों का उल्लेख किया गया है। इसके साथ-साथ उनके योद्धाओं की भी जिनमें अधिकांशतः क्षत्रिय ही होते थे—पृथ्वीराजरासो,

---

१ दे०—Early Chauhan Dynasties, p 242

२ "सुनिय वंस उतपत्ति सब भूपनि गया लजाय।
अब कुंधर मम वंस मँह दिज्जिय ब्रह्म मिटाय॥" —पर० रा०, २।१०७

३ से ६—देखिए—पर० रा०, का०, ५१।२५६,५६ 'रा० वि०, १।२४०, आ०, ५१।२१ २८

७ से ११ देखिए—क्रम 'पृ० रा०, का० १२६७।८६, 'आ०' ६।८, 'क्या० रा०', ५७, छ० प्र०' २०।८, शि० भू०' ३१०

१२ "मुच्छ उमटत उमडि ऐंठत कठिन कर कुहुवान का।" —'हि०व०वि०', ११३

परमालरासो, राजविलास, सुजान चरित, शिवाबावनी, शिवराज भूषण और हिम्मत बहादुर विरुदावली में मुछार या मूछ' कहकर अभिहित किया गया है।[1]

न केवल क्षत्रियों का आन ही मूंछों पर अवलम्बित रहता था और वे उन्हें उमेठकर ही रोषाभिव्यक्ति करते थे। महाराज हम्मीरदेव ने शाह अलाउद्दीन की अनुचित शर्तों का उत्तर[2] तथा महाराज शिवाजी ने शाह औरंगजेब द्वारा उन्हें दरबार में उनकी स्थिति के अनुरूप स्थान न प्रदान करने से क्रुद्ध होकर[3] अपना रोष मूंछों पर ताव देकर ही प्रकट किया था।

मूंछें क्षत्रियों की मर्यादा की भी प्रतीक समझी जाती थीं और वे उनकी उपस्थिति में किसी व्यक्ति का मूंछों पर ताव देना अपना अपमान समझते थे। यदि युद्ध में नवाब के पक्ष में कन्नौज गए महाराज पृथ्वीराज पर कन्नौजेश्वर का अपना मूंछें उमेठना देखते हैं तो उनके बराबर की बरछियाँ तड़पने लगती हैं।[4] वरन् चौलुक्य महाराज भोलाभीम ने चचेरे भाई हरीसिंह का इसी अपराध पर शिरच्छेद कर डाला है कि उसने उनकी उपस्थिति में अपनी मूंछों का ताव दिया था।[5]

इसके साथ साथ पृथ्वीराजरासो में उन क्षत्रियों को जारज-पुत्र कहकर धिक्कारा गया है जो स्वामी रक्षण से जी चुराते हुए भी मुंह पर मूंछें रखने में लज्जानुभव नहीं करते थे।[7] पराजित अथवा अपमानित होने की दशा में उनकी मूंछों का नीची हुई प्रदर्शित करना भी क्षत्रिय और मूंछों के अटूट सम्बन्ध का अभिद्योतक है।[6]

मूंछों के अतिरिक्त क्षत्रियों की बाह्याकृति का एक अन्य उल्लेख्य प्रतीक उनकी पगड़ी होती थी। वे बचपन के आरम्भ से ही पगड़ी बाँधना आरम्भ कर देते थे। शिकार खेलने जाते हुए स्वपुत्र और बनाफर भ्राताओं के लिए महारानी मल्हना छोटी छोटी ढाल और तलवारों के साथ साथ दक्षिणी चीर और कलगी लगाकर पगड़ियों का भी प्रबन्ध करती हैं।[8] जोगी वेशधारी बनाफरों के मस्तकों पर पगड़ी बाँधने से पड़े हुए टेका (निशान) देखकर माडौ नरेश जम्बे उनके क्षत्रिय होने की आशंका व्यक्त करता है[9] जिससे पगड़ी क्षत्रियों के परिधान का आवश्यक अंग सिद्ध

---

१ देखिए—क्रम० प० रा० भा० ४७८।१७६ पर०रा० १०।५२१, 'रा०वि० ६।६, सु० च० ६।३१६ शि० बा०, छ० २२ शि० भू० छ० ३२८, हि० ब० वि०', छ० १८४

२ से ६—देखिए—क्रम०, ह० ह०, च०, १०८, शि० भू०, ३० आ०, ६।८, प० रा० भा० २८५।६१

७ 'पुनि कही म्हह नप जत सौ स्वामि रक्खि जिनु तन तज ।
तिन जननि दोस बुध जन कहैं मुछ धरत मुक्ख लज ॥
— प० रा०, मो० ११३३६।२१

८ से १०—आ० २०८।१५, २६।२३, ६१।२३ २४

होती है। कवि चन्द ने महाराज की जरकसी पाग का मनोरम वर्णन किया है।[1] इसके साथ ही वह महाराज पृथ्वीराज की अनुपस्थिति में दिल्ली की रक्षा करने वाले रावल समर विक्रम द्वारा पगड़ी के बाँधने का सार्थक बताता है,[2] तथा चामुण्डराय की प्रशंसा में कहता है कि अन्य व्यक्ति तो विवाहावसर पर या शोभामात्र के लिए पाग बाँधते हैं जबकि तुमने शाह गोरी का नाश करने की प्रतीक्षा में ढीली पाग बाँध रखी है।[3] गजविलास में महाराज राजसिंह[4] परमालरासो में ऊदल[5] और मलिखान[6] और शिवराज भूषण में महाराज शिवाजी[7] पाग बाँधे चित्रित किए गए हैं तथा आल्हखण्ड में युद्धस्थल में गिरी हुई पागें शोणित नद में विकसित कमलों के समूह से उपमित की गई हैं[8] जिससे क्षत्रियों द्वारा पागों के प्रयोग पर प्रकाश पड़ता है।

पाग क्षत्रिय मर्यादा की प्रतीक भी समझी जाती थी। पृथ्वीराजरासो में महाराज पृथ्वीराज भोलाभीम के समीप पाग और चोली भेजकर, किसी एक को चयन करने का सन्देश भेजते हैं।[9] (पाग का चयन करने का अभिप्राय था कि वे युद्धार्थ प्रस्तुत है, जबकि चोली का चयन करने से उनकी अधीनता स्वीकार करने की इच्छा का अर्थ ग्रहण किया जाता) अपने पिता के युद्ध में वीरगति पाने का समाचार पाकर महाराज पृथ्वीराज की इस प्रतिज्ञा से कि मैं पितृ वैर शोधन तक पगड़ी नहीं बाँधूगा[10] पगड़ी की क्षत्रियों के लिए महत्ता प्रकट रही है। परमालरासो में ब्रह्मा के विवाहार्थ दिल्ली आने वाले महाराज परमाल के लिए द्वाराचार से पूर्व दिल्लीश्वर एक अष्ट धातु का स्तम्भ भेदन करने की शर्त लगा देते हैं। उसमें असमर्थ महाराज परमाल को वे सूचना भिजवाते हैं कि यदि आप यह स्वीकार कर लें कि मेरी पाग स्वयं की न होकर किसी से मांगी हुई है तो मैं स्तम्भ भेदन के अभाव में भी स्वपुत्री का विवाह करने को प्रस्तुत हूँ।[11] आल्हखण्ड में माण्डो नरेश से अपने पिता का बदला लेकर लौटा हुआ आल्हा, महाराज परमाल के चरणों में अपनी पाग रखकर[12] यह अभिव्यजित करता है कि इस दुष्कर कार्य में हमें आपके ही आशीर्वाद से कृतकृत्यता प्राप्त हुई है। उसमें अन्यत्र ऊदल का भी महाराज पृथ्वीराज के चरणों पर पाग रखकर विनम्रता प्रदर्शित

१ से ६—द०—क्रमशः 'पृ० रा०' का० २५६।७५१, वही १०६९।२२०, 'पृ० रा० मो० ४।६६०।१०१, 'रा०वि०' ६।१७, 'पर० रा०' १८।१५, वही ८।१४३

७ से ९—देखिए—क्रमशः 'शि० भू०, १०४, 'आ०', ७१।१७, पृ० रा०', का० ११४८।१२८

१० 'घत मुक्कि पाघ वंधन तजिय। सुवत धीर लीनो नियम।
चालुक्क भीम भर भजिवं। कढौ तात उदरह सुपम।''
—'पृ०रा०' का०', ११४८।१२४

११ ''नातर असुर भीम धरि त्रन दंत दबाई।
मोन बचन मुख्डे कहु मम पाग पराइ॥' —'पर० रा०' १५।५

१२ देखिए—आ०, १६।२३ २४,

करते चित्रित किया गया है।[1] इन्हें और गाजर[2] को तथा महाराज चम्पतिराय और बहादुर शाह का[3] अपनी पगड़ियाँ बदलकर मैत्री सम्बन्ध स्थापित करते भी प्रदर्शित किया गया है।

पृथ्वीराजरासो और राजविलास से ज्ञात होता है कि आलोच्यकाल में क्षत्रिय पर्वों के समय यज्ञोपवीत भी धारण करते थे। रासो में, इच्छिनी के पिता, द्वाराचार के अवसर पर अन्य उपहारों के साथ माथ एक जरी का यज्ञोपवीत भी प्रदान करते हैं।[4] कवि मान ने महाराज राजसिंह द्वारा राज्याभिषेक के अवसर पर यज्ञोपवीत धारण करने को, उनका वंश परम्परागत कृत्य अभिहित किया है।[5]

शिक्षा दीक्षा —

वीरकाव्य में उपलब्ध विवरणों के अनुसार क्षत्रियों की शिक्षा का मुख्य अंग शस्त्रास्त्र संचालन में नैपुण्य प्राप्त करना होता था। रासोकार ने महाराज पृथ्वीराज द्वारा छत्तीसों प्रकार के आयुध चलाने की शिक्षा प्राप्त करने का उल्लेख किया है।[6] मान ने महाराजा राजसिंह को आठ वर्ष की अवस्था मात्र में ही मल्ल युद्ध और हाथी युद्ध करने में निपुण बताया है।[7] गोरेलाल के अनुसार महाराज छत्रसाल की बाल्यावस्था में ही शस्त्र संचालन की ओर बड़ी अभिरुचि थी और वे तुपक तीर, शक्ति, कृपाण, छुरी, और गुर्ज चलाने मल्लयुद्ध अश्वारोहण और चौगान बटा खेलने में बहुत दक्ष थे।[8] डा० मोतीलाल मेनारिया ने करणीदान कृत सूरज प्रकाश के आधार पर क्षत्रियों की शिक्षा का जो विवरण दिया है उससे भी हमारे उपर्युक्त मत की परिपुष्टि होती है।[9]

किन्तु शस्त्र विद्या के साथ साथ क्षत्रिय कुमारों को विविध शास्त्रों की भी

---

१ देखिए—'आ०' २८।२८ ६

२ 'पगिया पलटी तब गाजर मं गया करी मनोजी राय।
जा दिन चलिहो तुम मटूवे को हमहू चल तुम्हारे साथ। —वही ४२५।२३-२४

३ इन चपति सौ भाइप मानी बदली पाग जगत में जानी। — छ०प्र० १०४

४ जर कमर जनेउ हथय सबर नग मंडित। — पृ० रा०, मा०

५ "ध्रुव जनेउ धारए वही सुवंस कारण। — रा० वि०' ५।६

६ से ८ देखिए— पृ० रा० मा० १।२८।२१० राज० वि० २।१६२ 'छ० प्र० ६।३

९ 'राजकुमार भावी राजा हुआ करते थे अतएव उन्हें राजाओं के उपयुक्त उत्तर दायित्व के निर्वाह करने के लिए मल्लयुद्ध तथा उसके विभिन्न दाँव, फरेती (तलवार चलाना) विनोट (तलवार के वार से रक्षा के उपाय) जलवाक (जल में युद्ध करने के दाँव पेंच) और चढेती (अश्वारोहण) इत्यादि में निपुण होने के लिए पूर्ण शिक्षा प्रदान की जाती थी।' — डिंगल साहित्य' पृ० ३४४

शिक्षा दी जाती थी। महाराज पृथ्वीराज ने चौदह विद्या, बहत्तर कला, सत्ताईस[1] शास्त्र, और तात्कालिक षडभाषा संस्कृत प्राकृत, अपभ्रंश, पशाची मागधी और शौरसेनी पर अधिकार प्राप्त किया था।[2] मान ने महाराज जगतसिंह को वेदों और व्याकरण में विचक्षण तथा राजसिंह को वेदपाठ में ब्रह्मा से भी अग्रणी घोषित किया है।[3] महाराज छत्रसाल ने सामुद्रिक शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र और काव्य शास्त्र में शस्त्र-सचालन के सदृश ही निपुणता प्राप्त कर रखी थी।[4] आल्हखण्ड में देवा को ज्योतिष शास्त्र का ज्ञाता और वेद चतुष्टय का अध्येता कहा गया है।[5]

शिक्षा के कुछ अंगों में तो क्षत्रियों का ज्ञान ब्राह्मणों से भी बढ़ चढ़कर होता था। पदट्वन से महाराज पृथ्वीराज द्वारा निगूढ़ धन निकालते समय, उस गुप्त कोष के ऊपर एक पाषाण पुत्तलिका मिलती है, जिस पर कुछ रहस्यमय सकेत अंकित थे। जब अन्य लोग उसका रहस्य नहीं बता पाते तो अंत में उसका रहस्योद्घाटन करने के लिए महाराज पृथ्वीराज चतुर्दश विद्याओं में निष्णात अपने साले कमास को आदेश देते हैं, जो उसमें कृतकृत्य सिद्ध होता है।[6]

क्षत्रिय धर्म-तत्वज्ञ भी होते थे। पृथ्वीराजरासो में समर विक्रम रावल और योगीन्द्र उपाधियों से विभूषित किये गये हैं।[7] महाराज जयचन्द का मंत्री सुमंत जब उनके समीप अपने स्वामी के राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होने की प्रार्थना लेकर जाता है तो वे उसे कलिवर्जित बताते हुए उसके फलाफल की व्याख्या करते हैं तथा महाराज जयचन्द के प्रयास को असमयोचित और उपहासास्पद होना की तत्संयुक्त मंत्रणा देते हैं।[8] मुहम्मद गोरी से होने वाले अंतिम युद्ध से पूर्व जामराय उन्हें योगिराज, मूलब्रह्म के ज्ञाता, राजर्षि, व्यास और त्रिकालज्ञ कह कर सम्बोधित करता है, तथा उनसे क्षत्रिय धर्म, राज धर्म सेवक धर्म के साथ साथ आलोक्य, सारूप्य, और सायुज्य भक्ति पद्धतियों पर भी प्रकाश डालने का निवेदन करता है।[9] इसके प्रत्युत्तर में वे जो एक लम्बा तत्वज्ञानगर्भित उपदेश देते हैं[10] उसमें इस तथ्य में शंका का स्थान नहीं रह जाता कि आलोच्यकाल में भी कुछ क्षत्रिय राजा जनक की भांति धर्मज्ञ होते थे।

---

१ पृ० रा०', मा० १।१८।६०-६१

२ 'संस्कृतं प्राकृतं चैव अपभ्रंशः पिशाचिका।
मागधी शौरसेनीच, षट भाषाश्चव ज्ञायते॥" — पृ० रा० मा० १।२८।६४

३ से ६—'रा० वि०', २।३८, ५।३८ छ० प्र०, ६।३ , 'आ०', ३६।१२ , पृ० रा०, मो०, २।५३६।४

७ 'जोगिंदराय जग हथ्थ तुअ सुवर वीर उप्पर करउ।'

— पृ० रा०', मा० ३।३६१।६६

८ १०—दपिनगवनम० पृ० रा०, मा०, ३।४।८ , ४।१०७०।२८४ वही, पृष्ठ १०७१ से १०७५

क्षत्रियो की चारित्रिक विशेषताए और प्रमुख कत्तव्य-कम

वीरकाव्य के क्षत्रिय नायको ने अपने कत्त य कर्मों के विषय पाय एक जस मत यक्त किए हैं। महाराज बीरसिंह दव—सत गो विप्र और मित्रो की रक्षा करन तथा आपदग्रस्त स्वामी का परित्याग न करने को क्षत्रियो का प्रमुख धम या कत्तव्य बताते है।[1] महाराज छत्रसाल क्षत्रियो के लिए भू भार का वहन, गाय, वेद और ब्राह्मणो की रक्षा करना युद्ध म विजय, प्रजा का पालन आपत्तिकाल म धय रखना दानशीलता, शरणागत वत्सलता और स मार्ग पर चलना आवश्यक समझने की धारणा व्यक्त करते हैं।[2] इसी प्रकार महाराज हिम्मतबहादुर[3] ने गो विप्रो के परिपालन, शत्रुओ के दलन शस्त्राघातो को सधय सहन करने एव युद्ध के भार का स्वप्न म भी परित्याग न करने को, तथा महाराज हम्मीरदेव ने शरणागतो के पालन[4], युद्धादि म उत्तम नीतियो के निवहण और युद्धक्षेत्र स पग न मोडकर शत्रु प्रहारो को धीरतापूवक सहन करने को क्षत्रियो के प्रमुख कत्त य कर्मों के अ तगत परिगणित किया है। तात्पय यह कि क्षत्रियो के प्रमुख चारित्रिक गुण और कत्त य थे—

(क) सत गो विप्र आदि वदिक धम म समादत प्राणियो को सरक्षण प्रदान करना
(ख) युद्धाथ सदव तत्पर रहना
(ग) युद्धभूमि से पलायन न करना
(घ) युद्धादि जीवन प्रसगो म उत्तम नीतियो का आश्रय लना
(ङ) अटूट स्वामि भक्ति, और
(च) शरणागतो की प्राण पण स रक्षा करना

(क) वदिक धम मे समादृत सत गो और विप्रादि की सरक्षा —

क्षत्रियो की उत्पत्ति-कथा के अनुकूल जिसम उनका उदभव दुष्ट-दलनाथ दिखाया गया है सत गाय और ब्राह्मणादि की रक्षा करना, उनका प्रमुख कत्तव्य होता था। महाराज पृथ्वीराज गो और विप्रो की पूजा करते चित्रित किय गय हैं।[5] छत्रप्रकाश म महाराज रत्नप्रताप एक आपद ग्रस्त गाय की रक्षा म प्राणोत्सग करत मिलते है।[6] वीरचरित्र म महाराज राजसिंह और वीरसिंह दव की गो विप्र सहायक कहकर प्रशसा की गई है।[7] जगनामा म वही क्षत्रिय ध य कहा गया है जो स्वामी की

---

१ सन्त गाय द्विज भीत को सतत रक्षा कम।
स्वामी तज न सोकर यहै हमारा धम॥' — र० चा०, छ० १४
२ ३ देखिए—क्रम छ० प्र०' ११६ हि० व० वि' १०१
४ सरनागत पालन कर अस बरत सुचि नीति।
समर सस्त्र सनमुख सहै यह छत्रिन की रीति॥' — ह०ह० छ० १८५
५ से ७—देखिए—क्रम० प० रा०, मा० ११२६।६४, छ० प्र० २।५, वी० च० ३३।८४

मर्यादा रक्षा के प्रति और विप्र तथा सुरभियों की रक्षा करने के गुणों से युक्त हों।[1] छत्रप्रकाश में महाराज शिवाजी छत्रसालजी को परामर्श देते हैं कि गौ, वेद और ब्राह्मणों की रक्षा करना क्षत्रियों का परम पुनीत कर्त्तव्य है।[2] भूषण ने महाराज शिवाजी के युद्धों के मूल में उनकी वर्णिक धर्म की रक्षा करने की कामना प्रदर्शित की है।[3] राजविलास में महाराज अमरसिंह स्व प्रजा, गौ और ब्राह्मणों के प्राण स्वरूप[4] कुंवर भीमसिंह सुरों और सज्जनों के सहायक,[5] तथा महाराज राजसिंह सुरों, संत और विप्रों के रक्षक एवं सहायक चित्रित किये गये हैं।[6]

(ग) युद्धार्थ तत्परता —

क्षत्रियों के हृदय में यह धारणा बद्धमूल रहती थी कि उनके सृजन के समय ही भगवान ने उनकी वृत्ति युद्ध निश्चित कर दी है। पृथ्वीराजरासो में पज्जूनराव कछुवाह (कछवाह) का कथन है कि सृष्टिकर्ता ने क्षत्रियों को उनके जन्म के समय तलवार धारण किए भेजा था, अतः असि-संचालन में नैपुण्य प्राप्त करना मात्र ही उनका सर्वस्व है।[7] राव जैतसिंह ने भी ऐसे ही विचार व्यक्त किए हैं।[8] परमलरासो में आल्हा का कथन है कि— 'क्षत्रिय होने के कारण न तो मैं कृषि-कार्य कर सकता हूं, और न वाणिज्य के द्वारा ही जीविकोपार्जन कर सकता हूं, मांगने में मेरा धर्म नष्ट होता है। अतः सृष्टिकर्त्ता द्वारा क्षत्रियों के सृजनकाल में उनके साथ करवाल बांध देने के तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए—युद्धस्थल में समर करते हुए वीरगति प्राप्त करना ही मेरा जीवनोद्देश्य है।[9] महाराज छत्रसाल भी क्षत्रियों की जीविकोपार्जन का मुख्य माध्यम खड्ग को बताते हुए[10] युद्ध को उनका वर्ण धर्म बताते हैं[11] तथा कहते हैं कि ईश्वर ने क्षत्रियों को खड्गहस्त करके युद्धार्थ ही भेजा था।[12] पृथ्वीराजरासो में हल की मूठ पकड़ने को क्षत्रियों का अपकर्म बताया गया है,[13] तथा शूरवीरों की कृषि खड्ग-मरण मानी गई है।[14] विविध नरेशों की सेना में भी प्रायः क्षत्रिय सैनिक ही युद्ध

---

१ से ६—देखिए—क्रम० 'जग०छ०, ८८२-८३ छ० प्र०' ११।७ शि० बा०, छ० ५१ रा० वि० ३।१७ वही ५।८३, वही ५।४०

७ 'करतार हथ्थ तरवार दिय, इह सु तत्त रजपूत करि।
— 'पृ० रा० मा० २।७८७।४४८

८ 'जिन दीनो जीवन मरन दई हथ्थ हम तेग।
और न चिंतन चिंतिय, सो मन रष्य एक॥' —पृ० रा०, भा० ४२७।५८

९ देखिए—'पर० रा०', १६।१२

१० 'छत्रिन की यह वृत्ति बनाई। सदा तेग की खाइ कमाई।' —'छ० प्र०, ११।७

११-१२—देखिए—वही, १२।८, १८।६५

१३ 'एक ठौर प्रथिराज राम भग हर काज।
समो ताहि गोविंद अग्ग जरासिंध सु भाज।" —'पृ०रा०' भा० ४।६५७।२३

१४ "मग्गा खेती खग मरन, अथ्यि समप्पन हथ्थ।' —वही ३।७०७।१८

करते चित्रित किये गये हैं जिससे स्पष्ट होता है कि आलोच्यकाल में भी क्षत्रियों का प्रमुख कर्त्तव्य युद्धवृत्ति ही थी।

उनकी दृष्टि में युद्ध करना मोक्ष प्राप्ति का अमोघ साधन भी था। उन पुरुषों को सच्चा राजपूत ही नहीं स्वीकार किया जाता था—जो युद्ध चर्चा सुनकर आह्लाद से नाच न उठें।[1] महाराज जसवन्तसिंह के मत में—किन्हीं सत्कर्मों के फलस्वरूप युद्ध करने का सौभाग्य मिलता है अतः उसका अवसर आने पर आगा पीछा सोचने वाले अपने जन्म लेने के उद्देश्य को ही नष्ट कर देते हैं।[2] वे युद्ध में वीरगति प्राप्त करने को मोक्ष प्राप्ति के लिए काशी-करवट आदि साधनाओं से भी बढ़कर बताते हैं, क्योंकि उनमें तो मोक्ष मात्र ही प्राप्त होती है जबकि वीरगति प्राप्त करने से मोक्ष के साथ साथ अपनी यश सुरभि से दिगन्त को सुवासित छोड़ जाने का भी अवसर मिलता है।[3] महाराज पृथ्वीराज की यही कामना रहती थी कि उन्हें असिधार पर प्राण त्यागने का सौभाग्य मिले अतः भगवान से इसी प्रकार की विनती करना उनकी नित्यप्रति किया का एक अंग था। नागपुर निवासी क्षत्रिय वीरों का यह कथन भी उनकी युद्ध वीरता चारित्रिक विशेषता का एक मूर्तिमंत रूप है— हमारे कुल की खड्ग ही गती और अक्षय निधि है खड्ग के द्वारा ही हम गलत को वशीभूत करके अपनी कीर्ति चिरस्थायी बनाते हैं। खड्ग के ही माध्यम से हम अपने विपक्षियों का निदलन अभीप्सित का अधिकरण स्वक्षिति का रक्षण और अशिव तत्वों के निराकरण की सामर्थ्य प्राप्त करते हैं। करवाल धार पर प्राण त्याग करना हमें आवागमन के बन्धन से मुक्ति भी दिलाता है अतः क्षत्रियों का सर्वस्व खड्ग जब तक हमारे हाथों में है तब तक हम कोई भी शक्ति अपने निकमन महाराज के माथ को शाही खजाने में गिलाने के लिए विवश नहीं कर सकता।

पृथ्वीराजरासो में राउल समर विक्रम और चामुण्डराय क्षत्रियों की युद्ध के विषय में इस उदात्त धारणा को प्रकट करते हैं कि क्षत्रियों के तो दोनों ही हाथों में लड्डू रहते हैं यदि युद्ध में वीरगति प्राप्त हुई तो सुरपुर का अधिवास और अप्सरा

---

१ जंग वचन सुनि के नहिं नच्चय।
त रजपूत धरम नहिं सच्चय। प० रा० का० २५।२८।१६१

२ ३—दरिगण— हि० व० नि० छ० १०० १०६

४ तुलसीदल हर अरपि। सत्य असिवर की मगिय। — प०रा० का० १६६।१६८

५ सनी हम कुल खग्ग खग्ग हम अक्षय खजानय।
खग्ग करें वश गगन नाम हम खग्ग निशान।
खग्ग दल गंजन खग्ग मत स्वच्छन हम खग्ग।
शिति रक्षन पुनि खग्ग अशिव भग्गी इनि खग्ग।
खग्ग धार तिय धर्म धरम आवागमनहिं जयकरा।
रा खग्ग जब हम सूर गत धन्य न साहि खजाने धन। —रा० वि० ६।७३

वरण का सौभाग्य प्राप्त होगा, जबकि जीत की दशा में भी कीर्ति विस्तार के साथ साथ लौकिक उपभोगों का अवसर मिलेगा।[1] महाराज हम्मीरदेव के आत्मगत कथन में भी ऐसे ही भाव व्यक्त किए गए हैं।[2]

इसी प्रकार युद्ध में वीरगति पाने वाले वीरों के सूर्यमण्डल का भेदन करके, अप्सराओं द्वारा उनका वरण किये जाने और शिव द्वारा उनके मुण्ड को अपनी मुण्डमाला में स्थान देने के उत्साहवर्धक उल्लेख छत्रप्रकाश[3] पृथ्वीराजरासो[4] रतन बावनी,[5] और वीर चरित्र[6] आदि ग्रन्थों में भरे पड़े हैं।

युद्ध सम्बन्धी इन उदात्त धारणाओं के कारण क्षत्रियों के प्रथम युद्ध प्रयाण के अवसर पर विवाहोत्सव जैसा आयोजन किया जाता था। महाराज हम्मीरदेव के भतीजे के प्रथम बार युद्ध गमन के अवसर पर उनके शीश पर मुकुट बांधे जाते हैं तथा उस अवसर पर बजाए जाने वाले मंगल-वाद्यों की ध्वनि से दिगन्त निनादित हो उठते हैं।[7] शाह अलाउद्दीन अपने मन्त्रियों से रणथम्भौर दुर्ग में इस आकस्मिक और अप्रत्याशित राग रंग का कारण पूछता है[8] और उसके आश्चर्य की सीमा नहीं रहती जब उसे बताया जाता है कि क्षत्रियों की परम्परा के अनुसार महाराज हम्मीरदेव के भतीजे के प्रथम बार युद्ध गमन के शुभावसर पर हर्षोल्लास मनाया जा रहा है।[9]

अनुदिन चलने वाले युद्ध चक्र के कारण क्षत्रिय-पत्नियों का वैधव्य, उनसे आंख मिचौनी खेलता रहता था। ज्ञात नहीं, रिपुदल मदनाथ उनके पति किस क्षण कूच कर जायें और उनके सौभाग्य के प्रति ईर्ष्यालु स्वर्ग वारांगनाएं उनका वरण कर लें। आल्हखण्ड के शब्दों में— जिनके पति निशिदिन युद्धावरत रहते हैं, ऐसी

१ देखिए—'प० रा०', मा० ८।२०५८।२२६
२ जीत सौ घर भुग्गि व, जुझ्झे सुरपुर वास।
दोऊ जस दिसी अमर तजौ मोह जग आस।' — ह०रा०, छ० ६६०
३ 'पग पग अश्वमेध फल चाहै। ते कृपान रन सनमुख गाहैं।
भेदन भानु सुभट रन मावे। रुद्र मुण्ड तिन दै नाचे॥
रन अवलोकि अमर सुख पावै। रन में उमडि अपछरा गावै।
रुद्र मुण्ड सुजस जग छावै। तातै रन छत्रिन को भावै॥' —'छ०प्र०', १८।५
४ से ६ – देखिए—क्रम०, 'प० रा०', मा० ११।८०८।२१, ६।७७६।५७, र०बा० छ० ७, 'वी० च० ३१।१६
७ 'धरो तुम सीस हमारे जु मौर। लर गिर गहर बांधि सजौर।
बँध्यौ तब मौर कुमारन सीस। दई बहु भांतिन असीसा।' — ह०रा०, छ० ५२०
८ 'करि असवारी कुमर दाउ, उनरे पौनि सु छौर।
ख्या कवै उछाह जु वजि नौबति ठौर।' —वही, छ० ५३०
९-१०—देखिए—'ह० रा०', छ० ५२० २०

वीरांगनाओं की चूड़ियाँ कब तक सुरक्षित रह सकती है।''[1] कवि चन्द ने भी मात्र सत्रह-वर्ष में चन्द्रसेन का वीरगति प्राप्त करना चित्रित किया है।[2] महाराज हम्मीर देव ने इस धारणा का प्रकाशन किया है कि क्षत्रियों की आयु बीस वर्ष मात्र होती है और उनमें से विरले ही तीस वर्ष की आयु प्राप्त कर पाते हैं।[3]

यह तथ्य भी ध्यातव्य है कि वीरगति प्राप्त करने वाले व्यक्ति के सम्बन्धियों को क्षत्रिय शोक मनाने के स्थान पर हर्षाभिव्यक्ति करने के लिए कहते थे। महाराज सोमेश्वर के मृत रहने से सेनापति महाराज पृथ्वीराज समझाये जाते हैं, कि खड्ग धार पर शरीर त्याग कर सूर्यमण्डल का भेदन करना क्षत्रियों का आदिधर्म है अतः आपका शोक मग्न होना उचित नहीं है।[4] हम्मीररासो में अभिमत व्यक्त किया गया है कि सती होने वाली स्त्री और शूर वीर के मरण पर उत्सव मनाना चाहिए।[5]

(ग) युद्ध से पलायन न करना

युद्ध से पलायन करने को क्षत्रिय अतीव अधम कृत्य समझते थे। पृथ्वीराज रासो में ऐसे क्षत्रियों को कुल कलंक कहकर निन्दा की गई है।[6] रासो में जयचन्द नाहर राय का कथन है— मैं एक राजपूत योद्धा हूँ अतः संग्रामस्थल से भागने की अपेक्षा वीरगति पाकर अपनी कीर्ति अवशिष्ट छोड़ना श्रेयस्कर समझता हूँ।[7] आल्हखण्ड में ऊदल वीरों से कहता है— जो क्षत्रिय अपना मोर्चा छोड़कर भागेगा उसकी सात पीढ़ियाँ तक का नाम डूब जायगा।[8] परमालरासो और आल्हखण्ड में स्थल स्थल पर इन तथ्यों का अभिव्यंजन हुआ है कि— मरना तो एक दिन सबको है ही फिर युद्ध से पलायन करके यश मलिन क्यों किया जाय तथा राजपूत का कर्त्तव्य है कि उसके शरीर की चाहे बोटी बोटी उड़ जाय किन्तु वह रणस्थली में पैर पीछे न हटाए।[9] गोरा बादल की कथा में गोरा अपनी माता को यह वचन देकर जाता है कि

---

१ रोज लड़ाई जिनकी रन में तिनकी कह चुरियन की आस। — आ० ६३५।१६

२ दृष्टव्य— पृ० रा० भा० ११६६।१२१

३ छत्री वरस बीस तें आगे। जिय तीस लों जे बड़भागे।

— ह० दे० च० २७४।७६

४ दृष्टव्य— पृ० रा० भा० ११६६।२

५ सती सूरमा पुरुष को मरतहिं मंगल होय। — ह० रा० ६६६

६ जे भाग तज्जे सर निज कुल लाज्यो गह।
फिर गुरू गय जोति मिलि कम अमर पुर गह॥

— पृ० रा० भा० १११४८।१८

७ भागत भूमि रजपूत ह्वै करौं नाम जिमि अचल ध्रुव। —वही ११६६८।७

८ से १०—दृष्टव्य—आल्ह० खं० ६१६-१०११ पर० रा० ४।१८७ वही २।१६१

'युद्धस्थल में अश्व तथा माउरुग में शुभ वीर प्रसूता थे दूध को कलंकित नहीं होने दूंगा।'[1] हम्मीरहठ में महाराज हम्मीरदेव भी अपनी माता को ऐसा ही वचन देते हैं।[2] आल्हखण्ड में युद्ध से पलायन करने वाले की जहाँ सात पीढ़ियाँ कलंकित होने का उल्लेख है, वहीं हिम्मतबहादुर विरुदावली में—रणक्षेत्र में वार करते हुए अग्रसर होने वाले क्षत्रियों को यज्ञ से भी अधिक फल मिलने तथा शस्त्राघातों से शरीर त्याग करने वालों की पचास पीढ़ियाँ तर जाने की धारणा प्रकट की गई।[3]

(ग) युद्धादि जीवन प्रसंगों में उत्तम नीतियों का आश्रय लेना

युद्ध नियमों के विषय में क्षत्रियों की अपनी विशेष धारणाएं थीं। वे अधम युद्ध को क्षत्रिय मर्यादा के विरुद्ध अतएव त्याज्य समझते थे। उनके प्रतिपक्षी अधिकतर मुसलमान होने के कारण, जो हिन्दू आस्थाओं और रण प्रक्रिया के विपरीत अपनी राजनीति का मेरुदण्ड छल-कपटादि अधम वृत्तियों को बनाते थे, क्षत्रिय भी यदा-कदा अनुकरणात्मक और आपद धर्म के रूप में छल कपटादि का आश्रय ग्रहण करते थे, तथापि उनका प्रयास जहाँ तक सम्भव हो उत्तम नीतियों का ही प्रयोग करना होता था। मालव नरेश द्वारा सोमेश्वर पर आक्रमण करने के समय उनके सामन्त उन्हें उस पर रात्रि में अचानक छापा मारकर पराजित करने का परामर्श देते हैं जिसे महाराज सोमेश्वर यह कहकर अस्वीकार कर देते हैं कि, रात्रि में युद्ध करना क्षत्रियों के लिए अधम बताया गया है। साथ ही किसी को सुषुप्तावस्था में कपट से मारना, मलत्याग करते हुए, स्त्रीरमण करते हुए, पूजन, स्नान या मन्त्रजाप करते हुए को मारना क्षत्रिय धर्म विरुद्ध है और इन कार्यों में अपयश से भय न मानने वाले ही प्रवृत्त होते हैं।[4] पृथ्वीराजरासो में अन्यत्र भी हिन्दुओं द्वारा अधम युद्ध न करने के तथ्य का अभिव्यंजन हुआ है।[5] हम्मीररासो में शाह अलाउद्दीन की विशाल वाहिनी को दृष्टिगत करते हुए, हम्मीरदेव का अनुज रणधीर उनके समक्ष रात्रिकाल में छापा मारकर शत्रु दल को छिन्न भिन्न करने की याचना करता है जिसे वे अधम कहकर ठुकरा देते हैं।[6]

---

१ गा० वा० क०, ११०

२ ३ देखिए—क्रम ह० ह०' २७, 'हि० व० वि०, १०७

४ 'रतिवाह छलजुद्ध अधम क्षित्री परिमान।
कूड कपट मारिय, अधम निद्रागत जान॥
मलमोचन रति रवन सब पूजन जल न्हान।
मन्त्र जाप जप्पत, करे नह घात सुजान॥
तुम मत तत सच्चौ कहिय इह अधम्म ध्रम्म हारिय।"
जो गिनत पुरुष निंदा अपर, तो रतिवाह विचारिय॥'

—'पृ० रा०', मो० २।८०३।११

५-६—देखिए—पृ० रा०', मो० २।४६६।२, 'ह० रा०', ५७५ ७६

वीरचरित्र में महाराज वीरसिंह देव को दिए गए राजधर्म के उपदेश में कहा गया है कि — युद्ध से भागकर जाते हुए, हथियार डालकर हा हा करते हुए, कंपित गात, यान-रहित और दाँतों में तिनका दबाए हुए शत्रु को मारना धर्मविरुद्ध है।[१] छत्रप्रकाश और शिवराज भूषण में भी दाँतों में तृण दबाए शत्रु को क्षमा करने की प्रथा दिखाई गई है।[२] आल्हखण्ड में मलखान हाथी के मारे जाने के कारण जमीन पर गिर चौंडा को जीवनदान देता हुआ कहता है कि, हम न तो पैदलों पर वार करते हैं और न पलायन करने वालों पर। भूमि पर गिरे अन्य शस्त्रों को भी नहीं उठाते। तुम युद्धार्थ दूसरा हाथी मँगा लाओ, मैं तभी वार करूँगा।[३]

क्षत्रियों में यथासम्भव समबलशील शत्रु से ही युद्ध करने और शत्रु भय के कारण अपनी ओर से संधि वार्ता का प्रस्ताव निंद्य समझने की धारणाएँ भी प्रचलित थीं। मवासी मुगलों का सामना करने के लिए स्वयं महाराज पृथ्वीराज के जाने का अनौचित्य गोविंदराज यह कह कर प्रकट करता है कि आपको तो कन्नौजपति जय चंद अथवा मुहम्मद गोरी से ही भिड़ना शोभनीय लगता है, इस गँवार मवासी के लिए आप शस्त्र क्यों धारण करते हैं?[४] आल्हखण्ड में ऊदल जब क्रुद्ध दिल्लीश्वर को लाखन पर मरणान्तक प्रहार करने के लिए उद्यत देखता है तो उनके इस कृत्य को इसी दृष्टि से अनुपयुक्त बताता हुआ, लाखन की प्राण रक्षा करते चित्रित किया गया है।[५]

दुर्ग की रसद समाप्त होने की सूचना देकर संधि का प्रस्ताव देने वाले सुर जन को महाराज हम्मीरदेव कुपुत्र कहकर निंदा करते हैं और उसके क्षत्रिय मर्यादा से अनभिज्ञ होने की भर्त्सना करते हैं।[६] राव बहादुरसिंह कच्छूजर संधि करने का निवे दन लेकर आए हुए प्रजा के प्रतिनिधि क्षत्रियों को तिरस्कृत करते हुए कहते हैं कि शत्रु के प्रताप के श्रवण मात्र को क्षत्रिय असीम कलंक समझते हैं जबकि उनकी ओर से संधि प्रस्ताव भेजने से बढ़कर अन्य कोई गर्हणीय कृत्य नहीं है।[७] इसी भाँति शत्रु भय से त्रस्त होकर घमंडाव से निष्क्रमण को क्षत्रिय अतीव गर्हित समझते थे, और तद्वत आचरण करने वालों को आरज पुत्र कहकर निन्दा की जाती थी।[८]

घायल हुए शत्रु का भी युद्धस्थल से लाकर उपचार कराना और उसके स्वास्थ्य

---

१ से ३—क—व्रजम० जीव० ११२० छ०प्र० ८।६ शि० भू०, छ० १८२। २५० आ० ८।२।७२० प० रा० मा० ११,८७।१८ आ० ५२६।२ ...
६ दशिए—ह०रा० छ० ६८२
७ रिपु प्रताप कानन सुन गजसीदु हुग नाद।
नतन लखिय दीन ह या सो यह न काम ॥ —सु० च० ८।४।२७
८ तो नंघ्यि पुन धार तो ग्रम्म द्वार हार तिरस्कर।
—प० रा० मा० ३।३,०।१३

लाभ करने पर दानादि देकर हर्षाभिव्यक्त करना तथा बन्दी शत्रु को जीवनदान ही नहीं देना अपितु उसकी सुरक्षा का प्रबन्ध करते हुए सादर विदा करना[1] भी ऐसे तथ्य हैं जो क्षत्रियों के चरित्रौदात्य को अभिसूचित करते हैं।

(ट) दृढ़ स्वामिभक्ति —

क्षत्रियों की एक अन्य चारित्रिक विशेषता उनके अन्तरतम में स्वामि धर्म की दृढ़ भावना मिलती है। स्वामि धर्म के पालन को क्षत्रिय अपना प्रमुख कर्तव्य समझते थे।[2] संकटापन्न स्वामी का साथ छोड़कर पलायन करने वाले क्षत्रियों की जारज पुत्र कहकर निन्दा की जाती थी,[3] तथा उनके द्वारा मूँछ रखाना भी लज्जास्पद समझा जाता था।[4] इसके साथ ही स्वामिधर्म का अनुपालन न करने वाले क्षत्रियों द्वारा दण्ड रूप में रौरव नरक भोगने[5] तथा पुनर्जन्म में सूकर की योनि प्राप्त करने का विश्वास किया जाता था[6] जबकि स्वामि रक्षण में प्राणोत्सर्ग करने वाले क्षत्रियों के दोनों लोक सफल मानते हुए वे स्वर्ग के भोग तथा पग पग पर यज्ञ फल के अधिकारी समझे जाते थे।[7]

---

१ देखिए— पृ० रा०, मा० २।८३०।७०

२ "धर धम सीस सु छत्रीय सूर। उबारत स्वामी अपार हजूर।
— पृ०रा० मा० २५७७।४१

३ (क) जासी जार जाति सो कहिय। अमल बीज रजपूत न कहिय।
— वही २४५१।३०६

(ख) 'जे जन जाए जार के ते निज निज घर जाइ।
स्वामि संकट मैं तज का एतो सुख पाइ।' — ह० ह०' छ० २६८

४ पुनि कही कहु नृप जन सौं स्वामी रक्खि जिनु तनु तज।
तिन जननि दास बुधजन कहै मुछ धरन मुक्खन लज।
— पृ० रा० मो० ११।७६

५ (क) "रन लर स्वामि सेवक पराय।
सत जन्म जोर जम लोक जाय।" — पृ० रा०' मा० ११३३६।२१

(ख) पावद की दपे बुरी अग रखावा सूर।
कहै अरुह रउपूत की। दीजे नरक करूर।" — पृ०रा०' मा० २४७३।३२४

(ग) 'माई परत सकरें तिनहि नरग नहि ओर।" — 'रा० वि०, १८ ६१

(घ) स्वामी को संकट पर, जो तजि भाजे कूर।
लोक अजस परलोक में, जमपुर जात जरूर। — 'ह०ह०' च० छ० २६६

६ रहु न लाव निन ठाम जिन न साईं ता रक्यो।
नगर निकट है जीव, सुघनि अवभक्खनु भक्ख्यो।' — पृ०रा०' मा० ११३३६।२१

७ (क) जे जूझत रन भट सुभ पाय। अपने राजा को पहुचाय।
पद पद जयनि को फल होय। नाके सुद्ध सुनि जिनें दोय।"
'—बी० च०', २१।१८

स्वामी के शुभ अशुभ कार्यों से कोई प्रयोजन न रखकर उनके लिए प्राणोत्सर्ग करना ही उनका प्रमुख कर्तव्य समझा जाता था।[1]

महाराज पृथ्वीराज के सामंत सजमराय द्वारा स्वामि धर्म का पालन करते हुए प्राणोत्सर्ग करने की घटना अपना सानी नहीं रखती। गम्भीर रूप से घायल होने के कारण महाराज मूच्छित हो जाते है। तभी उनके नेत्र निकालने के लिए तत्पर एक गिद्ध उनके वक्षस्थल पर आ बैठता है। समीप ही घायल होकर गिरा हुआ सजमराय अपने स्वामी की विपन्नावस्था को हृदयंगम करके उनकी रक्षा का तुरंत उपाय सोच लेता है और अपना शरीर मांस काट काट कर उस गिद्ध की ओर फेंकने लगता है जिससे गिद्ध अपने मूलोद्देश्य को भूलकर उस मांस का भक्षण करने में जुट जाता है। चेतनावस्था को प्राप्त हुए किंतु अंग संचालन में असमर्थ महाराज पृथ्वीराज डबडबाए नेत्रों से अपने स्वामिभक्त सामंत को स्वर्ग का पथिक बनते देखते है।[2]

(च) शरणागत वत्सलता —

क्षत्रिय शरणागतों की रक्षा करने को अपना एक आवश्यक धर्म समझते थे।[3] अपनी इस चारित्रिक विशेषता के कारण उन्हें आये दिन युद्ध मोल लेने पडते थे किंतु सर्वस्व न्योछावर कर देने के मूल्य तक भी वे शरणागत को भग्नाश लौटाते नहीं मिलते। वीरकाव्य में वर्णित अधिकांश युद्ध चक्रों के मूल में क्षत्रियों का यह अनुपम गुण ही कार्यरत मिलता है।

महाराज पृथ्वीराज और शाह गोरी के मध्य वैर भाव के बीज-वपन का मूल कारण यह था कि उन्होंने शाह गोरी द्वारा देश निष्कासित मीर हुसन को शरण प्रदान की थी। दिल्लीश्वर मीर हुसन के शरणार्थ आने पर आरम्भ में इस दुश्चिन्ता में तो अवश्य पड जाते है कि मलेच्छ का मुख न देखने तथा शरणागत को निराश न लौटाने में से अपनी किस प्रतिज्ञा का पालन करूं किंतु अन्ततः उनकी दूसरी भावना ही विजयिनी होती है। शाह गोरी उसके अपराधी को शरण न देने की धमकी देता है

(ख) साइ काम सेवक मरै तो तिन स्वर्गहि ठौर। — रा० वि०' १८।६१
(ग) स्वामि काज आपन मरै छत्री धम सीस पर धरै।
मामा घर की दूरी सुपेदं व नर सूरज मडल भेद ॥''
— पृ० रा० का २५५१।३१०

१ 'ऐगुन तजि सब भूप के।स्वामिधर्म सह काम। — पर० रा०, ३।१०७

२ देखिए—'पर० रा० ३७।१४

३ सरनागत पालन करै अरु बरत सुचि नीति।
समर सस्त्र सनमुख सहै यह छत्रिन की रीति॥' — हृ० ह०', छ० १४५

४ मेछ्छ मुप देखै न नृपति विपति परी दुह क्रम।
इक सरनाइ करै ग्रहन इक धर रष्षन ध्रम। — पृ०रा०' का० ३८६।१४

किन्तु वे उसकी युद्ध की चुनौती को स्वीकार करते हुए मीर हुसन को अपने आश्रय मे नही निकालते। गोरा और बादल द्वारा महारानी पदमावती की प्राण-पण से रक्षा करने के मूल म महारानी का उनसे शरण याचना करना था।[1] महाराज राजसिंह रूप कुवरि द्वारा शरण-याचना करन पर[2] शाह औरगजेब से विरोध मोल लेकर भी उससे विवाह कर रो जाते है। इसी प्रकार वे शाह औरगजेब की इस धमकी का कि यदि तुमने राठोरो का शरण प्रदान की तो तुम्हार राज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर दूगा[3] प्रत्युत्तर दत है—'शरणागता की रक्षा करना हमारा आदिकाल से ही विरुद्ध रहा है अत राठौरो ने चाहे तुम्हारे शताधिक अपराध क्या न किय हो, फिर भी म उन्हे तुमको नही सौंप सकता।'[4] परिणामत दोनो पक्षो म भीषण युद्ध चक्र चलता है।

अलाउद्दीन और हम्मीरदेव के मध्य दीर्घकाल तक होन वाले युद्ध का कारण भी अलाउद्दीन के अपराधी महिमाशाह को महाराज हम्मीरदेव द्वारा आश्रय प्रदान करना था। हम्मीर हठ के अनुसार महाराज के दरबानो का जब यह ज्ञात होता है कि मीर महिमा अपनी प्राण रक्षा की कामना स महाराज की शरण म आया है तो वे उसे अभिवादन करते और गले मिलते हैं तथा उसके आतिथ्य का सौभाग्य मिलना अपने पुण्यो का प्रतिफलन बताते है।[5] महाराज हम्मीरदेव की प्रसन्नता का भी पारा वार नही रहता। उनके भुजदण्ड फडक उठत है और वे विहँसते हुए कहते है कि चाहे मेरे शरीर की बोटी-बोटी कटकर गिर जाय और मेरा धड रण प्रागण म रुधिर धारा बहाता हुआ नृत्य करता फिरे किन्तु म शरण मे आए महिमा मगोल को, शाह अला उद्दीन को समर्पित नही करूँगा।[6] हम्मीररासो म की गई उनकी प्रतिज्ञाएँ भी कम प्रभविष्णु नहा है जब वे कहते है कि—चाहे मेरे तन धन, गढ सब विनष्ट हो जायें सूर्य पूर्व के स्थान पर पश्चिम दिशा म उदित होन और गगा अपने प्रवाह की विप रीत दिशा म बहने लग किन्तु म शरण म आये मीर महिमा को निराश्रित करके शाह को नही सौप सकता।

---

१ से ४ दक्षिण—क्रम, 'रा० वा० का०', ६२ 'रा० नि०, ७।३८ ३८, वही, १०।६ वही, १०।१०

५ "सुनी प्रान राखिय की जुबानी। दुर्ग आनि पीछ यहै बात जानी।
गहै बाँह एक मिल औ जुहारै। वह पुण्य ते पाहुन हौ हमारे।" — ह० ह०', ५४

६ "भुज फरकत हरषत सुनत सरनागत की बात।
बान विहँस हमीर तब उमग न गात समात।
धर नच्च, माह वहै, पि बाल गिर थाल।
कटि कटि तन रन मैं परै तौ नहिं देहु मगोल।" —वही ६१

७ (क) 'तन धन गढ घर ण आवै प महिमा पतिसाह न पाव।" — ह०रा०' २६१
(ख) 'पच्छिम सूरज उगव, उलटि गग बह नीर।
कहो दूत पतिसाह सो, हठ न तज हम्मीर।' —ह० रा०, ३२६

सदृश —

गीतिकाव्य में क्षत्रिय शौर्य और पराक्रम के चित्रण की प्रधानता का प्रकाश मिलता है किन्तु वैश्यों का अतिरंजनापूर्ण चरित्र और धर्मिता सहित अभिव्यक्त किया गया है। अकबर के समय में भी आर्थिक क्षेत्र में वैश्यों के लिए बहु प्रशंसित सम्पत्ति चरित्र और कार्यों की चर्चा है तथा साम्भी में ... बताया है जाता का उल्लेख किया है।[1]

कवि चन्द ने दिल्ली वासी महाजनों की स्वार्थवृत्ति और चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डाला है जिससे ज्ञात होता है कि उनके शरीर बड़े कायर होते थे। उनके उदर बढ़कर ढीले हो गये थे जिसके कारण वे कठिनाई से बोल पाते थे और थोड़ा चलने पर उनका सांस फूल जाता था। उनके वस्त्र हीन-ग्राम और ऊँचे होते थे। स्वभाव से वे डरपोक होते थे कि क्षत्रियों आदि के समक्ष वे अपनी मूँछें मरोड़ने का साहस नहीं करते थे किन्तु यह कभी वे अपने गृहों के कपाट बन्द करके पूरी करते थे। शत्रुओं से रुष्ट होने पर भी वे अपने स्थान पर बैठे हुए ही मुट्ठी बाँधकर दाँत भींचा करते थे किन्तु उनसे उठकर हाथापाई करने की स्थिति ही नहीं आने देते थे। उनकी भावनाएँ उनके धन में लगी रहती थी।[2] कवि चन्द ने उनके इस चातुर्य पर प्रकाश डालते हुए उन्हें ब्रह्मा और विष्णु को भी छलने में समर्थ दिखाया है। उसने उन्हें अत्यन्त दयालु दानी पापकर्मों से दूर रहने वाले तथा पर्वादि अवसरों पर याचकों के लिए अन्न दान के प्रबन्धकर्ता बनाकर, उनके चरित्र के शुक्ल पक्ष का भी चित्रण किया है।

पृथ्वीराजरासो में वैश्यों का मुख्य धर्म दया-वृत्ति का परिपालन बताया गया है।[3] राजविलास में कवि मान ने भी उदयपुर-वासी सेठों को श्रद्धालु कृपालु दयालु और अधिकतया जैन मतावलम्बी प्रदर्शित करके[4] उनकी अहिंसक मनोवृत्ति पर प्रकाश डाला है।

उनके प्रमुख वस्तुतः धर्म कृषि, गोपालन व्यापार और सूद-वृत्ति स्वीकार किये जाते थे।[5] वंशावलियों ने इनमें से सूद वृद्धि के साथ जो जघन्य शोषण प्रवृत्त किया है वह वर्त्तमान सूद चक्र में पिसने वाली जनता की सूदखोरों के प्रति वितृष्णा का ही मुखरित रूप है। इतिहासग्रन्थों में कृषि-धर्म का ही समर्थन के कारण, कृषि करने वाले वैश्यों का साधारणतया शूद्रों की श्रेणी में परिगणित करने की प्रवृत्ति का

---

१ 'आईन ए अकबरी' भा० ३ पृ० १३२

२ पृ० रा० का० २१।२८।१२६ १८

३ से ४—दे० क्रम पृ० रा० का० २०।२।१८०, 'रा० वि०, २।६१, ज० ज० च० १६

५ 'वनिजन विविध जप में सूद कृपि गोकुल सो रति।' — ज० ज० च०, १६

उल्लेख मिलता है।[1] इसी प्रवृत्ति का परिणाम हो, अथवा केशवदासजी का वश्या के प्रति विद्वेषी अन्तमन कायरत हो रहा—उन्होंने वश्या की गणना अपराधवृत्ति वाली निम्न जातियों के साथ की है, तथा उनमें भांग, अफीम और सुरापान के दुर्गुणों के साथ साथ वेश्या-गमन की भी दुर्वृत्ति प्रदर्शित की है।[2]

वश्यों का मुख्य कार्य व्यापार करना ही था। कवि चन्द ने बाजारों में उनकी लाख-करोड़ तक की पूंजी लगी प्रदर्शित की है।[3] आल्हखण्ड में दिखाया गया है कि वे व्यापारार्थ विदेशों तक की यात्रा किया करते थे।[4] कवि विद्यापति ने अनेक वनिजों को भी जौनपुर के बाजार में क्रय विक्रय करते दिखाई है।[5] लूट-पाट की चिन्ता न करते हुए वश्यों का युद्ध शिविरों के निकट दूकानें ले जाने का मूल कारण भी व्यापार लाभ ही रहा होगा। वीरचरित्र और हम्मीररासो में क्रमशः महाराज वीरसिंहदेव[6] और शाह अलाउद्दीन[7] की सेनाओं के साथ अनेक वणिक अपनी दूकानें लेकर जाते हैं।

कुछ वश्य सनिक-सेवा करते मिलते हैं जिसे उनके पीछे निर्दिष्ट अहिंसा प्रधान स्वभाव के विरुद्ध ही कहा जायगा। कवि सूदन ने युद्धार्थ चारों वर्णों के योद्धाओं को सज्जित होते दिखाकर[8] इस तथ्य की ओर प्रकारान्तर से इंगित किया है, जबकि पृथ्वीराजरासो के महोबा खण्ड में मना तथा परमालरासो में दसुर नामक वनिए के युद्ध करने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[9]

कार्याधार पर वश्य हलवाई, पंसारी, जौहरी, आदि अनेक वर्गों में विभक्त थे। अबुल फजल के अनुसार अकबर-काल में उनके चौरासी उपवर्ग थे।[10]

शूद्र —

वर्ण-व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए, हम निवेदन कर चुके हैं कि वर्णों के स्थान पर जाति शब्द का प्रचलन उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था। शूद्र वर्ण के सम्बन्ध में यह प्रवृत्ति और भी अधिक व्याप्त थी। उन्हें प्राय व्यवसायों के आधार पर निर्मित उपजातियों के ही नाम से अभिहित करने का प्रचलन था। हमारे आलोच्यकाल से

---

१ परन्तु प्राचीन काल से ही वश्यों ने स्वयं धन्धे को छोड़ दिया था और जो वश्य खेती करते थे, उनकी गणना शूद्रों में ही हुआ करती थी।'
— हि० भा० का उत्कर्ष' पृ० ३०६

२ 'अधिक जगाती वनिक सुनार। इन्ह आदि के मीत अपार।
पुस्ता पीवहि भाँगहि खाइ ग्वाइ। मदिरा पी बिस्वा पह जाइ।" वी०च०' ११२०

३ सोभन नगर जिहि बड़े साहि। लख कोटि द्रव्य जिन हट्ट माह।'
— पृ० रा०', का० २१२६।१२६

४ देखिए—आ०', ८३।१६, ४८४।२१

५ से १० देखिए—क्रम कीर्ति०', प० ३२, 'वी०च०, ४।१७, 'ह० रा० ३७६, सु० च०', ४।६।७, प० रा० का० २५८५।५७६, 'पर० रा०, २४।६१

११ देखिए—'आइने अकबरी, भा० ३ प० १३२

स्पष्टमालित धम उत्तजातिया म क्य भ गलिन्त हा धुत म गया उप उत्तजातिया म भी परस्पर ऊँच-नीच की भावना व्याप्त थी।[1]

शूद्रों का मुख्य धर्म द्विजों की सेवा करना समझा जाता था।[2] उनमें से कुछ जातियाँ अस्पृश्य मानी जाती थीं। विद्यापति ने जौनपुर के बाजार में भीड़ाधिक्य के कारण स्त्रियों की चूड़ियाँ टूट जाने, वेश्याओं के पयोधरों से योगियों के टकरा जाने आदि विसंगतियों का चित्रण करते हुए यह भी उल्लेख किया है कि उसमें ब्राह्मणों के यज्ञोपवीत चाण्डालों से छू जाते थे।[3] इससे यही स्पष्ट होता है कि वितान द्वारा चाण्डाल आदि निम्न शूद्र जातियाँ अस्पृश्य समझी जाती थीं। शूद्रों को शीश झुकाना या अभिवादन करना निषिद्ध था।[4] इतने पर भी शूद्रों की पतुरान में अधम्मा पर प्रकाश डाला है।

शूद्र जातियों का प्रमुख धर्म द्विजों के लिए विविध जीवनोपयोगी वस्तुएँ बनाना था किन्तु वीरकाव्य में उनमें से कुछ लोग सहित गया में भी प्रविष्ट चित्रित किए गए हैं।[5] विलियम क्रुक के अनुसार शूद्रों को मात्र पदाति-सेना में ही स्थान मिलता था।[6] राजपूतों की इस भावना के कारण यह सर्वथा सम्भव है कि शूद्रों का राजपूतों की भाँति अश्व या गजारूढ़ होकर युद्ध करना निषिद्ध रहा हो। वीरकाव्य में अप्रतिष्ठित शूद्र जातियों का उल्लेख मिलता है।

सुनार —

पद्माकरजी ने सुनारों को सकर भाजन बताकर,[7] उनका सम्बन्ध वर्ण सकर जातियों से जोड़ा है।[8] उन्होंने उनकी गणना वधिक-जगाती आदि शूद्र-जातियों के साथ की है तथा उनमें इन जातियों जैसे अफीम भाँग और मदिरा सेवन के दुर्गुण दिखाये हैं।[9] इस विवरण से प्रतीत होता है कि पद्माकर काल में सामाजिक स्थिति की दृष्टि से सुनारों की दशा आजकल की अपेक्षा कुछ हीन थी।

---

१ 'सोशल लाइफ इन मान्य इण्डिया
—डा० ब्रजनारायण शर्मा टंकित प्रति, पृष्ठ ५०५

२ "दया सु धम्म वनिक्क। सेवा धम सुद्र सदाइ।" — प० रा०' का० २०१२

३ 'यात्राहतह परस्त्रीक वलया भांग। ब्राह्मणक यज्ञोपवीत चाण्डाल हृदय लूल। वेश्यानि करो पयोधर जटीक हृदय लूल। — कीर्ति० पृष्ठ ३०

४ 'करु बँवहि सनान बरकु सुपचनि सिर नवाहि। — वी० च० २।१२

५ देखिए—'छ० प० १६।१०, 'सु० च०', ६।६।७ अ०' ६०२।१

६ देखिए— टवल्स इन इण्डिया वाई जे० वी० टूवर्नियर—भाग २, पृ० १४५ की पा० टि०

७ 'सकर भाजन भवन, भूरि भूपनन बनावत। — ज० ज० च०', छ० १६

८ ९—देखिए—क्रम, 'वी० च०', १।२०, आ०', २७।१८ १६

नाई—नाइयो का मुख्यत त्रिवण के परिवारिक सस्कारो से सम्बन्ध मिलता है। यजमान दुहिताओ के लिए वर अन्वेषणाथ जाने वाले नेगियो म नाई भी सम्मिलित रहता था।[1] विवाह के अवसर पर होने वाले नहछूर[2] और उवटन[3] नामक लोकाचार नाई द्वारा ही सम्पन्न किये जाते थे। उसे हम भोजो के अवसर पर लोगो को बुलाने के लिए भी जाते पाते हैं।[4] नाइयो को इन कार्यों के बदले नेग प्रदान किया जाता था।[5]

माली—इनका प्रमुख काय बागो की रक्षा करना तथा भाँति भाँति के पुष्प हार बनाना होता था। पृथ्वीराजरासो म महाराज परमाल के बाग की रखवाली करने वाले माली का चित्रण मिलता है।[6] आल्हखण्ड म मालिन को राजकुमारी के लिए नित्यप्रति पुष्प हार ले जाते प्रदर्शित किया गया है।[7] इस काय म व्याघात पडने पर वह दण्डित होने की दुश्चिन्ता व्यक्त करती है[8] जिसस प्रतीत होता है कि वह राजकीय सेवा म नियुक्त रही होगी। विवाह के अवसर पर माली मौर लेकर आते और नेग प्राप्त करते थे।[9]

बारी—बारियो का छत्रप्रकाश[10] और आल्हखण्ड म उल्लेख मिलता है। आल्हकार ने उनकी गणना नेगियो म की है तथा कुल पुरोहित नाई और भाट के साथ उन्हे वर-अन्वेषणाथ जाते प्रदर्शित किया है।[11] आल्हखण्ड म बारियो का काय ऐपन-बारी लेकर जाना[12] तथा भाँवरो स पूर्व वधू के लिए आभूषण पहुँचाते[13] दिखाया गया है।

पटवा—राजविलास और आल्हखण्ड म पटवा आभूषणो म रेशमी धागे गूथते चित्रित किये है।[14]

छीपी—छीपियो का काय वस्तुत वस्त्रो पर बेल-बूटो की छपाई करना होता है, किन्तु छत्रप्रकाश म नन्दन नामक छीपी को युद्ध म वीरगति पाकर देवराज के आगे का ब्योंत करते प्रदर्शित किया गया है।[15] प्रतीत होता है कि वह अपने जीवन काल म सिलाई करता होगा। इस उद्धरण स यह तथ्य भी प्रकाश म आता है कि विविध व्यवसायी अपनी इच्छानुकूल, पैतृक काय के स्थान पर दूसरा काय भी अपना सकते थे।

वीरकाव्य म जिन अन्य शूद्र जातियो के विषय म उल्लेख मिलते हैं, उनके व्यवसाय इस प्रकार थे—

---

१ से ७ देखिए—क्रमश वही ११६।२१ २२, वही, २५८।२१, 'प० रा०', १५।१५७, 'आ०', ११६।२३, 'प० रा० का० २५०८।७।८, 'आ०', २४०।२०।२१

८ से १५—देखिए—'आ०', २४०।२२, १६२।२२ २४, 'छ० प्र०' ८।१०, 'आ०', १९७।४, वही, २११।४, वही, २७४।१२०, 'रा० वि०', २।१३१, 'छ० प्र०', १६।१०

डवगर — नगारें बनाना और मढ़ना।[1]
सिकलीगर — शस्त्रों का सफाई करना।[2]
बरदिया — बैल चराना।[3]
लदाई — असबाब का लदान विशेष करना।[4]
जल्लाद — हाथी घोड़े मारना और मनुष्य मारना।[5]
बधिक व्याध या बहेलिया — पक्षी पकड़ना और मारना।[6]
बनजारा — अन्न पर भाना। नाजग बचा न लाना।

इसके उल्लिखित जातियों के अतिरिक्त वीरकाव्य में अपरिगणित शूद्र जातियों का भी उल्लेख मिलता है—लोहार, अहीर, पटार, माली, ठठेरा, शगन, घान्न, हाम, तेली, भड़भूजा, चमरा और धर्मे।[8]

भील, पान, किरात और भीना, नटी, दुडी, डागग और सट्टू जंगली जातियों का भी वीरकाव्य में उल्लेख मिलता है।[9]

प्रशस्ति गायक जातियाँ

चारण — हिन्दी कोशों में चारण का अर्थ भाट और भाट का अर्थ चारण दिया गया है[10] जो वस्तुतः भ्रामक है क्योंकि ये दो भिन्न जातियाँ हैं। जे० एच० हटन ने उनके रीति रिवाजों में साम्य अवश्य बताया है किन्तु चारणों द्वारा अपनी उत्पत्ति का संबंध राजपूतों से जोड़ने के आधार पर मत व्यक्त किया है कि—सम्भवतः

१ 'वसुधा बाँध उन छानन के औ बाँधे म लौह डारि।
हम तो डवगर हैं जपुर के जो डालन की कर वेपार।' —आ०' १०१
२ "धर सिकलीगर सस्त्र सुधारि।' —रा० वि० २।१३५
३ बैल चरावत हते बरदिया उन्नि उनसे पूछन लाग। —आ०' २३६
४ "बनो लदाई ऊन्नि बाँगुटा घाटा वेगन को ल जाउ।' —वही १३८।११
५ (क) जभ बुलाओ जल्लादन को हाथी घोड़ा देउ दगाय। —वही ३६२।१०
(ख) 'मारत-मारत आल्हा थकिग तब जल्लाद लय बुलवाय।
नन घरजा जाथो बाती मेरी नार गुजारी आप॥' —आ०' ३१७।८ ६
६ देखिए— 'वी० च० १।२७ ह० ह० ३४५ 'आ० ३७२।१८, ३८४।४
८ ९ देखिए— वी०च० १।१८ 'द्व०प्र०', ५।३७, 'कीर्ति ४२, आ०, २८१।५ 'रा० वि० २।१३५ आ०, ३०८।६ परा० रा० १।२१, प० रा०, मा० १।१४६।२७ ह०रा० ८०१, क्या० रा०' ८३५
१० (क) देखिए— हि० मा० को० २।२३२ और ४।२०९
(ख) देखिए— हि० श० सा०, पृष्ठ ६७५ और २५५६
(ग) देखिए— ना० वि० श० सा०' पृष्ठ ३७२ और १०१६

भाट, ब्राह्मण पिता और क्षत्रिय माता की संतान हैं, जबकि चारण क्षत्रिय पिता और ब्राह्मण माता की संतानें हैं।[1] 'इलियट' ने भाट और चारणों के सम्बन्ध में एक कथा तक दिया है, उसके आधार पर भी चारण, भाटों की अपेक्षा अधिक बली और साहसी सिद्ध होते हैं।[2] इसी भांति 'आचार और धर्मशास्त्र के विश्वकोश' में चारण और भाटों में 'त्रगा' नामक आत्म घात की पद्धति को तो दोनों जातियों में समान प्रथा अवश्य दिखाई गई है,[3] किन्तु जनगणना के समय उनकी भिन्न भिन्न संख्याएं देने के अतिरिक्त उनमें एक अन्य व्यावर्तक लक्षण यह भी दिखाया गया है, कि बहुत से भाट मुसलमान, जैन और सिख मतावलम्बी भी हैं जबकि 'चारण विशुद्धतया हिन्दू ही हैं।'[4] उपर्युक्त विवरण से इसमें सन्देह नहीं रहता कि चारण और भाट वस्तुतः पृथक्-पृथक् जातियां हैं, हां उनमें कार्य और रीति रिवाजों का साम्य अवश्य मिलता है। चारणों के विषय में यह निर्देश भी आवश्यक है कि—पद्म-पुराण में उन्हें 'गंधर्व-

---

१ 'कास्ट इन इण्डिया', पृष्ठ २७६, २७८

२ इलियट द्वारा दी गई कथा का सार यह है कि शिव ने अपने शेर और बैल की देखभाल के लिए 'भाट' की उत्पत्ति की थी। भाट शेर से बैल की रक्षा नहीं कर पाता था, अतः उन्होंने 'चारण' की सृष्टि करके, उक्त कार्य चारण को सौंपा। चारण भाट की अपेक्षा अधिक साहसी था, अतः शिव को प्रतिदिन मए बैल को सृष्टि करने के झंझट से छुटकारा मिल गया।

—'मेमॉयर्स ऑन दि हिस्ट्री, फाकलोर एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन आफ दि रेसेज आफ नार्थ वेस्ट इण्डिया', पृष्ठ १८

३ 'त्रगा' पद्धति का अग्रलिखित स्पष्टीकरण दिया गया है—
चारण और भाटों को, और इनमें से भी विशेषतया चारणों को यदि नगर द्वार की रक्षा, ग्राम पशु या किसी कोष का निरीक्षण कार्य सौंप दिया जाता था, तो वे उसकी रक्षार्थ आत्म बलिदान तक कर देते थे। आत्म-बलिदान से तात्पर्य उनके द्वारा युद्ध करने का नहीं है, अपितु वे आत्म घात कर लेते थे। (इस आत्म घात का परोक्ष प्रभाव यही पड़ता होगा कि उनमें ब्राह्मणत्व का अंश विद्यमान समझने के कारण उनकी आत्महत्या ब्रह्म-हत्या की कोटि में परिगणित की जाती होगी तथा अन्य लोग ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति में बचने की चेष्टा करते होंगे) विश्वकोष के अनुसार काठियावाड़ के प्रायः प्रत्येक ग्राम प्रवेश पर 'पालिया' या 'संरक्षक पत्थर' खड़े मिलते हैं, जिन पर आत्म-बलिदान करने वाले स्त्री-पुरुषों के नाम और तिथि लिखे रहते हैं। इन पालियों पर छुरा भोंकती हुई चारण स्त्री अथवा अश्वारोही चारण द्वारा भाले या तलवार से आत्म घात करने की विधि भी उत्कीर्ण मिलती है।

—दे०—'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स', भाग २, पृ० ५५४

४ ५ वही, पृष्ठ ५८३

विशेष', भागवत में 'देव योनि विशेष' तथा 'अमरकोष' में कुशीलव या नट बताया गया है ।[1]

चारणों का पृथ्वीराजरासो, रासविलास और कन्हड़देप्रबंध में उल्लेख मिलता है । रासोकार ने मत्स्यावतार प्रसंग में मत्स्य के मुख से उद्धार करके उन्हें चारण और भाटों को सौंपने प्रदर्शित किया है[2]—जिससे चारणों का दैवी रूप ध्वनित होता है । मान ने उन्हें करणी-चरणों की सेवा द्वारा उन पर देवी की असीम कृपा रहने के तथ्य का अभिव्यक्त किया है । इन्हीं दोनों कवियों और जान ने चारणों के प्रमुख कर्म प्रशस्ति गान का भी चित्रण किया है ।[4]

भाट—वीरकाव्य में उपलब्ध निर्देशों से स्पष्ट होता है कि भाटों की सामाजिक स्थिति, ब्राह्मणों से बहुत कुछ साम्य रखती थी । वे ब्राह्मणों की भाँति ही हाथ उठा कर आशिष प्रदान करते तथा अवध्य समझे जाते थे । शिक्षा की दृष्टि से भी उनका ज्ञान बहुमुखी होता था और वे वेदांग, पुराण, बहु भाषा और विविध कलाओं के साथ साथ अभिचार क्रिया शकुन शास्त्र आदि के भी ज्ञाता होते थे । प्रातःकाल नरेशों को जगाने के लिए विरुद पाठ करने तथा विवाहादि के अवसरों पर आश्रयदाताओं की वंश परम्परा के कृत्यों का स्तुति परक विवरण सुनाने के अतिरिक्त उनके कर्तव्य की चरम परिणति युद्धावसरों पर उनमें असीम युद्धोन्माद जाग्रत करने में होती थी ।

पृथ्वीराजरासो में दुर्गा केदार को महाराज पृथ्वीराज जुहार करते प्रदर्शित किए हैं । उनकी बन्धन ग्रस्त दशा में कवि चंद उन्हें गजनी में आशीर्वाद प्रदान करता है किन्तु वे आत्मग्लानि और कदाचित् चंद से कुछ रुष्ट होने के कारण उसके प्रति शीश नहीं झुकाते ।[6] उनके शीश न झुकाने का उल्लेख सिद्ध करता है कि अन्य अवसरों पर वे अवश्य ही शीश झुकाया करते होंगे । कभी उनके पैर छूने और अर्घ्य पाद लेते दिखाए गए हैं ।[7] भाटों द्वारा हाथ उठाकर आशीर्वाद प्रदान करने के प्रसंगों में कवि चंद द्वारा रावल समर विक्रम[8] व कह चौहान[9] और शाह मुहम्मद गौरी[10] को श्रीकंठ भट्ट द्वारा महाराज बालुकाराह को[11] तथा दुर्गा केदार द्वारा महाराज पृथ्वीराज[12] को इसी पद्धति से आशीर्वाद देने का चित्रण मिलता है ।

---

१ देखिए—'शब्दकल्पद्रुम' २।४४४

२ से ४ देखिए—'पृ० रा० का० १८६।१०४ 'रा० वि० २।६३, 'प० रा०', का० ६८६।१६१ व रा० वि० १६।१०।१० व क्या० रा० ८६५

५ "करि जुहार चहुआन भट्ट आदर बहु किन्नौ ॥'—प०रा० का० १५२१।७२

६ दस हथ्थ रष्षि दीनी असीस सिर नयो नही मन करिय रीस ।'

—वही २४३७।३८८

७ "लिय अघ पाद पत्री सु कवि । उपचार विमल बानी सु रचि ।'

—वही, २४१७।२४४

८ से १२ दे०—वही २२१६।७६, २११७।८४, २४१४।२२१, ६०।८४३, १५२१।७०

महाराज पृथ्वीराज ब्राह्मणों के साथ साथ भाटों को भी दान देते चित्रित किए गए हैं।[1] पुरस्कार के रूप में महाराज पृथ्वीराज दुर्गा केदार को एक ग्राम इस लेख के साथ प्रदान करते हैं कि दिवाकर और चन्द्र के आकाश में चमकने तथा गंगा के प्रवाहित रहने की अवधि तक, उसके पुत्र प्रपौत्रों का उस पर स्वामित्व रहेगा।[2] शाह गोरी के वजीर के शब्दों में हिंदू और मुस्लिम दोनों की ही नीतियों में भाट अवध्य होते हैं।[3] परमालरासो में आल्हा का कथन है कि साधारण दशा में ही नहीं अपितु युद्धकाल में भी भाटों पर शस्त्राघात करने से नरक-वास मिलता है।[4] इस प्रसंग में यह उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा, कि ग्रीक युद्धों में भी, वहाँ के भाटों (Bards) को अवध्य समझा जाता था।[5]

पृथ्वीराजरासो के अनुसार माधो भट्ट षट्भाषाविद और नाटक संगीत तथा नक्षत्रादि में दक्ष था।[6] उसमें दुर्गा केदार और चन्द को बहुज्ञ कहा गया है।[7] कवि 'चन्द' ने स्वयं के विषय में चौरासी विद्या अठारह पुराण षट् भाषा और चौदह विद्याओं का ज्ञाता होने की दर्पोक्ति की है।[8] हम उसकी स्वप्न फल की व्याख्या और शकुन शास्त्र में भी गति पाते हैं।[9] भट्ट दुर्गा केदार और कवि चन्द दोनों ही तन्त्र मन्त्रों में भी दक्ष थे।

इच्छिनी विवाह के अवसर पर भाट गण क्षत्रियों के छत्तीसों वंश की बिरुदावली का गायन करते हैं।[10] संयोगिता स्वयंवर में महाराज जयचन्द के भाट को स्वयंवर में आगत नरेशों की वंश परम्परा के कृत्यों का विवरण देते दिखाया गया है।[11] पृथ्वीराजरासो[12] कयामखाँरासो,[13] राजविलास[14] और सुजान चरित[15] में उन्हें युद्धावसरों पर अपने वीरगीतों से योद्धाओं को उत्तेजित करते प्रदर्शित किया गया है। भाटों द्वारा युद्ध करने के निर्देशों में कवि चन्द,[16] जल्हन जगनिक को युद्ध करने[17] जाते हैं।

---

१ से ४ देखिए—क्रम, 'पृ० रा०' का० ७६६।५७, पृ० रा०, मा० ३।५२०।५३, वही, ३।४४३।४६, 'पर० रा०' ३।१२८

५ देखिए—'एनसा०' ग्रिलो० ए० एथि०' भाग २, पृ० ४१५

६ ७ देखिए—'पृ० रा०' का० ६०।४८ पृ० रा०' मा० ३।५०६।३८

८ ९ देखिए—पृ० रा०' का० २४०८।१७७ ८१, ७६३।२३६, 'पृ० रा०, मा० ४।६०६।६४

१० 'वंस छत्तीस छत्रीन छह। भाट बिरद्द भनत॥" —'पृ०रा०' का० ५४९।४४

११ से १५ देखिए—क्रम 'पृ० रा०, का० १५६६।११, ६८९।२६१, 'कया० रा०, ८९५, रा० वि०', १५।७, 'सु० च०', ७।२।२४

१६ "कविराज सु साँगि राई कर मैं कयमास सु डार दयौ घर मैं।"
—'पृ० रा०' का० २६०७।७७०

१७ "जगन्न भाट चल्लिय। सुजाहि पग्ग विल्लिय॥"
"चल्यौ सुभट्ट जल्हन। नहीं सुयुद्ध हल्लन॥' —'पर० रा०', २१।४०

पृथ्वीराजरासो में भाटों की अवमानना-सूचक उल्लेख भी मिलते हैं जिनमें वे अविश्वसनीय, चातुरी, लोभी और व्यर्थ ही लड़ाई भड़काने वाले कहे गए हैं। कवि चन्द की चातुरी और सिद्ध होने की बात सुनकर महाराज से सामन्त कहता है कि भाट, चारण और नटों की बातों का विश्वास नहीं करना चाहिए।[1] महाराज भोलाभीम के शब्दों में— 'भाट को काल का भ्रातृ-पुत्र समझना चाहिए।'[2] महाराज भीमदेव एक-दूसरे में लड़ाई कराना भाटों का स्वाभाविक दूषण या बुरा स्वभाव प्रदर्शित करते हैं।[3] अन्यत्र भाट लोभी और दूसरों के छिद्र पर दृष्टि रखने वाले दिखाए गए हैं।[4] शाह गोरी के अन्तिम आक्रमण से पूर्व दिल्ली के प्रजा-जन राज्य की अधोदशा का ज्ञान कवि चन्द को ही होता है कि यह महाराज की सत्ता के बहुत भाग की सर्वांगिता अपहरण में बन्दीजन के मुख से गाया गया है।[5]

दसौंधी—इस जाति का पृथ्वीराजरासो और वीर-चरित्र में उल्लेख मिलता है। कवि चन्द के कन्नौज गमन पर उसे अपने दरबार में बुलाने से पूर्व महाराज जयचन्द अपने दसौंधी को उसके काव्य गुणों की परीक्षा करने भेजते हैं।[6] केशव के वीर चरित्र में महाराज वीरसिंहदेव के जहाँगीरपुर में बहुत से मागध और सूतों के साथ साथ गुणज्ञ दसौंधियों को भी सम्मान वितरित किया है।[7] महाराज के राज्याभिषेक के अवसर पर बुद्धिमान दसौंधी साहिबराय की पहिरावनी भी की जाती है।[8] प्रस्तुत सन्दर्भों में दसौंधियों की सामाजिक स्थिति भाटों से भी उच्च ध्वनित हो रही है। नालन्दा विशाल शब्द सागर में उन्हें ब्रह्म भाट बताया गया है[9] किन्तु 'रासो' के बृहत् संस्करण के सम्पादकों ने दसौंधियों को नीची जाति के लोग बताते हुए कार्याधार पर उनके जोगे या जोगवर और नाजि या नाजिर नामक दो प्रभेद होने का उल्लेख किया है।[10] वीरकाव्यों में दसौंधियों के प्रति किसी प्रकार की अव

---

१ 'भट नट चारन जू आरत्तह। इनकी गति न मनिय सत्तह।
—'पृ० रा०, का० ३२१।१४३

२ बन बाद सो करे। होइ भट्ट की जायो।" —वही १२१३।१०६

३ 'जहा च' दद न करहु। तुम कुल दद सुभाय। —वही १०१८।१६

४ "भट छिद्री आचरहु। अर पर जानन वित्त। —वही १५२०।६३

५ 'घर घालि भट्ट सूती करहु। सुबर विप्र तोही कहन। —वही, २१३३।१८२

६ 'तिन दसौंधिय सों कह्यौ। बोलि परष्षहु चंद।' —'पृ०रा० का० १६५०।४८८

७ 'बहु बदी मागध सूत गुनि गुनी दसौंधिय साधि नित। —वी०च०' १४।६३

८ सुबुधि दसौंधी साहिबराय। पहिराए बहु भांति बनाय।
—वही, ३३।२३

९ देखिए— ना० वि श० सा० पृष्ठ ५७१

१० पृथ्वीराजरासो के पृष्ठ १६/० की पादटिप्पणी में दरबार के नाजि या कड़खे गाने वाले जोगवर बताए गए हैं। 'रासासार' के पृष्ठ २७२ पर उन्हें नीति के

मानने का संकेत नहीं मिलता। सामान्यतया ये भी चारण और भाटों के समान ही परिगणित किए गए हैं।

जागरे—जांगरा का उल्लेख कवि पद्माकर ने महाराज हिम्मतबहादुर[1] और प्रतापसिंह[2] के सैनिकों को वीर रस के ओजात्मक कड़खे सुनाकर युद्धार्थ उत्तेजित करने के संदर्भ में किया है। सर हेनरी एम॰ इलियट ने अपने संस्मरण में अभिमत व्यक्त किया है कि कुछ लोग जगा और भाटों को एक ही जाति मानते हैं, जब कि उनमें पार्थक्य मानने वाले इन्हें क्रमशः जगा भाट और ब्रह्म भाट कहकर अभिहित करते हैं। इनमें से जगा भाट विशेषतया राजपूतों की वंश परम्परा के इतिहास का विवरण सुरक्षित रखते हैं। इनका यह कार्य आनुवंशिक रूप में चलता है, जबकि ब्रह्म भाटों को अक्सर विशेष पर्व विशेष पर बुलाया जाता है।[3] प्रतीत होता है कि जांगर और जगा भाट में कोई अन्तर नहीं है। रासो में उनका प्रयोग केवल युद्ध प्रसंगों में हुआ है।

ढाढ़ी—ढाढ़ियों का 'गोरा बादल की कथा,'[4] 'छत्र प्रकाश'[5] 'प्रताप विरुदावली'[6] और 'आल्हखण्ड'[7] में रबाब (सारंगी विशेष) ढोल और मंजीर आदि बजाते हुए वीर-रस के कड़खे सुनाकर, सैनिकों में अदम्योत्साह जाग्रत करते प्रदर्शित किया गया है।

जाट—युद्ध-कौशल और शौर्य के कारण जाट सामान्यतया राजपूतों के समकक्ष समझे जाते थे। सुजान चरित में कवि सूदन ने महाराज सूरजमल के पूर्व पुरुष भूरसिंहजी को कंस विनाशक श्रीकृष्ण के कुल में—अर्थात् यदुवंश में उत्पन्न दिखाया भी है।[8] उनके लिए जट्ट[9] और जाट[10] के अतिरिक्त ठाकुर,[11] अभिधान का भी प्रयोग मिलता है।

लोग बताते हुए कहा है कि इस समय ये लोग पढ़े लिखे नहीं होते और केवल गाने-बजाने का रोजगार करते हैं। जब ये वेश्याओं या गवैयों की जांच परख करते हैं तो नाजिर कहलाते हैं और जब सवारी निकलने के समय कड़खे या गीत गाते हैं तो जांगड़ कहलाते हैं। रासो में इन्हें एक स्थान पर 'नाजि' और दूसरे स्थान पर 'नाजिर' कहा गया है।

१ 'जहँ जागरे करखा कहैं अति उमगि आनन्द को गहै।
—'हि॰ ब॰ वि॰', छं॰ ४२

२ जागे जांगर राग मारू अलाप, सुन कातरा के तहां अंग कांप।'
—'प्र॰ वि॰', छं॰ १८

३ देखिए— मेमायर्स आन दि हिस्ट्री, फोकलोर एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन आफ दि रेसेज', पृष्ठ १८

४ से ७—देखिए—'गो॰ बा॰ क॰' १७७ २८, 'छ॰ प्र॰' २०।३, 'प्र॰ वि॰' २०, 'आ॰' १३।२, ७६।३

८ जग उदित उद्धत जदकुलन में भयो भूरे भूप। —'सु॰ च॰', १।१।१३

९ से ११ देखिए— 'पर॰ रा॰', २४।६४, 'सु॰ च॰', ६।७।१६, वही, ४।२।२२

जाट जाति और उपशाखाओं में विभक्त थी। सूदन ने उनकी सिनसिनीवार, खूटल, सोगरवार, चाहर, रमवार, भागर, सतवार, सिनसार, गोदहार, सौधे, भिनवार, कुन्दे, डागुर, अगोरिया, रावत और पचहार नामक उपशाखाओं का उल्लेख किया।[1]

क्षत्रियों की भाँति ही युद्ध प्रियता और दृढ़ स्वामिभक्ति उनकी मुख्य चारित्रिक विशेषताएँ मिलती हैं। कवि सूदन के शब्दों में महाराज सूरजमल को यद्यपि सभी प्रकार के सुखोपभोग के साधन उपलब्ध थे तथापि उन्हें युद्ध के बिना शांति नहीं मिलती थी।[2] महाराज सूरजमल के इस कथन में कि हम मुगल बादशाहों के चाकर हैं,[3] और उनकी बंदगी में रहते हुए उनके शत्रुओं के दमन निमित्त सदैव तत्पर हैं[4] उनकी दृढ़ स्वामिभक्ति झलक रही है।

अहीर—पृथ्वीराजरासो के अनुसार अहीर एक पशुपालक जाति थी जिनके यहाँ बहुसंख्यक गाय भैंस और बकरे आदि पशु होते थे। उनके घरों में दूध-दही का अपार भण्डार होता था और प्रातःकाल जब अहीर वधुएँ दधि मन्थन करती थीं तो मेघ गर्जन जैसी ध्वनि सुनाई देती थी।[5] उनकी स्त्रियाँ दधि का विक्रय करने भी जाया करती थीं।[6]

अहीर क्षत्रियों की भाँति हृष्ट पुष्ट होते थे। कवि चन्द ने चाचिग नामक 'महर' को दीर्घकाय, उत्तुंग स्कंध, वज्र तुल्य बाहु और बहुत कलाइयों वाला चित्रित करके उक्त तथ्य का प्रकटन किया है।[7] युद्ध वार्ता सुनकर प्रफुल्लित होना और रण प्रांगण से पग पीछे हटाने को निंद्य समझना उनकी क्षत्रियों जैसी चारित्रिक विशेषताएँ थीं।[8] 'वीरचरित्र'[9] और 'सुजान चरित'[10] में अहीर सैनिक दिखाए गए हैं तथा पृथ्वीराजरासो में दो सहस्र सैनिकों को अचूक लक्ष्यवेधक बताते हुए[11] कहा गया है कि ऐसी पराक्रमी जाति का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।[12]

---

१ २ देखिए—'सु० च०' ७।१।१३, १।२।२

३ "करत चाकरी साह की हम पाया यह देस।" —वही, ३।१।५

४ हम जिमीदार सरदार किए आपु आइ, हम निरधार बंदगी में नित जानोगे।
राजा राना राय उमराय सब साहिब के कहै एक बार वे अनेक करि मानोगे।
सूदन सुजान कहै साहिब नवाब सुनो करनो है माँहि जोई मुख्तै बखानोगे।
चक्कवै चकत्ता जू के चोरनु को चूरि करि, चुगल चवाइन को चोकरन के मानोगे।
—सु० च०, ४।२।३४

५ से ११ देखिए—'पृ० रा०' का० ५८।३३; आ०, ४५।१२; 'पृ० रा०', का० ५८।३२; वही, ५८।३४; 'वी० च०' ६।३६; 'सु० च०', ५।३।२२; 'पृ० रा०' का० ५८।३३

१२ 'गुज्जर अहीर अस जाति दोइ।
जिन लीह नांपि सक्कै न कोइ।' —वही, ५८।३५

गूजर—गूजरों के विषय में वीरकाव्य में अधिक निर्देश नहीं मिलते। कुछ इतिहासकारों के मत में वे बडगूजरों से अभिन्न हैं[1] जिनका क्षत्रियों के छत्तीस वंशों में परिगणन किया जाता है। अहीरों की भाँति गूजर स्त्रियाँ भी गोरस विक्रय किया करती थी।[2] कवि केशव[3] और सूदन[4] ने क्रमश सम्राट अकबर और महाराज वीरसिंहदेव की सेनाओं में गूजर सैनिक दिखाए हैं जबकि कवि चन्द्र ने गूजरों को भी अहीरों की भाँति अपराजेय प्रदर्शित किया है।

कायस्थ—आलोच्यकाल में यह जाति लेखकों के रूप में प्रसिद्ध थी। पृथ्वीराजरासो में—परमानन्द कायस्थ को युद्धार्थ आया देखकर, धीर पुण्डीर उसका परिहास करता है कि—लेखनी-धारक हाथ करवाल का क्या संचालन करेंगे ?[5] कवि मान ने उदयपुर में कई सहस्र कायस्थों का निवास दिखाते हुए कहा है कि वे इन लेखों के लिखने में दक्ष हैं, जिन्हें अन्य (जातियों के) व्यक्ति नहीं लिख सकते, केशवदासजी ने कायस्थों का वर्णन लेखक शीर्षक के अन्तर्गत किया है, और उन्हें राजकीय पत्रों में लिखे जाने के लिए आवश्यक सुझाव दिये हैं।[6] आल्हकार ने कायस्थों को अपनी दावात-कलम और बस्ता लेकर भागते चित्रित करके[7], उनकी मुख्य जीविकावृत्ति 'लेखन' ही होने की पुष्टि की है। कहना न होगा कि यह उनका पारम्परिक कार्य समझा जाता है।[8]

कवि केशव ने कायस्थों की परम-साधु निर्लोभी सत्यवादी, धर्माधर्म के विज्ञाता और राज व्यवहार को इंगित मात्र से भाँप लेने वाले वाले कहकर प्रशंसा की है।[10] कायस्थों को हम राजदरबारों में प्रतिष्ठित पदों पर भी नियुक्त पाते हैं। महाराज वीरसिंहदेव का कोषाध्यक्ष किरपाल नामक कायस्थ प्रदर्शित किया है।[11] परमालरासो में महाराज चन्द्रब्रह्म द्वारा सुजान नामक कायस्थ का दीवान नियुक्त किया जाता है।[12] महाराज वीरसिंह देव सुन्दर नामक कायस्थ को भेजकर, सम्राट अकबर की कृपा प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं।[13] महाराज परमाल, दिल्ली

---

१ देखिए—'अर्ली चौहान डाइनेस्टीज', डा० दशरथ शर्मा, पृ० २४६
२ से ४ देखिए—क्रम 'भा०' १४।१९ 'वी० च०', ६।३६, 'सु० च०' २।१।१८, 'पृ० रा०', का०, ५८।३३
५ 'लरिय कायथ करदम। जम्पु डीर अधोई।
कर लेखनि निरधार। हथ खग्गन नहि साई॥' —'पृ० रा०' का० २४७३।८८३
६ से ८ देखिए—क्रम 'रा० वि०', २।६२, वी० च०' ३।१७७, 'आ० ४६६।७
९ देखिए—'हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता' डा० बेनीप्रसाद पृ० ४१६
१० परम साधु कायथ जानिये। निर्लोभी साँचो मानिये।
जाने धर्माधर्म विचार। जाने इंगित नृप व्यौहार।' —वी० च०, ३।१३
११ १२ देखिए—पृ० रा०, का० ८८।४१६ 'पर० रा०', २।१९
१३ देखिए—वी० च०', १४।३९

शत्रु के आक्रमण का प्रतिकार करने की मन्त्रणा म अपने कायस्थ मन्त्री को भी बुलाते है।[1] कमास रा मन्त्रि गण्ड वश रुप म मिलना व षडयन्त्र और शाह गोरी का पराजय करने का भार महाराज भानाभीम अपने भग भाट और कायस्थ मन्त्री की बुद्धि पर छोड़ते चित्रित किए गए हैं।[2]

अन्त म यह निर्देश करना आवश्यक है कि अपने परम्परागत काय लखन वृत्ति पर ही आश्रित न रहकर आलोच्यकाल म कायस्थ स य सवा द्वारा भी जीवि काजन लगे थे। पृथ्वीराजरासो[3] सुजान चरित,[4] जगनामा[5] और हिम्मतबहादुर विरुदावली[6] म उनके युद्ध करने क उल्लख मिलते हैं।

मुसलमान – पीछे उल्लिखित भारतीय जातियो के अतिरिक्त मुस्लिम नव मुस्लिम, फिरगी आदि कुछ विदेशी जातियाँ भी भारत म निवास करती थी। इनम सवाधिक उल्लख मुसलमानो के विषय म मिलते हैं।

इस जाति के लिए आजकल प्रचलित मुसलमान सज्ञा का तो वीरकाव्य धारा म क्यामखारासो और जहांगीर जस चन्द्रिका[8] नामक ग्रथो म मात्र एक एक बार प्रयोग मिलता है। वीरकाव्य म आलोच्यकाल म उनके लिए सर्वाधिक प्रच लित अभिधान म्लच्छ सिद्ध होता है।[9] उनक दशो के आधार पर उन्ह तुर्क[1] और

१ २ दखिए— पृ० रा० का० २८२५।१३७ पृ० रा० मो० ३।८६०।७६
३ से ६ देखिए — पृ० रा०' का० २६६५।४११ सु० च० २।४।६ जग, छ० १३३७ ३८ हि० ब० वि० छ० १२१ १३२
७ 'तवही दीन म आयो खान। निमल भो मन मुस्सलमान।'
— क्या० रा०', १५३
८ मुसलमान इक दिसि असुर एक दव नरदेव।
जामखास जहांगीर को सागर की सा मेव। — ज० ज० च० छ० ६८
९ (क) वढे मच्छ हिंदू मिली जुद्ध अनी। — पृ० रा० का० ११०६।७५
और भी देखिए—१११०।७६ ११११।८७ १११५।११५ १११६।२० १२६४।७ १३०१।६८ १३४६।१३ १३८३।३६ आदि
(ख) दखिए — शि० भू० ७८ ३४ ४६ ६१ ६२ ८४ ८७ ९६ १६३ १६६ १८४ २२८ २५२ २७८ २६५ २६६ ३०८ ३२८ ,४८ ३४७
(ग) शि०वा० २५ ३६ ४२ (घ) रा०वि० ३।२० ३।२१ ३।६४ ६।३७ ७।२८ ६।७ ६।५४ १२।१, १३।१० १८।६६ (ङ) छ० प्र० ३।११
(च) सु० च० १।४।१६ (छ) ह० रा० ४२४ (ज) र० बा० ५
१० (क) देखिए—पृ० रा० का० ११६१।८७ ११६३।१०४ ११६८।११६, २०४६।१५२ २०५२।१६६
(ख) दखिए— वी० च० २।१ २।३४ ६।२८, ६।५१, ६।८४, १२।१६ १४।२०
(ग) देखिए— छ० प्र० १११६, १२।२, १२।७ १३।७, १५।३ १६।४, २१।२

मुगल[1] भी कहा जाता था, किन्तु वदिक मर्यादाओ के प्रति असुरो की भांति विद्वेष होने कारण साम्य के आधार पर उन्हे असुर, पिशाच दानव और निशाचर जसी संज्ञाओ से अभिहित करने का अधिक प्रचलन था।[2] इस प्रसग म यह निर्देश प्रासगिक न होगा कि उपर्युक्त संज्ञाओ का प्रयोग मुगलो से युद्धरत रहने वाले नरेशो के आश्रित कवियो ने किया है, जिससे उनके द्वारा जान-बूझकर कुछ अधिक गर्हित शब्दो का प्रयोग करना स्वाभाविक माना जा सकता है किन्तु आश्चय तो यह है कि, शाह जहागीर की प्रशस्ति मे जहांगीर जस चन्द्रिका लिखने वाले केशवदासजी न भी उनके मुस्लिम दरबारियो के लिए असुर संज्ञा का प्रयोग किया है।[3] परमालरासो म यहुश तथा पृथ्वीराजरासो, शिवराज भूषण, कीर्तिलता और राजविलास म अल्बरुनी ने भी उल्लेख किया है कि हमारी वेशभूषा और रीतिरिवाजो से भारतीयो की वेश भूषा और रीतिरिवाज इतने भिन्न है कि वे अपने बच्चो को हमारा नाम लेकर और हम दिखाकर डराते हैं, तथा हम पिशाचो की संज्ञा देते हैं।[4]

---

१ (क) दखिए—'पी० च०, ४।१८ ६।३६, ८।२४ ८।३६ ८।५२, १०।७ १२।६० १२।४२ १४।३१

(ख) 'पमा० रा०', १६५ १७३ १७१, २३० ४५३ ४५४, ५६१

(ग) छ० प्र० ११।६, ११।१८ १२।२ १२।७, १३।७ १४।३ १६।४, १६।१२ १८।१२ २०।१२ २१।२ २३।५

२ (क) "उतर आसुर सना रची। मक्के हाहुलि जजु।

— प० रा० का० २२७६।१००६

और भी दे०— प० रा०' का० ११०७।६०, ११६८।१२१, १३७४।२६, २२८६।१०७६, २२८६।८०, २२८६।८६ २२८६।८७ २२८८।११०८ २२००।२०८ २४०२।२१८

(ख) ' पिसिय विराक प्रधात पथ पड ममुग पाग असुर।

— रा० वि० ६।१०० और भी देखिए—३।६१, ५।६२, ५।८४, ४।८८, ६।१ ६।२८, ६।३८ ६।३६, ६।३७, ६।३६, ७।२६, ७।३५ ७।८२, ८।२७ ८।१६८ ६।८, ६।४३ ८।४६ १२।८ १२।५ १८ ६७

(ग) जिन नाम म्लच्छ पिसाच जनो सुरही रिपु हो जन स्याम मना।

— 'रा० वि०', ६।१६८

(घ) नष्कीन ग्रीव वस वीर रस। दह दिसि भिरि दानव मिलिय।

— प० रा०, का० १०३५।२

(ङ) वीर विजपुर के उजीर निसिचर मारि कुम्भकार, घूमेत उमाप है जहान सा।'

— भू० छ०' ६६

३ "मुसलमान इक दिसि असुर एक दल गन्न। — ज० ज० च० ६६

४ ' In the third place in all manners and usages they differ from

गया तथा मुसलमानों को 'मलेच्छ' शब्द से भी अभिहित किया है।[१] मुसलमानों की ओर से हिन्दुओं के लिए 'काफिर'[२] के साथ-साथ पृथ्वीराजरासो में 'मलेच्छ'[३] शब्द भी प्रयुक्त की गई है। प्रतीत होता है कि मलेच्छ और काफिर शब्द साधारणतया विधर्मियों का बोध कराते थे।

बाह्याकृति – मुसलमानों की शरीराकृति सम्बन्धी उल्लेख उत्तर कालीन आकृति से कुछ भिन्न स्वरूप प्रकट करते हैं। पृथ्वीराजरासो में खुरासानी पठानों को ऊँचे कद वाले, लघु ग्रीवा, दीर्घ नाक युक्त तथा रक्त वर्ण मुख वाले और चक्षुओं वाला प्रदर्शित किया गया है।[४] हम्मीररासो में मीर अन्य को बन्दर जैसा मुख तथा बिल्ली की सी आँखें बताई गई है।[५] राजविलास में मुगलों की लंगूर जैसी मुखाकृति प्रदर्शित की गई है।[६] मुगल बादशाहों के चित्राकृतियों में उनके मुख हिन्दुओं की अपेक्षा कुछ लम्बे मिलते हैं। दाढ़ियों के कारण वे मुख और भी अधिक लम्बे प्रतीत होते हैं। अतः वीरकाव्य ग्रन्थों में उल्लेख वर्णित उनके लम्बोतरे चेहरे के तथ्य पर आधृत हैं।

---

our dress and our ways and customs and as to declare us to be devil's breed and our doings as the very opposite to all that is good and proper — Alberuni's India p 20

१ (क) लाठ लवग पावनि जवा जुर भीम बलवान। — पृ० रा० भा० ७।१०६
और भी द्रष्टव्य— ७।१०६ ८।११० ८।१११ ८।१२ ८।१३ ८।१४ ८।१५ ८।१७ ८।३२ ८।३३ ८।३४ ६।१३ १४।४० १८।८८ १४।४६, १८।४३, १८।६६, १४।६७ ५७।१३६ ६७।१६६ ३७।१८८

(ख) प० रा० भा० २४।१।२०१ २०१ २५६५।१२५ २८१३।२१७ २४२८।१६८ २३६८।८६ २३०८।१७ २४०६।१८२ (ग) द्रष्टव्य— रा० वि० २।१५१ २।१५२ ३।४५ ६।२४ (घ) कीर्ति०, पृ० ७०

(ङ) शि० भू० २६६

२ कहा डर काफर दोपहु मुज्झ। कहा भर आवध आगरि जुज्झ।'
— पृ० रा० भा० १८८० और भी दे० – २०३६।११७ २०५४।१७८ १३८६।५८

३ सुनि बगार गोरी गरज। कर पची कमान।
कै भजी मलान दल। कै रजो सुरतान। — वही ४६६।११६

४ "ऊँच कद्द कथान छोट गिरवान लव मुख।
रक्त वन मुख चक्खु कर आसक जवरि धुअ। — पृ० रा० भा० १।१८७।३१

५ ' कहै वजीर साह सुनिवत मीर अरिजय जानि गु तव।
मर्कट वदन सूकर सम कान द्रग मजार वस राग जान। — ह० रा० छं० ५३८

६ "जिन आनन रूप लगूर जिसो पल सब भस सुर सो मुख सो।'
— रा० वि० ७।२८

मुगलों में मूछों के साथ साथ दाढी रखाने की भी प्रथा थी। पृथ्वीराजरासो, क्यामखा रासा,[९] सुजानचरित,[९] जंगनामा,[९] और हम्मीररासो[९] से मूछों और शिवा-बावनी,[९] सुजानचरित, पृथ्वीराजरासो, और छत्रप्रकाश से दाढी रखाने के तथ्य की पुष्टि होती है। क्षत्रियों को जहां अपनी मूछों की मर्यादा का ध्यान रहता था, वहीं मुसलमानों में हम दाढी की प्रतिष्ठा अधिक पाते हैं। सुजानचरित में वजीर मनसूर का महाराज सूरजमल को युद्ध भार सौंपते समय यह निवेदन करना कि आप मेरी दाढी की लज्जा रखना[९] सदभगन तथ्य का निदर्शक है। सिर पर वे पगडी का प्रयोग करते थे, और उसकी मर्यादा का क्षत्रियों की भांति ही पालन करते थे। पज्जून कछवाहे से पराजित होने पर शाह गोरी प्रतिज्ञा करते हैं कि मैं तब तक पगडी नहीं बाधूगा, जब तक पज्जून कछवाहे को परास्त नहीं कर लेता।[१०] प्रतापरासो में नजबखान भी अपनी पराजय को—युद्धस्थल में पगडी का उतर जाना बताता है[११] जिसमें उक्त मनोवृत्ति ही झलक रही है।

हिन्दुओं की भांति मुसलमानों की भी अनेक उपजातियां थीं। कवि चन्द और जान ने कई बार उनकी भिन्न भिन्न जातियों का उल्लेख किया है।[१२] उनमें जाति-प्रथा थी तो अवश्य किन्तु, उसका आधार भिन्न भिन्न कर्मों के स्थान पर, कदाचित स्थान विशेषों के निवासी होना रहा है। पृथ्वीराजरासो में शाह मुहम्मद गोरी की सेना में— गहव्वर, नक्खर गक्खर, खुरासानी बल्ली, हब्सी उजबक रूमी, सरवानी, एराकी और मुगल जाति के योद्धा सम्मिलित मिलते हैं।[१३] वीरकाव्य धारा के अन्य ग्रन्थों में से क्यामखांरासा में किररानी,[१४] राजविलास में—शेख, सयद, पठान, लोदी,

---

१से८ देखिए—क्रम 'प० रा० का० २४०५।१४६ 'क्या० रा०, ३८६, सु०च०', १।३२८ 'ज०ना०', ११३ १८, हु० रा० ५३६, 'शि० बा०', ४६, 'प० रा०', का० २४०७।१६७, 'छ० प्र०', ६।६

९ "इस दाढी की लाज कुंवर बहादुर है तुम।
है यह काज दराज होवगा तुझ हाथ से।' —'सु० च०, ६।१।१३

१० 'गयो साह गज्जन, पाग बँधो कूरम हनि।' प० रा०, मो० ३।३६२।३

११ "हियो हार नवाबजू पटकि दए दुर हाथ।
पाग रही या खेत में नाहू दिया न साथ।' — प्र० रा० छं० १२३

१२ (क) 'सरवानि ऐराकि मुगल्ल कही। बहु जाति अनेक अनेक मती।।"
—'प० रा०', का० ६४८।२०

(ख) 'अनेक जाल जानति कुल। विरह नत असि ग्रहि करद।
तुरकान बीच बल्लाच बर। खिलपुर हासी मरद।' —वही, १३६२।६६

(ग) 'किररानी हो जात की, मुमकीसा तिहि नाम।' — क्या०रा०, छं० ४१६

१३ देखिए— प० रा०' का० ६४८।१७ २०, १३६२।६६

१४ देखिए— क्या० रा०', ४१६

वलना ो गरवारी ह्नो, रहन मुगल रभी और गागर ' मुजातचरित म—मुगल, पठान शव, सयद भर ईरानी और तुरा ो ' दत्रप्रकाश म —भीर मुगल पठान और सयद ' तथा जगाताम म सयद सयव वग और अरवा म उल्लेख मिलत हैं। गज टियर आफ इण्डिया म ज्ञात होता है कि उन लोगों में भेदभाव का प्रचलन तथा उनका शादी विवाह म हिंदुओं की भाँति ही ध्यान रखा जाता मुसलमानों म भी व्याप्त है।[5]

रासोकाव्य प्रणताओं न मुसलमानों की जातिगत विशेषताओं का भी सहानु भूतिपूर्ण चित्रण किया है जिससे ज्ञात होता है कि क्षत्रियों की भाँति मुसलमान भी युद्धस्थल म वीरगति प्राप्त करने (शहीद होकर) पश्चात म हूरा द्वारा वरण किय जान की उदात्त धारणा रखत थ।[6] उनम स्वामि धर्म की भी दृढ भावना विद्यमान रहती थी। पथ्वीराजरासो म शाह गोरी के गनिक कहत हैं कि जो स्वामी का आत्मप्रेम कत्व परायण रहत उनके लिए धिक्कार है। व हराम की सन्तान हैं और उन्ह बहिश्त क स्थान पर दोजख-यातना मिलगी। हम अधम व्यक्तियों के मान का सतन और दान तक ग्रहण नहीं करेंगे।[7] सुजानचरित म मुहम्मदअली नवाब-सेना की चिन्ता म करत हुए स्वामि धर्म क नाते म शरीर त्याग क ओजस्वी विचार व्यक्त करता है।

मुसलमानों म स्वामि धर्म की भावना अपने हिंदू स्वामियों क प्रति भी उतनी ही दृढ थी। मीर हुसन (जिसे शाह गोरी का चचेरा भाई दिखाया गया है) शाह गारी क आक्रमण के समय स्व मुगल बान्धवों स बस युद्ध करू, यह सोचकर शाह

---

१ स ४—देखिए—क्रमशः 'रा० वि०' ६।१७६ सु०च० १।३।५ छ० प्र०, १४।३ जग० १३६८६६

५ 'गजेटियर आफ इण्डिया के अनुसार — जाति प्रथा भारत की वायु म प्रविष्ट है। इसी संक्रामक कीटाणु मुसलमानों तक म फल गय और मुसलमानों म हिंदू ढग पर ही इसका विकास हो गया। दोनों समुदायों म विदेशी तत्व सबसे ऊच होने का दावा करते हैं। × × × एक सयद शख की लडकी से शादी कर सकता है, परन्तु वह अपनी लडकी शख को नहीं दे सकता। निम्न वग, नियमित जाति के आधार पर संगठित है।

— भारतीय संस्कृति एतिहासिक अवलोकन मोहनलाल विद्यार्थी भाग २, पष्ठ ३०६ पर उद्धत।

६ (क) वढि सु बर भिस्त अर वान जिय आनद्यौ गोरी गस्व।"

— प० रा०, मो० २।५०८।२६

(ख) छत्रिनि इच्छिा अच्छरी मिच्छणि इच्छति हूर। —वही, ४।७४१।

(ग) वरि हूर सनूर सपूर सु सूर सनह गर वरमाल ढव। — रा० वि०,

७ ८ देखिए—क्रमशः प० रा० मो० २।८८१।२०, सु० च० ४।५।४

गोरी से नही मिल जाता, अपितु महाराज पथ्वीराज की ओर से युद्ध करता हुआ, वीर-गति प्राप्त करता है।[1] यही दशा मीर-महिमा के विषय म मिलती है जो अनेक प्रलोभन देने पर भी[2] शाह अलाउद्दीन के पक्ष में नही मिलता और महाराज हम्मीरदेव के पक्ष से शाह अलाउद्दीन के विरुद्ध युद्ध करता हुआ खेत रहता है।[3]

उनके चरित्र का प्रमुख अवगुण निदयता मिलती है। रणमल[4] छन्द और कीर्तिलता मे मुगल धगगडा का बडा क्रूर चित्रित किया गया है। विद्यापति के शब्दो म—"इन धगगडो को न तो ओरत-बच्चो की चिन्ता थी और न लोक निन्दा का भय। वे सारे दिन खाते-पीते और मदिरा-मस्त रहते थे। दया उनको छू तक नही गई थी। वे जिस किसी भी दिशा मे निकल जाते थे, उधर ही गाँवो मे आग लगा देते थे अबोध शिशुओ की हत्या कर डालते थे और स्त्रियो को ले जाकर बाजारो म बेच देते थे।"[5] शाह गोरी द्वारा, उन्हे आदर-सहित बन्धन-मुक्त करने वाले महाराज पथ्वीराज को चक्षु हीन करना भी इसी कोटि म आता है।[6]

नव मुस्लिम —

हिन्दू और मुस्लिम जातियो के अतिरिक्त आलोच्यकाल म धर्म परिवतन द्वारा मुस्लिम बनाए गए लोगो की कदाचित पथक-पथक उपजातियाँ थी। क्यामखाँरासा म फीरोजशाह तुगलक, मोटेराव चौहान से उसके पुत्र करमचन्द को पाँचहजारी मनसब प्रदान करने का आश्वासन देकर मुस्लिम धर्म म दीक्षित कर लेते हैं।[7] करमचन्द का नाम बदलकर क्यामखाँ रख दिया जाता[8] है, किन्तु वह अपने नाम से चौहान शब्द पथक नही करता, और उसका नाम क्यामखाँ चौहान हो जाता है।[9] क्यामखाँ के वशजो के नाम म भी चौहान शब्द जुडा रहता है और उनके नाम मुस्लिम और हिन्दू पद्धति के नामो की खिचडी दिखाइ देते है।[10] कदाचित अन्य जातियो के हिन्दू भी मुसलमान बनने पर इसी रीति का अनुसरण करते होग।

सुन्नत कराकर विधिवत् मुस्लिम धम अपनाने से पूव, क्यामखाँ चौहान की

---

१ से ४—देखिए—'प० रा०', मो० १।२६६।७१, ह० रा०', ८३१, वही, ८४७, र० छ०, ७

५ देखिए—'कीर्ति०', प० ६० ६२

६ 'तुम कड्डह चहुआन। नयन दिठ बक्क छडय।
भ्रम पारि तेन चहुआन गहि। बधिय राजन कढ्डि द्रिग ॥"
—प० रा०', मा० २३७३।१६३१

७ तुरक भय की करहु न चिन्त। यातें रासो ज्यो सुत मित।
याकों करिहो पचहजारी। साँचु कहत हौं बाँह हमारी।"
—क्या०रा०', १४०

८ से १० देखिए—'क्या० रा०, १४२, वही, २४४ वही, ३२६

से दूषित था कि उससे विवाह नहीं होता। कहा जाता है कि इस धर्म परिवर्तन कर लेने वाले लोगों से हिन्दू तो दूर रहते ही थे, मुसलमान भी उन्हें विशुद्ध मुस्लिम न मानकर विवाह सम्बन्ध नहीं करते थे।[1] हिन्दू जबकि हिन्दुओं द्वारा विवाह करने का प्रश्न ही नहीं उठता। धर्मान्तरण के सम्बन्ध में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि अलबेरूनी के अनुसार भारतीय किसी विदेशी को अपने धर्म में दीक्षित करने की अनुमति नहीं देते थे चाहे वह स्वयं इच्छुक भी क्यों न हो।[2] अर्थात् हिन्दू धर्म उस समय ग्राहिका नहीं रहा था जिससे उसकी बहुत हानि हुई जो आत्मघात सरीखी थी।

मुसलमान लोगों के लिए कवि भूषण ने फिरंगी शब्द प्रयुक्त किया है।[3] बर्नियर के अनुसार भी यूरोपीय लोगों के लिए आगरा-दरबार में फिरंगी शब्द प्रचलित थी।[4] कवि भूषण ने कुछ विदेशी जातियों की एक प्रमुख चारित्रिक विशेषता का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट होता है कि आगरा-दरबार में रूसी अपनी शासन, खुरासानी अपनी तलवार, इंगलैण्ड वाले अपनी राजनीति, चीनी अपनी कलाचातुरी, रूमी अपना अभिमान, हब्शी अपनी कायरता, अरबवाले अपनी नेकी, ईरानी अपना अदब, तूरानी अपना क्रोध और फ्रांसीसी अपनी चालाकी के लिए प्रख्यात समझे जाते थे।[5]

आश्रम-व्यवस्था —

रीतिकाव्य में चतुराश्रम शब्द का प्रयोग तो अवश्य मिलता है किन्तु किसी भी ग्रंथ में उसका व्यवहारतः अनुपालन नहीं दिखाया गया। उसका प्रयोग भी ऐसे

१　तब बयामसीन बिनती कीन। भरो हूँ मन चाहत दीन।
प यहु चित माहिं चित्त माँहि। हम सो साक करे को नाहिं।
—'क्या०रा०, १४६

२　'They are not allowed to receive anybody who does not belong to them even if he wished it or was inclined to their religion
— Alberuni s India p 20

३　दे० शि० भू० छ० ११७, तथा स्फुट छ० स० ५

४　'To be considered a Mogol it is enough if a foreigner have a white face and profess Mahametanism in contradiction to the Christians of Europe who are called Franguis' X X X
— Travels in the M Empire', p 3

५　जार रूसियन को है तेग खुरासान की है नीति इंगलंड चीन हुन्नर महादरी।
हिम्मत अमान मरदान हिंदुवान हू की रूम अभिमान हबसान हद कादरी।
नेकी अरबान सान अदब इरान त्योंही क्रोध है तुरान ज्यों फरास फंद आपरी।
भूषन भनत इमि दखिन महीतल प वीर सिरताज सिवराज की बहादरी।
— भू० ग्रं०,' स्फुट० छ० १८

संदर्भों में किया गया है, जो अति प्राचीन-कालीन सामाजिक दशा से सम्बद्ध है अथवा साधारण उल्लेख मात्र है। उदाहरणार्थ कवच में शिव को वर्ण और आश्रमों के नियन्ता[1] कहा है तथा लोभ द्वारा देव और दानवों के साथ-साथ 'चतुराश्रम' को भी वशीभूत करने का उल्लेख किया है।[1] जोधराज द्वारा दानवों को कुल-धर्म और आश्रम-मर्यादाओं के उत्थापक चित्रित करना भी[1] इसी श्रेणी में आता है। जोधराज ने महाराज चन्द्रभानु[1] और हम्मीरदेव[1] के राज्यकालों में चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों के धर्म का पालन अवश्य दिखाया है जो आश्रयदाता और उनके पूर्वजों के सुशासन की मिथ्या प्रशस्ति मात्र ही है क्योंकि वीरकाव्य में वर्णित परोक्ष तथ्यों में उसकी पुष्टि नहीं होती।

वीरकाव्य में कोई भी राजकुमार शिक्षा प्राप्ति के ब्रह्मचर्याश्रम को पच्चीस वर्ष की अवस्था तक विधिवत् शिक्षार्जन में यापित करते नहीं मिलता। वे प्रायः ग्यारह या बारह वर्ष की अवस्था तक पढ़ाई लिखाई और शस्त्र-संचालनादि का ज्ञान प्राप्त करके उनकी इतिश्री करते चित्रित किए गए हैं। पृथ्वीराज गुरुग्राम में कुछ ही दिन शिक्षा प्राप्त करते हैं।[1] महाराज राजसिंह अपनी ग्यारह वर्ष तक की अवस्था को खेल-कूद, मल्लयुद्ध, हस्तियुद्ध, आदि के प्रेक्षण तथा नाटक-संगीतादि के रसास्वादन में व्यतीत करते चित्रित किए गए हैं।[1] तत्पश्चात् वे सर्व ऋतु नामक बाग लगवाते हैं,[1] रूपकुँवरि से विवाह करने जाते हैं[1] और तेईस वर्ष की अवस्था में उनका राज्याभिषेक हो जाता है।[1] महाराज छत्रसाल की बाल्यावस्था, अस्त्र शस्त्र-संचालन अश्वारोहण और चौगान आदि खेलने में वैचक्षण्य प्राप्त करने में ही व्यतीत होती है।[11] बनाफर भ्राता भी बाल्यावस्था में शिक्षार्जन के स्थान पर आखेटाभ्यास करते मिलते हैं।[1] तात्पर्य यह कि किसी भी राजकुमार को हम गुरुकुल में जाकर पच्चीस वर्ष की वय तक शिक्षार्जन करते नहीं पाते।

गृहस्थ आश्रम का व्यवहारतः तो सभी वीरकाव्य-नायक पालन करते मिलते हैं किन्तु किसी भी ग्रंथ में गृहस्थ को आश्रम की संज्ञा नहीं दी गई है।

वानप्रस्थ के पालन सम्बन्धी धारणा अंश रूप में अवश्य विद्यमान थी। पृथ्वीराजरासो में महाराज अनंगपाल परलोक साधना की कामना से सपत्नीक बद्रीनाथ में जाकर तपस्या करते प्रदर्शित किए गए हैं।[13] हाँ उनको वानप्रस्थ के अनुपालन में

१ से ७ देखिए—क्रम० 'वी० च०' २।३१, 'ज० ज० च० ३० ह० रा०', ४४ वही, ६, 'ह० रा०, ३३७ 'पृ० रा०, सो० १।२८।६०, रा० वि० २।१९० ६४

८ से ११ देखिए—'रा० वि०, ३।१०८, ४।१ ४।१ छ० प्र०', ६।३

१२ देखिए— आल्हखण्ड', पृ० २६ २०

१३ "ले चल्यौ संग निज तरुनि द दिल्लिय अगनम।
मन वच क्रम बद्री चल्यौ, साधन जोग जागस।" —'पृ०रा० रा०, ६०६।२७

सच्ची आस्था नहीं थी यही कारण है कि जब उनके प्रजा जन उनसे महाराज पृथ्वीराज के दुर्व्यवहार की शिकायत करते हुए दिल्ली राज्य पुर हस्तगत करने का निवेदन करते हैं तो वे अपने वैराग्यधारी साथियों के साथ दिल्ली पर आक्रमण कर देते हैं।[1]

असमय ही गृह-त्याग करके वैराग्य का ढोंग रचाने वालों को वानप्रस्थ अथवा संन्यास आश्रमों में से किसी भी आश्रम के अन्तर्गत स्थान नहीं दिया जा सकता जबकि ऐसे साधु संतों की आलोच्यकाल में वृहत् संख्या प्रतीत होती है। पृथ्वीराज रासो में उन कारणों पर प्रकाश डाला गया है, जिनसे प्रताड़ित होकर अनेक व्यक्ति गृह-त्याग कर संन्यासी बन जाया करते थे। उसमें कुंडा अनाजी के गृह त्याग करके वनों में भटकने के संभावित कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहता है—तू दारिद्र्य अथवा शारीरिक व्याधि से तो पीड़ित नहीं है, तुझे शत्रु द्वारा राज्य च्युत अथवा पत्नी द्वारा परित्यक्त तो नहीं कर दिया गया है तू किसी दैवी आपद से त्रस्त सज्जनों की दृष्टि में गिरा हुआ गुरू से शापित अथवा रसेश्वरी पत्नी की मृत्यु के कारण तो जंगलों में नहीं चला आया है।[2] कवि नरहरि ने नाना प्रकार की पदवियाँ मान और धनप्रदान करने वाले—शाह अकबर के निधन पर भी घर बार छोड़कर तपस्यार्थ न चले जाने पर जो अपनी आत्म प्रताड़ना की है उसमें भी रासो में प्रदर्शित धारणा ही झलक रही है।[3] पृथ्वीराजरासो में युवराज रैनसी को वैराग्य लेने के लिए उद्यत चित्रित किया गया है जो इस तथ्य का अभिसूचन करता है कि आश्रमों के विहित काल की चिंता न करके युवक भी वानप्रस्थी अथवा संन्यासी हो सकते थे।

संन्यास को पृथ्वीराजरासो में कलि वर्ज्य बताया गया है[5] जिसकी पुष्टि

---

१ सत्त तीन भर सुमर जे निज वैराग सरूप।
तिन बधी तरवार फिरि बदलि भेष वर रूप।' —'पृ० रा० का० ६९६।८३

२ 'किं दारिद्र सु दुष्ट कुष्ट तनय किं भूमि सत्रू हर।
किं वनिता च वियोग दव विपदा, निर्वासिता किं नर।
किं जन मानस रुष्ट जुष्ट जुगता किं आपत्ति सगुर।
किं माता भ्रित रग भग सरसा आलिंगता सुंदरी।
—वही १०६।५४३

३ निमक मरत न मुएउ नहिं न ग्रह तजि तप किं हुउ।
—अक० हि० क०', ३३०।६६

४ करी चूकि सबि लागि राज सु काज सजो क न मारग्ग बढ्यो सुआज।
जटा बंधि लंगोट अंग तयेस महा मौनधारी वध पड्वेस।

५ कनिठ बद्ध वड्वद्ध, कीय आचरन ग्रेह वर।
व्रत संन्यास आचरण पंच कव कलि न होइ धर।
—'पृ० रा०, मो० ३।४१८।२१

बहिस्साध्या से भी होती है।[1] जब यह आश्रम वर्ज्य ही समझा जाता था, तो फिर उसका पालन भी कैसे सम्भव था। डा० गांगुली पांडेय के अनुसार संन्यास की वर्जना तो शंकराचार्य ने तोड़ दी थी, परन्तु संन्यास आश्रम केवल ब्राह्मणों तक ही सीमित कर दिया था। मध्यकाल में वानप्रस्थियों और संन्यासियों की संख्या तो कम थी जबकि उनके बदले में अवैदिक धार्मिक सम्प्रदायों के साधुओं की संख्या बढ़ती जा रही थी।[2] केशवदास के शब्दों में कलियुग के अन्तर्गत सच्चे साधुओं के कम ही दर्शन होते हैं।[3] पृथ्वीराजरासो में कंद मूल फल पत्रों पर निर्वाह करते हुए निर्जन पर्वत-गुफा में जो ऋषि तपश्चर्या रत दिखाया गया है[4] वह कदाचित ब्राह्मण ही रहा होगा।

आश्रम-व्यवस्था सम्बन्धी उपयुक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि आलोच्य काल में उसका अंशतः ही पालन होता था। क्षत्रिय कुमार न तो शिक्षार्जन के लिए गुरुकुलों की शरण जाते थे और न वे अनिवार्यतः वानप्रस्थ या संन्यास आश्रम में ही प्रविष्ट होते थे। संन्यास को तो कलि वर्ज्य समझने की धारणा व्याप्त थी। समाज में विविध प्रकार के वैरागी और योगियों का समूह अवश्य विद्यमान था, किन्तु उनके वैराग्य की मूल प्रेरणा आश्रम-व्यवस्था के अनुपालन अथवा अन्तःप्रेरणा के स्थान पर अधिकतया सामाजिक पलायन हुआ करते थे। निर्जन वनों या गिरि-कन्दराओं में तप करने वाले कुछ ऋषि मुनि भी थे, जो स्वेच्छा से प्राचीन ऋषि मुनियों के पथ के अनुयायी माने जा सकते हैं।

निष्कर्ष —

आलोच्यकालीन समाज स्थूलतः परम्परागत चार वर्णों में ही संगठित था और इन वर्णों के कर्तव्य कर्मों में भी परम्परागत कर्तव्यों की ही प्रधानता थी। वर्ण शब्द का अर्थविकास अवश्य हो गया था जिससे उसे ब्राह्मण योगी यती, संन्यासी जंगम और भाटों के समूहों के लिए षट् वर्ण के रूप में प्रयुक्त किया जाता था, तथा शूद्रों की परम्परागत अठारह प्रकृति या श्रेणियाँ भी अठारह-वर्ण कहू दी जाती थीं। षट् वर्ण या षट्-दरस तथा अठारह वर्ण शब्दों का एकाधिक कवियों द्वारा प्रयोग करने से इसमें सन्देह नहीं रहता कि ये शब्द रूढ़ता को प्राप्त हो चुके थे। ब्राह्मण और क्षत्रियों का वर्ण के स्थान पर 'जाति' कहकर अभिहित करने तथा शूद्रों की अनेक उपजातियों का उल्लेख मिलने से आलोच्यकालीन समाज को हम वस्तुतः अनेक जातियों के रूप में संघटित पाते हैं। उसमें भाट, चारण, दसौंधी, जागरे, जाट, कायस्थ आदि ऐसी

---

१ ... यासश्च न कर्तव्यो ब्रह्मणेन विजानतेति व्यासवचन व्याख्यातम्।
अग्निहोत्र गवालम्भ संन्यास पलपैतृकम्।
देवराच्चसुतोत्पत्ति कलौ पंच विवर्जयेत्। — हिन्दू भारत का अन्त पृ० ७५३

२ देखिए—'हि० सा० का व० इति० पृ० १२२

३ ' विरले दीसत है जगवन्त, जैसे कलियुग में के सन्त। — 'वी० च० २१।२२

४ देखिए— पृ० रा०' का० २००७।१५१ ५६

जातियाँ भी विद्यमान मिलती है, जिन्हे निर्विवाद रूप से किसी भी वर्ण म नही रखा जा सकता। मुसलमान नव मुस्लिम और यूरोपियन लोग भी फिरंगियो के रूप म समाज का अग बन चुके थे। तात्पय यह कि सामाजिक सघटन की दृष्टि से हम विवेच्यकालीन समाज को उसकी आजकल की स्थिति से बहुत भिन नही पाते। विविध जातियो के कतव्य कर्मों म इस समय आशिक अतर अवश्य मिलता है जिसे इन वण और जातियो की सामाजिक स्थिति सम्बन्धी विवरण म से स्पष्टत परिलक्षित किया जा सकता है।

सामाजिक दृष्टि से हम ब्राह्मणो को मूधन्य स्थान पर प्रतिष्ठित पाते हैं। उनके लिए प्रयुक्त किए गए द्विजवर सुर, भूसुर विप्र और भूदेव जसी आदराम्पद सज्ञाओ म सदभगत प्रवत्ति ही झलक रही है। उन्हे अदडय और अवध्य समझने तथा उनकी सम्पत्ति के अपहरण को वज्य समझने से भी इसी तथ्य का प्रकाशन होता है। विप्र विद्वेषियो के कुल विनष्ट हो जाने तथा उनके दशनो को शुभ समझने सम्बन्धी निर्देशो से भी उनकी सम्मान्य दशा का पता चलता है।

ब्राह्मण प्राय पीली धोतिया बाधकर ऊर्ध्वांग मे उपरना ओढा करते थे। विविध शरीरागो को चदन चर्चित रखने के अतिरिक्त उनके मस्तक पर तिलक लगा होना आवश्यक था जिसके अभाव म व अपशकुन के निमित्त समझे जाते थे। यज्ञोपवीत का धारण करना भी उनके लिए परमावश्यक समझा जाता था। उनके कत्त य कर्मों म वेदाध्ययन अध्यापन प्रतिग्रहण और यज्ञ करने कराने की ही प्रमुखता थी। शास्त्रो के अध्ययन और अध्यापन म ही उनके कतव्य की इतिश्री नही हो जाती थी अपितु आवश्यकता पडने पर वे शस्त्र ग्रहण करके घोर युद्ध भी कर सकते थे।

कुल गोत्र आदि की दृष्टि से व अनेक उपवर्गों म विभक्त थे। कार्याधार पर भी उनके तीन भेद स्पष्ट परिलक्षित होत है—पुरोहित वग नमित्तिक यज्ञ कराने वाले या पण्डितगण और ज्योतिर्विद्या द्वारा जीविकाजन करन वाल ज्योतिषी। पुरोहित यजमान दुहिताओ के लिए वर अन्वेषण, तथा पारिवारिक विवादो म मध्यस्थता करने के साथ साथ राज्यकार्यों म भी पर्याप्त योगदान प्रदान करत और नरेशो पर नैतिक प्रभाव रखत पाये जाते है। पुरोहित अभिचार क्रियाओ म भी विशेष दक्ष होत थे। इनकी सहायता स व स्व-यजमानो की काया को अभिमन्त्रित करके शस्त्राघातो स सुरक्षित बनाने तथा शत्रु-दल को निरुत्साह और निश्चेष्ट करन का प्रयास करत थे। ज्योतिषियो को भी पर्याप्त सम्मान प्राप्त था। व नरेशो को उनके भावी पराभव की सूचना देन और उनका मूड ठीक करने तक करने म सकोच करत नहीं मिलते।

क्षत्रियो की भी सामाजिक स्थिति काफी समुन्नत थी। उनके लिए प्रयुक्त राजपूत ठाकुर अवनीश और दिग्निपति अभिधानो के प्रचलन म उनका राज्य-सत्ता से अटूट सम्बन्ध झलक रहा है। आलोच्यकाल म उनके छत्तीस राजवश या राजकुल विशेष प्रसिद्ध माने जाते थ। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि उनके चौहान चालुक्य और चन्देल वशो के प्रतिष्ठाताओ का सम्बन्ध ब्राह्मणो स मानने की धारणा प्रचलित

थी, और उनके चालुक्य वंश तथा चंदेल वंश के नरेशों के नामों के साथ तो ब्रह्म या द्विज शब्द संलग्न भी मिलता है।

हृष्ट पुष्ट काया, प्रज्वलित दृष्टि निक्षेप तथा बलखाती हुई मरोड़दार मूछों के कारण उनकी आकृति प्रायः बड़ी प्रभावशाली दिखाई देती थी। पगड़ी उनकी वेष भूषा का एक आवश्यक अंग थी। विवाह और राज्याभिषेक के अवसरों पर वे यज्ञोपवीत भी धारण करते थे।

शिक्षा की दृष्टि से उनकी स्थिति संतोषजनक थी। उनके द्वारा यद्यपि शस्त्र सचालन और मल्लयुद्ध आदि भावी जीवनोपयोगी कृत्यों में नैपुण्य प्राप्त करने पर विशेष बल दिया जाता था, तथापि वे विविध शास्त्रों के ज्ञाता एव कलाओं के मर्मज्ञ भी होते थे। शिक्षा के कुछ अंगों में तो उनका नाम ब्राह्मणों से भी बढ़ चढ़कर मिलता है।

क्षत्रियों के प्रमुख कर्तव्य कर्म उनकी सृष्टि रचना के अनुकूल सत्य था और विप्रादि का संरक्षण, युद्धार्थ तत्परता, संग्राम में प्राणों पर आ बनने पर भी उसमें पीठ न दिखाना, संकटापन्न स्वामी का साथ न छोड़ना और सर्वस्व न्यौछावर करके भी शरणागतों की रक्षा करना थे। शत्रु से युद्ध करने के स्वर्णावसर को वे अपने किन्हीं विगत सुकर्मों का सुफल समझकर तदर्थ सदैव सन्नद्ध रहते थे। उनकी धारणा रहती थी कि संग्राम में विजयी होने पर जहा हमें नाना सांसारिक ऐश्वर्योपभोगों का अवसर मिलेगा और हमारी कुल कीर्ति दिगन्त तक प्रसरित होगी वहीं यदि देवगति से वीर गति भी मिली तो सांसारिक भोगों से भी उत्कृष्ट स्वर्गीय विहार उपलब्ध होंगे। इसी दृष्टि से उनमें अपनी करवालों का शत्रु दलन, अभीप्सित के अधिकरण, मातृभूरक्षण, अभिवरव के विनाशीकरण, जीवन-सर्वस्व और मोक्ष प्राप्ति का अमोघ सम्बल समझने की धारणा परिव्याप्त थी।

युद्धार्थ प्रथम बार अभियान करने का क्षत्रियों के लिए जीवन के स्वर्णिमावसर परिणय सूत्र में बंधने से कम महत्व नहीं होता था, जिसको वे बड़े समारोह और साज सज्जापूर्वक श्रीगणेश करते थे। युद्ध में अधम नीतियों के प्रयोग जैसे—प्रसुप्त शत्रु पर रात्रि में अकस्मात आक्रमण, शौचकर्म, स्त्री रमण या पूजा कर्म में रत शत्रु पर आघात करना, दांतों में तिनका दबाए हुए, यानादि विच्छिन्न होने के कारण पदल रह जाने वाले अथवा निरस्त्र शत्रु पर प्रहार को वे अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझते थे। युद्ध में पीठ दिखाने अथवा पलायन करने वाले क्षत्रियों को सर्वत्र स्वकुल का नाम डुबोने वाला, जननी का दूध लजाने वाला तथा जारज संतान कहकर निन्दा की जाती थी।

क्षत्रिय, शत्रु के समक्ष दीन वचन बोलना और स्वपक्ष से संधि प्रस्ताव रखना अपनी आन के विरुद्ध समझते थे। इसके विपरीत घायल हुए शत्रु को भी रण प्रांगण से लाकर उसका उपचार करना और उसके स्वास्थ्य लाभ पर दानादि देकर हर्ष प्रकट करना उनके चरित्रौन्नत्य का अभिसूचित करता है। संकटापन्न स्वामी का साथ छोड़ने वाले क्षत्रियों का—जारज संतान सूअर की भाँति भक्ष्याभक्ष्य का विचार त्याग

कर जीने वाला मूर्देरगण में अयोग्य और राज्यगामी बताता—उनकी दृढ़ स्वामि-
भक्ति का निदर्शन करता है।

शरणागत की मर्यादा के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करना तथा भूय से
उनकी रक्षा करना क्षत्रियों का एक ऐसा चारित्रिक गुण था जिसके कारण उन्हें
प्राय ही युद्ध मोल लेने पड़ते थे। वीरकाव्य में ऐसी प्रचुर घटनाएं मिलती हैं जिनमें
शरणागतवत्सलता के कारण ही क्षत्रियों ने अपने तन मन धन राज्य और परिवार
सभी की आहुति दी है। अनवरत चलते रहने वाले युद्धों के कारण उनकी परिणति
का वर्णन उनसे मृत्यु आँख मिचौनी खेलना रहता था और यह धारणा बद्धमूल हो
गई थी कि क्षत्रियों की आयु बीस वर्ष मात्र होती है।

निरूपित आलोच्यकाल के आरम्भ में क्षत्रियों की स्थिति अत्यन्त उत्कृष्ट थी।
राज्य एवं सेना सेवा पर उनका पूर्ण प्रभुत्व था जबकि शिक्षा के अनेक क्षेत्रों के वे
साधिकार ज्ञाता होते थे। चारित्रिक विशेषताओं की दृष्टि से तो विश्व की कोई भी
जाति उनकी समानता कर सकती है हम इसमें सन्देह है। प्रजा रक्षण स्वाभिमान
और स्वामिभक्ति को जीवन सर्वस्व समझकर बिहसते हुए करवाल धार पर नृत्य करने
वाले शत्रु के प्रति भी असीम करुणा प्लावित हृदय सम्पन्न आर्य संस्कृति के मूल-तत्वों
के संरक्षक तथा शरणागत की रक्षा में सर्वस्व होम कर देने वाले क्षत्रियों का विदेशी
आक्रान्ताओं के हाथों पराभव होना निश्चय ही शिवत्व की पराजय होने का विक्षोभ
जाग्रत करता है—चाहे इसके मूल में उनका मिथ्या कुलाभिमान समयोचित व्यव-
हार करने की दूरदर्शिता का अभाव अन्ध स्वामिभक्ति एवं पारस्परिक मनोमालिन्य
जैसे कारण भी क्यों न रहे हों।

वैश्य स्वभावतः भीरु थे। उनमें अहिंसा वृत्ति का अनुपालन करने वाले जन
मतावलम्बियों की प्रधानता थी। उनका प्रमुख कार्य तो व्यापार था जबकि गौ पालन
कृषि, और सूद वृत्ति द्वारा भी वित्तार्जन करते थे। व्यवसाय के आधार पर वैश्य
अनेक उपवर्गों में विभक्त थे।

शूद्र वर्ण व्यवसायों के आधार पर अनेक उपजातियों में विभक्त था। उनका
प्रमुख कार्य त्रिवर्ण की सेवा करना ही माना जाता था। उनकी चांडाल आदि जातियां
अस्पृश्य समझी जाती थीं।

मिश्रित जातियों में से भाट, चारण दसौंधी नांगरे और ढाढ़ियों का प्रमुख
कार्य प्रशस्ति गायन था। इनमें से भी वीरकाव्य में भाटों के सम्बन्ध में अधिक निर्देश
मिलते हैं जिन्हें ब्राह्मणों की तरह पूज्य दिखाया गया है। जाट जाति शौर्यादि की
दृष्टि से क्षत्रियों के निकट थी जबकि अहीर और गूजरों के कर्त्तव्य कर्मों में क्षत्रिय
और वैश्य वर्णों के कर्मों का सम्मिश्रण मिलता है। कायस्थ वीरकाव्य में मुख्यतया एक
लेखन वृत्ति वाली जाति दिखाई गई है।

मुसलमानों के लिए म्लेच्छ असुर और पिशाच आदि संज्ञाओं का अधिक
प्रयोग किया जाता था। वे भी अनेक उपजातियों में विभक्त थे। युद्ध प्रियता और

स्वामिधम की दृष्टि से व बहुत कुछ अशा म क्षत्रियो जसी विशेषताओ से युक्त चित्रित किए गए है। हा, उनम स्वभावतया निष्क्रमण होने का दूषण अवश्य प्रदर्शित किया गया है।

चतुराश्रम व्यवस्था का न तो पूणतया अनुपालन किया जाता था और न उसके आश्रमो के विहित काल का ही ध्यान रखा जाता था। क्षत्रिय-कुमार शिक्षाजन के लिए प्राय गुरुकुलो मे नही जाते थे। वानप्रस्थ आश्रम म प्रवेश करने की धारणा अशत जीवित थी। नाना भौतिक आपदाओ से त्रस्त होकर गह का त्याग करके वानप्रस्थ या स यासी बन जाने की प्रथा अवश्य जोरो पर थी।

द्वितीय अध्याय

सामान्य जीवन

खान पान —

मानव जीवन-यात्रा के संचालक पदार्थों में भोजन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। आदिकालीन मानव मांस और कन्दमूल फलादि खाकर येन-केन प्रकारेण अपनी बुभुक्षा शांत करता था, किन्तु सभ्यता के विकास क्रम में यह स्थिति कितने दिन टिक सकती थी! फलतः जीवन के प्रत्येक अंग में सुरुचि और रमणीयता लाने के सदृश भोजन को भी अधिकाधिक सुस्वादु और वैविध्यमय बनाने के प्रयास किए गये। इनकी चरम परिणति में भोजन पकाने को एक विद्या के रूप में उपस्थापित करते हुए, उसे एक स्वतन्त्र कला का गौरवान्वित पद प्रदान किया गया। भोजन पकाने में दक्ष रसोइये राजकीय पाकशालाओं के एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गये। इन रसोइयों का पद तभी तक सुरक्षित रहता होगा जब तक कि वे खाद्य-पदार्थों में प्रयुक्त सामग्री के आंशिक हेर फेर से ही नित्य नूतन व्यंजन तैयार करने की क्षमता रखते होंगे अतः यदि उनका अधिकांश समय नूतन पदार्थ पकाने की उधेड़ बुन में ही व्यतीत होता हो तो क्या आश्चर्य! अपनी कड़वाहट के लिए प्रसिद्ध नीम की पत्तियों का साग बनाने वाले पृथ्वीराजरासो में उल्लिखित रसोइयों में[1] निस्सन्देह उक्त मनोवृत्ति का ही प्रतिफलन है।

वीरकाव्य में यद्यपि जन सामान्य के खान-पान सम्बन्धी निर्देश भी मिलते हैं तथापि उनमें राजकीय भोजों के वर्णनों का ही प्राधान्य है। इन भोजों में परोसे जाने वाले अनेक पदार्थ काल कवलित हो गये हैं जिससे उनके रूपाकार के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। भोज देने वाले नवीन खाद्य पदार्थ निर्मित करने के लिए किस भांति व्यग्र रहते थे इसका परिचय संयोगिता द्वारा अपने रसोइया को दिए गए इस आदेश से मिलता है कि तुम मैदा बेसन और दुग्ध आदि में

---

१ नव पल्लव नीब करे नाय धरी करई गति काढि सु दूरि करी।

—'पृ० रा०, का० १६६६।६६

विविध पदार्थों का मिश्रण करके ऐसे भोज्य पदार्थ प्रस्तुत करना कि खाने वाले उनके नाम तक न जान सकें।[1]

भोजन-सम्बन्धी आचार विचार —

वीर-काव्य में भोजन पकाते और खाते समय के आचार विचार सम्बन्धी कतिपय निर्देश मिलते हैं। पृथ्वीराजरासो में महारानी संयोगिता अपने प्रधान को यह सावधानी रखने का आदेश देती हैं कि गोठ के लिए भोजन पकाते समय उस पर किसी नीच व्यक्ति सम्भवतः शूद्रादि की परछाई तक न पड़ने पाये।[2] मुगल सेना के सान्निध्य में भोजन पकाने सम्बन्धी वर्जनाओं के कारण ही विद्यापति ने महाराज कीर्तिसिंह को फलाहार मात्र पर जीवन-यापन करते चित्रित किया है।[3] मुगलों के साथ बैठकर भोजन न करने की प्रवृत्ति का संकेत परमालरासो में भी मिलता है। ब्रह्मा विवाह के अवसर पर राजकुमारादि तो मेवा और मिठाइयों का भोजनशाला पर बैठकर खाते हैं जबकि मुसलमानों के लिए पुलाव पका कर उनके शिविरों में भेजा जाता है।[4]

पृथ्वीराजरासो से ज्ञात होता है कि गोमय से लीपी हुई भोजनस्थली को गेरु से लाइनें खींच कर पृथक्-पृथक् चौकों में विभक्त कर लिया जाता था।[5] अलग-अलग बैठकर भोजन करने की भारतीय प्रथा की तत्कालीन विदेशी यात्रियों ने भी एक विचित्र प्रथा कह कर आलोचना की है।[6] इन चौकों में बैठने के लिए आसन डालकर बाजौठें[7] रख दी जाती थीं[8] जिन पर भोज्य पदार्थ परसे जाते थे। बाजौठ या

---

१ "करिया अनेक पकवान यानि, सबक न जाइ जिन जाति जानि।"

—'पृ० रा०', का०, १६८८।१८

२ 'कीजहु बहु आचार सो, दरसन लहै न नीच।" —'पृ०रा०', का०, १६८६।१७

३ बहुल ठाम फल मूल भख्खिअ, तुलुक संग सचार पन्न कहुँ आचार रख्खिअ।

—'कीर्ति', पृ० ७०

४ 'मेवा बहु पकवान भरं लिय। राव ठकुराइन भोजन किनव।
तुरकन काज पुलाव पकायव। सिबिर सिबिर सबके पहुँचायव॥'

—'पर० रा०', १७।३।३२

५ 'गो गोमय चौका। विचित्र चित्रे अनि चावक।
लीक धवल घर हरित। धरी सिगरी भरि पावक॥

—'पृ० रा०' का० १६६४।१३

६ देखिए— अल्बेरूनीज इण्डिया', पृ० १८०

७ पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या के मतानुसार बाजौठ वह पीढ़ा होता है जिन पर भोजन के थाल रखे जाते हैं। —दे०—'पृ०रा०', का० नागरी प्र० स० १२८

८ "कोमल आसन मंडि। मंडि बाजौठ अग्र गुर॥"

—वही, १६८०

चौकियों पर रखकर भोजन करने की प्रथा मौर्य युग में भी प्रचलित थी जिसका मेगस्थनीज ने उल्लेख किया है।[१] नित्य व्यवहार में थालियों आदि में ही भोजन परोसा जाता था किन्तु गाँठ आदि के अवसर पर उनका स्थान नूतन पल्लवों से निर्मित तथा बिना छिद्र वाली पत्तलें और दोने ले लेते थे।[२] मेगा की ओर मुँह करके बैठना उत्तम समझा जाता था।[३] भोजनारम्भ में विप्रों द्वारा आहार मंत्र तथा श्री रघुनाथ चरित्र के पठन का भी निर्देश उपलब्ध होता है।[४]

दिनाई (विष) से सुरक्षा के लिए भोजन के समय उपस्थित रखे जाने वाले पशु पक्षी —

पारिवारिक एवं राजनीतिक षड्यन्त्रों के फलस्वरूप नरेशों के भोजन में विष मिला होने की आशंका रहती थी। इसका निदान कुछ एक पशु पक्षियों को भोजन स्थल पर रख कर किया जाता था जो भोजन के विषाक्त होने की दशा में विभिन्न प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करके रहस्योद्घाटन कर देते थे। पृथ्वीराजरासो में कुक्कुट नवला कौंच कपि हिरण हंस शुक मोर तथा चकोर को इस परीक्षण के लिए उपादेय बताया गया है क्योंकि विषाक्त भोजन को देखते ही हंस की गति भंग मयूर के कटु शब्दोच्चार क्रौंच एवं मृग के अश्रुपात कपि द्वारा भोजन त्याग शुक के वमन नवल और कुक्कुट के मित्र भाव तथा चकोर दम्पति के परस्पर संग त्याग का अवलोकन करके यह सहज ही ज्ञात हो जाता था कि उसमें दिनाइ (विष) का मिश्रण किया हुआ है।[५] छत्रप्रकाश के उदाहरण से भोजनस्थल पर रखे जाने वाले पशु-पक्षियों की उपयोगिता भली भाँति सिद्ध भी हो जाती है। महाराज चंपतिराय से आन्तरिक विद्वेष रखने वाला पहाड़ सिंह उन्हें भोजनार्थ निमंत्रण देकर उनके भोजन में विष मिला देता है। उनके भोजन को देखकर शुक और सारिका चिल्लाने लगते हैं तथा चकोर अपने नेत्र बन्द कर लेते हैं।[६] पक्षियों के इन चरित्रों को देख कर चंपतिराय के साथी भीम

---

१ देखिए— इण्डिया वाइ मेगस्थनीज एण्ड एरियन' पृ० ७२

२ 'नूत नूत पल्लव पखारि पत्रावलि मंडिय।
धोय तोय बिन छिद्र धरे दोना ढिग ठंडिय ॥ — पृ०रा० ' का०, १६६५।७०

३ ४ देखिए— पृ० रा०, का० १६६५।७०, वही, १६६५।७१

५ हंस होत गति भंग मोर कटु सबद उचार।
रोवत क्रौंच कुरंग सुकपि छंडत आहार।
सूआ वमन करंत निकुल कुक्कुट मित्राइ।
एसे चरित करंत जानि आगम दिनाइ।
चकोर परस्पर हित रहित, कहत चंद पारष्प लहि।
तिहि काज आनि रष्षत दनहिं भूपत भोजन सात महि ॥"—वही, २१५७।३३६

६ ' पनवारी चंपति को आनो। देखि सुवा सारो बिग्रानो।
लोचन मूंदि चकोर डेरान। जानि गये जे चतुर सयाने।" — छ० प्र०', ५।१०

बुंदेला को पहाड़ सिंह के दूषित मनोभावों का समझने देर नहीं लगती, और वह उनकी प्राणरक्षा हेतु भोजन के थालों का वस्तार स्वयं प्राणोत्सर्ग कर देता है।[1] यह तथ्य ध्यातव्य है कि इन पशु पक्षियों की उपयोगिता इस दृष्टि से और भी बढ़ जाती थी कि दिनाई एक प्रकार का ऐसा विष होता था, जिसका निपक्ति भोजन करने वाले पर तुरन्त प्रभाव न पड़ कर शनै शनै दुष्प्रभाव पड़ता था और ऐसी दशा में यह भी ज्ञात नहीं हो पाता था, कि विष किसने दिया है। इसका किसी औषध से उपचार भी नहीं किया जा सकता था।[2]

सामान्य दैनिक भोजन —

भूषण ने तीन बार भोजन करने वाली बेगमें जंगलों में मात्र तीन बेर खाकर निर्वाह करते चित्रित की हैं[3] जिसमें ज्ञात होता है कि भोजन तीन बार किया जाता था। प्रातःकाल का भोजन कलेऊ कहलाता था। छत्रप्रकाश में महाराजा छत्रसाल अपनी माता के निधन पर अश्रुपात करते हुए कहते हैं कि माता के अभाव में मुझे प्रातःकाल कलेऊ कौन दिया करेगा? कवि चन्द[5] और मान[6] ने शिशुओं के भोजन में दधि तंदुल, घृत शक्करा मिश्रित खीर और मिष्टान्न सम्मिलित दिखाए हैं।

जन सामान्य के भोजन में राबड़ी[7] और भात की प्रधानता रहती थी। कवि चन्द ने राजकुमारियों द्वारा दुग्ध शक्करा मिश्रित भात खाने के स्थान पर गूजरियाँ राबड़ी पर निर्वाह करते चित्रित की हैं।[8] आल्हखण्ड में तो चाहे विवाह का अवसर हो अथवा मृत्यु का प्रत्येक अवसर पर भात का खाना अथवा उसका परित्याग करना

---

१ 'छ० प्र०' ५।१८

२ 'दिनाई एक प्रकार का विष होता है जो शेर अथवा तेंदुए की मूंछों के बाल बाघू के इस साँप के मुँह में भरे लिए गए चावल अथवा मत्स्य से बनाया जाता है। उस विष को खिला देने से खाने वाला कभी तो अतिशीघ्र परन्तु अधिकतर घुल घुलकर मरता है। यह विष किसी औषध से अच्छा नहीं होता और कुछ दिनों में अपना घातक प्रभाव दिखाता है। इसी कारण इसे दिनाई कहते हैं।
— छ० प्र० पृ० ३७ पर पा० टि०,

३ देखिए—'शि० बा०' छ० ८६

४ से ६ देखिए—छ० प्र० ६।५, पृ०रा०, का० २२०।३०८, रा०वि०' २।१८६

७ राबड़ी—बाजरा या गेहूँ चने के आटे को शीत या मट्ठे में घोलकर कुछ देर तक धूप में रख देते हैं। उसे मन्द अग्नि पर उबालने में जो पदार्थ तैयार होता है उसे 'राबड़ी' कहते हैं—शोधक

८ 'पय सक्करी सुभत्तो एकत्तो काय राय भायमा।
कर कसी गुज्जरीय, रब्बरिय नव जीवनी॥
—'स० प० रा०', पृ० १६, छ० ६

प्रदर्शित किया गया है। ऊदल और मलिखान के विवाहावसरों पर बड़े-बड़े कड़ाहों में भात तैयार कराकर परोसा जाता है।[1] उसमें प्रसिद्ध वीरों के मरण पर राजा और प्रजा सभी को भात न खाकर शोक मनाते दिखाया गया है।[2] आल्हखण्ड के ये निर्देश उत्तरी पूर्वी भारत के निवासियों के भोजन में भात का प्रमुख स्थान निरूपित करते हैं।

भोजों के अवसर पर पकाए जाने वाले भोज्य पदार्थ —

पृथ्वीराजरासो में इच्छिनी विवाह के अवसर पर दूध, घृत और अग्नि में पकाए हुए भोज्य पदार्थ मांस साग और फल परोसे जाते हैं।[3] महाराज पृथ्वीराज भी अपने नित्य के भोजन में घृत दूध जल और आग में पकाए हुए पदार्थ मांस साग अचार और पक्वावरि का उपभोग करते दिखाए गए हैं।[4] प्रस्तुत सन्दर्भों के अतिरिक्त उसमें पानीपत के मैदान में रची जाने वाली गोठ का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसमें परोसे गए पदार्थों की नामावली से ज्ञात होता है कि गोठों में कच्ची रसोई (बिना तले पदार्थ) पक्वान्न मिष्टान्न करवा भात खीर दाल साग मांस, और पक्वावरि की परसन की जाती थी। परमालरासो में राजकुमार ब्रह्मा का टीका चढ़ने के समय भी प्रायः इन्हीं पदार्थों का परोसा जाना प्रदर्शित किया गया है।[5] जिससे स्पष्ट होता है कि इन भोजों में पूर्वोक्त प्रकार के भोज्य पदार्थों के सम्मिलित रहने का प्रचलन था। इन भोजों के वर्णनों से अधोलिखित भोज्य पदार्थों के बनाये जाने पर प्रकाश पड़ता है —

(क) **पक्वान्न और मिष्टान्न**—अंगा कचौड़ियाँ खुरमा गिंदौरा गुनगुल गूजा घेवर, जलेबी पापड़ पूड़ी पेठा फेनी बड़ई माठ माड़े मालपुआ रोटियाँ सुघई सक्करपारे सिंघारे सुखपूड़ी, सूते और सेव।

(ख) **मदा के फल**—रासोकार के अनुसार मदा में सुमन गंध मिलाकर

---

१ देखिए— आ०, २७।१६७ १६२।१६२०

२ खबरि सुनी जब राजा जयचंद सुद्ध ते जूझि गओ रन जाय।
परौ सनाका सब नगिकर में काई रथ भात ना खाय॥ — आ० १४।६७

३ देखिए— पृ० रा० का० ५५६।६६

४ भोजन साल पधारि, सँग प्रथीराज सुभट सब।
घृत पक्व जल पक्व, पक्व पावक्क परसि तब।
दूध पक्व पक्वान मंस रस अनि अमय।
साक फलणि सधान [illegible] रस व्यंजन बनेय।
तिन पच्छ पक्वावरि स्वाद सुचि अन्नजात पचि पियत ही॥
— पृ० रा० मो०, १३।४८

५ परमालरासो में पृथ्वीराजरासो के ही छन्द यत्र-तत्र पाठान्तर के साथ दिए गए हैं। —देखिए— पर० रा०, ३।४८ से १३।८८

ने महाराज वीरसिंह देव की वनिताएँ क्षुद्रघटावली पहन चित्रित की है। कवि मान ने सरस्वती[१] और रूपकुंवरि[२] मेखला धारण किए प्रदर्शित की है।

कवि मान ने किंकणी और क्षुद्रावली पग के भी आभूषण दिखाए हैं[३] जिससे स्पष्ट होता है कि साधारणतया किसी भी किंकणी या घंटिका युक्त आभूषण को किंकणी की संज्ञा प्रदान की जा सकती थी। किंकणियाँ तो नूपुरों में भी जुड़ी रहती थीं[४]—कवि मान ने भी हाथियों को घुंघरू लगे नूपुर पहने चित्रित किया है[५] किंतु उनका प्रयोग करधनी में ही अधिक होने के कारण किंकणी करधनी के ही अर्थ में अधिक रूढ़ थी।

बाहु—बाहु या बाजुओं में बाजूबंद और टाड नामक आभूषण पहने जाते थे। कवि चंद[६] मान[७] और ग्वाल[८] ने बाजूबंदों का प्रयोग दिखाया है जबकि आल्हखंड ने गजमोतिन बाजूबंदों के साथ-साथ आठ गांठों वाले टाड भी पहने चित्रित की है।[१०] कवि सूदन ने टाड वरा और बाजूबंदों का प्रयोग दिखाया है।[११]

कलाई—कलाई में कुहनी पर्यन्त कंगन वलय चूरी चूड़ियाँ, पहुंची गजरा, बगुरी, अगनिया, बगलिया और पछलिया नामक आभरण धारण किए जाते थे। कवि चंद ने वलय, कंगन, चूरी और पहुंची,[१२] मान ने चूरी, गजरा, पहुंची और कंगन,[१३] तथा आल्हखंड ने पहुंची और कंगनों का उल्लेख करने के साथ-साथ चूड़ियों के आगे अगनिया पीछे पछलिया, तथा मध्य में बगलिया धारण करने की प्रथा दिखाई है।[१४] कवि सूदन ने बगुरी, चूड़ा, पछेली, चूड़ियाँ कंकण, गुजरी और पहुंची नामक कलाइयों के आभूषणों का उल्लेख किया है।[१५]

---

१ से ४ द०—क्रमशः वी०, च० २२।८६, 'रा० वि०' १।१६ वही ७।१८, १।१४
५ 'स्वर्गीय राहुल सांकृत्यायन ने किंकणी लगे नूपुरों का उल्लेख किया है—
— राजस्थानी रनवास, पृ० ८
६ "नपुर मु पाइ घुंघरु निनाद, रतभनत पनत जनुरदन वाद।
— रा०वि०', ८।१०
८ "कुच निहार कंचुकिय। भुजनि बंधे बाजूबंध।
—'पृ० रा०', बा० १६७६।१४२
८ ६ देखिए— रा० वि०' १।१९, वही, ७।१६ 'ह० ह०, ग्वा० ६
१० "आठ गांठ की टाड़े पहिरें बाजूबंद भूमि भूमि रहि जाय।'—आ० ६३।२५
११ "बाजूब क बराबर छिनिय। बगुरी चूरा नत न गिनिय।
गन पछेली छिन्न निनादय। चूर चरि सुरी चरनादय।"
—'सु० च०, ६।२।४१
१२ से १४ देखिए—क्रमशः 'पृ० रा० बा० १६५५।२५१८, १०८५।१८४,
रा० वि०, ७।१६, आ० १६३।२१ २४
१५ 'सु० च०, ७।२।४१

उँगलियाँ—हाथ की उँगलियों में मुद्रिका, आरसी, झमकन, हथ-पान और छल्ले पहने जाते थे। कवि चंद[1], केशव[2] और मान[3] ने मुद्रिकाओं का प्रचलन दिखाया है, जबकि आल्हकार ने बीस मुद्रिकाओं के साथ साथ छल्ला का भी प्रयोग उल्लिखित किया है। सूदन ने छल्ला, अगूठी, आरसी और नजीर लगे झमकन नामक उँगलियों के आभरणों का उल्लेख किया है।[4] कवि जोधराज ने हथ पान पर हथ फूल नामक आभूषणों का प्रचलन दिखाया है जो हाथ के पृष्ठभाग पर पहना जाता था।[5]

पैर—पैरों के अंगूठों में अनवट या अगोट और गोट तथा उँगलियों में बीछिया और छल्ले पहने जाते थे। पैरों के आभूषणों में झझरिया, झांझन, पायल, घुंघरूनी, किंकिनि, नूपुर, सांकर, जहरि, घुंघुरु, छड़, पायजेब, चहियाँ, गुजरी और घोघ पहनने का प्रचलन था। कवि चंद ने अनोट, झांझरि, नूपुर, जहरि, घूघुर, बीछिया, गोट और तोडर नामक आभूषणों का उल्लेख किया है। इसी भाँति कवि मान ने अनवट, बीछिया, झांझरि, पायल, क्षुद्रघंटी और किंकिनि का[10], केशव ने नूपुर, जहरि और पायल का[11], ग्वाल ने पायजेब, छड़ और छल्ला का[12], आल्हकार ने अनवट, पायल, नेवर, बीछिया, चहियाँ और गुजरी का[13] तथा सूदन ने पायल, पग पान, नूपुर, घुंघुरू, पग झांझ और गुजरी नामक आभूषणों के प्रयोग पर प्रकाश डाला है।[14] नूपुरों के विषय में यह तथ्य उल्लेख्य है कि वे उँगलियों में पहने जाने वाले बीछिया नहीं होते थे किन्तु घंटियों या किंकिणियों के गुच्छ टांगों में बाँधा जाने वाला आभूषण होता था जिसे हाथियों की टांगों में भी बाँधा जाता था।[15] कवि चंद के साक्ष्य पर कहा जा सकता है कि अधिक स्त्रियाँ और ग्रामीण-बालाएँ अपनी आभूषण धारण करने की प्रवृत्ति संतोष (अनोट के समीप इसे फुलगन कहा जाता है) के पैरों को विविध आभूषणों का रूप देकर पूरी करती थीं।[1] इनका का हिन्दू और मुसलमान स्त्रियाँ द्वारा भिन्न ढंगों पर प्रयोग मिलता है। हिन्दू स्त्रियाँ उन्हें

---

१ से ८—द्रष्टव्य—क्रमशः पृ० रा० का० १०८३।१६०, वी० च० ४२।७५, रा० चि० ३।१६, आ० १८।१८, सु० च० ६।२।४२, ह० रा० ७८६, पृ० रा० ६६।१६१, पृ० रा० का० १६६६।६५, १०२६।६०, पृ० रा० ६५।१८०, वही १०८५।१८२, वही १७७६।१४२

९ से १०—द्रष्टव्य—क्रमशः रा० वि० ७।१२, १६ ७।१६ २०, वी० च० ४२।८८-९५, ह० ह० १० आ० १६।१५, वही ४६०

१३ ताटक जो पाजादा सु नूपुर। घूघरी फूल अनोट गुमूवर।
तो फिर जो नगदुलदार ठोड़ि। कर कुदन म रथ न छोडि। —सु० च० ६।२।८१

१४ नूपुर सु पाय घुंघरू किनाम कनकान चरन सु बरन कार।
—रा० वि० ८।१०

१५ "गज गन अकाम करि तान मद मन नूपुरा।
मगर रंग कज्जल ..., पदवरिय नीर कामनि। —पृ० रा०, १।१३०

हाथ की उँगलियों में पहनती थीं, जबकि ग्वाल ने मुस्लिम स्त्रियों को उन्हें पगों में पहने चित्रित किया है।

पुरुष—वीरकाव्य से आलोच्यकाल में पुरुष भी स्त्रियों की भांति आभरण प्रिय सिद्ध होते हैं। कवि चंद ने महाराज की पराजय में दुखित नर नारियों का आभरण हीन चित्रण कर पुरुषों द्वारा आभूषणों के प्रयोग पर प्रकाश डाला है।[1] कवि सूदन ने भी सैनिकों के शरीर आभूषणों से मंडित प्रदर्शित करके पुरुषों की आभरण प्रियता का प्रकाशन किया है।[2] अलबेरूनी के विवरण से ज्ञात होता है कि—पुरुष कान, बाहु तथा हाथ और परों की उँगलियों में आभूषण पहना करते थे।[3] पुरुषों के कानों में कवि चंद ने स्वाति सुत नामक आभरण का प्रयोग दिखाया[4] है जबकि परमालरासो[5] और आल्हखण्ड[6] में श्रवणों में कुंडलों का प्रयोग वर्णित किया गया है। हाथ में स्वर्ण के कड़े पहनने का प्रचलन शिशु और युवक दोनों में था। परमालरासो में राजा आल्हा ऊदल को मनाने के लिए मुक्तामालाएँ और कड़े भेज जाते हैं। महारानी मल्हना बारह वर्षीय बनाफर भ्राताओं को स्वर्ण कड़े पहनाते चित्रित की गई हैं।[8] अन्यत्र भी जागीरदारी बनाफर स्वर्ण कड़े पहने मिलते हैं[9] तथा ऊदल अपने सैनिकों का प्रलोभन देता है कि विजयी होने की दशा में मैं तुम्हारे हाथों के लिए स्वर्ण कड़े बनवा दूंगा[10] जिससे पुरुषों द्वारा कड़ों के प्रयोग पर प्रकाश पड़ता है।

पुरुष भी स्त्रियों की भांति अपनी ग्रीवाओं में मुक्ता मालाएँ पहना करते थे जिसका पृथ्वीराजरासो[11], परमालरासो[12] और आल्हखण्ड में[13] चित्रण मिलता है।

---

१ बिन आभरन नर नारि सब। बिना तेज ग्रह भूप।'
— 'पृ० रा०, का० २३८८।११

२ (क) "बहु भौन छिच्छ अति लाल लाल जनु इन्द्र बधू करि रहिय जाल।
बहु भूषन कंचन के न्पित जुगनू जमात चमकत छिपत।
— सु०च० १।४।६

(ख) "मढ़े बहु कंचन भूषन अंग। जड़े मनु वाहन अंग।
पढ़े रन रंग अभंग सुधीर। ठढ़े रु भूमि जहां जदुवीर।' —वही २।३।८

३ 'The men wear articles of female dress, they use cosmetics, wear ear rings, arm rings golden seel rings on the ringfinger as well as on the toes of the feet' —'Alburuni s India' p 181

४ 'श्रवन विराजत स्वाति सुत। करत न बन बषान।'
— पृ० रा० का० १५६-१०३

५ से १०—दे० 'प० रा०' ५।५४ आ०', ३६।८, प२० रा०' १६।१२, 'आ०, २६।६, ३६।३६ ७७।१२

११ से १३—देखिए—क्रम०, पृ० रा०' का० १२१६।११७ 'प० रा०' ५।४३, ,आ०' ४७।२०,

शिशुओं के कंठ में केहरि नखयुक्त मणियों का कठुला पहनाया जाता था।[1] क्षत्रिय योद्धाओं में अपनी एक टाँग में सोने का कड़ा या जंजीर पहनने की भी प्रथा थी। कवि चंद ने उसे पवंग[2] और सकर[3] तथा कवि मान ने टोडर[4] के नाम से अभिहित किया है। कवि सूदन ने दिल्ली की लूट में स्त्रियों के साथ साथ पुरुषों के भी आभूषणों की लूट का वर्णन किया है जिससे ज्ञात है कि वे—सिर पर कलँगी, तुर्रा, मौर और सिरपेंच, कानों में कुंडल, मोती, गुरदा, गोखरू और रुद्राक्ष के मनके, ग्रीवा में तोड़ा, कंठी, रत्न मालाएँ, चौकी और माकरें, हाथों में कड़ा, पहुँची, हथ माकर और छाप, कटि में किंकिनी और काँधनी तथा पगों में पैंजनी धारण करते थे।[5]

शृंगार प्रसाधन

मानव स्वभावतः शृंगार प्रेमी है। निज संसर्ग में आने वाली सभी वस्तुओं को एक विशेष कलात्मक साज सज्जा से युक्त देखने की उसे सहजाकांक्षा रहती है। उसकी इस सौंदर्य पिपासु अन्तर्दृष्टि ने स्त्रियों की नैसर्गिक शृंगार प्रियता को और भी अधिक अभिवृद्ध किया है। वे आदिम युग से ही प्रकृति प्रदत्त सौकुमार्य और लावण्य में चार चाँद लगाने की आकांक्षा से विविध शृंगार-उपादानों का प्रयोग करके स्व प्रेमियों की हृदय हारिणी बनने की चेष्टा करती रही हैं। वीरकाव्य की नायिकाएँ राजकुमारियाँ और रानियाँ थीं जिनको उन्हें सभी प्रकार की शृंगार सामग्री सहज उपलब्ध थी। दास-दासियों के बाहुल्य के कारण वे गृह-कार्यों की ओर से निश्चिंत भी रहती

---

१ 'पृ० रा०' भा० १५१।७२६

२ "पुनि कन्हा प्रथिराज नप पाव पवंग परटिठ।
लैइ नही मन सक्क मल निटठ चन्दाइय हटिठ॥'
—पृ० रा० भा०, १२१६।११६

३ 'मकरह हेम तोलह त्रिसत्त। निय पाय घटिठ किय धीर दत्त।'
—वही २०३२।८३

४ 'पल बावन टोडर स्वर्न पग। बापा रावर अतुलबल।'— रा० वि०' २।२४०

५ स्त्रियों के आभरणों का सूदन ने छठी जंग के इकतालीसवें छंद में वर्णन किया है। इसके आगे उद्धृत यथानिर्दिष्ट छंद लिया है —

कलगी तुर्रा और जग सिरपेंच सु कुंदन।
मोती गुर्दा और गोखरू रुद्राक्ष मन॥
तोरा कंठी माल रतन चौकी बहु साकर।
कंगन पहुँची कटक सुमरनी छाप सुभाकर॥
किंकिनी कोंधनी पजनी हय मकर भकर खुटे।
आभरन नग वर नारि के पुट कुट टूट लूट॥

—सु० च०, ६।२।४२

थी, अत अपनी साज सज्जा पर उन्हें इच्छित समय लगाने का पूर्ण अवकाश मिलता था। बहुपत्नी प्रथा के प्रचलन ने उनकी यह अलकरण प्रियता, कदाचित उनके जीवन का मूल सबल ही बना दी थी। पति प्रेम पात्री बनने के लिए सपत्नियों म अभिनव शृंगार प्रणालियाँ अपनाकर एक दूसरी स बढकर आकर्षक प्रतीत होने की प्रतिद्वंद्विता सी व्याप्त रहती थी। पर्व और उत्सव पर साधारण परिवार की स्त्रिया भी अनेक प्रकार के शृंगार प्रसाधन प्रयोग करती चित्रित की गई हैं।

स्त्री शृंगार के सदर्भ म वीरकाव्य प्रणेताओं ने सोलह शृंगार करने का बहुश उल्लेख किया है, जिसस स्पष्ट होता है कि शृंगार क्रिया क सोलह अग स्वीकार किए जाते थे। कवि चन्द न शशिव्रता,[१] इंद्रावती,[२] प्रियाबाई,[३] सयोगिता[४] तथा दासियाँ[५] सोलह शृंगारो स मडित प्रदर्शित की हैं। रासाकार के अतिरिक्त कवि जटमल न बादल पत्नी,[६] परमाल रासाकार न मल्हना[७] तथा आल्हकार न गजमालिन[८] नरवर गढ की मालिन और बौरीगढ की स्त्रियाँ[९] द्वारा सोलह शृंगार करने का उल्लेख किया है।

सोलह शृंगारो के वीरकाव्य म प्रचुर निर्देश मिलते हुए भी न तो किसी वीर काव्यप्रणेता न उनकी तालिका दी है और न उनके द्वारा वर्णित शृंगार प्रकारो की सख्या ही निश्चित रूप स सोलह बटती है। सस्कृत साहित्य म भी उनकी देश और काल के भेदानुसार वपम्ययुक्त तालिकाए मिलती ह। श्री अत्रिदेव विद्यालकार न 'सुभा पितावली', 'उज्ज्वल नीलमणि और उत्तर मेघ के आधार पर षोडश शृंगारो की जो तीन सूचियाँ दी है,[११] उनमे—१ उबटन २ स्नान ३ सुवसन ४ तिलक-रचना ५ केश पाश रचना ६ चरण राग या आलक्तक का प्रयोग ७ अगरागो से शरीरागो का चर्चित करन और ८ ताम्बूल सेवन को तीनो सूचियो मे स्थान दिया

---

१ "सुवन छुद्र घटिकानि। पोडस बपानय।" — पृ० रा०' का० ८०४।३१६
२ सिंगार साटप कर। सुहस्त दपन धरे।" —वही १०२५।७
३ 'पट दून नवगुन म बरन। सिनगार अभूपन एकहन।" —वही ६५३।८८
४ सुबीर चारु सा रस। सिगार मडि पोडस।" —वही १६५५।२५२० और भी द० वही, १६७५।१०५ १६७७।१२६
५ द० वही, २११२।४८
६ 'नव सत साजि सजाइ नारि बादल पै आई।" —'गो० क०' छ० ११३
७ 'यह कहन ग्रथ मनिजान वर, ये पोडश सिंगार गनि।' —'पर० रा०', १०।३३५
८ 'बारह भूषण सज सुहागिल औ करिके सोरहु सिंगार।' — आ०' ४४०।६
९ १० दखिए—वही, ४४०।६ २३६।६
११ द०—'प्राचीन भारत के प्रसाधन', पृ० ४० ४१

गया है : १ उबटन लगाना २ स्नान या वस्त्र धारण करना ३ केशों का गूँथनी धारण करना ४ माथे पर सिन्दूर का प्रयोग ५ पुष्पमाला धारण करने ६ हाथ में कंगन पहनने, ७ चिबुक पर तिल बनाने का ... सुविधाएँ ... करना ? बहुत ... ... , और ... नूपुर ... ... हाथ में ... ... ९ मेंहदी ... का विधिवत ... ... ८ ... और दाँतों में मिस्सी लगाना का साथ ... सुखों में शृंगार के ... ... में परिगणित किया गया है। इस ... के ... ... सुविधा के ... शृंगार के ... पर गृहीत शृंगारों की मान्यता ही प्राप्त होती है।[1]

आईने अकबरी में भी शृंगार के सोलह प्रकार की जो तालिका दी गई है उसके अनुसार १ तन का उबटन लगाना ... स्नान ... चुनरी बाँधना ४ माँग में मोती भरना, ५ ... ६ सुरमा ७ मस्तक का तिलक विशेष या चन्दन बिन्दु बनाकर उस, मुक्ता या रत्नाभरणों से अलंकृत करना ८ काजल लगाना ९ कर्णाभरण पहनना १० नाक में कील या नथ पहनना ११ ग्रीवाभरण धारण करना १२ पुष्पों और पुष्पों के हार पहनना १३ मेंहदी लगाना १४ किंकिणी पहनना १५ पाँव में नूपुर पहनना १६ पान खाना तथा दाँतों का मधुर भाषिणी होने के साथ साथ ... ... इन्हीं शृंगार के कारण वह होती है।[1]

हिन्दी शब्द सागर'[2] और प्रामाणिक हिन्दी कोश'[3] में १ उबटन ... ... ३ माँग में सिन्दूर का प्रयोग ४ काजल लगाना ५ बिंदी ... ६ माँग भरना ७ ठोड़ी पर तिल बनाना ८ चिबुक पर तिल लगाना ९ मेंहदी रचना १० महावर लगाना ११ सुगन्धित द्रव्य लगाना १२ आभूषण धारण १३ दाँतों पर मिस्सी लगाना १४ कुसुम और ... पान खाने को सोलह शृंगारों में परिगणित किया गया है। शब्द सागर में ... शृंगार ... को माना गया है जबकि द्वितीय ग्रन्थ में उसके स्थान पर ... ... का लिया गया है।

सोलह शृंगारों के सम्बन्ध में ... भिन्नता के कारण ही आचार्य केशवदास का 'कविप्रिया वर्णन ... ... किया गया ... अधिक ... प्रतीत होता है कि यद्यपि स्त्रियाँ और प्रकार के शृंगार करती हैं तथापि कवि ... में सोलह शृंगार ... ... शृंगार ... प्रसंग में सोलह शृंगारों का ही उल्लेख करना चाहिए।[4]

---

१ द्र०— आईने अकबरी' भाग ३ पृ० ३४२-४३

२ द्र०— हिन्दी शब्द सागर पृ० ३६६२

३ द्र०— प्रामाणिक हिन्दी कोश पृ० १२२८

४ 'सहज सिंगारन सुन्दरी जदपि सिंगार अपार।
तदपि बखानत सकल कवि, सोरहई सिंगार।' —'कविप्रिया', ४।१६

सोलह शृंगारों के विषय में यह तथ्य भी निवेदनीय है कि इन बाह्यारोपित सोलह शृंगारों के स्थान पर, स्त्रियों के शरीर में सोलह प्रकृति प्रदत्त शृंगार भी स्वीकार किए जाते थे। कवि चन्द ने महारानी इच्छिनि के शुक के मुख से (जो संयोगिता के वासकेलि गृह में निवास का सौभाग्य प्राप्त कर आया था) संयोगिता के कुच, भुजमूल, नितंब एवं जंघाओं को पृथुल उभार कर, कटि, और कमलस्थान (गुह्यांग) को कृश, नख, हास, वर्ण और मांग को उज्ज्वल तथा कुचाग्रभाग, वच एवं दृगतिलों का श्यामवर्ण के बतलाकर, उसकी तन वल्लरी सोलह शृंगारों का आकार प्रदर्शित की है।[1]

वीरकाव्य में उपलब्ध निर्देशों के आधार पर सोलह शृंगारों पर प्रकाश डालने से पूर्व यह निवेदन करना भी आवश्यक है कि, उसमें हाथ में कमल-पुष्प लेना, दन्त मंजन, होठ रंगना आदि का चित्रण नहीं मिलता। इसी भांति मिस्सी का प्रयोग भी शृंगार-वर्णन के प्रसंगों में अनुल्लिखित है। मुस्लिम लेखक अबुल फजल द्वारा भी मिस्सी के प्रयोग को सोलह शृंगारों में परिगणित न करना विशेष महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसे प्रायः मुगल सभ्यता की ही देन स्वीकार किया जाता है। वीरकाव्य में भृकुटियों को कज्जल रेखा से श्याम और वक्र बनाने तथा कपोलों पर मदन चित्रों की रचना करने के एक अभिनव शृंगार का भी चित्रण मिलता है। स्त्रियों की भांति पुरुष भी इनमें कई प्रकार के शृंगार करते मिलते हैं किन्तु विवेचन सौकर्य की दृष्टि से यहां स्त्री शृंगारों पर प्रकाश डाला जा रहा है।

(१) उबटन— उबटन मलने का मूलोद्देश्य शरीरांगों में मार्दव लाकर उनकी कान्तिवर्धन करना होता है। कवि चन्द ने इच्छिनि[3] और शशिव्रता[4] शृंगारारम्भ में स्व-दासियों से उबटन मलवाना चित्रित की हैं।

(२) स्नान— स्नान का नित्यिक कर्म के स्थान पर सोलह शृंगारों में परिगणित करने का मूलकारण कदाचित यही है कि उससे शरीरांगों की कांति निखर उठती है। इच्छिनि,[5] शशिव्रता[4] उबटन मलवाने के पश्चात स्नान करती हैं। स्नान के

---

१ विमल घूर सित असित। थान चव एक-एक प्रति।
पानि पाइ कटि कमल। मथल रजे सुक्षम अति।
कुचमंडल भुजमूल, नितंबजंघा गुरुअत्त वरज हास नोशान मांग उज्ज्वल साउत्त,
कुच अग्र वच्च द्रिग मद्धि तिन, स्यामा अंग सरन गनन।
षोडस सिंगार साम्य सजि। मादइ रज सजोगिनन।'

—पृ० रा०' का० १९७४।१०५

२ "बिन वस्तर अंग सुरंग रसी। मुहल अनाय मन्त बसी।
लग नोनइ लोइ उबट्टन को। कि वम्यो मनु काम सुपट्टन को।'

—पृ० रा० का० ५।०।४९

३ से ५ द्रष्टव्य—वही ६०२।३०४, ५५१।५३ १०२५।५७

लिए प्रयुक्त जल को घनसार[१] और केसर[२] आदि डालकर सुवासित कर लिया जाता था। इन्द्रावती,[३] हंसावती[४] और संयोगिता[५] भी अन्य शृंगार करने से पूर्व स्नान करती हैं। केशवदासजी ने महाराज वीरसिंह देव की वनिताओं अंगराग लगाकर आभूषण धारण करने से पूर्व स्नान करते चित्रित की है।[६]

(३) गंध द्रव्यादि का प्रयोग—स्नानोपरान्त शरीर को केसर, चंदन और कपूर आदि के विलेपनों से चर्चित किया जाता था। उच्छिनि स्व शरीर पोंछकर उसे बहु धूपों के धूम्र से सुगंधित करती हैं।[७] इन्द्रावती कंचुकी धारण करने से पूर्व चंदन का विलेपन लगाती है,[८] जबकि संयोगिता स्वशरीर को विविध प्रकारीय सुगंधियों से विभूषित करती है।[९] वीरसिंह देव की रानियाँ बहुविधि अंगरागों का प्रयोग करती[१०] तथा चंदन के चारु विलेपन से अंगद्युति अभिवृद्ध करती हैं।[११] भूषण ने इत्र, गुलाब, चोवा और घनसार का प्रयोग परोक्ष रूप से प्रदर्शित किया है। उनके शब्दों में महाराज शिवाजी के त्रास के कारण यवनों को इन सुगंधित द्रव्यों की याद ही विस्मृत हो जाती है।[१२]

(४) वेणी-बंधन—भाँति केशों को सुगंध के लिए उन्हें अगर आदि सुवासित धूपों का धूम्र दिया जाता था। संयोगिता अपने अलकों भरते हुए केशों का सुवासित धूम्र में सुखाना चित्रित की गयी है।[१३] वेणी या कबरी बाँधने से पूर्व उनमें इत्र फुलेल डाले जाते थे। शशिव्रता,[१४] संयोगिता[१५] और गजमालिन[१६] अपने केशों में सुगंधित तैलों का प्रयोग करने प्रदर्शित की गई हैं। केशों को घुँघराले, सुकोमल और सघन बनाने के प्रयास किए जाते थे। कवि चन्द ने संयोगिता और इंछनी अपने सुन्दर विन्दों पर केशों की एक एक लट बिखराए प्रदर्शित की है।[१७] जोधराज ने अप्सराओं की अलकों में भ्रमर समूह का प्रमत्त रहना चित्रित किया है।[१८] केशवदासजी ने भी छोटी-छोटी अलकें चमकत दिखाई हैं।[१९] श्रीअग्निदेव विद्यालंकार ने भी प्राचीनकालीन केश प्रसाधन में अनेक जाल बनाने, घुँघराली लटें ललाट और मस्तक पर सुशोभित करने तथा उन्हें सुमनों या पुष्पों में गूँथकर सजाने की प्रथा होने का उल्लेख किया है।[२०]

१-५ दे०—क्रमशः ८०२१-८०३, २०।१०२५।५७, २०८४।१२८, १६६८।५१
६ बहु निय मज्जन मजन कर अंगराग बहु अंगनि पर। —वी० च० २०।२०
७ करि मज्जन अंगादि तन धूप वास वर अंग। —प० रा० का० ५।१।५३
८-१६—देखिए—क्रमशः प० रा० का० १०२६।६२, वही १६५५।२५२०, वी० च० २०।३०, वही २६।४, शि० बा० ११, प० रा० का १६६८।५५, वही ८०३१, १०, वही १६६८।५३, 'आ० १६४।५
१७-१६—देखिए—क्रमशः प० रा० का० १६६८।५७, ६७।२१० ह० रा० १४०, वी० च० २२।६६
२० 'प्राचीन भारत के प्रसाधन', पृ० ४४

कवि पदमाकर ने उत्कृष्ट सौन्दर्य के परिमाप स्वरूप केशों का ही नहीं, वरन् एड़िया को चूमने वाले, केशों वाली स्त्रियां प्रदर्शित की हैं।[1]

वेणी बाँधने की रीतियों में या तो नागिन सदृश एक लटवाली कबरी का प्रचलन था, अथवा अधुना बहु प्रचलित दुहरी वेणी के स्थान पर तीन वेणियां बनाई जाती थीं। कवि चन्द ने शशिव्रता तथा जाधराज ने अप्सराएँ[2] तीन वेणियां धारण किए चित्रित की हैं। सूदन[3] और आलमकार[4] ने चुटीले के प्रयोग पर भी प्रकाश डाला है।

(५) **माँग निकालना**—केशों को शीश के मध्य भाग से दोनों ओर विभाजित करते हुए माँग या पटिया निकाली जाती थी।[5] कवि चन्द ने पटिया को प्रेम की बाट[6] बताकर, तथा जाधराज ने सुघर पटिया को शृंगार-भूमि के फटन से उपमित करके,[7] उसकी स्त्री शृंगार में महत्ता का अभिज्ञापन किया है। आभरणों के प्रयोग में पीछे माँग या सीमन्त को मोती और लाल आदि से विभूषित करने का उल्लेख किया जा चुका है। सधवा स्त्रियां मोती आदि के ऊपर सिंदूर का भी प्रयोग करती थीं, जिसका कवि चन्द,[8] केशव[9] और आलमकार[10] ने चित्रण किया है।

(६) **काजल लगाना**—वीरकाव्यकारों ने स्त्रियों के कज्जल कलित नेत्रों को वशीकरण का अमोघास्त्र बताकर[11] नेत्रों में मसि का प्रयोग उनके शृंगार का एक महत्त्वपूर्ण अंग सिद्ध किया है। काजल को सुगन्धित और गुणकारी बनाने के लिए धनवान् स्त्रियां उसमें कस्तूरी भी मिला लेती थीं, जबकि निर्धन स्त्रियाँ मात्र साधारण मसि को ही आँजकर अभीष्ट-साधन करती थीं।[12] आँखों में काजल लगाने के साथ साथ, उनके कोनों के दोनों तरफ सुरमा की रेखा खींचकर, वे अपने नेत्रों को अनियारे एवं बानधारी दिखाने का भी प्रयास करती थीं।[13] पद्मिनि इन्द्रावती शशिव्रता, संयोगिता, वीरसिंह की रानियाँ और गजमोतिन, सभी स्त्रियां, शृंगार करते हुए काजल

---

१ 'छुटि बनी सुनर्फें सिसियत ढुलक छ छ सुनफ छिनि छहरै।'

— प्र० नि०', ११३

२ 'अनक पुष्प बीचि ग्रथि। भासिता त्रिपडिय।
मनो सनाग पुष्प जाति। तीन पथि मन्यि।' — पृ० रा०' का० ८०३।३१०

३ "स्ववम वेस पामय, मनो कि मन फासय।
गुही त्रिविद्धि वनिय कि माह् किन मनय।' —'ह० रा०' १३२

४ से ७ दे०—क्रम० सु० च० ६।२।८१ 'आ० १६४।४, पृ० रा०, का० ८५३।६८ वही, ८०३।११६

८ से १४ दे०—क्रम० 'ह० रा० १३३ पृ० रा०' का० ८०३।२११ 'वी० च०' २१।८६, आ०' ४४०, पृ० रा०, का० ८६८।१८६ वही १८।४८, आ०' १६४।६

लगाना नही भूलती। काजल के प्रयोग म मुगल-स्त्रियां भी पीछे नही थी। भूषण ने उनके कज्जल-मिश्रित अश्रुओ से यमुना-जल का और भी अधिक श्यामवण हो जाना प्रदर्शित किया है।[१]

(७) बकिम भृकुटियो की रचना करना—अनियारे दृगो पर बकिम भ्रू विलास का सगम प्रियजन हृद्-वेधन मे राम वाण जसा सफल रहता है। यही कारण है कि कवि चन्द न सयोगिता[२] और प्रियाकुवरि[३] कज्जल मसि स अपनी भौह श्याम वण तथा बकिम बनात प्रदर्शित की हैं। डॉ० बी० एन० चोपडा न भी यह मुगलकालीन नारी श्रृगार की एक बहु प्रचलित रीति बताई है।[४]

(८) बिन्दी एव तिलक रचना—मस्तक पर तिलक आड और बन्दिया के लगाने क प्रचलन पर पीछे प्रकाश डाला जा चुका है। इनके अतिरिक्त सिंदूर कज्जल और केसर आदि से भी तिलक और बन्दिया की रचना करने का प्रचलन था। पृथ्वीराजरासो के दो भिन्न प्रसगो म दपण-हस्ता सयोगिता कस्तूरी केसर और काजल से तिलक रचना करके उनके इतस्तत कज्जल रेखाएँ खीचत चित्रित की गई है।[५] हम्मीर रासो म अप्सराओ के मस्तक वृहदाकार लाल रग की बिन्दिया स सुशोभित दिखाए गए है।[६] कवि मान ने सरस्वती क चन्दन और केसर चर्चित मस्तक पर सिन्दूर की लाल बिन्दी लगी प्रदर्शित की है। भूषण ने काम केलिरत वामाओ के मस्तक पर लगी लाल बिन्दियाँ बिखरत दिखाई हैं[७] तथा यवन-पत्निया के मस्तको को भी सिन्दूर विहीन दिखाकर[८] प्रकारा तर स मस्तक पर सिंदूर की बेंन्दियाँ लगान क प्रचलन पर प्रकाश डाला है।

---

१ देखिए— नि० मू० २६६ और भी देखिए छ० १०१ २६७

२ रचे जल कज्जल रेप सुमप। मुपी भय वाम जर जनु एप।
— पृ० रा० का० १६६८।५८

३ बनी वर भौंह सु बकिय एह मना धनु काम धर बिन जेह। —वही ६५२।७४

४ It was usual for high class ladies to use missia for blackening between the teeth and antimony for darkening their eyelashes '
— Society and Culture in Mughal Age p 22

५ (क) तिलक्क स्नान करी। श्रव न मन्न धा।
— पृ० रा० का० १६५४।२५१५

(ख) तिलक सभाग रची रवि रूप। मना भय प्रह मुआग्नि दप।
धा भुम्र धूम्र तिलक्क गनि। जिन पर अदर लाग गुनानि।
—वही १६६८।५७

६ से ८—ह० रासो० ह० रा० १२५ रा० वि० १।२७, भू० ग्र० स्फुट छ० ४४ नि० भू० १७३

कवि भूषण द्वारा सधवा मुस्लिम स्त्रियों का भी सिन्दूर की बिंदियाँ लगाये प्रदर्शित करने के विषय में दो शब्द अपेक्षित हैं। भूषण ग्रंथावली के संपादक एवं टीकाकारों ने इसके विषय में शंका उठाकर भिन्न भिन्न मत व्यक्त किये हैं। इस छन्द में सिंदूर का प्रयोग प्रदर्शित करने वाली पंक्ति के विषय में मिश्रबन्धुओं और ब्रजरत्नदास में पाठ भेद भी मिलता है। मिश्रबन्धुओं ने उसका पाठ — तरं रास दरियन आगरे दिल्ली मे तिन, सिंदुर के बुंद मुख इंदु जमनीन के देकर पादटिप्पणी में संभावना व्यक्त की है कि उन दिनों सधवा मुगल स्त्रियाँ सिंदूर का प्रयोग करती थीं।[1] श्रीब्रजरत्न दास ने, उसका पाठ —

'तरे राम देरियत आगरे दिल्ली के बीच सिन्दूर के बुंद मुख इंदु जमनीन के' देकर परिशिष्ट में टिप्पणी दी है कि मुसलमानों में सिन्दूर देने की प्रथा नहीं है पर कवि ने यह प्रकट किया है कि मानो वे आरम्भ ही में विधवा हो गई थीं, इसीलिए उनके मुख चन्द पर सिंदूर बुंद नहीं दिखता। कहना न होगा कि ब्रजरत्नदास द्वारा दिए गए पाठ में सिंदूर बुंद दिखने का उल्लेख है।[2] श्री राजनाथ शर्मा ने एक अन्य ही कल्पना की है। उनके अनुसार मुगल स्त्रियों ने सिन्दूर बिन्दु इसलिए लगा रखे हैं कि वे हिन्दू स्त्रियाँ जान पड़ें और उनकी रक्षा हो जाय।[3] यह अर्थ भी दो दृष्टियों से अग्राह्य है—प्रथम तो प्रस्तुत पद्य की पहली पंक्ति— सरजा समत्थ वीर तेरे वैर बीजापुर बैरी बयबनि कर चीन्ह न चुरीन के' में भूषण मुगल पत्नियों के वैधव्य का वर्णन करते हैं अतः सदभगन पंक्ति में भी वैधव्य का ही वर्णन तर्कसंगत है। दूसरे जंगलों में भटकती हुई मुस्लिम स्त्रियों की मात्र सिन्दूर बुंद के कारण सैनिकों से रक्षा होना और वह भी उनका सम्मान करने के लिए प्रसिद्ध महाराज शिवाजी के संदर्भ में सर्वथा अनुपयुक्त लगता है। अतः हमारी दृष्टि में मिश्रबन्धुओं द्वारा प्रदत्त पाठ ही अधिक उपयुक्त है। हाँ सधवा मुस्लिम स्त्रियों द्वारा सिंदूर का प्रयोग करने के सम्बन्ध में हमारा अनुमान है कि इस मुगलों की सभी पत्नियों के स्थान पर उनकी हिन्दू पत्नियों के लिए प्रयुक्त समझना चाहिए, जो अपने हिन्दू संस्कारों के कारण यदि सिन्दूर का प्रयोग करती रही हों तो इसमें अनौचित्य ही क्या है?[4] अधबरिया मुसलमानों अर्थात् हिन्दुओं से मुस्लिम बने लोगों की पत्नियों के विषय में भी यही सम्भावना की जा सकती है।

(६) चिबुक पर तिल बनाना—गौरांग मुखचन्द्र पर काले तिल की शोभा ने कवियों को 'तिल शतक' जैसी कृतियों के प्रणयन की प्रेरणा दी है। आलोच्यकाल में भी इसकी इतनी महत्ता थी कि यदि स्वाभाविक तिल न हो तो उसकी पूर्ति ठोड़ी

---

१ से ३ दे०—क्रमश: 'भू० ग्रं०' मिश्रबन्धु, पृ० ६१ 'भू० ग्रं०', ब्रजदास, पृ० ११, 'भू० ग्रं०' राज० शर्मा, पृ० १०६

४ 'शि० भू०', पृ० १७३

पर मणि का कुंकुम तिलक बनाकर करती आती थी। संयोगिता सामने शृंगार करते हुए चिबुक पर चित्र रचना करती चित्रित की गई है।[1]

(१०) कपोलों पर चित्र रचना — शृंगार के बारहवें साज अंगों में अन्यतम, इस शृंगार पद्धति का कवि चन्द और जगनायक ने उल्लेख किया है। कवि चन्द ने संयोगिता के कपोलों को कस्तूरी और घनसार बिन्दुओं से मण्डित कर चित्रित की है।[2] महाराज पृथ्वीराज की जल क्रीड़ा का वर्णन करते हुए कवि चन्द ने उनकी रानियों के कपोलों से चन्दन और कपूर मिश्रित तिलक को मिटते हुए प्रदर्शित करके[3] परोक्ष रूप से संकेत किया है कि कपोलों पर चित्र रचना भी स्त्री शृंगार का एक आवश्यक अंग थी। अत्रिदेव विद्यालंकार ने भी प्राचीनकाल में कपोलों पर चित्र-रचना और पत्र भंग की रचना करने का प्रमाण दिखाया है।

(११) मेहँदी रचाना — कवि चन्द ने इंछिनि के हाथों के साथ-साथ उसके पैरों में भी मेहँदी रचित प्रदर्शित किए हैं।[5] कवि भान ने सरस्वती और ...[6] तथा कवि चन्द और जगनायक ने अप्सरा शृंगार का वर्णन करते हुए उनके हाथों पर मेहँदी रचाते चित्रित करके मेहँदी के प्रयोग को स्त्री शृंगार का आवश्यक अंग दिखाया है।

(१२) महावर, जावक या यावक से एड़ियाँ रचाना — कवि चन्द ने इंछनी द्वारा ईंगुर रंग एड़ियों को जावक से रंगने को उसके सौभाग्य का प्रतीक बताया है[8] जिससे स्पष्ट होता है कि सधवाओं के लिए एड़ियों का रंगाना आवश्यक समझा जाता था। श्री अत्रिदेव विद्यालंकार के अभिमत में भी महावर का न लगाना शोक या दुःख का सूचित करता था अतः सुहागिन स्त्रियाँ मंगल चिह्न रूप में इसको धारण करती थी।[9] महावर, ईंगुर या जावक का प्रयोग लगभग सभी स्त्रियों के शृंगार-वर्णन में मिलता है। चन्द ने हंसावती[10] ...[11] और संयोगिता[12]

---

१ 'चिबुकरह बिन्द असत गु वानि, प्रसारित बन अली सिसु टारि।
— पृ० रा० का० १६६।६१

२ 'कुंडली मडि बदन मु ... कस्तूरि बिन्द घनसार वि ...।' — वही १६७५।१७०७

३ मिटे कपोलिन चन्दन चित्र ... कपूर तहाँ निमित्र।' — वी० गी० २५।२१

४ दे० प्राचीन भारत के प्रसाधन पृ० ७३

५ दसन दल रूप जोति। सुरंग मिहंदी रचि रच्चिय।'
— पृ० रा०, मो० १।३२७।८१

६ ७ रा० वि० १।१८ ७।१७ पृ० रा० का० २५४६।२६६ ह० रा० ७८३

८ एडी इंगुर रंग। उपम औपिय सु सचिय।
सौतिन मबल सुहाग। भाग जावक तल बंधिय।' — पृ० रा०,' का० ५६५।१६०

९ दे० प्राचीन भारत के प्रसाधन पृ० ६०

१० से १२—देखिए—क्रम० पृ० रा०, का० १०८६।१८२ १०८७।१९१
१६५५।२५१६

या जावक से, केशव और मान ने क्रमश वीरसिंह देव की वनिताएँ[१] तथा सरस्वती देवी रूपकुवरि[२] एव आलमकार ने गजमोतिन तथा सयोगिता[३] महावर स एड़ियाँ रचाए प्रदर्शित की है। पद्माकर ने लाख इगुर और जावक के प्रयोग पर प्रकाश डाला है।

(१३) पुष्पमालाएँ धारण करना—शृगार र सोलह अगा म पुष्प प्रयोग का परिगणन सौन्दर्याभिवृद्धि का निमित्त होने से साथ साथ स्त्रियों की प्रकृति के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन का भी प्रतीक है। शृगार के अ य प्रसाधनों तो सभ्यता की पर वर्तीकालीन उपलब्धियाँ है जबकि आदिम युग म व पुष्पों का केशो म गथन तथा उनकी मालाओं को वणी और ग्रीवा आदि म धारण करने के अतिरिक्त पुष्पों का रचकी और वसन बनाकर भी पहनती थी। शशिव्रता[४] और सयोगिता[५] वणी म पुष्प गथती हैं। सयोगिता अपनी वणी म सुमन माल धारण करती है[६] जबकि पारसिंह नृप की रानियाँ की कवरियाँ कुसुम भार स बिखरते प्रदर्शित की गई हैं।[७] मान न म स्वती को चम्पा जूही चपा कुद केसर मचकुन्द मालती, और मौलसिरी पुष्पों के हार पहन प्रदर्शित करने[८] के साथ साथ मालिने पुष्पों की इतनी सुन्दर रचकी गिंदुक और वसन निर्मित करता प्रदर्शित की है जिनक अवलोकन मात्र से स्त्रियों के मन उन्हे धारण करने को मचल उठते थे।[९] जोधराज न यवन और किन्नर बालाए गले म पुष्पमालाए धारण किए प्रदर्शित की है।[१०]

(१४) पान खाना—सोलह शृगारों का ताम्बूल सेवन भी एक आवश्यक अंग था, जिसका अभिप्रेत मुखश्वास को सुवासित करना तथा होठ रचाना रहता होगा। कवि चन्द ने सयोगिता का तीन बार शृ गार वर्णन किया है, और प्रत्येक

१ से ४—दे०—क्रम० 'वी० च०' २२।८३, 'रा० वि० १।१३ ७।२१, 'आ०, १६३।१८ १४।१५ प्र० वि०' ११० ११२

५ "अनेक पुष्प वीचि ग्रथि। भामिला त्रिपन्थि। —प० रा०, का० ८०३।३१०

६ वर रचिय वेम विधि सुमन पाति। विच धरे जमन जल गग क्ति।'
— प० रा० का०, १०७।।१०६

७ "कवरी कुसुम बिसरत नय। श्रुति कुन्द लाल दुसाजनय।
—वही, १६६३।१३

८ कुसुम भार कजरी छुटि गई। नाचत वचन सिथिल गति भई।'
— वी० च०, २५।१

९ द०—'रा० वि०', १।३०

१० "किती तहँ मालनि फूलनि माल, गुहै कर चौसर आक अमाल।
सु रचुकि गिंदुव वसन भति, बिलोकहि बाँम करें मन रति।" —वही, २।२७

११ दे०— ह० रा०', १०८, ११४

संदर्भ में यह ताम्बूल का सेवन करना चित्रित की है।[1] इसके अतिरिक्त उसके इन्द्रनी का,[2] तथा आल्हखण्ड में गजमोतिन[3] का पान खाना दिखाया है। कवि मान ने भी सरस्वती का मुख ताम्बूल से मंडित प्रदर्शित किया है।

(१५) सुवसन — सुवसन का अभिप्राय यही है कि धारण किए जाने वाले वस्त्र पदार्थ इत्र तथा रंग आदि की दृष्टि से सुरुचिपूर्ण हों, और उन्हें इस तरह से पहना जाय कि वे विविध अंगों में उपयुक्त शोभा धारण करने लगें। वीरकाव्य में वर्णित नारियों की मान और आन रंग के वस्त्रों के प्रति इनकी अभिरुचि प्रदर्शित की गई है[4] और उनकी सौन्दर्य कायाओं पर इन रंगों के वस्त्रों से निर्मित कंचुकी और घाँघरे आदि पोशाक फबु रहे और अलक आदि के सारे आभरण उपचित्रित किये गये हैं। इन वस्त्रों को सुगंधित द्रव्यों से वासित करने का भी प्रचलन था।[5]

(१६) आभूषण पहनना — आभूषणों का नारी सौन्दर्य के अभिवर्धन के लिए किस प्रकार अपरिहार्य समझा जाता था तथा वे विविध शरीरांगों को किन किन आभूषणों से मंडित करती थीं इन तथ्यों पर पीछे प्रकाश डाला जा चुका है।

पुरुष

दन्त-धावन —

पृथ्वीराजरासो में आल्हा और ऊदल दातुन करते प्रदर्शित किए गए हैं जबकि वीरचरित्र में महाराज वीरसिंह देव की दन्त धावन क्रिया का सम्पूर्ण विवरण दिया गया है। इसके अनुसार महाराज के लिए कमल पत्र के दोनों में कपूर एवं बत्तीस दातुनें प्रस्तुत की जाती थीं। वे दातुन को कपूर में डुबोकर प्रयुक्त करते थे तथा प्रति बार कुल्ला करने के साथ ही उसे फेंक देते थे। यही क्रम बत्तीस बार चलने पर उनकी दन्तधावन क्रिया समाप्त होती थी।

---

१ म४ दे०—क्रम० प० रा० का० १६५४।२५१६, १६५७।२५६० १६७६।१४२ ५६५।१६१ आ० ६४०।१६ रा० वि० ११३०

५ देखिए—क्रम०, प० रा० का० ८०२।८०३, वही ८०३।३१८ वही १६७६। १२० रा० त्रि० ७।१५ वी० च० २६।१५ ह० रा० १४० ह० ह० छ० ६, आ० ,१४।१४

६ "आनन पर सुभ सौरभ घने। वसन सरीर सुवासित घने।
— वी० च० , २५।३

७ 'करि दाँतौन सनान। ध्यान गोरष का ध्यायौ।
—प० रा० , का० २५५५।३३७

८ कर पद है सुचि श्री नरनाय। तब दातौनि लइ निज हाथ।
कमल दलन के दोना चारु। तिनमें धर्‌यौ घनौ घनसारु।

अंग-मदन —

यह कृत्य स्त्रियों द्वारा उबटन लगवाने का स्थानापन्न था। कविचन्द ने इसमें धातु एवं शरीर लता की अभिवृद्धि होने का उल्लेख किया है।[1] महाराज पृथ्वीराज का अंगमदन शृंगार रस की वृष्टि करती हुई नवयौवनाओं द्वारा प्रदर्शित किया गया है।[2] जिससे स्पष्ट होता है कि नरेशों के अंग-मदन के लिए प्रायः कुछ दासियाँ नियुक्त रहती थीं। रासो में चन्द पुण्डीर का अंग मदन ३ मदनिए करते दिखाए गए हैं। उसके अंग मरदन में पर्याप्त सुगन्धित तेल प्रयुक्त होता था।[3] परमालरासो में आल्हा ऊदल और मलिक अंग मदन करते चित्रित किए हैं।[4] महाराणा वीरसिंह देव के लिए भी मदनिए नियुक्त थे, जो स्नान से पूर्व उनका अंग मदन करते थे।[5]

स्नान —

स्नान के लिए गंगाजल का प्रयोग उत्तम समझा जाता था। यही कारण है कि अधिकांश नरेश गंगाजल से स्नान करते मिलते हैं। कवि चन्द ने महाराज पृथ्वीराज को तो पूर्णतः गंगाजल से ही स्नान करते प्रदर्शित किया है।[6] जबकि धीरपुण्डीर आरम्भ में साधारण जल में स्नान करके अन्त में एक कलश गंगाजल से स्नान करते मिलता है।[7] महाराज हम्मीरदेव[8] और मारवाड़ का राजकुमार[9] अनूपी भी गंगाजल से स्नान करते मिलते हैं। आलोच्यकाल में गंगाजल से स्नान की महत्ता का अनुमान इस तथ्य

तिनम वारि बोरि के कुची। रुचिर दन धावनि रचि रची।
प्रति गडूक टारि तब देत। बहुरि कुची कर और लेत।
वत्तिम कुची भरि जब करै। तब सुदत धावन परिहरै। —'वी० च०' २२।४७

१ "करि पावन पवित्र वर, माहन सुरभि सु तल।
मदनीक मदन कर बढ़ धात तन करै। —प० रा० का० ३१६।३१०

२ "सुनि मरम्न का हुक्म। होत मरदनी चालि लिय।
वय किसोर घन घोर। कच्छि अच्छरि समान त्रिय॥
तिन नह देह मनि दह सुप। बरषि मेह सिंगार रस।" —वही, १९६४

३ से ५ द०—श्रम० पृ० रा०' का० २०६५।२१७, प० रा०', २१।६१, 'वी० च० २१।१४

६ "करि मनान गंगादक्क, दिय सु गाइ दस दान।" —पृ० रा०', का० ३१६।१३१

[illegible] "महस कलस भर नीर। इक्क विच कनस गंगाजल।
करि मनान पावित्ति। कीय पच गो महावल॥" —वही, २०६२।२१७

८ "आप राइ चहुआन हमीर। तुरत मगाइ गंग को नीर।
करि असनान दान बहु दीन्हो। बहुरि विप्र गुरु पूजन कीन्हो।
—हं० हं०' च०, २४६

९ "घट भरवावें गंगाजल का और डिडडी में कर असनान।" —आ०' ६८

से लगाया जा सकता है कि अकबर आदि मुगल बादशाह भी अपने स्नान के लिए उनका प्रयोग करते थे।[1]

गंध द्रव्यादि का प्रयोग —

साधारणतया स्त्रियों की भाँति पुरुष भी सुगंधित द्रव्यों का प्रयोग करते थे। कवि चन्द ने महाराज पृथ्वीराज को कस्तूरी, अगर और जवादि के विलेपन से स्वच्छ काया को सुरभित करते प्रदर्शित किया है।[2] अन्यत्र श्रीप्रमाणवारण के लिए भी चन्द ने उनके चन्दन, अगर और कुमकुम के अंगराग का प्रयोग करना प्रदर्शित किया है।[3] वीरचरित्र में वीरगति प्राप्त अर्जुन पजून तथा परमालरासो में ऊदल[4] और ब्रह्मा[5] के शरीर को स्नानादि से सुवासित बनाकर उनके द्वारा सुगंधियों के प्रयोग पर प्रकाश डाला गया है।

आवास —

वीरकाव्य में मुख्यतया राजमहलों तथा उच्चवर्ग के आवासों का चित्रण मिलता है। इस चित्रण से आलोच्यकालीन आवास सम्बन्धी अधोलिखित तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है।

राजमहल प्रायः सतखण्ड बनाए जाते थे। पृथ्वीराजरासो में महाराज पृथ्वीराज, कन्नौज वासियों तथा सामान्यतया धनाढ्य लोगों के[7] एवं वीरचरित्र में महाराज वीरसिंह के महल सतखण्डे प्रदर्शित किए गए हैं। आल्हखण्ड में महाराज जयचन्द[8], माण्डो नरेश[9] और पथरीगढ़ नरेश[10] के भवन सतखण्ड बताए गए हैं। कवि विद्यापति ने जौनपुर में शाह इब्राहीम लोदी के महलों से सूर्य रथ के सप्त अश्वों की टापों के टकरा जाने[11] का उल्लेख करके तथा कवि मान ने उदयपुर के महलों के ध्वजादण्ड और स्वर्ण कलशों को आकाश चुम्बी प्रदर्शित करके[12] उनके बहुत उच्च होने का अवबोध कराया है। कवि भूषण ने महाराज शिवाजी के महलों को ऐसे स्फटिक से निर्मित दिखाया है जिनमें मुख प्रतिबिम्ब देखा जा सकता था।[13] इन महलों में केशवदासजी ने चन्दन की कड़ियों[14] और स्वर्ण पुष्प जटित कपाटों का[15] तथा चन्द ने स्वर्णमंडित कपाटों का प्रयोग दिखाया है।[16] आल्हकार ने भी चन्दन की खिड़कियाँ लगी प्रदर्शित की हैं।[17]

---

१ दे०—आईन ए अकबरी भा० ३ पृ० ५७

२ से ६—दे०—क्रमशः प० रा०, का० ३१६।११२ प० रा०' मा० ३।५६८। १२६ वी० च० ५।६७ प० रा० ३१।३०, ३५।८५

७ से १७—देखिए—क्रमशः प० रा० का० १५५५।२६ वही १६३०।३५४ वही १८।४४, आ० १२।१०, वही ५१।१२ वही १७२।७ कीर्ति० प० ८२ रा० वि० २।६६, शि० भू० १८ वी० च० २०।३ वही २०।७

१८ १९—दे०—क्रमशः 'प० रा० का० १२६६।२२ आ०' ५१।१३

ने महाराज पीर्थीसिंह की रानियों को क्षुद्रघण्टिका पहने चित्रित की है। कवि मान ने सकसरी[1] और रुनझुनी[2] नामक घुंघरू किए अर्पित की।[3]

कवि मान ने किंकणी और क्षुद्रावली पग में भी आभूषण दिखाए हैं,[4] जिससे स्पष्ट होता है कि साधारणतया किसी भी किंकणी या घंटिका नाम आभूषण का किसी भी अंग में प्रयोग हो सकता थी। किंकणियाँ तो नूपुरों में भी जुड़ी रहती थीं[5]—कवि मान ने तो हाथियों के पैरों में नूपुर पहने चित्रित किया है[6] किन्तु उनका प्रयोग कटि में ही अधिक होने से कारण किंकणी कटि में ही अधिक प्रचलित रही थी।

बाहु—बाहु या बाजुओं में बाजूबंद और टाड नामक आभूषण पहने जाते थे। कवि चन्द, मान और रतन ने बाजूबन्दों का प्रयोग दिखाया है[7] जबकि आल्हखंड में राजस्थानी बाजूबन्दों के साथ-साथ आठ-आठ टाड भी पहने दिखाया गया है।[8] कवि सूदन ने टाड, बगा और बाजूबन्द का प्रयोग दिखाया है।[11]

कलाई—कलाइयों में चूड़ी, कंगन, वलय, चूरी, चूड़ियाँ, पहुँची, गजरा, पछेली, अगनियाँ, बगनियाँ और पछेलियाँ नामक आभरण धारण किए जाते थे। कवि चन्द ने वलय, कंगन, चूड़ी और पहुँची,[12] मान ने चूरी, कंकण, पहुँची और कंगन,[13] तथा आल्हखंड के रचयिता ने पहुँचों और गजरों का उल्लेख करते हुए साथ-साथ बाँहों में आगे अंग-नियाँ पीछे पछेलियाँ तथा मध्य में बगनियाँ धारण करने की प्रथा दिखाई है।[14] कवि सूदन ने बगुरी चूरा, पछेली चूरियाँ, कंकण, गुजरी और पहुँची नामक कलाइयों के आभूषणों का उल्लेख किया है।[15]

---

१ से ४ देखिए—क्रमशः, पी० रा० २२।८६, 'रा० वि०' ११।६, वही ७।१८, ११।६
५ 'स्वर्गीय राहुल सांकृत्यायन ने किंकणी लगे नूपुरों का उल्लेख किया है—
— राजस्थानी रनवास, पृ० ८
६ "नूपुर सु पाद घुंघरु निनाद, गजराजन चलत अनुनादा वाद।"
—'रा०वि०, ८।१०
७ "कुच निहार कंचुकिय। भुजनि बंधे बाजूबंध।
—'पृ० रा०', भा० १६७६।१४०
८ ६ देखिए—'रा० वि०' ११।१८, वही, ७।१६, ह० छ०, स्वा० ६
१० आठ आठ की टाड़ें पहिरें बाजूबन्द भूमि भूमि रहि जाय।"—आ० ६३।२५
११ 'बाजूबन्द बराबर छिनिय। बगुरी चूरा लत न गिनिय।
टाड पछेली छिन छिनाइय। चूर चूरि गुरी कस्वाइय।'
—'सु० च०', ६।२।४१
१२ से १४ देखिए—क्रमशः 'पृ० रा०' भा० १६५५।२५१८, १०८५।१८४, 'रा० वि०', ७।१६, आ० १६३।२१ २४
१५ 'सु० च०', ७।२।४१

उँगलियाँ—हाथ की उंगलियों म मुद्रिका, आरसी, भमकन हथ पान और छल्ले पहने जाते थे। कवि चन्द' केशव' और मान' ने मुद्रिकाओं का प्रचलन दिखाया है, जबकि आल्हखार ने बीस मुद्रिकाओं के साथ साथ छल्ला का भी प्रयोग उल्लिखित किया है।' सूदन न छल्ला अगूठी आरसी और जजीर लग भमकन नामक उंगलियो के आभरणो का उल्लेख किया है।' कवि जोधराज न हथपान पर हथ फूल नामक आभूषणो का प्रचलन दिखाया है जो' हाथ के पृष्ठभाग पर पहना जाता था।

पैर—पैरो के अगूठो म अनवट या अनौट और गाट तथा उँगलियो म बीछिया और छल्ला पहने जाते थे। स्त्रियो के आभूषणो म कभरियाँ, भाभन पायल क्षुद्रावली किंकिनि नूपर साटर जहरि घूघुरु छर पायजेब नहियाँ गुजरी और पौंच पहनने का प्रचलन था। कवि चन्द न अनौट गाहरि नूपुर जहरि घूघुर, बीछिया साट और तोडर नामक आभूषणो का उल्लेख किया है।' इसी भाति कवि मान ने अनवट बीछिया भाभरि पायल क्षुद्रावली और किंकिनि का केशव न नूपुर जहरि और घाघा का[1] श्याल न—पायजेब छर और छल्ला का[11] आल्हखार ने अनवट पायल नवर बीछिया, नहिया और गुजरी का[11] तथा सूदन ने पायल पग पान, नूपुर चुटकी फूल भाभ और गुजरी नामक आभूषणो के प्रयोग पर प्रकाश डाला है।[11] नूपुरो के विषय म यह तथ्य उल्लेख्य है कि वे उँगलियो म पहने जाने वाले बीछिए नही होते थे अपितु घुघरू या किंकिणियो से युक्त टांगो म बाँधा जाने वाला आभूषण होता था जिसे हाथियो की टांगो म भी बाधा जाता था।' कवि चन्द के साक्ष्य पर कहा जा सकता है कि निधन स्त्रियाँ और ग्रामीण-बालाए अपनी आभूषण धारण करने की इच्छापूर्ति सतफल (अलीगढ के समीप इसे पुनमन कहा जाता है) के फलो को विविध आभूषणो का रूप देकर कर लेती थी।[15] छल्ला का हिन्दू और मुसलमान स्त्रियो द्वारा भिन्न अगो पर प्रयोग मिलता है। हिन्दू स्त्रियाँ उन्ह

---

१ से ८—देखिए—क्रम० पृ० रा०' का० १०८७।१६० बी० च०, २२।७५, रा० वि० १।१६ आ० १६३।८, सु० च०, ६।२।४१, ह० रा० ७५६ पृ० रा० ६६।१६१ पृ० रा०', का० १६६।६५ १०२६।६०, 'पृ० रा० १५।१८०, वही १०८५।१८१ वही १७७६।१४२

६ से १२—देखिए—क्रम० रा० वि० १।१३ १४ ७।१६ २०, वी० च० २२।८५ २५।३ ह० ह० १० आ० १६३।५ वही ४४०

१३ पाइल औ पगपान सु नूपुर। चुठकी फूल अनौट सुभूपर।
लहरि भाभन गुजरी टूटिय। बहु भूपन म एक न छुट्टिय। — सु०च० ६।२।४१

१४ नूपुर सु पाइ घु घरु निनाद, रनभनत चलत जनु वदत बाद।
— रा० वि०', ८।१०

१५ सत्त खन आवास महिलान मह सद नूपरया।
सतफल बज्जनु पयसा। पत्त्वरिय नव चालति।" — पृ० रा०, ११।७०

हाथ की उँगलियों में पहनती थीं, जबकि ग्वाल ने मुस्लिम स्त्रियों को उन्हें पैरों में पहने चित्रित किया है।

पुरुष—पौरवाव्य से आनाच्छन्न ॥ पुरुष भी स्त्रियों की भाँति आभरण प्रिय सिद्ध होते हैं। कवि चन्द ने महाराज की बरात में दुल्हिन नर-नारियों को आभरण और शृंगार पुरुषों द्वारा आभूषणों के प्रयोग पर प्रकाश डाला है।[1] कवि सूदन ने भी नायिकाओं के शरीर आभूषणों से मंडित प्रदर्शित करके पुरुषों की आभरण प्रियता का प्रकाशन किया है।[2] अलबेरूनी के विवरण से ज्ञात होता है कि—पुरुष कान बाहु तथा हाथ और पैरों की उँगलियों में आभूषण पहना करते थे।[3] पुरुषों के कानों में कवि चन्द ने स्वाति-सुत नामक आभरण का प्रयोग दिखाया[4] है जबकि 'परमालरासो' और 'आल्हखण्ड' में धनुषों में कुण्डलों का प्रयोग प्रदर्शित किया गया है। हाथ में स्वर्ण के कड़े पहनने का प्रचलन शिशु और युवक सभी में था। 'परमालरासो' में रुद्र आल्हा ऊदल को मनाने के लिए मुसलमानों और ... भेजे जाते हैं। महारानी मल्हना बारह-वर्षीय ब्रह्मानन्द ... हाथों में स्वर्ण-कड़े पहनाती चित्रित की गई है।[5] अन्यत्र भी जोगीवेशधारी ब्रह्मानन्द स्वर्ण के कड़े पहने मिलते हैं[6] तथा ऊदल अपने मालिक को प्रलोभन देता है कि विजयी होने की दशा में मैं तुम्हारे हाथों के लिए स्वर्ण-कड़े बनवा दूँगा[7] जिसमें पुरुषों द्वारा कड़ों के प्रयोग पर प्रकाश पड़ता है।

पुरुष भी स्त्रियों की भाँति अपनी ग्रीवाओं में मुक्ता मालाएँ धारण करते थे, जिसका 'पृथ्वीराजरासो'[11], 'परमालरासो'[12] और 'आल्हखण्ड' में[13] चित्रण मिलता है।

---

१ 'बिन आभरन नर नारि सब। बिना नग ग्रह रूप।'
—'पृ० रा०' भा० २, ८८।११

२ (क) "बहु भौन छिद्र अति लाल लाल, जन इन्द्र वधू करि रहिय जाल।
बहु भूषन कंचन के सुमिन जुगनू समात चमकत छिपत।"
—'सु० च०' १।४।६

(ख) "मढ़े बहु कंचन भूषन अंग। जढ़े मनु बाहन अंग।
पढ़े रन रंग अभंग सुधीर। ठढ़े रन भूमि जहाँ रघुबीर।"—वही २।३।८

३ "The men wear articles of female dress, they use cosmetics, wear ear rings arm rings golden seel rings on the ringfinger as well as on the toes of the feet" —'Alburuni's India' p 181

४ 'श्रवन विराजत स्वाति सुत। बरनत कवि बखान।'
—'पृ० रा०', भा० १५६-१०३

५ से १०—द० 'प० रा० ५।२४, आ०', ३६।८, 'पर० रा०' १६।१२, आ०', २६।६, ३६।३६ ७७।१२

११ से १३—देखिए—क्रम०, पृ० रा० भा० १२१६।११७ प० रा०' ५।४३, आ०' ४७।२०,

शिशुश्रा के कठ म केहरि नखयुक्त मणिया का कठुला पहनाया जाता था।[1] क्षत्रिय योद्धाओ म अपनी एक टाँग म सोने का कडा या जजीर पहनने की भी प्रथा थी। कवि चन्द ने उसे पवग[2] और सकर[3] तथा कवि मान न टोडर के नाम से अभिहित किया है। कवि सूदन ने स्त्रियो की लूट म स्त्रियो के साथ साथ पुरुषो के भी आभूषणो की लूट का वणन किया है जिससे ज्ञात है कि वे—सिर पर कलँगी तुर्रा और और सिरपेच, काना म कुडल मोती गुरदा गोखरू और रुद्राक्ष के मनके ग्रीवा म तोडा कठी रत्न मालाए चौकी और माकरें, हाथा म कडा पहुँची हथ साकर और छाप, कटि म किंकिनी और कौधनी तथा पगा म पजनी धारण करते थ।[5]

शृ गार प्रसाधन

मानव स्वभावत श्रृगार प्रेमी है। निज सम्पर्क म आने वाली सभी वस्तुआ का एक विशेष कलात्मक साज सज्जा से युक्त देखन की उस महज आकाक्षा रहती है। उसकी इस सौदय पिपासु प्रवृत्ति ने स्त्रिया की नैसर्गिक शृगार प्रियता को और भी अधिक अभिवद्ध किया है। वे आदिम युग स ही प्रकृति प्रदत्त सौकुमाय और लावण्य म चार चाद लगाने की आकाक्षा स विविध शृ गार-उपादाना का प्रयोग करके व प्रेमियो की हृदय हारिणी बनने की चेष्टा करती रही है। वीरकाव्य की नायिकाएँ राज कुमारिया और रानियाँ थी जिनसे उन्हें सभी प्रकार की शृ गार सामग्री सहज उपलब्ध थी। दास दासियो के बाहुल्य के कारण वे गृह-कार्यों की ओर से निश्चिन्त भी रहती

१ प० रा०' का० १४१।७२६

२ "फुनि कन्हा प्रथिराज नप पाव पवग परठिठ।
लेहु नही मन सभ्र मल, निटठ चन्हाइम हठिठ॥'

—प० रा० का० १२१६।११६

३ "सकरह हेम तोलह निसत्त। निय पाय कटिठ किय धीर दत्त।"

—वही, २०३२।८३

४ 'पल बावन टोडर इक्क पय। बापा रावर अतुलबल। —'रा० वि० २।२४०

५ स्त्रियो के आभरणो का सूदन ने छठी जग के इकतालीसवें छद म वणन किया है। इसके आगे उन्होंने अधोलिखित छ द लिखा है —

कलगी तुर्रा और जग सिरपेच सु कु डल।
मोती गुरदा श्रौर गोखरू रुद्राक्ष मल॥
तोरा कठी माल रतन चौकी बहु माकर।
केढा पहुची कटक सुमरनी छाप सुभाकर॥
किंकिनी कौधनी पजनी हथ सकर झकर लुटे।
आभरन नर बहु भाँति के फुटे बुटे टूटे जुटे॥'

—'सु० च०', ६।२।४२

थी, अत अपनी साज-सज्जा पर उन्हे इच्छित समय लगाने का पूर्ण अवकाश मिलता था। बहुपत्नी प्रथा के प्रचलन न उनकी यह अलंकरण प्रियता, कदाचित उनके जीवन का मूल मन्त्र ही बना दी थी। पति प्रेम-पात्री बनने के लिए सपत्नियो म अभिनव श्रृंगार प्रणालियाँ अपनाकर एक-दूसरी से बढ़कर आकर्षक प्रतीत होने की प्रतिद्वंद्विता सी व्याप्त रहती थी। पर्व और उत्सव पर साधारण परिवार की स्त्रिया भी अनेक प्रकार के श्रृंगार-प्रसाधन प्रयोग करती चित्रित की गई हैं।

स्त्री श्रृंगार के सदर्भ म वीरकाव्य प्रणेताओ ने सोलह श्रृंगार करने का बहुश उल्लेख किया है जिसमे स्पष्ट होता है कि श्रृंगार क्रिया के सोलह अंग स्वीकार किए जाते थे। कवि चन्द ने शशिव्रता[1] इंद्रावती[2] प्रियाबाई[3] संयोगिता[4] तथा दासियाँ[5] सोलह श्रृंगारो से मंडित प्रदर्शित की हैं। रासोकार के अतिरिक्त कवि जटमल ने बादल पत्नी,[6] परमाल रासोकार ने मल्हना[7] तथा आल्हकार ने गजमालिनि,[8] नरवर गढ की मालिन[9] और बौरीगढ़ की स्त्रियो द्वारा सोलह श्रृंगार करने का उल्लेख किया है।

सोलह श्रृंगारो के वीरकाव्य म प्रचुर निर्देश मिलते हुए भी न तो किसी वीर काव्यप्रणेता न उनकी तालिका दी है और न उनके द्वारा वर्णित श्रृंगार प्रकारो की संख्या ही निश्चित रूप म सोलह बैठती है। संस्कृत साहित्य म भी उनकी देश और काल के भेदानुसार, वैषम्ययुक्त तालिकाएँ मिलती हैं। श्री अत्रिदेव विद्यालंकार ने 'सुभाषितावली' 'उज्ज्वल नीलमणि' और उत्तर मेघ के आधार पर षोडश श्रृंगारो की जो तीन सूचियाँ दी हैं[11] उनमे—१ उबटन, २ स्नान ३ सुवसन ४ तिलक-रचना ५ केश पाश रचना, ६ चरण राग या आलक्तक का प्रयोग, ७ अंगरागो से शरीरांगो का चर्चित करना और ८ ताम्बूल-सेवन को तीनो सूचियो म स्थान दिया

---

१ "सुवत छुद्र घण्टिकानि। षोडस बपाय।" — पृ० रा०, का० ८०४।३१६

२ 'सिंगार सारूप कर। सुरम्म दपन धरे।' —वही, १०२५।७

३ 'पट दून चवगुन म उरन। सिनगार अभूषन एकहन।' —वही ६१३।८८

४ 'सुवीर चारु सो रस। सिंगार मंडि षोडस।' —वही १६१५।२५२० और भी दे० वही १६७१।१०९ १६७७।१२६

५ दे० वही, २११२।८८

६ 'नव मन साजि मजान नारि बादल प आई।" — गो० क०, छ० ११३

७ 'यह कहत ग्रंथ मनिजान वर य षोडश सिंगार गनि।'

—'पर० रा०', १०।३३५

८ 'बारहु भूषण सज सुहागिन औ करिके सोरहु सिंगार। —'आ० ४४०।६

९ १० देखिए—वही, ४४०।९ २३३।६

११ दे०—'प्राचीन भारत के प्रसाधन, पृ० ४०-४१

गया है। १ स्नान-नहाने, २ स्नानागार या सुगन्ध लगाना ३ वसना या सूक्ष्मी धारण करना, ४ नाना मौक्तिक के प्रयोग ५ पुष्पमाला धारण करना ६ हाथ में दर्पण लेने, ७ चिबुक पर तिल बनाने को दो सूचियों में तथा १ नूपुर, २ कंकण और ३ नूपुर पहनाने ४ हाथ में पान लेना ५ केशों में पुष्प-माला ६ भारी पत्रावलि से शरीर को चित्रित करना ७ मेंहदी रचाना ८ माँग भरना और दाँतों में मिस्सी लगाने का भाव किसी एक सूची में शृंगार के रूप में परिगणित किया गया है। इस अवस्था के कारण दोनों सूचियों में सोलह शृंगारों के स्थान पर पच्चीस शृंगारों की नामावली प्राप्त होती है।

आईन-ए-अकबरी में भी शृंगार के सोलह अंगों की जो नामावली दी गई है उसके अनुसार १ स्नान या उबटन लगाना २ स्नान ३ जूड़ा बाँधना ४ माँग में मोती भरना, ५ चन्दन विलेपन, ६ सुरमा ७ सम्प्रदाय या जाति विशेष से सम्बद्ध चिह्न बनाकर उन्हें मुक्ता या स्वर्णाभरणों से अलंकृत करना ८ काजल लगाना ९ कर्णाभरण पहनना, १० नाक में कील या नथ पहनना ११ ग्रीवाभरण धारण करना, १२ मुक्ता और पुष्पों के हार पहनना १३ मेंहदी रचाना १४ किंकिणी पहनना, १५ पैरों में आभूषण पहनना १६ पान खाना तथा स्त्री का मधुर भाषिणी होने के साथ साथ उसका चातुर्य स्त्री शृंगार के सोलह अंग होते हैं।[1]

'हिन्दी शब्द सागर'[2] और 'प्रामाणिक हिन्दी कोश'[3] में — १ उबटन २ स्नान ३ गन्ध द्रव्यादि का प्रयोग ४ काजल लगाना ५ वेणी बाँधना ६ माँग भरना ७ बिंदी तथा तिलक रचाना ८ चिबुक पर तिल लगाना ९ मेंहदी रचाना १० महावर लगाना ११ पुष्पमालाएँ पहनना १२ ताम्बूल खाना १३ दाँतों पर मिस्सी लगाना १४ सुवस्त्र और आभूषण पहनने को दोनों कोशों में सोलह शृंगारों में परिगणित किया गया है। शब्द सागर में सोलहवाँ शृंगार होठ रचाना को माना गया है जबकि द्वितीय कोश में उसका स्थान दस गणना करने को दिया गया है।

सोलह शृंगारों के सम्बन्ध में इस वैविध्य के कारण ही आचार्य केशवदास का कवि नियम वर्णन शीर्षक के अन्तर्गत व्यक्त किया गया यह मत अधिक समीचीन प्रतीत होता है कि यद्यपि स्त्रियाँ अनेक प्रकार के शृंगार करती हैं तथापि कवि प्रसिद्धि में सोलह शृंगार रूढ़ हो गए हैं जिससे उन्हें शृंगार-वर्णन के प्रसंग में सोलह शृंगारों का ही उल्लेख करना चाहिए।[4]

---

१ दे०— 'आईन ए अकबरी' भाग ३ पृ० ३४२-४३
२ दे०— हिन्दी शब्द सागर पृ० ३६६२
३ दे०— प्रामाणिक हिन्दी कोश पृ० १२२८
४ सहज सिंगारत सुन्दरी जदपि सिंगार अपार।
तदपि बखानत सकल कवि सोरहई सिंगार। — कविप्रिया, ४।१६

सोलह शृंगारों के विषय में यह तथ्य भी निवेदनीय है कि इन बाह्यारोपित सोलह शृंगारों के स्थान पर स्त्रियों के शरीर में सोलह प्रकृति प्रदत्त शृंगार भी स्वीकार किए जाते थे। कवि चन्द ने महारानी इञ्छिनि के शुक के मुख से (जो संयोगिता के कामकेलि गृह में निवास का सौभाग्य प्राप्त कर आया था) संयोगिता के कुच भुजमूल नितम्ब एवं जंघाओं को पृथुल, उसके कर कटि, और कमलस्थल (गुल्फाग) को कृश नग्न हास, कण और माग को उज्ज्वल तथा कुचाग्रभाग कच एवं दृगतिला को श्यामवर्ण के बतलाकर उसकी तन वल्लरी सोलह शृंगारों का आकर प्रदर्शित की है।[1]

वीरकाव्य में उपलब्ध निर्देशों के आधार पर सोलह शृंगारों पर प्रकाश डालने से पूर्व यह निवेदन करना भी आवश्यक है कि उसमें हाथ में कमल-पुष्प लेना, दन्त मजन, होठ रंगाने आदि का चित्रण नहीं मिलता। इसी भांति मिस्सी का प्रयोग भी शृंगार वर्णन के प्रसगों में अनुल्लिखित है। मुस्लिम लेखक खुन जन द्वारा भी मिस्सी के प्रयोग को सोलह शृंगारों में परिगणित न करना विशेष महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसे प्रायः मुगल सभ्यता की ही देन स्वीकार किया जाता है। वीरकाव्य में भकुटियों को कज्जल रेखा से श्याम और वक्र बनाने तथा कपोलों पर चदन चित्रों की रचना करने के दो अभिनव शृंगारों का भी चित्रण मिलता है। स्त्रियों की भांति पुरुष भी इनमें कई प्रकार के शृंगार करते मिलते हैं किन्तु विवेचन सौकर्य की दृष्टि से पहले स्त्री शृंगारों पर प्रकाश डाला जा रहा है।

(१) उबटन— उबटन मलने का मूलोद्देश्य शरीरांगों में मार्दव लाकर, उनकी कांतिवर्धन करना होता है। कवि चन्द ने इञ्छिनि[2] और शशिव्रता[3] शृंगारारम्भ में स्व-दासियों से उबटन मलवाने चित्रित की है।

(२) स्नान— स्नान को नित्यिक कर्म के स्थान पर सोलह शृंगारों में परिगणित करने का मूलकारण कदाचित यही है कि, उससे शरीरांगों की कांति निखर उठती है। इञ्छिनि,[4] शशिव्रता[5] उबटन मलवाने के पश्चात स्नान करती है। स्नान के

---

१ "दिगस धून सित असित। थान चव एक एक प्रति।
पानि पाद कटि कमल। सयन रजे सुक्षम अनि।
कुचमन्न भुजमून, नितम्बजंघा गुरुअत करज हास गोत्रान माग उज्जल साउत,
कुच अग्र कच्च द्रिग मद्धि तिल, स्यामा अंग स्त्र गवर।
पान्स सिंगार सास्त्र सजि। साइ रज सजोगितन।"
—प० रा०' का० १६७५।१०८

२ "विन कर्मनर अंग मुरग रसी। मुहन्न जालाय मदन कमो।
लव लानइ सोइ उबट्टन की। कि कस्यो मनु काम सुपट्टन की।"
—'प० रा०' का० ८८०।४६

३ से ५ क्रमशः—वही, ८०२।३०४, ८८१।५३, १०७५।५७

लिए प्रयुक्त जल को घनसार[1] और केसर[2] आदि द्वारा सुवासित कर लिया जाता था। इन्द्रावती,[3] हंसावती[4] और संयोगिता[5] भी अन्य शृंगार करने से पूर्व स्नान करती हैं। केशवदासजी ने महाराज वीरसिंह देव की रानियाँ स्नान करके आभूषण धारण करने से पूर्व स्नान करते चित्रित की हैं।[6]

(३) गन्ध द्रव्यादि का प्रयोग—स्नानोपरान्त शरीर को अगर, चन्दन और कपूर आदि के विलेपन से चर्चित किया जाता था। इच्छिनि स्व शरीर पोंछकर उसे धूप के धूम्र से सुगन्धित करती है। इन्द्रावती कस्तूरी धारण करने से पूर्व चन्दन का विलेपन लगाती है[8] जबकि संयोगिता स्नानोपरान्त शरीर को विविध प्रकार की सुगन्धियों से विभूषित करती है।[9] वीरसिंह देव की रानियाँ बहुविधि अंगरागों का प्रयोग करती[10] तथा चन्दन के गाढ़े विलेपन से अंगद्युति अभिवृद्ध करती हैं।[11] भूषण ने इत्र गुलाब चोवा और घनसार का प्रयोग परोक्ष रूप से प्रदर्शित किया है। उनके शब्दों में महाराज शिवाजी के त्रास के कारण बेगमों को इन सुगन्धित द्रव्यों की याद ही विस्मृत हो जाती है।[12]

(४) केश-प्रसाधन—भीगे केशों को सुखाने के लिए उन्हें अगर आदि सुवासित धूपों का धूम्र दिया जाता था। संयोगिता अपने आवरण करते हुए केशों को सुवासित धूम्र से सुखाते चित्रित की गयी है।[13] वेणी या कबरी बाँधने से पूर्व उनमें इत्र फुलेल डाले जाते थे। शशिव्रता,[14] संयोगिता[15] और गजमोतिन[16] अपने केशों में सुगंधित तेलों का प्रयोग करते प्रदर्शित की गई है। केशों को घुंघराले, सुकोमल और लम्बे बनाने के प्रयास किए जाते थे। कवि चन्द ने संयोगिता और इच्छिनी अपने शृंगार विदा पर केशों की एक एक लट गिराये प्रदर्शित की है।[17] जोधराज ने अप्सराओं की अलकों में भ्रमर समूह का भ्रमत रहना चित्रित किया है।[18] केशवदासजी ने भी छोटी-छोटी अलकें चमकत दिखाई है।[19] श्रीअत्रिदेव विद्यालंकार ने भी प्राचीनकालीन केश प्रसाधन में अलकजाल बनाने, घुंघराली लटें ललाट और मस्तक पर सुशोभित करने तथा उन्हें मुक्ता या पुष्पों से गूँथकर सजाने की प्रथा होने का उल्लेख किया है।[20]

---

१ से ५ देखिए—पृ० रा० ८०२।३०३, ३०८, १०२५।५७, १०८४।१५८, १६६८।८१

६ 'बहु विधि मज्जन अंजन कर अंगराग बहु अंगनि धर।'—वी० च० २०।२०

७ 'करि मज्जन अंगाद्धि तन धूप वासि बहु अंग।'—पृ० रा० का० ६५।१५३

८ से १६—देखिए—क्रमशः पृ० रा० का० १०२६।६१, वही, १९८८।२८२०, वी० च०, २०।२०, वही २६।४, शि० बा० ११, पृ० रा० का० १६६८।५८, वही ८०३।३१०, वही १६६८।५३, बा० १६४।८

१७ से १९—देखिए—क्रमशः पृ० रा०, का० १६६८।५७, ६७।१८०, ह० रा० १४०, वी० च०, २२।६६

२० प्राचीन भारत के प्रसाधन, पृ० ४४

कवि पदमाकर ने उत्कृष्ट सौन्दय के परिमाप श्रोणिपुट केशों का ही नहीं, वरन् एडिया का चूमने वाले, केशों वाली स्त्रिया प्रदर्शित की है।[1]

वेणी बाधने की रीतिया म या तो नागिन सदृश एव नटवाली कवरी का प्रचलन था, अथवा अधुना बहु प्रचलित दुहरी वेणी के स्थान पर तीन वणिया बनाई जाती थी। कवि चन्द ने शशिव्रता[2] तथा जोधराज न अप्सराएँ[3] तीन वेणिया धारण किए चित्रित की ह। सूदन[4] और आल्हकार[5] ने चुटीले के प्रयोग पर भी प्रकाश डाला है।

(५) माग निकालना—केशा का शीश के मध्य भाग स दाना और विभाजित करते हुए मांग या पटिया निकाली जाती थी।[6] कवि चन्द ने पटिया का प्रेम की वाट बताकर, तथा जोधराज ने सुघन पटिया का शृगार-भूमि क पटन स उपमित करके[7] उनकी स्त्री शृगार म महत्ता का अभिद्योतन किया ह। आभरणा क प्रयाग म पीछे मांग या सीमन्त का माती और लाल आदि स विभूषित करने का उल्लख किया जा चुका है। सधवा स्त्रिया माती आदि के ऊपर सिंदूर का भी प्रयाग करती थी, जिसका कवि चन्द[8] केशव[9] और आल्हकार[10] ने चित्रण किया है।

(६) काजल लगाना—वीरकाव्यकारो ने स्त्रिया के कज्जल कलित नेत्रो को वशीकरण का अमोघास्त्र बताकर[11] नेत्रो म मसि का प्रयोग उनके शृगार का एक महत्वपूर्ण अग सिद्ध किया है। काजल को सुगधित और गुणकारी बनाने के लिए धनवान् स्त्रिया उसम कस्तूरी भी मिला लेती थी जबकि निधन स्त्रियाँ मात्र साधारण मसि का ही आजकर अभीष्ट साधन करती थी।[12] आँखो म काजल लगाने के साथ साथ, उनके कोआ क इतस्तत सुरमा की रगा खींचकर व अपने नेत्रा को अनियारे एव कानचारी दिखाने का भी प्रयास करती थी।[13] इच्छिनि, इन्द्रावती शशिव्रता, सयोगिता वीरसिंह की रानिया और गजमातिन, सभी स्त्रिया शृगार करते हुए काजल

१ 'तुटि धनी गुरफें गिसियत तुलर छ छ गुनफ छिनि छहर।"
—प्र० वि०, ११३

२ 'अनक पुन्न वीचि ग्रथि। भामिना त्रिपडिय।
मना सनाम पुन्न जाति। तीन पथि मडिय।" —प० रा० का० ८०३।३१०

३ "स्त्रवेस कग पागय, मना कि मन फासय।
गुही त्रिविद्धि वनिय कि माह किन मनय। —'ह० रा० १३२

४ स ७ द०—क्रम० मु० च० ६।२।८१, 'आ०' १६४।४, प० रा०', का० ५५३।६८, वही, ८०३।१२६

८ स १४ द०—क्रम०, 'ह० रा० १३३, प० रा०, का० ८०३।३११, वी० च०' २१।८४, आ०', ४८०, प० रा०, का० ५६८।१८६, वही १८।४८, आ०' १६४।६

लगाना नहीं भूलती। काजल के प्रयोग में मुगल स्त्रियाँ भी पीछे नहीं थी। भूषण ने उनके कज्जल मिश्रित अश्रुओं से यमुना-जल का और भी अधिक श्यामवर्ण हो जाना प्रदर्शित किया है।[१]

(७) वक्रिम भृकुटियों की रचना करना—अनियारे दृगों पर वक्रिम भ्रू विलास का संगम प्रियजन हिय-वेधन में रामबाण जैसा सफल रहता है। यही कारण है कि कवि चन्द ने संयोगिता[२] और प्रियाम्बरि[३] कज्जल मसि से अपनी भौंह श्याम-वर्ण तथा वक्रिम बनाते प्रदर्शित की हैं। डॉ० बी० एन० चावड़ा ने भी यह मुगलकालीन नारी शृंगार की एक बहु प्रचलित रीति बताई है।[४]

(८) बिन्दी एवं तिलक रचना—मस्तक पर तिलक आड़, और बन्दियों के लगाने के प्रचलन पर पीछे प्रकाश डाला जा चुका है। इनके अतिरिक्त सिंदूर कज्जल और केसर आदि से भी तिलक और बिंदियों की रचना करने का प्रचलन था। पृथ्वीराजरासो में दो भिन्न प्रसंगों में दर्पण-हस्ता संयोगिता कस्तूरी केसर और काजल से तिलक रचना करके उनमें इतस्ततः कज्जल रेखाएँ खींचते चित्रित की गई है।[५] हम्मीर रासो में अप्सराओं के मस्तक वृहदाकार लाल रंग की बिंदियों से सुशोभित दिखाए गए हैं।[६] कवि मान ने सरस्वती के चन्दन और केसर चर्चित मस्तक पर सिन्दूर की लाल बिन्दी लगी प्रदर्शित की है।[७] भूषण ने काम कलित वामाओं के मस्तक पर लगी लाल बिंदियाँ बिखरते दिखाई हैं[८] तथा यवन-पत्नियों के मस्तकों को भी सिन्दूर विहीन दिखाकर[९] प्रकारान्तर से मस्तक पर सिंदूर की बेंदियाँ लगाने के प्रचलन पर प्रकाश डाला है।

---

१ देखिए— शि० भू० २६६ और भी देखिए छ० १०१,२६७

२ 'रच जल कज्जल रेख सुमेष। मुषी भय काम जर जनु एष।'

— पृ० रा० का० १६६८।५८

३ "बनी वर भौंह सु वक्रिय एह मनो धनु काम धरे गिन जेह।' — वही ६५२।७४

४ 'It was usual for high class ladies to use missia for blackening between the teeth and antimony for darkening their eyelashes'

— Society and Culture in Mughal Age, p 22

५ (क) 'तिलक्क द्रप्पन करी। श्रव न मंडन धरी।

— पृ० रा० का० १६५४।२५१५

(ख) तिलक्क सभाल रची रचि रंप। मनो भय ग्रेह दुआरिन दंप।
घन भुअ दूज तिलक्कस रानि। जित घर अद्धर लग्ग सुतानि।

—वही १६६८।५७

६ से ६—दे० क्रम० ह० रा० १३८ रा० वि० ११२७ भू० ग्र०', स्फुट छं० ४४ शि० भू०', १७३

कवि भूषण द्वारा यवन मुस्लिम स्त्रियों का भी सिन्दूर की बिन्दियाँ लगाये प्रदर्शित करने के विषय में दो शब्द अपेक्षित हैं। भूषण ग्रंथावली के सम्पादक एवं टीकाकारों ने, इसके विषय में अपने उद्गार भिन्न भिन्न प्रकार व्यक्त किये हैं। इस छन्द में सिन्दूर का प्रयोग प्रदर्शित करने वाली पंक्ति के विषय में मिश्रबन्धुओं और ब्रजरत्नदास में पाठ भेद भी मिलता है। मिश्रबन्धुओं ने उसका पाठ—'तेरे रास दरियत आगरे दिल्ली में बिन सिन्दूर के बुंद मुख इंदु जमनीन के' देकर पादटिप्पणी में संभावना व्यक्त की है कि उन दिनों यवन अथवा मुगल स्त्रियाँ सिन्दूर का प्रयोग करती थीं।[1] ब्रजरत्नदास ने, उसका पाठ—

'तेरे रास देरियत आगरे दिल्ली के बीच सिन्दूर के बुंद मुख इंदु जमनीन के'[2]

देकर परिशिष्ट में टिप्पणी दी है कि मुसलमानों में सिन्दूर की प्रथा नहीं है पर कवि ने यह प्रकट किया है कि मानो वे आरम्भ ही में विधवा हो गई थीं, इसीलिए उनके मुख चन्द पर सिन्दूर बुंद नहीं दिखता। कहना न होगा कि ब्रजरत्नदास द्वारा लिए गए पाठ में सिन्दूर बुंद दिखने का उल्लेख है। श्री राजनाथ शर्मा ने एक अन्य ही कल्पना की है। उनके अनुसार मुगल स्त्रियों ने सिन्दूर बिन्दु इसलिए लगा रखे हैं कि वे हिन्दू स्त्रियाँ जान पड़ें और उनकी रक्षा हो जाय।[3] यह अर्थ भी दो दृष्टियों से अग्राह्य है—प्रथम तो प्रस्तुत पद्य की पहली पंक्ति—'सरजा समत्थ वीर तेरे बैर बीजापुर बैरी बयगिन कर चीन्ह न चुरीन के'[4] में भूषण मुगल पत्नियों के वैधव्य का वर्णन करते हैं अतः तदनन्तर पंक्ति में भी वैधव्य का ही वर्णन तर्कसंगत है। दूसरे जंगलों में भटकती हुई मुस्लिम स्त्रियों की मात्र सिन्दूर बुंद के कारण सैनिकों से रक्षा होना और वह भी उनका सम्मान करने के लिए प्रसिद्ध महाराज शिवाजी के सन्दर्भ में सर्वथा अनुपयुक्त लगता है। अतः हमारी दृष्टि में मिश्रबन्धुओं द्वारा प्रदत्त पाठ ही अधिक उपयुक्त है। हाँ यवन मुस्लिम स्त्रियों द्वारा सिन्दूर का प्रयोग करने के सम्बन्ध में हमारा अनुमान है कि इसे मुगलों की सभी पत्नियों के स्थान पर उनकी हिन्दू पत्नियों के लिए प्रयुक्त समझना चाहिए, जो अपने हिन्दू संस्कारों के कारण यदि सिन्दूर का प्रयोग करती रही हों तो इसमें अनौचित्य ही क्या है? अधिकारियों मुसलमानों अर्थात् हिन्दुओं से मुस्लिम बने लोगों की पत्नियों के विषय में भी यही सम्भावना की जा सकती है।

(९) चिबुक पर तिल बनाना—गौराभ मुखचन्द्र पर काले तिल की शोभा ने कवियों को 'तिल शतक' जैसी कृतियों के प्रणयन की प्रेरणा दी है। आलोच्यकाल में भी इसकी इतनी महत्ता थी कि यदि स्वाभाविक तिल न हो तो उसकी पूर्ति ठोडी

---

१ से ३ दे०—क्रमशः 'भू० ग्रं०' मिश्रबन्धु, पृ० ६१, 'भू० ग्रं०', ब्रजरत्नदास, पृ० ११, 'भू० ग्रं० राज० शर्मा पृ० १०६

४ 'शि० भू०', पृ० १७३

पर मसि का कृत्रिम तिल बनाकर करली जाती थी। सयोगिता सोलह सिंगार करते हुए चिबुक पर तिल रचना करते चित्रित की गई है।[1]

(१०) **कपोलों पर चित्र रचना**—शृ गार के कौशगत सोलह अगो म अनुल्लिखित इस शृ गार पद्धति का कवि चन्द और केशवदास ने उल्लेख किया है। कवि चन्द न सयोगिता स्तमुग्चद्र ना कस्तूरी और घनसार बिन्दुओ से मण्डित करते चित्रित की है।[2] महाराज वीरसिंह देव की जल क्रीडा का वर्णन करते हुए कवि केशव न उनकी रानियो के कपोलो से चन्दन और केसर निर्मित चित्रो का मिट जाना प्रदर्शित करके[3] परोक्ष रूप म सकेतित किया है कि कपोलो पर चित्र रचना भी स्त्री सिंगार का एक आवश्यक अग थी। अत्रिदेव विद्यालकार न भी प्राचीनकाल म कपोलो पर चित्र कम और पत्र भग की रचना करने का प्रचलन दिखाया है।[4]

(११) **मेहदी रचाना**—कवि चन्द न रुक्मिणि के हाथो क साथ साथ उनके नखो भी मेहदी रजित प्रदर्शित किए हैं।[5] कवि मान ने सरस्वती और रूपसुन्दरि का[6] तथा कवि चन्द और जोधराज ने अप्सरा-शृ गार का वर्णन करते हुए उनके करो पर मेहदी रचाना चित्रित करके[7] मेहदी के प्रयोग को स्त्री शृ गार का आवश्यक अग दिखाया है।

(१२) **महावर जावक या अलक्तक से एडियाँ रचाना**—कवि चन्द न इछनी द्वारा सुरग एडियो को जावक से रगने के दृश्य को उसके सौभाग्य का प्रतीक बताया है[8] जिसस स्पष्ट होता है कि सधवाओ के लिए एडियो का रचाना आवश्यक समझा जाता था। श्री अत्रिदेव विद्यालकार के अभिमत म भी महावर का न लगाना शोक या विरह का सूचक समझा जाता था अत सुहागिन स्त्रियाँ महावर चिह्न रूप म इसको धारण करती थी।[9] महावर दगुर या जावक का प्रयोग लगभग सभी स्त्रियो के शृगार वर्णन म मिलता है। चन्द न इन्द्रावती[10] गौरी[11] और सयोगिता[12]

---

१ चिबुकरह तिल अमल स थानि, प्रमानि कल अली सिसु ठानि।
— पृ० रा० खा० १६६६।६१

२ सु दरी सिद्धि कस्तूर सतरग धनसार बिन्दु। — वही १६७८।१०७

३ मिटे कपोलिक चन्दन चित्र लाग कहि रच्यो सिंगार। — बी० दे० ८।२१

४ दे० प्राचीन भारत के प्रसाधन पृ० ७३

५ नखन सत नग रानि। मन्त्र सिंहे र्ति रतिमत।
पृ० रा० मा० २१।२०।८२

६ रा० वि० ११९८ ०।१२३ पृ० रा० खा० २५८९।२६६ ह० रा० ३।४३

८ एडियन सुरग रचे। जावक सौभाग्य को मन्त्र।
सौभाग्य रहत सकल। मन जावक रच राखिय। — पृ० रा० खा० ८५८।२६०

९ दे० प्राचीन भारत के प्रसाधन पृ० ९०

१० स १२—रुक्मिणि—वर्ण० पृ० रा० खा० १०८६।१२८२ १०८३।१२६१
१९५५।१४१६

का आचार्य ने, केशव और मान ने क्रमशः वीरसिंह देव की वनिताओं[1] तथा सरस्वती देवी रूपकुमारि[2] एवं आलमशाह ने गजमोतिन तथा मृगांगिना[3] महावर से एड़ियाँ रचाना प्रदर्शित की हैं। पद्माकर ने नख-शिख और आचार्य के प्रयोग पर प्रकाश डाला है।

(१३) पुष्पमालाएँ धारण करना—शृंगार के सोलह अंगों में पुष्प प्रयोग का परिगणन सौन्दर्याभिवृद्धि के निमित्त होने के साथ साथ स्त्रियों की प्रकृति के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन का भी प्रतीक है। शृंगार में इस प्रसाधन की महत्ता की परवर्तीकालीन उपादेयता है जबकि आदिम युग में वे पुष्पों को केशों में गूँथने तथा उनकी मालाओं को वक्ष और ग्रीवा आदि में धारण करने के अतिरिक्त पुष्पों की कंचुकी और वसन बनाकर भी पहनती थी। रूपशिखा[4] और मृगांगिना[5] केशों में पुष्प गूँथती हैं। मृगांगिना अपनी वेणी में सुमन माल धारण करती है[6] जबकि वीरसिंह देव की रानियों की कबरियाँ कुसुम भार से बिखरी प्रदर्शित की गई हैं।[8] मान ने मानिनी की कबरी जूही चम्पा कुन्द केसर मचकुन्द मालती, और मौलश्री पुष्पों के हार पहने प्रदर्शित करने[9] के साथ-साथ मालिनों द्वारा पुष्पों की बनी सुन्दर कंचुकी, गिंदुक और वसन निर्मित करके प्रदर्शित की हैं जिनके रचनाकाल मात्र से स्त्रियों के मन उन्हें धारण करने को मचल उठते थे।[10] जोधराज ने गजरे और विविध मालाएँ गले में पुष्पमालाएँ धारण किए प्रदर्शित की हैं।[11]

(१४) पान खाना—सोलह शृंगारों का ताम्बूल सेवन भी एक आवश्यक अंग था, जिसका अभिप्रेत मुखश्वास को सुवासित करना तथा होठ रचाना रहता होगा। कवि चन्द ने मृगांगिना का तीन बार शृंगार वर्णन किया है, और प्रत्येक

---

१ से ४—दे०—क्रम० 'वी० च०' २२।८३ 'रा० वि०' १।१३ ७।२१ 'आ०', १६३।१८ १८।१४, प्र० वि० ११० ११२

५ "आन पुष्प वीचि ग्रथि। भामिता त्रिपन्यि।" —'प० रा०' का० ८०३।३१०

६ वर रचिय बम विधि सुमन पति। निच धरे जमन जल गग अति।'

—प० रा०, का०, १६७।१०६

७ "कबरी कुसुम विसरत नय। श्रुति कुंडल लाल दुमाजनय।

—वही, १६६३।१३

८ कुसुम भार कबरी छुटि गई। नाचन बचन सिथिल गति भई।

—'वी० च०', २५।१

९ दे०—'रा० वि०', ११३०

१० किती लहैं मालनि फूलनि मान, गुहै कर चौसर भाव भमान।
कंचुकि गिंदुक बसन अति, विलोकहि बाम करें मन सानि।' —वही, २१२७

११ दे०—'हु० रा०', १०८, ११४

संदर्भ में यह ताम्बूल का सेवन किया गया है।[1] इसके अतिरिक्त उसमें इलायची का,[2] तथा आल्हखण्ड में गजमोती[3] का भी प्रयोग दिखाया है। वर्तमान में भी सरस्वती का मुख ताम्बूल से मंडित प्रदर्शित किया है।

(१५) सुवासन — सुवासन का अभिप्राय यही है कि धारण किए जाने वाले वस्त्र, कपोल, शरीर तथा अंग आदि को चन्दन से सुगन्धित करना और उन्हें इतना वायु से पराग जाय कि वे विविध प्रसंगों में एक अतिरिक्त आकर्षण पैदा कर सकें। वीरकाव्य में वर्णित नारियों की नाक और शीश अंग के वस्त्रों के प्रति ये अतिरिक्त प्रदर्शित की गई है।[5] और उसकी मोर पंख माथा पर इत्र लगाने के प्रसंग में विभिन्न वस्तुओं और चोपर आदि सौगन्ध्य चन्दन और राग आदि के सुगन्ध लेप का उल्लेख किया गया है। इन वस्त्रों को सुगन्धित द्रव्यों से सिंचित करने का भी प्रचलन था।[6]

(१६) आभूषण पहनना — आभूषणों को नारी सौन्दर्य के अभिवर्धन में किस प्रकार अपरिहार्य समझा जाता था तथा वे विविध अवसरों पर किन किन आभूषणों से मंडित रहती थीं इन तथ्यों पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है।

पुरुष

दन्त-धावन

पृथ्वीराजरासो में आल्हा और ऊदल आदि के दन्तधावन प्रदर्शित किए गए हैं यद्यपि वीरचरित्र में महाराज वीरसिंह देव की दन्त धावन क्रिया का सम्पूर्ण विवरण दिया गया है। इसके अनुसार महाराज के लिए कमल पत्र के दोनों में कपूर एवं बत्तीस दातुन प्रस्तुत की जाती थीं। वे दातुनों को कपूर में डुबोकर प्रयुक्त करते थे तथा प्रति बार कुल्ला करने के साथ ही उन्हें फेंक देते थे। इसी क्रम बत्तीस बार चलने पर उनकी दन्तधावन क्रिया समाप्त होती थी।

१-४ द०—क्रम० पृ० रा० का० १६५४।२५१६ १६५७।२५६० १६७६।१४२ ५६५।१६१ आ० ४४०।१६ रा० वि० ११३०

५ देखिए—क्रम० 'पृ० रा० का० ८०२।२०३ वही ८०२।३१४ वही १६७६। १२० 'रा० वि०, ७।१५ 'वी० च० २६।१५ ह० रा० १४० ह० ह० छ० ६, 'आ०', १४।१४

६ "आनन पर सुभ सीकर घने। बसन सरीर सुगंधित घने।
— वी० च०' २५।३

७ 'करि दातौन सनान। ध्यान गौरव को ध्यायो।
—'पृ० रा० का० २५२५।३३७

८ कर पद है सुचि श्री नरनाथ। तब दातौनि लइ निज हाथ।
कमल दलन के दोना चार। तिनमें धर्यो घना घनसार।

अंग-मर्दन —

यह कृत्य स्त्रियों द्वारा उबटन लगवाने का स्थानापन्न था। कविचन्द ने इससे धातु एवं शरीर की सुन्दरता की अभिवृद्धि होने का उल्लेख किया है।[1] महाराज पृथ्वीराज का अंगमर्दन शृंगार रस की वृष्टि करती हुई नवयौवनाओं द्वारा प्रदर्शित किया गया है[2] जिससे स्पष्ट होता है कि नरेशों के अंग मर्दन के लिए प्रायः कुछ दासियाँ नियुक्त रहती थीं। रासो में चन्द पुण्डीर का अंग मर्दन उसके मर्दनिए करते दिखाए गए हैं। उसके अंग मर्दन में पर्याप्त सुगंधित तैल प्रयुक्त होता था।[3] परमालरासो में आल्हा ऊदल और सैनिक अंग मर्दन करते चित्रित किए हैं।[4] महाराज बीरसिंह देव के लिए भी मर्दनिए नियुक्त थे, जो स्नान से पूर्व उनका अंग मर्दन करते थे।[5]

स्नान —

स्नान के लिए गंगाजल का प्रयोग उत्तम समझा जाता था। यही कारण है कि अधिकांश नरेश गंगाजल से स्नान करते मिलते हैं। कवि चन्द ने महाराज पृथ्वीराज को तो पूर्णतः गंगाजल से ही स्नान करते प्रदर्शित किया है[6] जबकि बीरसिंह देव आरम्भ में साधारण जल में स्नान करके, अन्त में एक कलश गंगाजल से स्नान करते मिलते हैं।[7] महाराज हम्मीरदेव[8] और मारवाड़ का राजकुमार[9] अनूपी भी गंगाजल से स्नान करते मिलते हैं। आलोच्यकाल में गंगाजल से स्नान की महत्ता का अनुमान इस तथ्य

तिनमें चारि चोरि कै कुची। रुचिर दंत धावनि रुचि रुची।
प्रति गड्डुक डारि सब देत। बहुरि कुची कर और लेत।
कलिम कुची भरि जब कर। तब सुदंत धावन परिहर। — बी० च०' २२।४-७

१ "करि पावन पवित्र वर मोहन सुरभि सु तेल।
मदनीक मर्दन कर बढ़ धाम तन बल। — प० रा० का० ३१६।३१०

२ "सुनि मरदन को हुकम। होत मरदनी बोलि लिय।
वय किसोर मन चोर। कच्छि अच्छरि समान त्रिय॥
तिन नेह देह मनि देह सुष। वरषि मेह सिंगार रस॥ —वही, १९९४

३ से ५ देखें—क्रम० प० रा० का० २०६५।२१७, 'प० रा० २१।६१, बी० च० २१।१४

६ "करि सनान गंगोदकह दिय सु गाइ दस दान।' — प० रा०', का० ३१६।१३१

७ महस कलस भर नीर। इक्क बिच कलस गंगाजल।
करि सनान पार्वति। कीय पंच गौ महाबल॥' —वही, २०६२।२१७

८ "आप राउ चहुआन हमीर। तुरत मंगाइ गंग को नीर।
करि असनान दान बहु दीन्हौ। बहुरि विप्र गुरु पूजन कीन्हौ।
— ह० ह०' च०, २४६

९ "घट भरवावैं गंगाजल को और डिड्ढी में कर असनान। —'आ० ६८

से लगाया जा सकता है कि अकबर आदि मुगल बादशाह भी अपने स्नान के लिए उसका प्रयोग करते थे।[1]

गंध द्रव्यादि का प्रयोग —

मालोपगत स्त्रियों की भांति पुरुष भी सुगंधित विलेपनों का प्रयोग करते थे। कवि चन्द ने महाराज पृथ्वीराज का कस्तूरी, कपूर और चन्दन के विलेपनों से स्व काया को चर्चित करते प्रदर्शित किया है। अन्यत्र ग्रीष्मापवारण के लिए भी चन्द ने उन्हें कपूर, केसर और कुमकुम के अनुलेपनों का प्रयोग करते प्रदर्शित किया है।[2] वीरचरित्र में वीरसिंह द्वारा अतुल फजल तथा परमालरासो में ऊदल[3] और ब्रह्मा[4] के शरीरों को इत्रादि से सुवासित बनाकर उनके द्वारा सुगंधियों के प्रयोग पर प्रकाश डाला गया है।

आवास —

वीरकाव्य में मुख्यतया राजमहलों तथा उच्चवर्ग के आवासों का चित्रण मिलता है। इस चित्रण से आलोच्यकालीन आवासों सम्बन्धी अधोलिखित तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है।

राजमहल प्रायः सतखंडे बनाए जाते थे। पृथ्वीराजरासो में महाराज पृथ्वीराज के नौज वासियों[7] तथा सामान्यतया धनाढ्य लोगों के एवं वीरचरित्र में महाराज वीरसिंह के महल सतखंडे प्रदर्शित किए गए हैं। आल्हखण्ड में महाराज जयचन्द[1], माडो-नरेश[11] और पथरीगढ़ नरेश[12] के भवन सतखंड बनाए गए हैं। कवि विद्यापति ने जौनपुर में शाह इब्राहीम शाही के महलों से सूर्य रथ के सप्त अश्वों की टापों के टकरा जाने[13] का उल्लेख करके तथा कवि मान ने उदयपुर के महलों के ध्वजादंड और स्वर्ण कलशों को आकाश चुम्बी प्रदर्शित करके[14] उनके बहुत ऊंचे होने का अवबोध कराया है। कवि भूषण[1] ने महाराज शिवाजी के महलों को ऐसे स्फटिक से निर्मित दिखाया है जिनमें मुख प्रतिबिम्ब देखा जा सकता था।[15] इन महलों में केशवदासजी ने चन्दन की कड़ियों[16] और स्वर्ण पुष्प जटित कपाटों का[1] तथा चन्द ने स्वर्णमंडित कपाटों का प्रयोग दिखाया है।[1] आल्हकार ने भी चन्दन की खिड़कियाँ लगी प्रदर्शित की हैं।[19]

---

१ दे०—आईन ए अकबरी भा० ३ प० ५७

२ से ६—दे०—क्रम० प० रा०, मा० ३२६।१२२ प० रा०, मा० ३।५६८। १२६ वी० च० ५।६७ प० रा० ३१।३०, ३१।८५

७ से १७—देखिए—क्रम० प० रा० मा० १५५५।२६ वही, १६३०।३५४, वही १८।४४, आ० १२।१०, वही ५।१२ वही १७।१७ कीर्ति०, प० ५२ रा० वि० २।६६ शि० भू० १८ वी० च० २०।३ वही, २०।७

१८ १६—दे०—क्रम० प० रा० मा० १२६६।२२, आ० ५१।१३,

अंतमहलों में दरवाजों पर प्राय मुक्ता और चित्र विचित्र विद्रुमों की झालरों या, परदों के रूप में प्रयोग किया जाता था।[1] हम्मीर रासो में जरबाफ के परदे दिखाए गए हैं।[2]

इन महलों में विभिन्न प्रयोजनों के लिए पृथक पृथक कक्ष होते थे। केशव ने महाराज वीरसिंह देव के महल में वस्त्रशाला, जलशाला, मेवा शाला, पानशाला, शृंगार शाला, मंत्रशाला और धनशालाएँ प्रदर्शित की हैं।[3] पृथ्वीराज रासो में चित्रशाला[4] तथा आल्हखण्ड में रंगमहल या शीशमहल का[5] उल्लेख मिलता है। बनावट के आधार पर भी महल या मकानों के विभिन्न भाग पृथक पृथक अभिधानों में अभिहित किए जाते थे। इनमें से वीरकाव्य में अटारी और अटा[6], तिवार और चौवार[7] दरीचौ, तिवारी और दुवारी[8] ड्योढ़ी[9], सिदरी[10] और बारहदरी[11] और चौपाल[12] का निर्देश मिलता है।

वीरचरित्र में महल के प्रांगण को पांच चौकों में विभक्त दिखाते हुए प्रथम में सभा, दूसरे में नत्यादि, तीसरे में भोजन करने, चौथे में मंत्रणा करने तथा पाँचवें में सुन्दरियों के सुखविलास का चित्रण किया गया।[13] कवि गोरेलाल और आल्हकार के निर्देशों से स्पष्ट होता है कि साधारण लोगों के मकानों पर बांस और गाँडर के छप्पर पड़े रहते थे।[14]

इन महलों के आस पास भाँति भाँति के लता वृक्षादि से युक्त उपवन और बाग लगे रहते थे। कवि चन्द ने महाराज पृथ्वीराज के 'निगम-बोध' के समीप स्थित महल को बाग से घिरा हुआ और सुगंधित वातावरण से आपूरित दिखाया है।[15] 'परमाल रासो' में महाराज पृथ्वीराज और परमाल के बागों में अनेक प्रकार के लता-वृक्षादि होने का चित्रण किया गया है।[16] इसी भाँति कवि जोधराज ने महाराज हम्मीरदेव,[17] मान ने महाराज राजसिंह[18] और भूषण ने महाराज शिवाजी के महलों[19] का बाग-बगीचों से घिरा प्रदर्शित किया है।

महलों की चारदीवारी के अंतर्गत क्रीडा पवन, धारा धाम जल-यन्त्र, कृत्रिम शैल शिखर और वापी तडागादि सुखोपभोग के उपादानों का भी वर्णन किया जाता था। विद्यापति ने शाह इब्राहीम लोदी के महल की चारदीवारी में—'प्रमद-वन',

---

१ से ५ देखें 'वी० च०' २०।६ ७, 'ह० रा०' छंद ९३, 'वी० च०' २१।१२ १५, प० रा० का० २४०६।१५३, आ० ५१।७ ८

६ से १४ देखें क्रमश० वी० च०' १६।२०, 'सु० च०' ६।२।१५, वही, ७।१।१०, आ०' २७१।७, वही ७४।५, वही, २६।११, वही, ५१०।१७, वी० च०' १७।८ ९ छ० प्र०' १८।४, 'आ०',४६४।११

१५ से १९ दे० क्रमश० 'पृ० रा०' का० १५५४।५, 'प० रा०' ४।६६-७१, ह० रा० ३५५, रा० वि० ४।१-२२, 'शि० भू०' २३

'पुष्प वाटिका', कृत्रिम नदी, 'क्रीडा शैल', 'धारा गृह,'[1] 'यन्त्र-व्यजन'[2] 'शृंगार संकेत' 'माधवी मंडप', विश्राम चौरा, चित्र शाली, हिंडोल 'कुसुम शय्या' और चन्द्रकान्त शिला नामक विलास स्थान और उपकरणों का चित्रण किया है।[3] केशवदास जी ने महाराज वीरसिंहदेव द्वारा अपने बाग में क्रीडा पर्वत की रचना कराए जाने का पूर्ण विवरण दिया है। इससे ज्ञात होता है कि क्रीडा पर्वत अति वृहदाकार होता था। उस पर मृग, वृषभ, सिंह आदि पशु और हंस मयूर आदि पक्षी विचरण करते रहते थे।[4] उसमें कृत्रिम शैल शिखर, गूढ़ गह्वर और दीर्घ दरियाँ भी बनाई जाती थीं।[5] इन कृत्रिम पर्वतों पर धाराधर धाम भी बनाए जाते थे जहाँ चपला की चमक के साथ साथ जल धारा (वर्षा) भी बरसती हुई प्रतिभासित होती थी।[6] कृत्रिम घन गर्जन से पूर्णतः पावस ऋतु का भान होता था।[7] इन पर्वतों से कृत्रिम नदियाँ भी निकाली जाती थीं। केशव ने महाराज वीरसिंहदेव के क्रीडा-पर्वत से सात भिन्न भिन्न वर्णों के जल वाली नदियाँ निकलते चित्रित की हैं। एक नदी में कुसुम वर्ण का जल प्रवाहित होता था।[8] दूसरी

---

१ डा० बाबूराम सक्सेना ने 'धारा गृह' का अर्थ 'फव्वारा' दिया है, दे० कीर्ति, पृ० ५३

२ यन्त्र व्यजन किसी ऐसे उपकरण का नाम रहा होगा जिसकी सहायता से आजकल के बिजली के पंखे की भाँति हवा करने का काम लिया जाता था। उसके दूसरे अर्थ— हवा से चलने वाला यन्त्र के अनुसार वह पवन के माध्यम से पानी ऊपर उठाने का साधन रहा होगा। हवा के माध्यम से चलने वाली अरहटें आजकल भी यत्र-तत्र मिलती हैं और बिजली के आविष्कार से पूर्व जल उठाने का यन्त्र बनाने के तथ्य पर प्रकाश डालती हैं—शोधक

३ प्रमदवन पुष्पवाटिका कृत्रिम नदी क्रीडाशैल धारागृह यन्त्र व्यजन, शृंगार संकेत माधवी मंडप, विश्राम चौरा खटवा हिंदोल कुसुम शय्या प्रदीप माणिक्य चन्द्रकान्त शिला चतुस्सम पल्लव करो परमाथ पच्छिहि सिआन ए वाप अभ्यन्तर करी वार्ता के जान। कीर्ति० पृ० ५२

४ तिनमे क्रीडापर्वत रच्यो। मृग पच्छिन की सोभा सच्यो।
वृषभ सिंह क्रीडहिं अहि मोर। सिव गिरि सो सोहत चहु ओर।
—वी० च० २४।१ ४

५ गूढ गुफाहू दीरघ दरी। निय मनु सिद्धन की सुन्दरी। —वही २४।५

६ कहु तापर धाराधार धाम। सुभ्रक लोक बलाका बाम।
बरषति सी दरसति जलधार। चपला सी चमकति बहुबार।' —वी० च०, २४।५

७ सक्र सरासन चातिक मोर। सुनिजत बिच बिच घन की घोर। —वही २४।६

८ 'तातें प्रगटी नदिका तीनि। सरितन की लीनी छवि छीन।
एक कुंकुमा के जल बहे। ताकी शोभा को कवि कहै।' —वी० च०' २४।७

के जल का रंग रजत कांति की भाँति धवल था,[1] जबकि तीसरी में कस्तूरी की आभा वाला श्याम जल प्रवाहित रहता था।[2] इन कृत्रिम नदियों के निर्माण की यह भी विशेषता थी कि उनके पुलिन और बालुकाराशि दोनों ही सुवासित थे।[3] जल यन्त्र या फव्वारा का परमाल रासो,[4] वीरचरित्र[5] और हम्मीररासो,[6] में उल्लेख मिलता है। इन जल यन्त्रों से पानी की फुहारें निश्चय ही बहुत ऊँची उठती होंगी, यही कारण है कि वे गगनचुम्बी प्रदर्शित की गई हैं।

आवागमन के साधन

आलोच्यकाल में वाष्प के माध्यम से चलने वाले मोटर और रेल आदि, आवागमन के द्रुत गति वाले साधनों का आविष्कार नहीं हो पाया था, अतः तदर्थ अश्व और बैलों द्वारा खींचे जाने वाले वाहनों का प्रयोग किया जाता था। वीरकाव्य में ऐसे माध्यमों में से बैलों के रथ, अश्वों के रथ, गजरथ, फिरक, बहली और गत्रिया (गाड़ियाँ) का उल्लेख मिलता है। पृथ्वीराजरासो और परमालरासो में क्रमशः महाराज पृथ्वीराज और परमाल के रनवासों की यात्रा में रथों का प्रयोग किया जाता है।[7] (ये रथ सम्भवतः बैलों के ही रहे होंगे) कवि मान ने महाराज राजसिंह की तीर्थयात्रा के समय चारों चक्रों (पहिया) में पटियाँ लगे हुए रथों में चंचल तुरंग जोड़कर प्रयोग करते चित्रित किया है।[8] उसने बैलों की बहली और गत्रियों का भी प्रयोग दिखाया है।[9] केशवदास जी ने फिरक में बैलों के साथ-साथ अश्व भी जुते प्रदर्शित किए हैं।[1] हो सकता है कि अश्वों का उन्होंने उसी पंक्ति में उल्लिखित सुखपालकी नामक वाहन में प्रयोग दिखाना चाहा हो, जो उस नाम की किसी सवारी का उल्लेख न मिलने के कारण हमने विशेषण रूप में प्रयुक्त ग्रहीत किया है। सूदन ने रथों का प्रयोग दिखाया है,[11] जबकि आल्हकार ने उनमें उजली-बधियाँ जुती होने का उल्लेख करके बैलों के

---

१ 'सुभ्र' सुभ्र वे दरन जल वहै। गंगा सी त्रिभुवन पति लहै। —वी० च० २४।८

२ 'दूजी मगमद के जल बहै। ज्यों यमुना त्यों ही जग कहै।' —वही २४।१०

३ 'कुसुम परागनि के रस सनै। पावन पुलिन दुहूँ दिसि बनै।
एलाकृत बालुका सुवास। सेवति ललित लवंग प्रकास।' —वही २४।१७-१८

४ 'जलजंतु छुट्टि महाराज आय। रानीन जुक्त मन मोद पाय।' —प० रा०, ३।३१

५ 'जहाँ तहाँ जलजंत्र प्रकास। धरतें धारा चली अकास।' —वी० च० २३।१९,

६ 'बहु प्रार सघन पवत सुगंध। जल जंत्र छुटैं उच्चेस बंध।' —ह० रा०, २६१

७ स ६—८० क्रम० प० रा० का० १६६१।३२, 'प० रा० ६।६६, 'रा० वि०' ८।२० वही ८।२२

१० सुपक सुखासन बहु पालकी फिर बाहिनो सुखचाल की।
एकनि जात हय सोहियं। बपभ कुरंगनि मन मोहिये।' —वी० च० २६।२५

११ रथ पालकि नालकी अहद्ध। चलत आत भुव ज्वाल जमद। —सु० च०, ४।३।५

रथों का प्रयोग प्रदर्शित किया है।[1] उन्होंने बहलियों एवं सुखपालों में बैठकर जाने और दायजे में भी सुखपाल दिये जाने का उल्लेख किया है।[2]

आवागमन के अन्य माध्यम गज व किराये सवारी उल्लेख में आते थे। विवाह आदि अवसरों पर स्त्रियाँ डोलियों में बैठकर जाती होंगी किन्तु उनका बहु प्रचलन समाज के उच्चवर्ग में ही माना जाता है। वीरकाव्य ग्रन्थों ने आवागमन के इन माध्यमों में पालकी, डोली के स्थान सुखपाल, सुखासन होना और चकडोल या चौडोल का प्रचलन दिखाया है। इस काल के तीन वाहनों का मुख्य द्वारा ही प्रयोग दिखाया गया है। जिससे स्पष्ट होता है कि ये मुख्यतया सामन्ती सवारी ही रह गये। पृथ्वीराजरासो में कहा है कि नाथ जोगी सुखासन में विराजकर ले जाये जाते हैं।[3] परमाल रासो में पालकी पर बांधकर महिलाओं के मुख ढांकने के अन्दर यात्रा करना है।[4] छत्रप्रकाश ने सुखपाल और पालकियों का प्रयोग दिखाया है। कवि सूदन ने सैनिकों को पालकी और पालकियों में बैठकर यात्रा करते ही नहीं चित्रित किया है, अपितु रत्नसिंह पठान को भी पालकी में बैठकर युद्ध करने का प्रदर्शित किया है जिस कहारों के स्थान पर उसके सैनिक उठाये हुए थे।[5] कवि मान ने महाराज राजसिंह की तीर्थयात्रा के समय सुखपाल और सुखासनों का प्रयोग दिखाया है।[6] जबकि भाटहरिदास ने पुरुषों को पालकी और पालकियों में बैठकर यात्रा करते चित्रित किया है।[7] पृथ्वीराजरासो में महाराज पृथ्वीराज के स्वयंवर की यात्रा के लिए पालकी और चकडोल के साथ साथ पूर्वोक्त सुखपाल और सुखासन का भी प्रयोग दिखाया गया है।[8]

जलमार्ग से आवागमन के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले माध्यमों में से परमाल रासो[9] और राजविलास[10] में जहाजों का, शिवाबावनी में नाव और डोंगी[11] का प्रयोग दिखाया गया है। कवि गोरेलाल ने उनके अभाव में काठ के बेड़ा का भी सफल प्रयोग करने पर प्रकाश डाला है।[12]

---

१ 'उजरी बघियन बै रथ गाज धाजी ? भी मय तयार।' —भा० ८।१५।२५

२ 'कोइ पालकिन कोइ नालकिन कोई गजरथ। मगवार।' —भा०, २५६।२२

३ से ४ दे० 'प० रा० का० १११८।१३८, प० रा० ८।६

५ 'मैं मरने को तयार हौं जो कोइ साथहिं देउ। नाम कहारा का नहीं हाथ पालकी लेउ। सुनत पाच सौ ज्वान ने घोड़ दाने छोड़ तिनमें दस बीस ने लई पालकी ओड़।'
'सु० च० ८।४।१३–१४

६ से ६ दे० क्रम० रा० वि० ८।१०० 'भा० ७५६।२२ 'प० रा० का० १६६।३१
३२ प० रा०' २।८७

१० 'जगम जिहाज सु मढ़ाइ जब जलक्रीडा क्रीडतनृप।' 'रा० वि०, ८।१४६

११ १२ दे० क्रम० 'शि० बा०' १३, 'छ० प्र०' ११।५

मनोरंजन के साधन

वीरकाव्य में उसके नायकों की मनोवृत्ति के अनुरूप ऐसी मनोरंजन-विधाओं का अधिक चित्रण मिलता है जो साहस एवं शौर्य परीक्षण सम्बन्धी प्रतियोगिताओं से सम्बद्ध होती थी। मनोरंजनार्थ अनेक प्रकार के पशु पक्षी पालने और उनके युद्ध कराने का भी प्रचलन था। राज दरबार विविध प्रकार के कलावन्तों की आश्रय स्थली होते थे अतः उनमें काव्य शास्त्र चर्चा और नृत्य संगीत आदि मनोरंजन के कलापरक साधनों के भी आयोजन चलते रहते थे। बैठकर खेले जाने वाले खेल कदाचित वीरकाव्य के नायकों के स्वभाव विरुद्ध थे, जिससे वीरकाव्य में उनके सम्बन्ध में अत्यल्प उल्लेख मिलते हैं। वीरकाव्य में उल्लिखित मनोरंजन विधाएँ स्थूलतः चार वर्गों में विभक्त की जा सकती हैं—(क) पशु पक्षियों के युद्ध। (ख) साहस और शौर्य परीक्षण सम्बन्धी प्रतियोगिताएँ। (ग) काव्य शास्त्र चर्चा और नाट्य संगीत आदि कलापरक साधन तथा (घ) विविध प्रकार के क्रीडात्मक विनोद। इनमें से प्रथम तीन प्रकार के साधन प्रेक्षण और श्रवण से सम्बन्धित रहते थे, जबकि चतुर्थ वर्ग में आनन्दानुभव का मूलाधार उनमें सम्मिलित रहना होता था।

(क) पशु पक्षियों के युद्ध

(१) हस्ति-युद्ध —

पशु-पक्षियों के युद्धों का आयोजन करके, मनोरंजन करने के माध्यमों में से 'हस्ति युद्ध' सर्वाधिक लोमहर्षक होता था। औरंगजेब काल में भारत आनेवाले मनूची और बर्नियर नामक यात्रियों ने इसे महावतों के लिए अतीव प्राण घातक बताया है। मनूची के अनुसार हस्ति युद्ध कराने जानेवाले महावतों की पत्नियाँ अपने आसन्न वैधव्य की दुर्निवारता को दृष्टिगत करके युद्धारम्भ से पूर्व ही चूड़ियाँ आदि सौभाग्य चिह्नों का परित्याग कर देती थी।[1] बर्नियर के शब्दों में युद्ध कराने जाने वाले महावत अपने सम्बन्धियों से इस भाँति अंतिम विदाई लेकर जाते थे मानो वे फाँसी की सजा पाए हुए बन्दी हों जिससे उनके जीवित लौटने की आशा ही न हो।[2] हाँ भाग्यवश जीवित बचे हुए महावतों को वेतन वृद्धि तथा अन्य पुरस्कार प्राप्त करने की आशा रहती थी जिससे वे इस जीवन मरण के खेल को कराने के लिए प्रलोभित रहते थे।

पृथ्वीराज रासो में महाराज पृथ्वीराज वीरचरित्र में महाराज[3] वीरसिंह देव, जहाँगीर जस चन्द्रिका में शाह जहाँगीर[4] तथा राजविलास में महाराज राजसिंह[5] और शाह

---

१ दे० मुगल इण्डिया मनूची, भा० १ पृ० १३३

२ दे० ट्रैवल्स इन मुगल एम्पायर, बर्नियर पृ० २७७

३ "महिष मेष मृग वृषभ कहूँ गिरत मत्त गजराज।' वी० च० ७।७

४ कहूँ भीर गज कहूँ मेष जूरे। कहूँ मत्त दन्ती लरें लोहपूरे।' —ज० ज० च०, छं० ५०

५ 'लरावहिं मल्ल महाराण लुह करी मदमत्त मरद्द युद्ध। —रा० वि० २।१६३

जादा अकबर को[1] 'हस्ति युद्ध' कराते चित्रित किया गया है, जिससे यह आलोच्य कालीन नरेशों के मनोरंजन की एक व्यापक विधि सिद्ध होती है। रासोकार ने महाराज पृथ्वीराज के मनोरंजन के निमित्त कराए गए हस्ति युद्ध का विवरण भी दिया है, जिससे उसकी यथालिखित परिपाटी ज्ञात होती है।

युद्ध से पूर्व हाथियों की टाँगों में लंगर और मस्तक से अप्पारी (हाथी की आँखों को ढके रखने वाला उपकरण) को हटा दिया जाता था।[2] हाथियों के रूप और पीठ को थपथपाते हुए महावत उन्हें युद्धार्थ जोश दिलाते थे[3] जिससे उत्प्रेरित होकर परस्पर टक्कर मारने वाले हाथियों के दाँतों की चिंगियाँ उल्कापात के समान छिटकने लगती थीं।[4] जब घड़ियाँ व्यतीत हो जाने पर भी कोई सा भी हाथी हार न मानता था तो, उन्हें विरत करने का काम चरखीदारों[5] को सौंपा जाता था।[6] चरखीदारों द्वारा युद्ध विरत किए गए हाथियों को सांट मार पकड़कर खड़े हो जाते थे और उनके मस्तकों पर सिरी और टाँगों में लंगर एवं जंजीरों के बन्धन पुनः डाल दिए जाते थे।[7] यदि हाथियों का युद्ध प्रदर्शन उच्च कोटि का होता था तो उनके रातिबों में वृद्धि करने के साथ साथ उनके महावतों की जागीरों में भी वृद्धि कर दी जाती थी।[8] महावतों का ऐसे अवसरों पर सिरोपाव और एक बहुमूल्य माला प्रदान करने का भी प्रचलन था।[9]

---

१ 'कबहु लरावहि मल्ल, कबहु मद मत्त कुंजर।' —रा० वि० १८।६

२ जंजीर खोलि लंगर खजिय अपारी सिर पर खुलिय। —पृ० रा० भो० ३।७।१३

३ 'ठांनि कंध साहान, पिट्ठि मोइय पच्चारिय। वही ३।७।१४

४ 'उसरि उसरि मुहु करहिं, दंत चिरखी उडि भल्लहं।
परहि किं प्रब्बत धाइ प्रबन बड्डे बलमत्तह।' वही

५ 'आईन ए अकबरी' में भी युद्ध रत तथा बिगड़े हुए हाथियों को वश में करने के लिए चरखी का प्रयोग करने का उल्लेख किया गया है। चरखी के विवरण के लिए द्रष्टव्य है-- आईन-ए अकबरी, भा० १ पृ० १३६

६ 'मिटैन कोइ दू महि हक्के, परी इक्क दुइ दुरद लरि।
छुड्डवन तिनहि मुसकिल परी चरखी दारिण हुकम करि।'
—पृ० रा० भा० ३।७।१४

७ 'चरखीदारिणि हुकम बल छुड्डाय गज दोइ।
रहे धरि गड्डार बड़, अवरण छिप्प कोइ। वही ३।८।१५
'सीस अप्पारी राखि निण नीठि नवाय फेरि।
लंगर पग लग्गे तुरनि लगाय पग करि। वही ३।८।१६

८ दुनो रातिउ दुवन वह कयन हुकम प्रथीराज।
अममा रग्गि दून पट्टो, गुदरि अप्पु सम राज। वही ३।६।१८

९ पीलवान पहिराई दुव सिर सिरपाव मगाइ।
दुव इकमाला बड्डवा, यह अर वस्त सदाइ। वही ३।६।१६

बर्नियर द्वारा दिया गया हस्ति युद्ध का विवरण रासो में उपयुक्त विवरण से मात्र यह वैषम्य रखता है कि उसमें दोनों हाथियों के बीच में एक मिट्टी की दीवार बनाने का उल्लेख किया गया है। परस्पर के आघातों में यह दीवार शनै शनै टूटती जाती थी, और अन्ततः बली हाथी उस पार करके स्वप्रतिपक्षी पर धावा बोल देता था।[१]

(२) अन्य पशुओं के युद्ध

हस्ति युद्ध की भाँति अन्य पशुओं में भी घात प्रतिघातात्मक प्रहारों का अन्वेषण करते हुए मन प्रसन्न करने का प्रचलन था। केशवदासजी ने महाराज वीरसिंह देव[२] और शाह जहाँगीर[३] के दरबारों में महिषों मेषों मृगों वृषभों और बकरों की लड़ाइयों के चलते रहने का चित्रण किया है। बर्नार्ड नामक इटली यात्री ने भी मुगल-बादशाहों की इन पशुओं के युद्ध प्रेक्षण में बड़ी अभिरुचि होने का उल्लेख किया है।[४]

(३) तीतर लड़ाना —

कवि पद्माकर ने महाराज प्रतापसिंह की तीतर पालकर उनकी लड़ाई कराने में अभिरुचि प्रदर्शित की है। उनके शब्दों में महाराज के तीतर पिंजड़ा से बलात निकल कर उड़ जाने की चेष्टा करते रहते थे। शरीर से वे बड़े हृष्ट पुष्ट एवं शक्ति से बड़े लड़ाकू थे। उनकी आवाजें विजय दुंदुभि के समान आतंककारी थीं। उनके चंचु प्रहार इस घातक और अचूक थे कि स्वजातीय तीतरों तथा छोटे छोटे शिकारी पक्षियों—जैसे बासा और जुर्रा का तो कहना ही क्या एक बार को तो वे बाज के भी दाँत खट्टे कर देते थे।[५]

(४) लवा युद्ध —

लवा रूप रंग में तीतर जैसा किन्तु आकार में उससे कुछ छोटा पक्षी होता है। उनकी सुंदरता पर मुग्ध होकर पद्माकर ने लवाओं को छवि के छवा कहकर अभिहित किया है। पद्माकर ने महाराज प्रतापसिंह की तीतरों की भाँति लवाओं के युद्ध कराने का भी शौकीन चित्रित किया है। पद्माकर ने महाराज के लवा अनीक चपल तथा चुटीले प्रहार करने में इन्द्र के वज्र से भी बढ़कर बताए हैं।[६] कवि सूदन ने भी

---

१ दे० ट्रेवल्स इन मुगल एम्पायर, पृ० २७६-७७

२ महिष मेष मृग वृषभ बहु, विश्रुत मल्ल गजराज।' —वी०च० २७।७

३ बहु बन भैसा भिर भीमकारी। बहू एन एनीनि के जूथ भारी।
बहू बोक बाके बहू भय भूरे। बड़े मत्त दन्ती लरें लोहपूरे।' —ज०ज०च०, छ० ५०

४ दे० इण्डियन ट्रेवल्स आव बर्नार्ड', पृ० ५३

५,६ दे० प्रता० प्र० प्रता० छ० १८, वही, १७

गाजीउद्दीन खां की लवा पालने में अभिरुचि प्रदर्शित की है।[1] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लवा-युद्ध का प्रचलन प्राचीन काल में भी दिखाया है। उनके अनुसार लवाओं के युद्ध पर प्रेक्षक दाव भी लगाया करते थे जिनके कारण उनकी हार जीत विपक्षी मानवदलों में रक्तपात तक का निमित्त बन जाती थी।[2]

(५) श्वापद और विहगशालाएँ —

युद्धार्थ पाले जाने वाले पशु पक्षियों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के पशु-पक्षी पालने का भी प्रचलन था। इनमें से कुछ का उपयोग तो आखेट में भी किया जाता था, जबकि शेष मुख्यतया मन प्रसादन के निमित्त ही पाले जाते होंगे। कवि मान ने महाराज राजसिंह की 'श्वापद खाना' और 'विहग खाना' का वर्णन किया है। उनकी श्वापद-शाला में सिंह कोड (वाराह)[3] चीता स्याहगोश रीछ शरभ (हाथी का बच्चा, ऊट अथवा सिंह से भी बलवान एक कल्पित पशु जिसे अष्टपाद कहते हैं)[4] मृग, बन्दर, साभर, गडा और रोझ (नीलगाय)[5] दिखाए गए हैं[6] जबकि विहगशाला में विभिन्न वर्णों के कपोत मना, मयूर चकोर शुक मराल सारस और बतखें प्रदर्शित की गई हैं।[7] आल्हकार ने लाखन को कपोत और ललमुनिया पालने का शौकीन चित्रित किया है।[8]

(ख) साहस और शौर्य परीक्षण संबंधी प्रतियोगिताएं

(१) वीर पुरुषों के सिंह और हाथियों से युद्ध —

आलोच्यकाल में केवल निरीह पशु-पक्षियों का ही परस्पर भिड़ाकर उनके खून-खच्चर से मन-प्रसादन की प्रवृत्ति नहीं थी। उसमें रोम के सदृश बुभुक्षित हिंस्र पशुओं से गुलाम और कैदियों को लड़ाकर, आत्मपरितोष करने की अमानुषिक बर्बरता को भी स्थान प्राप्त नहीं था अपितु सिंह प्रभृति क्षत्राणियों की संतान स्वयं भी वनराज और मत्तकुल हाथियों से भिड़कर प्रेक्षकों का मन प्रसादन और स्व-कीर्ति का विस्तार करती थी। प्रथम प्रकार के युद्ध की रंगस्थली आखेट स्थल हुआ करते थे, जबकि

---

१ आसा बटेर लव को सिवान। तूती र विप्पला नग्र मान। सु० च० ६।२।३१
२ दे० प्राचीन भारत के कला० वि० पृ० ४६
३ से ५ 'वृहत् हिन्दी कोश' पृ० ३२० १३१५, ११६०
६ सीह कोड चित्रक सरभ, सोहगोस कपि रिच्छ।
सबर गडा रोझ मृग स्वाउ साल सु अच्छ। —रा० वि०, २।७८
७ 'पारावत बहु रंग के, मना मोर चकोर।
सुक मराल सारस बतक विहग सान बरजोर। वही २।७६
८ 'माह दाडियो मय चिडियन को लाखन भिरवा दई सुनाय।
भुइ उड़ान कर मुनियन के बान्ह रही ललारी छाय। —आ० ८६८। १२ १३

हाथियों से युद्ध राज द्वारा पर दिखाए गए हैं। पृथ्वीराज रासो में, लखरीराय, कन्ह चौहान, राजकुमार रैनसी और जतराव द्वारा सिंहों को द्वन्द्व-युद्ध में पछाड़ने के ऐसे शब्द चित्र प्रस्तुत किए गए हैं कि वे पूर्णतया प्रत्यक्षदर्शी घटनाओं पर आधारित प्रतीत होते हैं। इनमें से हम लखरीराय के सिंह से हुए द्वंद्व-युद्ध का ही सार दे रहे हैं—

महाराज पृथ्वीराज ने शेर के शिकार के लिए हाँका लगवाया। उस समय पक्षियों की चहचहाहट, हस्तियों की चिंघाड़, अश्वों की हिनहिनाहट और कुत्तों के भौंकने का ऐसा शोर हो रहा था कि कानों पड़ी बात सुनाई नहीं देती थी।[1] तभी एक सिंह आता दिखाई दिया, जिसे देखकर कायर तो पलायन कर गए किन्तु लखरीराय दृढ़ स्थान पर अविचल खड़ा रहा।[2] शेर ने अपनी पूछ फटकारकर सिर से लगाई और लखरीराय की ओर प्रज्ज्वलित दृष्टि निक्षेप करते हुए आक्रमण से पूर्व अपने अग्रिम पंजों पर झुककर इतने जोर से दहाड़ा—मानो पृथ्वी और आकाश ही फट पड़े हैं।[3] सिंह को आक्रमणार्थ प्रस्तुत देखकर लखरीराय ने अपना खड्ग फेंक दिया[4] और उसे अपने भुजयुग्म में दबाकर धर पटका।[5] सिंह के नख और दंष्ट्र लग जाने के कारण उसके शरीरांगों से यत्र-तत्र रक्त भलभलाने लगा। परस्पर भिड़ते हुए सिंह और लखरीराय को देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो दो सहोदर पैतृक सम्पत्ति के विभाजन के लिए लड़ रहे हैं। अतन्त गज कुम्भों को विदीर्ण कर देने, तथा गिरि, वन, नद और सरों को पलमात्र में लांघने की सामर्थ्य रखने वाला सिंह लखरीराय को न लांघ सका और लखरीराय ने उसका उदर विदीर्ण कर डाला।[6] पृथ्वीराजजी और उनके साथियों ने उसे गले लगाया और उसकी वीरता की मुक्त कंठ से सराहना की। सराहना के साथ साथ युवराज पृथ्वीराज ने अपना राज्याभिषेक होने के समय उसे अनेक प्रकार के दुर्लभ पुरस्कार प्रदान करने का भी वचन दिया।[7] पृथ्वीराज रासो में दिए गए कन्ह

---

१ से ४ दे० पृ० रा०' मो० १।१६२।२ से १।१६६।८

५ चपि स्वामि विडड्डरिय, लोह सज्जुरि नग मुक्यौ।
लोहा लगर राम वीर अवसान न चुक्यौ।
स्वामि सध्य परि सध्य सड घरवर उव्वार।
रहिर थम म झर्भरिय, मिथ पारिथ अनवारे।' पृ० रा०' मो० १।१६६।१

६ दे० पृ० रा०, मो० १।१६८।१२ १७

७ मो प्रम न प्रथिराज बोल लुनयौ सु नगरिय।
इत्तो देउ प्रचण्ड परजा मद्धि मोहि जिय।
अद्धा राज सु उद्ध, पाट अद्धा तम्बून। अद्ध वेस सुदस करा आदर समून।
यो नत वैन पृथिराज सुनि, जीव लज्जि नीची नजरि।
लग्गाइ कट्ठुकि पिट्ठकर भलौ भलौ सब सध्य करि। वही, १।२००।१८

चौहान[1] राजकुमार रनसी[2] और जनकुमार[3] द्वारा सिंह के हनन सम्बन्धी विवरण भी पाये उपर्युक्त विवरण से ही साम्य रखते हैं।

आल्हखण्ड में अज्ञात आतताइयों के बल पराक्रम के लिए महाराजा जयचन्द राजद्वार पर हस्तियों को मस्त पिलाकर छोड़ देते हैं।[4] वे आल्हा से कहते हैं कि तुम्हारी हाथियों को पछाड़ देने वाले के रूप में बड़ी प्रशंसा सुन रखी है, जिसकी मैं परीक्षा करना चाहता हूँ।[5] ऊदल उन हाथियों को पछाड़ने में कृतकृत्य होता है, जिससे प्रसन्न होकर, महाराज जयचन्द पुरस्कार रूप में जागीर प्रदान करने चिन्हित किये गये हैं।[6]

(७) लौह एवं दारु स्तम्भों का भेदन —

पराक्रम परीक्षण के साथ साथ मनोरंजन के लिए कभी लौह और कभी लकड़ी के स्तम्भों को तलवार साग या तीर से बेधने अथवा उन्हें उखाड़ने की प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती थीं। पृथ्वीराज रासो में विजय दशमी के अवसर पर महा० पृथ्वी राज द्वारा अष्टधातु से निर्मित खम्भे के बेधन की शर्त रखकर आयोजित की गई प्रतियोगिता का विवरण मिलता है। महाराज पृथ्वीराज सब वीरों को कहते हैं कि वे तीस मन लोहा मिश्रित करके बनाए गए खम्भे के बेधन का बेरा बेरें और अपनी तलवार तीर या साग से उसे बेध कर का कौशल दिखाएँ।[7] महाराज के सभी योद्धा उस खम्भ के बेधनार्थ उस पर साग तलवार और बाणों के वार करते हैं, किन्तु उनके अस्त्र शस्त्र उसमें दो अंगुल मात्र भी प्रविष्ट नहीं होते।[8] वाद्य यन्त्रों की ध्वनि के साथ यह क्रम पाँच दिवस तक चलता है।[9] अन्त में महाराज पृथ्वीराज उस पर स्वयं साग का प्रहार करते हैं,[10] जो अन्त-स्तम्भ में प्रविष्ट तो हो जाती है किन्तु उसके भरत की तीव्र गति के कारण उसका सन्तुलन बिगड़ जाता है और वह उसी में फँसी रह जाती है। निदान वहाँ पर उपस्थित क्षत्रियों के छत्तीसों कुलों के वीरों को महाराज द्वारा यह चुनौती दी जाती है कि वे उस साग को हो निकाल दें।[11] सभी वीर प्रयत्न करते हैं किन्तु साग न निकालने

---

१ से ३ दे० पृ० रा० का० १२०६।८२ से १२१०।८३ वही १५१८।१८२ ५६ वही ७३२१।८७ ५०

४ से ६ द० आ० २७६।१५ १६ वही ८०।५ ७ वही ८०।८ ११

७ बिहसि कह्यो चहुआन सूर सह मन बुलायो।
जैत थम रायो लोह मन तीस मिलायो।
सबो राय आगम करर सब विभो पहु।
सेंघि तीर तरवार। सग सरवर कर सकु। —पृ० रा० का० २०२३।३४

८ (क) नाम न नग सर मनकार। इम अभ्यास करिन अनि करिँ।
नर मुनि कुमुनि निमुनि नगि रिन्न भार हुअ भग भर्रा। वही २०२२।८७
(ख) निरखि न चारि हुअ प्रगरिय। उन्नि भग मध्य धरिय। वही २०२३।३८

९ से ११ द० वही ० ३।३४ से ६०

में असफल रहते हैं।[1] अंत में दिल्लीश्वर द्वारा तदथ वीर पुण्डीर को अश्व प्रदान किया जाता है जो साथ के साथ साथ उस स्तम्भ को भी उखाड़ फेंकता है। उसके इस पौरुष प्रदर्शन से प्रसन्न होकर, महाराज उसे सिरोपाव देकर सम्मानित करते हैं।[2] यही नहीं, महाराज उसे पांच हजार ग्रामों की एक जागीर तथा अपना राजसी ध्वज रखने की अनुमति प्रदान करके अपना सामन्त भी बना देते हैं।[3]

(३) मल्लयुद्ध —

क्षत्रियों में मल्ल विद्या का बहुत प्रचलन था। राजकुमारों को बचपन में ही मल्ल विद्या में नैपुण्य प्राप्त करा दिया जाता था। कवि मान ने कुमार राजसिंह को मात्र आठ वर्ष की अवस्था में मल्ल युद्ध कराने में विचक्षण घोषित किया है।[4] इसी भांति गोरेलाल ने महाराज छत्रसाल को बाल्यावस्था में ही बाहु विद्या और मल्लों को छकाने में निष्णात प्रदर्शित किया है।[5]

मनोरंजन के लिए राजकीय मल्ल भी हुआ करते थे। कवि मान ने महाराज जगतसिंह[6] तथा शाहजादा अकबर[7] के दरबार में मल्लों के युद्ध दिखाए हैं। केशव ने महाराज वीरसिंह देव[8] और जहांगीर के दरबारों में[9] भी मल्ल युद्ध होते प्रदर्शित किए हैं, जिससे यह मनोरंजन की एक बहु प्रचलित विधा सिद्ध होती है।

(४) नाल उठाना —

चंद ने महाराज जयचन्द के शब्दध्वनि नामाख्यात वीरों को सात सात मन की स्फटिक शिलाएँ एक हाथ से ऊपर उठाते चित्रित किया है जिससे उसका इंगित आजकल की नाल उठाने की प्रथा की ओर प्रतीत होता है।[10] 'नाल' का आकार चक्की के पाट की भांति गोल होता है तथा वह पत्थर या काष्ठ का बना होता है। नाल को उठाने के लिए उसके बीच में एक मूठ बनी होती है। नाल उठाने वाला एक हाथ से लाठी पर बल देता है तथा दूसरे हाथ से उस मूठ को पकड़कर नाल को टांगों के मध्य झटका देकर ऊपर उठाता है। आजकल महाराज जयचन्द के शब्दध्वनि वीरों जैसे सात मन के नाल उठाने वाले पुरुष तो कदाचित् नहीं हैं हां तीन साढ़े-तीन मन वजन वाले नालों को तो अलीगढ़ के समीप अब भी कुछ पुरुष एक ही हाथ से उठा देते हैं।

(५) मुगदर-घुमाना —

आजकल प्रायः होली के अवसर पर मुगदर उठाने की प्रतियोगिता आयोजित की जाती है। पृथ्वीराज रासो और आल्हखण्ड में भी यह कृत्य क्षत्रियों के व्यायाम तथा

---

१ से ३ 'पृ० रा०' २०।३।३४ से ४०

४ से १० द० क्रम० 'रा० वि० २।१६३, छ० प्र०, ६।२ रा० वि०' २।१४०, वही १८।६, 'वी० च० २३।७, 'ज० ज० च०' ४७, 'पृ० रा०' मो० ८।६८४।२०६

प्रेक्षकों के मनोरंजन का साधन चित्रित किया गया है। महाराज जयचन्द के दरबार में 'नटकर्म' 'नाटक खेलना'[1] तथा आल्हखण्ड में मंदिर चित्रित में शक्ति मुगल घुमान[2] प्रदर्शित किए गए हैं।

(ग) काव्यशास्त्र-चर्चा आदि कलापरक साधन

(१) विद्या वाद या काव्यशास्त्र विवाद —

भर्तृहरि द्वारा बुद्धिमता के विनोद का एकमात्र साधन बताई गई काव्य शास्त्र चर्चा आलोच्यकाल में भी लोकप्रिय थी। प्रायः एक दरबार का कवि दूसरे राज दरबार में जाता और वहाँ के कवियों से शास्त्रार्थ अथवा काव्य रचना की प्रतियोगिता करता था जिसे पृथ्वीराजरासो में विद्यावाद कहा गया है।[3] उसमें एक दो प्रसंग मिलते हैं —

शाह गोरी का दरबारी कवि दुर्गाकेदार महाराज पृथ्वीराज से स्वमनोभाव व्यक्त करते हुए निवेदन करता है कि, कवि चन्द स्वयं को देवी से वरदान प्राप्त अर्थात् वरदायी कहा करता है, अतः मैं उससे विद्यावाद करके उसका गर्व खण्डित करना चाहता हूँ।[4] कवि चन्द उसकी चुनौती स्वीकार कर लेता है और महाराज पृथ्वीराज द्वारा उनको 'वर्ण्य (वर्ण्य विषय) प्रदान किए जाते हैं कि एक कवि बालरवि और वयःसंधि वाली बाला का तथा दूसरा पूर्णचन्द्र और प्रौढ़ा का एक ही छन्द में श्लेषात्मक वर्णन प्रस्तुत करे।[5] कवि चन्द आख्यात कला में से प्रथम का चयन[6] करके उसका ऐसा उच्चकोटि का वर्णन प्रस्तुत करता है कि दिल्लीश्वर के सामन्त उनसे चन्द को ताम्बूल प्रदान करने का आग्रह करते हैं।[7] दुर्गाकेदार भी पीछे नहीं रहता और वह भी अपने वर्ण्य विषय का श्लेषात्मक वर्णन कर देता है।[8] इस पर चन्द जब एक ही छन्द में दोनों कलाओं का वर्णन कर देता है तो ऐसा करने में स्वयं को असमर्थ पाकर दुर्गाकेदार म्लान मुख हो जाता है। महाराज उसके औदास्य को यह कहकर दूर करने की चेष्टा करते हैं कि आज सरस्वती तुम पर कृपावती नहीं है, और उसे उसकी काव्य प्रतिभा से बढ़कर पुरस्कार देकर उसका मनोबल बनाए रखने का प्रयास करते हैं।

कविराज मोहनसिंह द्वारा सम्पादित रासो के संस्करण में तो कवि चन्द और दुर्गाकेदार के विद्यावाद की यहीं इतिश्री हो जाती है किन्तु काशी से सम्पादित संस्करण में, दुर्गाकेदार काव्य कौशल में परास्त होकर तंत्र मंत्रात्मक कार्यों की प्रतियोगिता का आश्रय ले लेता है जिसका विवेचन सौकर्य की दृष्टि से चतुर्थ अध्याय में तंत्र मंत्रात्मक विश्वास के संदर्भ में वर्णन किया गया है।

द्वारिका नाथ की यात्रा से लौटता हुआ कवि चन्द गुर्जर-नरेश भोलाभीम की राजधानी में रुकता है। भोलाभीम उससे उनके मंत्री अमर सेवरा से विद्यावाद करने की

---

१ से ३ 'पृ० रा० मो० ७।६८४।२०६ आ० ४८।१४ 'पृ० रा० मो० ३।४६८।१४
४ से ८ दे० 'पृ० रा० का० १५२२।७२ से १५२३।८१

इच्छा प्रकट करते हैं।[1] इस प्रयोजन के लिए भ्रमर सेवरा चन्द के समीप पहुँच भी नहीं पाता कि कवि चन्द उसको स्वर्माहित भावना में उड़ा देता है जिससे डरकर भ्रमर सेवरा विद्या वाद किए बिना ही लौट जाता है।

पृथ्वीराज रासो में महाराज जयचन्द को भी अत्यन्त विनोदी एवं काव्य कला में निष्णात प्रदर्शित करते हुए उनके कवि चन्द से हुए मनोरंजक विवाद का विवरण दिया गया है। महाराज जयचन्द, कवि चन्द के इसे प्रशस्ति कथन से खीझ उठते हैं, जिसमें प्रत्यक्षतः तो वह उनका यश-वर्णन करता है किन्तु उससे ध्वनित यह होता है कि महाराज पृथ्वीराज उनसे बढ़कर हैं। खीझकर चन्द को हतप्रभ करने के लिए वे, कवि चन्द की बरदिया, और महाराज पृथ्वीराज का जगलश्वर उपाधियों का क्रमशः बरद्—बलीवर्द या बल तथा सिंह के अर्थों में ग्रहण करते हुए एसा श्लेषात्मक प्रश्न करते हैं[2] जिसका कविराव मोहनसिंह के शब्दों में प्रत्यक्ष अर्थ तो यह था कि हे बरदाई ! तुम मितभाषी नम्रतायुक्त, जगलश्वर पृथ्वीराज के समीप रहने वाले, बुद्धि के दिवाले से रहित प्रस्तार (छन्दों का विस्तार करने के तरीके) विस्तृत करने वाले होते हुए भी क्यों कभी मुझे और कभी पृथ्वीराज को श्रेष्ठ कहते हैं ?[3] किन्तु श्लेषगम्य प्रश्न था कि—ऐसे वनराज की जगलस्थली में रहते हुए भी जिसको उसने घास चरने वाले पशुओं से रहित कर दिया है तुझ क्षुद्र काय बैल से घास क्यों नहीं चुगी जाती, जिससे तू दुबला हो गया है। कवि चन्द महाराज के व्यग्यार्थ को समझ जाता है और स्व प्रत्युत्पन्नमति के आधार पर उनको मर्माहत करने वाला प्रत्युत्तर देता है। वह कहता है कि महाराज पृथ्वीराज के घरबारूढ होकर समस्त दिशाओं में स्वशासन की आन धरने के समय उनका प्रतिरोध करने वाले नरेशों का उनसे युद्ध में मुह की खानी पड़ी थी जबकि निर्बल नरेशों ने युद्ध के बिना ही उनकी प्रधानता स्वीकार कर ली थी। इस प्रकार युद्ध में मान मर्दित होकर प्राण रक्षा की भिक्षा माँगने वाले तथा युद्ध के बिना ही जीवन दान माँगने वाले नरेशों ने क्रमशः के समस्त पत्रादि तथा अरण्यस्थली की समग्र घास के तिनकों को दाँतों तले दबाकर दिल्लीश्वर की अभ्यर्थना की है। जब नरेशों ने जगल की समस्त वनस्पति इस भाँति उजाड़ दी हो तो फिर बैल दुबला क्यों न होता ?[4] कन्नौजेश्वर और कवि चन्द का यह मनोरंजक वार्तालाप और भी चलता है। किन्तु ग्रंथ विस्तार के भय से हम उसके संक्षेप में दिग्दर्शनमात्र में ही सन्तोष कर रहे हैं।

---

१ द्र० 'पृ० रा०' का० ११७७।८१

२ मुह दरिद्र अरु तुच्छ तन जगल राव सु हद्द।
वन उजार पसु-तन चरन, क्यों दुब्बरो वरद्द॥

—पृ० रा०, भा० ४।६७२।२६१

३ ४ दे० वही, ४।६७३।२६२

(२) वेश्या नृत्य —

आदिकाव्यकाल में मनोरंजनार्थ वेश्या नृत्य-प्रदर्शन एवं दुर्व्यसन की सीमा तक परिव्याप्त मिलता है। समाज के उच्चवर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले नरेश और बादशाहों के महलों की रंगशालाओं में तो उसकी आयोजना होती ही थी, राजकुमार भी वेश्याओं के घुंघरुओं की रुनझुन से निनादित रहते थे। वेश्याओं का क्रय-विक्रय भी प्रचलित था। नरेशों द्वारा नृत्य-संगीत में दक्ष वेश्याओं को सन्धि रूप में प्राप्त करने के उल्लेखों में भी तात्कालिक शासकों की इस व्यसन के प्रति अभिरुचि का पता चलता है। समाज के नेताओं की यदि यह दशा हो तो जनसामान्य से भी इस नशामक रोग से अछूता रह जाने की दुराशा कैसे की जा सकती है? यही कारण है कि नगरों में वेश्याओं के पृथक् मुहल्लों की स्थिति दिखाते हुए वीरकाव्य प्रणेताओं ने मनोरंजन की इस विधा का व्यापक प्रचलन दिखाया है।

स्वनृत्य संगीत और रूपमाधुरी के माध्यम से लोगों का मनोरंजन करके जीविकार्जन करने वाली ये रमणियाँ पातुर, कंचनी, मंडिनी, विन्ता, वेश्या, गणिका, रंडी तथा पात्र अभिधानों से सम्बोधित की जाती थीं। पात्र संज्ञा का प्रयोग उन्हीं नवयौवनाओं के लिए किया जाता था जो शारीरिक सौंदर्य के बत्तीसों लक्षणों से युक्त तथा नृत्य और संगीत कलाओं में प्रवीण होती थीं।[१] शाह गोरी तथा महाराज पृथ्वीराज क्रमशः चित्ररेखा[२] और करनाटी[३] नामक पात्राओं को प्राप्त करके अपने आक्रमण स्थगित करते चित्रित किए गये हैं। करनाटी को पूर्णतः कला सम्पन्न बनाने के लिए दिल्लीश्वर एक कन्हन नामक नायक (नृत्यादि शिक्षण में दक्ष व्यक्ति को नायक कहा गया है) से उसे राजमहल में रखकर शिक्षित कराते हैं,[४] तथा स्व-सामन्तों की उपस्थिति में उसकी कलाओं की परीक्षा करते हैं।[५] परीक्षा में सफल हुई करनाटी के गुरु को महाराज द्वारा आधा मन स्वर्ण प्रदान करने[६] का निर्देश स्पष्ट करता है कि वेश्याओं को शिक्षित कराने के लिए सम्भवतः प्रथा व्याप्त रही होगी। चित्ररेखा और करनाटी के विषय में यह निर्देश करना भी आवश्यक है कि वे दोनों रनवासों में स्थान प्राप्त करके अपने स्वामियों की गलहार बन जाती हैं।

महाराज पृथ्वीराज द्वारा स्वमहल में करनाटी के नृत्य प्रदर्शन का उल्लेख पीछे किया जा चुका है। महाराज का शाह गोरी की कैद में भी इस बात का बड़ा पश्चात्ताप रहता है कि मेरे मनोरंजन के लिए यहाँ संगीतालाप के साथ नृत्य करने में प्रवीण पातुरें

---

१ से ३ द० क्रम० पृ० रा० का० ६६।१४, ३८६।२ पृ० रा० मो० ११२६।११
पृ० रा० का० ६५६।३४

४ से ६ द० पृ० रा० का० ६६।१८ से ६६।५६

७ महिला मु मुरिह सब बम्मि मय महिला महिन मु मत्ति बति।'
—पृ० रा०, मो० ११२६।११३

नहीं हैं।[1] महाराज जयचन्द के यहां कवि चन्द ने वेश्या नृत्य के लिए प्रयुक्त एक विशाल यवनिका युक्त नृत्य गृह प्रदर्शित किया है, जिसमें उसने अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दों में दस हजार मन तेल में सौ मन अगर और पुनर्नादि मिश्रित करके, स्वर्ण के शत-सहस्र दीपक जलाये जाते थे तथा उसे स्वर्ण निर्मित सिंह मृग, हाथी तथा अनेक जल और थलचर पशु पक्षियों की प्रतिमाओं से सजाया हुआ था। अतिशयोक्ति का निरावरण करने पर यह कहा जा सकता है कि महाराज जयचन्द की यह रंगस्थली निश्चय ही वृहदाकार रही होगी। कवि चन्द का महाराज जयचन्द, वेश्याओं के नृत्य संगीत और नाटकादि के प्रेक्षण के लिए रात्रि के प्रथम प्रहर में बुलाते हैं[2] तथा यह कार्यक्रम रात्रि का एक प्रहर मात्र अवशिष्ट रह जाने तक चलता है।[4] इस अवसर पर चन्द ने नरेशों के इस वेश्यानुराग से मर्मान्तर्व्यथित होकर जो मार्मिक उदगार व्यक्त किए हैं, वे तत्कालिक महिषियों के आत्म क्रन्दन के पुंजीभूत रूप हैं। उसके शब्दों में—पति साहचर्य और रमण का सौभाग्य प्राप्त करने वाली पत्नियां तो विरल ही होती हैं अन्यथा अधिकांश की रात्रियां पत्यागमन की प्रतीक्षा में तड़पते ही व्यतीत हो जाया करती हैं।[5] चन्द ने धीर पुण्डीर का भी स्व चित्रसारी में वेश्या-नृत्य दर्शन चित्रित किया है।[6]

वीरचरित्र में महाराज वीरसिंहदेव के रंगमहल में चित्र पुत्तलिका जैसी नर्तकियां उनका मनोरंजन करते प्रदर्शित की गई हैं।[7] कवि मान ने महाराज राजसिंह की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए उनके वेद और पुराणों के श्रवण से प्रमुदित होने तथा उनके यहां वेश्याओं के नृत्य करने का एक-साथ इस भांति चित्रण किया है, मानो इन परस्पर विरोधी गुण दोषों में, मान की दृष्टि में कोई अन्तर ही नहीं था।[8]

कवि जान ने नाहरखां को अनेक पातुरें क्रय करके, रात्रि दिवस उनके नृत्य प्रेक्षण में अनुरक्त दिखाया है। कवि जान के इस उल्लेख से वेश्याओं के क्रय विक्रय के तथ्य पर प्रकाश पड़ता है।[9]

महलों की भांति राजदरबारों में भी वेश्या नृत्य की व्यापक आयोजना का चित्रण मिलता है। महाराज पृथ्वीराज स्व-सामंतों सहित राज सभा में पातुरों के

---

१ नहीं पातुर चातुर नत्यकारी। नहीं ताल संगीत आलापकारी।'

'पृ० रा०' का० २३७८।१६४२

२ से ४ दे० पृ० रा० का० १७००।८३ से १७०४।८६०

५ जाम एक छिनदा न घट सत्तमि सत्तनिवार।

कहु कामिनि सुष रनि समर। त्रियनिय नीद निवार।'

पृ० रा० मो० ६१६६६।३२३

६ से ६ दे० क्रम० 'पृ० रा० का० २०६२।२१५ 'वी० च० २०।२८ ३१ रा० वि०' ४।४५ ४६, क्या० रा०' ५७८ ७६

(२) वेश्या नृत्य —

मध्यकाल में मनोरंजनार्थ वेश्या नृत्य प्रेक्षण पर्याप्त दुर्व्यसन की सीमा तक परिव्याप्त मिलता है। समाज में उच्चवर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले नरेश और धन्नासेठ के महलों की रंगशालाओं में तो उनकी आयोजना होती ही थी राजदरबार भी ये यात्रा के पुष्पमालाओं से अन्य भुन में निनादित रहते थे। वेश्याओं का क्रय विक्रय भी प्रचलित था। नरेशों द्वारा भेंट में संगीत में दक्ष वेश्याओं को सहर्ष रूप में प्राप्त करने के उल्लेखों से भी तत्कालीन नागरों की इस व्यसन के प्रति अभिरुचि का पता चलता है। समाज के नेताओं की यदि यह दशा हो तो जनसामान्य से भी इस संक्रामक रोग से अछूता रह जाने की दुराशा कैसे की जा सकती है? यही कारण है कि नगरों में वेश्याओं के पृथक मुहल्लों की स्थिति दिखाते हुए वीरकाव्य प्रणेताओं ने मनोरंजन की इस विधा का व्यापक प्रचलन दिखाया है।

स्वनृत्य संगीत और रूपमाधुरी के माध्यम से लोगों का मनोरंजन करके जीविकार्जन करने वाली ये रमणियाँ पातुर, कंचिनी, नटिनी, विदग्ध, वेश्या, गणिका, रंडी तथा पात्र अभिधानों से सम्बोधित की जाती थीं। पात्र संज्ञा का प्रयोग ऐसी नवयौवनाओं के लिए किया जाता था जो शारीरिक सौंदर्य के बत्तीस लक्षणों से युक्त तथा नृत्य और संगीत कलाओं में प्रवीण होती थीं।[१] शाह गोरी तथा महाराज पृथ्वीराज क्रमशः चित्ररेखा[२] और करनाटी[३] नामक पात्राओं को प्राप्त करके, अपने आक्रमण स्थगित करते चित्रित किए गए हैं। करनाटी को पूर्णतः कला सम्पन्न बनाने के लिए दिल्लीश्वर एक वल्हन नामक नायक (नृत्यादि शिक्षण में दक्ष व्यक्ति को नायक कहा गया है) से उसे राजमहल में रखकर शिक्षित कराते हैं[४] तथा स्व सामन्तों की उपस्थिति में उसकी कलाओं की परीक्षा करते हैं।[५] परीक्षा में सफल हुई करनाटी के गुरु को महाराज द्वारा आधा मन स्वर्ण प्रदान करने[६] का निर्देश स्पष्ट करता है कि वेश्याओं को शिक्षित कराने के लिए सदमगत प्रथा व्याप्त रही होगी। चित्ररेखा और करनाटी के विषय में यह निर्देश करना भी आवश्यक है कि वे दोनों रनवासों में स्थान प्राप्त करके अपने संरक्षकों की गलहार बन जाती हैं।

महाराज पृथ्वीराज द्वारा स्वमहल में करनाटी के नृत्य प्रेक्षण का उल्लेख पीछे किया जा चुका है। महाराज को शाह गोरी की कैद में भी इस बात का बड़ा पश्चात्ताप रहता है कि मेरे मनोरंजन के लिए यहाँ संगीतालाप के साथ नृत्य करने में प्रवीण पातुरें

---

१ से ३ दे० क्रम० पृ० रा० का० ६६०।५ ३८६।८ पृ० रा० मो० १।२६०।११ 'पृ० रा०' का० ६५६।३ ४

४ से ६ दे० 'पृ० रा० का० ६६०।५ से ६६६।५६

७ महिना सु मुक्कि सब बसि मय महिला महिल [illegible] मत्ति बसि।

—पृ० रा०, मो० १।२६१।१३

नहीं है।[1] महाराज जयचन्द के यहाँ कवि चन्द ने वेश्या-नृत्य के लिए प्रयुक्त एक विशाल यवनिका युक्त नृत्य गृह प्रदर्शित किया है जिसमें उसने अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दों में दस हजार मन तेल में सौ मन अगर और पुष्पादि मिश्रित करके स्वर्ण के शत-सहस्र दीपक जलाये जाते थे तथा उसे स्वर्ण निर्मित सिंह मृग हाथी तथा अनेक जल और थलचर पशु पक्षियों की प्रतिमाओं से सजाया हुआ था।[2] अतिशयोक्ति का निराकरण करने पर यह कहा जा सकता है कि महाराज जयचन्द की यह रंगस्थली निश्चय ही वृहदाकार रही होगी। कवि चन्द को महाराज जयचन्द, वेश्याओं के नृत्य संगीत और वाद्यादि के प्रेक्षण के लिए रात्रि के प्रथम प्रहर में बुलाते हैं,[3] तथा यह कार्यक्रम रात्रि का एक प्रहर मात्र अवशिष्ट रह जाने तक चलता है।[4] इस अवसर पर चन्द ने नरेशों के इस वेश्यानुराग से मर्मव्यथित होकर जो मार्मिक उद्गार व्यक्त किए हैं वे तत्कालिक महिषियों के मौन क्रन्दन के पुंजीभूत रूप हैं। उसके शब्दों में—पति साहचर्य और रमण का सौभाग्य प्राप्त करने वाली पत्नियाँ तो विरल ही होती हैं, अन्यथा अधिकांश की रात्रियाँ पत्यागमन की प्रतीक्षा में तड़पते ही व्यतीत हो जाया करती हैं।[5] चन्द ने धीर पुण्डीर का भी स्व चित्रसारी में कन्या-नृत्य देखते चित्रित किया है।[6]

वीरचरित्र में महाराज वीरसिंहदेव के रंगमहल में चित्र पुत्तलिका जैसी नर्तकियाँ उनका मनोरंजन करते प्रदर्शित की गई हैं।[7] कवि मान ने महाराज राजसिंह की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए उनके वेद और पुराणों के श्रवण से प्रमुदित होने तथा उनके यहाँ वेश्याओं के नृत्य करने का एक-साथ इस भाँति चित्रण किया है, मानो इन परस्पर विरोधी गुण भावों में, मान की दृष्टि में कोई अन्तर ही नहीं था।[8]

कवि जान ने नाहरखाँ को अनेक पातुरें भेंट करते, रात्रि दिवस उनके नृत्य प्रेक्षण में अनुरक्त दिखाया है। कवि जान के इस उल्लेख से वेश्याओं के क्रय विक्रय के तथ्य पर प्रकाश पड़ता है।[9]

महलों की भाँति राजदरबारों में भी वेश्या नृत्य की व्यापक आयोजना का चित्रण मिलता है। महाराज पृथ्वीराज स्व सामन्तों सहित राज सभा में पातुरों के

---

१ कहाँ पातुर चातुर नृत्यकारी। कहीं तार संगीत आलापकारी।
पृ० रा० का० २३०५।१६४२

२ से ४ दे० 'पृ० रा०' का० १७००।८००, से १७०४।८६०

५ "जाम एक छिनन्त न घट सत्तमि सत्तनिवार।
बहु कामिनि सुप रति समर। क्रिशनिय नीद निवार।"
पृ० रा० मा० ४।६६६।३२३

६ से ९ दे० क्रम० 'पृ० रा० का० २०६२।२१५ 'वी० च०' २०।२८ ३०, रा० वि० ५।४५ ४६, 'क्या० रा० ५७८-७९

नाम्य गगीत और नृत्य का रसास्वादन करते दिखाया गया है।[1] इसके अतिरिक्त महा राज पृथ्वीराज के राज्याभिषेक[2] और महाराज जयचन्द के राजसूय यज्ञ[3] के अवसरो पर भी कवि चन्द ने वस्या-नृत्यो की आयोजना प्रदर्शित की है। पवामगा रासा म नाहुण्या द्वारा भी र वस्याओ के नृत्य प्रेक्षण म निरन्तर प्रवृत्त रहने का उल्लेख किया हो जा चुका है। हम्मीररासो और हम्मीर हठ म महाराज हम्मीर देव उनके किस का घेरा डाल हुए शाह अलाउद्दीन की चिन्ता न करते हुए वस्या नृत्य प्रेक्षण म अनुरक्त मिलते है।[4] कवि जान ने शाहजहा जहागीर के दरबार म वेश्याओ को नृत्य गान करते प्रदर्शित किया है।[5] कवि योधर ने जगनामा म मोजुद्दीनों के दरबार की राग रग म डूबे प्रसाद से भी बढ़ कर दिखाया है। उसके दरबार म वहीं शराब के दौर चलत थ तो वहीं मीन और अफीम की गोलियाँ चढ़ाई जाती थी। उसम अखण्ड तान और तानो के स्थानाप न दारू घटाई और मुण्डादि बने रहते थ। दरबार म किसी और हिजडे नाच करते थ और वहीं पातुरें नृत्य-रत रहती थी।[6] राजविलास म शाह जादा मुअज्जम प्रमन सनिक शिविर म वस्या-नृत्य स मनोरजन करते प्रदर्शित किया गया है।[7] मान ने कुमार भीमसिंह को भी पातुरो के नृत्य और संगीत से प्रमुदित होते चित्रित किया है।[8] आल्हखण्ड म राजदरबारो तथा सनिक पडावो पर कचनियो और भगतो के लडको के नृत्य चलन का उल्लेख मिलता है।[9]

सामान्य नगरवासियो द्वारा वस्या-नृत्य के प्रेक्षण से मनोरजन करने का कवि चन्द और विद्यापति के निर्देशो स पता चलता है। कवि चन्द ने कन्नौज के प्रवेश द्वार के समीप ही वेश्याओ का निवास दिखाया है। उनके नाचो म, उन वस्याओ के सुगन्धियो स आपूरित ऋतुराज की भाति उन्माद आवास आकर्षक वेश भूषा वीणादि पर छत्तीसो रागो की मधुर रागनियो तथा मेनका के सदृश नृत्य कौशल लोगो के चित्त को हठात् ही चलायमान कर देता था।[1] विद्यापति ने जौनपुर म राज माग के निकट वस्याओ के प्रति सुन्दर आवासो की स्थिति दिखाई है।[11] उनके अनुसार

---

१ से ४ पृ० नम० पृ० रा० का० १४६५।१२, वही ४६७।६१ वही, १३२२।१६ ह० रा० ६२२ ह० ह० चन्द्र० १८७ ८८

५ 'कहूँ माट मारो करें मान पाव कहू वेडिनी लालिनी गीत गाव।

ज० ज० च०' छ० ४६

६ इत मौजनी मगमर मस्त अलस्त अमल खाइक।
सिगरे कलावत है अमीर भरे रहे चित चाइक।
दारु सु दारु भरत गोली अमल गोली रग की।
कहु समामस्त कलावती कहु पातुरन की गाह की।
कहु नचत हरखे हीजरा भर लगी अहि डरू आहि की।जगा० प० ६७४ ८७

७ स ११ दे० क्रम० रा० वि० १८।८ वही ५।४५ आ० ६०।६, १३७।१२
१५ पृ० रा०' का० १६०।४२७ ३०, कीर्ति पृ० ३२,

वश्याओं के कटाक्ष, गँवारों को छोड़कर, अन्य समस्त नागरिकों के मनों को विद्ध करते थे।[1] वेश्याओं की शृंगारावेष्टित तन-वल्लरी, कुटिल अलकावली सलोने रूप और मृदु मुस्कान-युक्त चितवन की प्रशंसा करते हुए, विद्यापति का यह कथन कि ऐसी इच्छा होती है, पुरुषार्थ चतुष्टय में से शेष तीन की चिंता छोड़कर मात्र काम की साधना की जाय,[2] कदाचित् तात्कालिक नागरिकों के चिंतन का वाचक है।

वेश्या नृत्य द्वारा मनोरंजन करने का समापन कवि चन्द की नामावली में उपयुक्त रहेगा जिसमें उन्होंने इस व्यसन पर कटु-व्यंग्य कसा है— मदंग ध्वनि एवं पातुरों की जघनस्थली ही जिनके लिए सर्वोच्च भुग है, वारवनितानुरागी, वेश्याओं के कंठ से निःसृत मादक स्वर ही जिनके लिए सुभाषित वाक्यावली है, रामकलापारी रमाओं के कंठ से लगना ही जिन्हें विष्णु और शिव की सेवा के सदृश सारयुक्त प्रतीत होता है तथा वारांगनाओं के पतनकारी निःश्वासों की सुरभि से सुवासित होना अपना अहोभाग्य मानते हुए, जो उनके ही साहचर्य में अपनी रातियाँ व्यतीत कर देते हैं, ऐसे काम प्रसित नरेशों की जय हो! जय हो!"[3]

(आ) नटों के नृत्य-संगीत तथा अन्य खेल —

वारकाव्य में उपलब्ध निर्देशों से यह स्पष्ट होता है कि, यद्यपि नट व दरों के अनेक शारीरिक उछल-कूद से सम्बद्ध क्रीड़ाएँ तथा वटाओं के खेल दिखाकर भी सामाजिकों का मनोरंजन करते थे तथापि उनका प्रमुख कर्तव्य सामाजिकों का नृत्य और संगीत द्वारा मनोरंजन करना होता था।

पृथ्वीराजरासो के शशिव्रता वर्णन नाम प्रस्ताव में महाराज पृथ्वीराज के दरबार में आने वाला नट स्वयं को देवगिरि के यदुवंशी नरेश का राज नट बताता है,[4] जिससे आलोच्यकालीन नरेशों के यहाँ राजकीय नटों की उपस्थिति अभिव्यंजित होती है। महाराज बीसलदेव स्वमहल में पटरानी पाँवारी के साथ मनोविनोदार्थ रंग रंग युक्त नाट्य का प्रेक्षण करते चित्रित किए गए हैं।[5] महाराज जयचन्द की यवनिका युक्त जिस रंगशाला का वेश्याओं के सन्दर्भ में उल्लेख किया गया है वह नाटकों के लिए भी प्रयुक्त होती होगी।[6] तात्पर्य यह है कि राजमहलों की नाट्य शालाओं में मनोविनोदार्थ नाट्य हुआ करते थे। नटों द्वारा नृत्य और संगीत के माध्यम से प्रजा का

---

१ से २ वही, पृ० ३६ वही, पृ० ३४

३ 'मुरज मुरज मृदंग तल्ल जघन, राग कला वोरन।
कंठी कंठ सुभास ने सम जिन, राम कला पोषन।
रमी रमनिना गुन हरि हरो सुरभीय पवन पता।
एवं सुरहृद्द वाग वभ महिला, जय राज रात्र गता। —पृ० रा० मो० ४।६६६।३२८

४ से ६ पृ० रा० का० ७६१।१६, वही, ७४।३७०, वही १७०६।८३४

मन प्रसाद करा या पृथ्वीराजरासो,[1] परमालरासा,[2] राजविलास,[3] वीरचरित्र,[4] जहांगीरजसचन्द्रिका[5] और जगनामा म,[6] चित्रण मिलता है। उक्त पृथ्वीराजरासो म बन्दर नचावर[7] छत्रप्रकाश और सुजानचरित म वटामा म मन फिरावर,[8] तथा पृथ्वीराजरासो, हम्मीररासा और छत्रप्रकाश म नागी...उछल कूद म सम्बद्ध नृत्या[9] द्वारा सामाजिका का मनोरजन करते प्रदर्शित किया गया है।

(इ) भगर-विद्या या एन्द्रजालिक खेल —

पृथ्वीराजरासो क कनवज्ज-समय में भगर क खेल का प्रत्यक्ष वणन मिलने के साथ साथ उसने अनेक प्रसगा में युद्धस्थल में मनी मारकाट स वीरा क छिन्न भिन्न अगा क इतस्तत गिरने तथा पग धा के चलने फिरने को भगर क खेल स उपमित किया गया है।[10] जिसस स्पष्ट होता है कि विवेच्य हमार आलोच्यकाल क पूर्वार्द्ध में, भगर के खेल सामाजिका क मनोरजन की एक बहु प्रचलित विधा थ। कन्नौज जाते हुए महाराज पृथ्वीराज और उनक सामत किसी एन्द्रजालिक नट को सात सागा की नोको पर जय जयकार बोलते हुए नाचते देखते हैं। तदुपरान्त आकाश स कही उसका सर, कही हाथ और कही छटपटाता हुआ धड आकर गिरता है जिसे देखकर उनके विस्मय की सीमा नही रहती।[11] प्रस्तुत सन्दर्भ में कवि चन्द का अभिप्रेत इस अपशकुनसूचक

---

१ से ६ दे० क्रम० प० रा० का ७६०।११ 'प० रा०' ५।१६६ 'रा० वि०' ३।७२ 'वी० च० २७।७ ज० च० ७० छ० ४७ ज० ना० प० ८५ पृ० रा० का ४८६ २६८ छ० प्र० २०।१७ 'सु० च० ८।६।७ प० रा० का २६०।४६, 'ह० रा० छ० ७६८, 'छ० प्र०' २०।१७

१० कहर भगर जिय पेल। ठेल सलन सम ठिल्लहि।
इक धुकत धर तुफिर। इक पल भगल मिल्लहि।
इक्क कमध उठत। इक्क अंतन अनुरुझहि।
इक्क हृदय पग झरहि। रिकि पग पग जिन सुझहि।
तरफरत इक्क धर मीन जनु। रत रवन छिन्निन करयो।
घन घाय घुम्मि धर धुकि धर। इत मुकुट म्हह गिरयो।'

—प० रा० का ११३९।६८

और भी दे० ५१४।३७७ ११६०।८३, १३२६।२४६ १३४५।४६ २४८६। १२४

११ 'चलत मग्ग चहुआन। निकट इक ग्राम समतर।
नट पेलत नाटक्क। मगल मडयो भ्रम तनर।
सत्त सगु उप्पर। नट्ट सुत्तौ जय जपत।
बहुत सीस कहु पानि। धरनि धर परयो सुकपत।
इह चरित पिप्प सामत सबौ। अप्प चित्त विभ्रम लहे।
पिप्पत परस्पर मुष सकल। न को बुझ्झन राजन कहै।' वही १६० ६।१६८

घटना द्वारा भावी मारकाट का पूर्वाभास देता रहा है। अतः उसने इस खेल में उस मांगलिक पक्ष को अवर्णित छोड़ दिया है जिसमें वे शरीरांग यथास्थान जुड़कर नट पुनः जीवित हो जाता था। रासो में अन्यत्र कबन्धों के उठ खड़े होने की समर के खेल से उपमा दिए जाने से यह इंगित अवश्य मिलता है कि रासोकार को पूरे खेल का ज्ञान था। अतः इस मनोरंजन विधा के विषय में रासो में उपलब्ध विवरण से तुलना करते हुए बाह्य साक्ष्यों से कुछ अधिक प्रकाश डालना उपयोगी रहेगा।

रासोकार ने नट को 'सत्त सगु उप्पर' लेकर दिखाकर खेल का प्रयोग दिखाया है जबकि अबुल फजल ने चमड़े की पट्टी के एक सिरे को ऊपर फेंककर, अदृश्य आकाश में लटकाने का उल्लेख किया है। रासोकार ने नट के जीवित होने का चित्रण नहीं किया है किन्तु अबुल फजल के अनुसार– 'नट दर्शकों में से किसी एक को उसके आकाश से उतरने के समय तक अपनी पत्नी की रक्षा करने का भार सौंप जाता था। नट के छिन्न भिन्न अंगों के साथ सती होने का हठ करती हुई नट-पत्नी सती होकर राख में परिणत हो जाती थी। अचानक तभी कहीं से नट प्रकट हो जाता था और अपनी पत्नी की मांग करता था। दर्शकों द्वारा विगत घटनावली का वृत्तान्त सुनाने पर वह उसमें अविश्वास प्रकट करता और कहता कि आपने मेरी पत्नी को अवश्य ही अपने घर में छिपा दिया है। और वस्तुतः लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता था, जब नट द्वारा आवाज लगाने पर उसकी पत्नी अपनी सम्यक देखभाल के लिए उस पुरुष को धन्यवाद देती हुई, उसके गृह में जीवित निकलकर आती थी।'[1]

इंग्लैंड के यात्री एडवर्ड मेल्टन ने समर के खेल में नट-पत्नी के सती होने का उल्लेख न करते हुए कहा है कि नट पत्नी उन शरीरांगों को एक टोकरी में रखती जाती थी, और सर के भी कटकर गिरने पर उन्हें इधर-उधर छितरा देती थी। विविध शरीरांग रेंग रेंगकर यथास्थान जुड़ जाते थे और नट जीवित होकर पूर्ववत चलने फिरने और बोलने लगता था। दर्शक इसी विभ्रम में विमूढ़ हो जाते थे कि सब घटित घटनाएं कहीं स्वप्न तो नहीं थीं।[2]

मनोरंजन की इस मृतप्राय विधा का समापन करते हुए, हम शाह जहांगीर के समय में समर के खेल का सारांश देने के लोभ का संवरण नहीं कर सकते। जहांगीर के अनुसार खेल दिखाने वाले एक जंजीर को अधर आकाश में लटका देते थे, उस जंजीर पर वे क्रमशः एक एक कुत्ता, सुअर, तेंदुआ, चीता और शेर को छोड़ता हुआ ऊपर चढ़ाते जाते थे और अन्त में जंजीर की लड़ियां बनाकर थैले में रख लेते थे। दर्शक यही सोचते रहते थे कि वे पशु कहां गये।[3]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि समर के खेल के लिए या तो सांगें गाड़ ली जाती थीं, अथवा चमड़े की पट्टी या जंजीर को आकाश में लटकाया जाता था।

---

१ द० आईन ए अकबरी', भा० ३, पृ० १३२

२ ३ द० वही पृ० १३३ पर डा० जदुनाथ सरकार की पाद टिप्पणी

बहुधा नट उस पर स्वयं चढ़कर, अपने किसी ■ न नारीगण को नीचे गिराता जाता था। अन्त में नारीगण एकत्र होकर नट को जीवित करा हो जाता था। कभी कभी इससे भी अधिक दक्ष ऐन्द्रजालिक दर्शकों के सामने मरी हुई पत्नी को भी जीवित कर देते थे। इस खेल का दूसरा रूप आकाश में लटकी जंजीर पर पशुओं को चढ़ाकर उन्हें अदृश्य कर देने के कौतुक से सम्बन्धित रहता था।

(उ) कथा वार्ता सुनना

वीरकाव्य में ऐसे निर्देश मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि मन राजदरबारों में, तथा शयन से पूर्व मनोरंजक कथाएँ सुना करते थे। शिशु भी माताओं को कहानी सुनाने का आग्रह करते मिलते हैं जिनके आधार पर कल्पना की जा सकती है कि अन्य सामाजिकों में भी मनोरंजन की यह प्रणाली प्रचलित रही होगी।

पृथ्वीराजरासो में महाराज पृथ्वीराज के दरबार में महाभारत का पाठ किए जाने का उल्लेख मिलता है।[1] बौद्ध और जैनों की भी कथाएं उस समय सुनी जाती थीं किन्तु पृथ्वीराजरासो में उन्हें ज्ञान को नष्ट करने वाली तथा मानव के पौरुष का ह्रास करके उसे स्त्रैण बनाने वाली कहकर निन्दा की गई है, तथा क्षत्रियों के लिए रामायण और महाभारत की कथाओं के श्रवण को ही उपयुक्त बताया गया है।[2] रासो में शिशु आना अपनी माता से निवेदन करता है कि आप मुझे सदैव रामायण और महाभारत की कथाएं सुनाया करती हो जिनमें वर्णित भीषण प्रसंगों से मुझे कभी भी भय नहीं लगता। अतः आपका यह तर्क व्यर्थ है कि मुझे अपने बाबा वीसलदेव के नर से दानव बनने की कथा सुनते हुए डर लगेगा।[3] आना के इस कथन से स्पष्ट होता है कि बच्चों द्वारा माता से कहानी सुनाने का आग्रह किया जाता था, तथा विशेषतः क्षत्रियों को रामायण और महाभारत सम्बन्धी प्रसंग सुनाये जाते थे।

शयन से पूर्व कहानी सुनने का उल्लेख महाराज पृथ्वीराज के कन्नौज गमन के अवसर पर मिलता है। महाराज का शयन काल होने पर, उनका कथक उन्हें कहानियां सुनाना आरम्भ करता है जिन्हें सुनते हुए ही वे निद्रा मग्न हो जाते हैं।[4]

---

१ 'कहै भर भारथ वत्त स वान। घर्यो परतापसि मुच्छन पान।

—पृ० रा० ना० २६६।३६

२ 'जुध धम लियौ बध न संग। सुनि श्रवन राज मन भो उदंग।
इह नष्ट ग्यान मुनिय न कान। पुरषातन मज्ज कित्ति हान।
परमोध तजो बोधक पुरान। रामाइन सुन भारथ निदान। वही ७१।३४६ ५२

३ जसी कहि मो कहु डर पावहु। मेरे कछु इह न्याय न आवहु।
रामाइन भारत की माता। सोही सत्र सुनत हो माता।' वही ६८।३३४

४ मइत निसा दिन मुन्दित बिनु उड़पनि तेज विराज।
कथक सथ्थ कथ्थहि कथा सुक्ख सयन प्रथिराज।'

—पृ० रा० मो० ४।६६३।३१५

उपर्युक्त विवरण में आलोच्यकाल में रामायण और महाभारत की कहानियों अधिक लोकप्रिय होना अभिव्यक्त होता है। इस समय मुसलमानों के आक्रमणों की बाढ़ सी आ गई थी, अतः निर्वेद, उपराम वृत्ति और अहिंसक मनोवृत्तियों को जाग्रत करने वाली बौद्ध और जैन कहानियों की उसमें जो अवमानना की गई है उसके मूल में निश्चय ही युग प्रवृत्ति भासक रही है।

क्रीडात्मक विनोद

क्रीडात्मक विनोद के साधन विवेचन सौकर्य की दृष्टि से दो वर्गों में रखे जा सकते हैं —(अ) बालक और पुरुषों के क्रीडात्मक विनोद। (आ) बालिका और स्त्रियों के क्रीड़ा विनोद।

(अ) बालक और पुरुषों के क्रीडात्मक विनोद

(१) चकडोरि घुमाना

बच्चों की इस क्रीड़ा का मात्र पृथ्वीराजरासो में उपमान रूप में उल्लेख मिलता है।[1]

(२) पतंग उड़ाना

सुजान चरित[2] और हम्मीररासो में[3] पतंग उड़ाकर मनोरंजन करने की विधि का उपमान रूप में चित्रण मिलता है। कवि चन्द ने महाराज पृथ्वीराज के राज्याभिषेक के अवसर पर समस्त नगरवासियों को गुड्डियाँ उड़ाते प्रदर्शित किया है[4] जिससे स्पष्ट होता है कि विशेष हर्षोल्लास के समय आबाल वृद्ध सभी गुड्डियाँ उड़ाया करते थे।

(३) गिलोल से शिकार खेलना

रासोकार ने महाराज पृथ्वीराज[5] और आल्हखण्डकार ने ऊदल की[6] कुमारावस्था में गिलोल से शिकार खेलते चित्रित करके लड़कों की तद्गत मनोरंजन विधा पर प्रकाश डाला है।

(४) हडूडुआ

कवि चन्द ने कई प्रसंगों में परस्पर मारकाट मचाते योद्धाओं की हडूडुआ खेलते बच्चों से तुलना की है[7] जिससे ज्ञात होता है कि यह खेल किशोरों के मनोरंजन का एक

---

१ से ६ दे० क्रमश० पृ० रा०' बा० ६१०।१२ सु० च०' ८।६।१२ ८।३।४७ ह० रा० ८०३, पृ० रा० बा० ११७।६१ वही १।३।७२७, आ० ३३।१६

७ (क) 'दुह मीन दीन चहुवान भारी। हडूडूल षेलत बालका जारी।

पृ० रा० बा० १३६३।१६२

(ख) निय घुम्म रण्ण सनाग ग्रेह। हडूडुह षेलन बालक जेह। वही १४१३।८६ और भी दे० वही १३८।१५, १०८७।५

दिखाया है।[1]

कवि केशव प्रदत्त विवरण से उस काल में चौगान के अधोलिखित स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है।

खेल के मैदान की लम्बाई सवा कोस होती था।[2] केशव के अनुसार इसके दोनों सिरों पर हाल गड़े होते थे[3] जबकि भूषण ने उन्हें मीनारों की संज्ञा दी है।[4] ब्लोचमन ने आईन ए अकबरी का अनुवाद करते हुए 'हाला' को क्रीडा क्षेत्र के सिरों पर लगे हुए दो दो खम्भों का जोड़ा बताया है जिनके बीच से गेंद निकाल देने पर गोल हो जाता था।[5] प्रतीत होता है कि भूषण ने मुस्लिम शैली पर बने हुए इन हालों को ही 'मीनार' कहकर अभिहित किया है जो कदाचित् हालों के लिए उस समय दूसरा प्रचलित शब्द था।

विभिन्न रंगों की (केशव ने काली पीली, नीली और हरे रंग का उल्लेख किया है) छड़ियाँ (हाकी स्टिक जैसी) लिए हुए अश्वारोही खिलाड़ी दो दलों में विभक्त हो जाते थे।[6] गेंद जिस किसी खिलाड़ी की पहुंच में आ जाती थी वही उसे छड़ी मारकर हाल (गोल) की ओर ले जाने की चेष्टा करता था जबकि विपक्षी उसके प्रयास को विफल करते हुए गेंद को दूसरी ओर ले जाने की चेष्टा करते थे।[7] इस खेल की त्वरित गति के कारण अश्व और सवार, सम्भवतः शीघ्र ही थकान अनुभव करने लगते थे अतः प्रति बीस मिनट के पश्चात् दो पुराने खिलाड़ियों का स्थान नवीन खिलाड़ी ग्रहण कर लेते थे।[8] केशवदासजी ने भी प्रति घड़ी के उपरांत इस नियम का पालन दिखाया है।[9] उन्होंने खिलाड़ियों की संख्या निर्दिष्ट नहीं की है जो आईन ए अकबरी से भी

---

१ 'मुरोहाल की चाल उत्ताल ऐसे
चल चार चौगान में चित्त जैसे। —प्रता० वि०, छं० ४४

२ दृष्टि विधि गये नृपति चौगान। सवा कोस सब भूमि समान।
—वी० च० १६।६

३ जब जब जीत हाल नृप तब-तब बजत निसान। —वी० च० १६।१७

४ भूपति लिखि नय गौ छन दस किय दुइ ठौर ठिकान मिनार।
—भू० ग्र० स्फु० छं० २३

५ द० आईन ए अकबरी भाग ३ पृ० ३६३

६ तब कीन्हि नृप परम उदार। कान्हि न्यारि रजपूत जुझार।
साहन सीत मायनि छगी। कारी पीरी राती हरी। —वी० च० १६।१०

७ गारा जाय भाग जाय। माई ताहि चढ़ अगनाय। वही १६।१३

८ द० आ० अक० भा० १ पृ० ३०७

९ घरी घरी प्रति ठाकुर मरे। बदरा वामा वाहन तरें।
—वी० च०, १६।१६

स्पष्ट नहीं हो पाती। उससे यह पता अवश्य चलता है कि चौगान में दस से अधिक खिलाड़ी नहीं होते थे।[1] केशव ने प्रत्येक बार 'हाल जीतने' (गोल करने) की दशा में महाराज वीरसिंह देव को निशान बजवाकर, विप्रों को दान देते चित्रित किया है[2]—जो खेल के नियम के स्थान पर उनकी राजकीय मर्यादा से सम्बद्ध प्रतीत होता है।

(८) मृगया —

मृगया आलोच्यकाल की एक ऐसी मनोरंजन विधा थी, जिसमें वीरकाव्य में उल्लिखित प्रायः सभी नरेश और बादशाह अनुरक्त मिलते हैं। पृथ्वीराजरासो में महाराज सारंगदेव,[3] वीसलदेव[4] जयचन्द[5] और धीर पुण्डीर[6] के आखेट वर्णनों को यदि छोड़ भी दिया जाय, तथापि उसके उनहत्तर समयों में से अधिकांश में महाराज पृथ्वीराज मृगयानुरक्त चित्रित किए गए हैं।[7] वीरकाव्य के अन्य नायकों में से महाराजा परमाल[8] वीरसिंह[9] छत्रसाल[10] रतनसाह[11] सूरजमल[12] शाह अलाउद्दीन[13] और औरंगजेब[14] भी शिकार द्वारा मनोरंजन करते मिलते हैं। वस्तुतः आलोच्यकालीन नरेशों के तीन ही प्रमुख जीवन लक्ष्य थे—शत्रु-दलनार्थ युद्ध करना, शान्तिकाल में संगीत नाट्य और वेश्या नृत्यादि के प्रेक्षण में कालयापन तथा इनसे बचे समय को मृगयार्थ वन विहार में व्यतीत करना। शारीरिक बल वर्धन और अस्त्र शस्त्र संचालन में नैपुण्य प्रदान करने की क्षमता के कारण क्षत्रियों की दृष्टि में इसका महत्त्व भी अधिक रहा है, और जैसा कि कर्नल टाड ने प्रदर्शित किया है जंगली सूअर या शेर के प्रथम शिकार के उपलक्ष्य में ये विशेष समारोहों की आयोजना किया करते थे।[15]

मृगया की ऐसी लोकप्रियता मिलते हुए भी, उसके विषय में कुछ प्रवाद भी प्रचलित थे। पृथ्वीराजरासो में उसकी परिणति सदैव अनिष्टकर ही होने का दोष दिखाया गया है।[16] परमालरासो में उसे नरेशों के अधःपतन का मूलकारण[17] सदैव

---

१ दे० 'आ० भ०', भा० १, पृ० २६७

२ जब जब जीत हाल नृप तब-तब बजत निसान।
हय गय भूषन दान पट, दीजत विप्रन दान। वी० च० १६।१७

३ से ६ दे० 'पृ० रा०' क्रमशः ६१।३१५ वही ७३।३६३ वही १७०७।८८३ वही २०६१।२११

७ महाराज पृथ्वीराज के आखेट वर्णनों के लिए अवलोकनीय हैं छठे समय का पृ० ३०१ तथा इसी भाँति, ६।३८८, १२।५४१, १५।५७० १७।५७७, २४।६८१, २८।७२६, २५।७६६ २६।८८३ २७।८८६ २९।९८६ ३४।१०२१, ४२।११६६ ५७।१४७० ६०।१५७२, ६३।१६०८

८ से १० दे० क्रम० प० रा०, ३१, 'वी० च० ३।५६ छ० प्र० ६।२

११ से १४ दे० क्रम० 'छ० प्र० ३।३ 'सु० च० १।७।२ 'ह० रा०' १९८।२१० शि० भू० ६०

१५ दे० राजस्थान', भा० २, पृ० ५६०-६१

१६ १७ दे क्रम० 'पृ० रा०' क्रा० २००१।११३, प० रा०' १।१४६

तीतर दूसरे तीतरों को इसी रीति से पकड़वाते मिलते हैं।[1] इसके अतिरिक्त इन पक्षियों का एक अन्य उपयोग यह था कि वे पक्षियों के झुण्डों को शिकारियों के निशाने की परिधि में आने के लिए विवश कर देते थे जिससे उनका आसानी से वध किया जा सके।

पक्षियों द्वारा पशुओं के शिकार में सहायता देना आश्चर्यजनक प्रतीत होते हुए भी सत्य है। लगर झगर और चरग नामक पक्षी जिनका पृथ्वीराजरासो, परमाल रासो और सुजान चरित तीनों ग्रंथों में उल्लेख मिलता है—सूदन ने खरगोशों का हनन करते प्रदर्शित किए हैं।[2] चन्द ने बाज, जुर्रा और कुही को मृग तथा वाराह पर झपटते चित्रित किया है।[3] इन पक्षियों के मृगादि पर झपट्टा मारने का उल्लेख बर्नियर के विवरण से भी स्पष्ट होता है जिसमें उसने बाजों द्वारा मृगों को अपने पंजों तथा डैनों की मार से अंधा करके उनके शिकार को सुगम बना देने का उल्लेख किया है।[4]

इन शिकारी पक्षियों में से कुही या कुई चील के बराबर होती है तथा बाज की तरह छोटी चिड़ियों का शिकार करती है। इससे मिलती जुलती शिकारी चिड़ियों में टीसा, तुरमती, गिद्ध, बहरी, बाज, चील, जुर्रा(मादा बाज) और शिकरा प्रसिद्ध हैं। तुरमती, लगर और खेरमुतिया बहरी की ही जातियाँ हैं। बहरी शिकरे से बड़ी और बाज से छोटी होती है।[5]

शिकारी पशुओं के माध्यम से मृगया

मृगया के लिए कुत्ते, चीते, स्याहगोश (सियाह गोश) हिरण, हाथी और खरगोशों को शिक्षित करके उपयोग में लाया जाता था। चन्द ने महाराज पृथ्वीराज को आखेटार्थ इन सभी पशुओं को साथ ले जाते हुए चित्रित किया है।[6] परमालरासो में कुत्ते और चीतों का प्रयोग दिखाया गया है।[7] जोधराज ने हम्मीररासो में शाह

---

१ दे० पृ० रा० मो० भाग २ पृ० ६०६

२ बहु लगर झगर पुनि चरगर तंग। जे हनत ससा बुज्जर उतंग। —सु० च० ६।२।११

३ झापटक रमि राज। बाज जुर कुही छडि कर।
तन तन वाराह। हनहि वर हरिन तक्कि डर। —पृ० रा० का० २००२।१२७

४ दे० ट्रैवल्स इन मुगल एम्पायर पृ० २६२

५ अलीगढ़ जिले की कृषक जीवन सम्बन्धी व्रज० शब्दा० भाग २ पृ० २१

६ सित पच दीसीय, स्याम पंचेत पच सौ।
सहस स्वान कर डोरि गहै पचान पच सौ।
कुही बाज उतंग पंख आघात सु बज्ज।
खरगोस मिरग जर गुन्न – धनुष घन मिय धार धन। वही १।२७५।११

७ पृ० रा० ३०।८६

अलाउद्दीन के शिकारी दल में श्वान, चीते, मृग और स्याहगोशों के समूह प्रदर्शित किए हैं।[१] सूदन ने इनमें से गाजीउद्दीनखाँ के यहाँ स्याहगोश और चीते होने का उल्लेख किया है जिनका उपयोग वह निश्चय ही शिकारार्थ करता होगा।[२]

उपर्युक्त पशुओं में से कुत्ते सर्वाधिक लोकप्रिय थे। चन्द ने महाराज पृथ्वीराज के पास सहस्रों शिकारी कुत्ते बताये हैं। उन कुत्तों की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए चन्द का कथन है कि वे – उन्नतकाय और नाहर को भी पछाड़कर उसका कलेजा काट लेने वाले थे।[३] तीव्रगति में पवन भी उनका सानी नहीं था। अपनी तीव्रगति और छल-बल नैपुण्य के कारण वे क्षणमात्र में शिकार जा पकड़ते थे।[४]

चन्द ने पहाड़राय तोमर, नगरीराय, जैत पवार आदि पृथ्वीराज के अन्य सामन्तों के भी शिकारी कुत्तों का वर्णन किया है।[५] परमालरासोकार ने महाराज परमाल के शिकारी दल में बाण के समान क्षिप्र गतिवाले पचीस तथा अनेक जातियों के सहस्रों ऐसे श्वान बताए हैं, जो शरीर में बड़े भीमकाय एवं तीव्र बुद्धि वाले थे।[६] उनके शिकार कौशल और भयंकरता के लिए इस तथ्य का परिज्ञान ही पर्याप्त है कि वे जिस दिशा में होकर निकल जाते थे, उसमें दस-दस कोस पर्यन्त वन जीवों का नामोनिशान नहीं बचता था।[७]

भेंट के उपकरणों में कुत्तों का भी सम्मिलित होना, उनकी महत्ता का परिचायक है। दिल्ली से निष्कासित मीर महिमा मंगोल राव हम्मीर को अन्य उपादानों के साथ साथ एक कुही, दो बाज और श्वान भी भेंट स्वरूप प्रदान करता है।[८] यह शिकारी कुत्ता निश्चय ही उजबक आदि से आयात की हुई किसी अच्छी नस्ल का होने के कारण, इस योग्य समझा गया होगा। मुगल दरबार में उजबक से आयात किए हुए कुत्ते होने का बर्नियर ने उल्लेख किया है।[९]

चीते आँखों पर पट्टियाँ बाँधकर तथा छकड़ों में बिठाकर आखेट-स्थल पर ले

---

१ २ दे० अम० हु० रा० ४० 'सु० च०' ६।१।२१ पृ० रा० का० १५२८।८

३ पच सं मद्धि नाहर पछार। जीव ले जाव कच्छतिवार।
इक महम बघन वाराह तेज। जुटि पनकि भुम्मि कढ्ढन्त कैज। वही १५।१२।६

४ सारङ्ग सहस बल गन कौन। धावत भुम्मि भुरलाइ पौन।
छल छंद भेद जीवन लपत्ति। जुहनि अन्त पसु पन अपत्ति। वही १५।१३।१०

५ स ७ दे० अम० प० रा० १५।१३।१६ १६ प० रा० ३०।४८ १० वही, ३०।५,
'हु० रा० २६२

६ दे० ट्रवल्स इन मुगल इण्डिया, बर्नियर, पृ० २६२

जाते प्रदर्शित किए गये हैं।[1] जिससे कहा जा सकता है कि उन्हें अभीष्ट पशुओं पर छोड़कर शिकार कराया जाता होगा। सियाहगोश भी चीते की ही जाति का हिंस्र पशु है, अतः उसका भी शिकार में इसी भाँति उपयोग किया जाता होगा। पालतू हिरणों का दूसरे मृगों को पकड़ने में उपयोग किया जाता था। रवि चन्द्र नाम्नी गाय दूसरे मृगों को उसी प्रकार वश में कर लेती थी जैसे कुटनी अपने रूपपाश से विटों के मन वश में कर लेती है, तथा पालितों के मुक्ति वश में रहती है।[2] थवेनाट नामक यात्री के विवरण से ज्ञात होता है कि मृगों के सींगों में एक विशेष प्रकार के जाल बाँधकर उन्हें अभीष्ट स्थान पर मृगों के समीप छोड़ दिया जाता था। ये प्रशिक्षित मृग वन मृगों के झुण्ड में मिलकर, उनको स्वयं से लड़ने के लिए प्रेरित करते थे। वन मृग ज्यों ही उनसे भिड़ना प्रारम्भ करते थे कि उनके सींग उन जालों में फँस जाते थे, जिससे वे भागने में असमर्थ होने के कारण शिकारियों द्वारा पकड़ लिये जाते थे।[3] सरगोनो का भी स्व जातिपशुओं को पकड़वाने के लिए इसी प्रकार की रीति से उपयोग किया जाता होगा।

नाद से रिझाकर —

अनेक पशु पक्षी नाद से रिझाकर पकड़े जाते थे। कवि चन्द ने घटा के राग से महाराज पृथ्वीराज के शिकारी दल द्वारा अनेक पशु पक्षी पकड़े जाने का उल्लेख किया है।[4] अन्यत्र उसने नाद द्वारा मृगों को वश में करने का उल्लेख किया है।[5] कवि जटमल ने 'राघवचेतन' में वीणा राग को सुनकर जंगल के समस्त मृगों का उसके समीप एकत्र हो जाना चित्रित किया है।[6] कवि जोधराज ने भी वीणा राग के श्रवण से अरण्य के पशु पक्षियों का शाह अलाउद्दीन के शिकारीदल की ओर खिंचा आना प्रदर्शित किया

---

१ (क) 'रथ सथ्थ चीती बाज। चाल ढकि पथ्थ पयान। —पृ० रा०, का० १६६४।६२

(ख) पारधि पट्ट प्रथिराज। रम बट्टपुर पासह।
वाहिल नीस चित्रक्क। ससिब रेसम धर रासह। वही ३८८।६
और भी दे० ७०१।१३, ६४६।६

२ दे० पृ० रा० का० ७६६।६५

३ दे० 'इण्डियन ट्रैवल्स आफ थवेनाट' पृ० ५४

४ घण्टि राग किंतक कित्ते चित्तय तकि दब्बत। पृ० रा० मो० १।१२५।५५

५ ज्यों वसि नाद कुरंग बास बसि जेम मधुक्कर। वही १।२६१।१३

६ मृग तजि सब वनवास पास राघव के आय।
सुणे रागधर कान साह मृग कहू न पाय।
— गो० क०', छ० ३३

है।[1] इस विषय में यह निर्देश करना आवश्यक है कि, नाद से रिझाकर मृगों को पकड़ना कवियों की अपनी कल्पना मात्र नहीं है अपितु अलबरूनी ने स्वयं इस कृत्य को प्रत्यक्ष दर्शी बताते हुए भारतीयों की नाद से रिझाकर पशु पक्षी पकड़ने में दक्षता की पुष्टि की है।[2]

अन्य विधियां —

शिकारी वन वृक्षों के रंग से मिलते जुलते हरे रंग के वस्त्र पहनकर जाते थे जिससे पशुओं को उनकी उपस्थिति का भान न हो सके।[3] जंगल के अग्रभाग में छिपे हुए वन्य पशु पक्षियों को करील या हांका लगाने वाले ढोल पीटते हुए 'यह आया, वह आया' आदि आवाजें लगाते हुए बाहर निकालते थे।[4] इनमें से अनेक तो स्थल स्थल पर बंधे हुए वागुरा (जाल) में फंस जाते थे।[5] कुछ के शिकार के लिए पीछे उल्लिखित पशु पक्षियों का उपयोग किया जाता था, जबकि शेष के शिकार में नावक के तीर बर्छी भाले और तुपक आदि का प्रयोग किया जाता था। सर्प बिच्छू आदि विषैले जन्तुओं को मन्त्रों से वश में करके पकड़ने और मारने में दक्ष व्यक्तियों को भी शिकारी दल में सम्मिलित रखा जाता था।[6] शिकार में मारे और पकड़े गये पशुओं की संख्या इतनी अधिक होती थी कि उनके वहन के लिए अनेक गाड़ियां ऊंट, हाथियों और कावरों का प्रयोग किया जाता था।[8]

(६) जलक्रीडा —

नदी और सरोवरादि में नौका विहार या किसी प्रकार का खेल खेलने का

---

१ यह बीन वादित्र बाजत ऐसी। सुने राग मोहे मृग मान वसी।'
करे गान तान पशु पच्छि माहें। सुन जीव आवन्त जान न वा हैं। —पृ०रा० २०५ ६

२ I myself have witnessed that in hunting gazelles, they caught them with the hand xxx This however rests as I believe I have found out simply on the device of slowly and constantly accustoming the animals to one and the same melody

Alberuni s, 'India,' vol I P 195

३ से ५ दे० 'प० रा०' का० ७६६।८२ पृ० रा०' मो० ११ १२७।४८, टि० पृ० ६०, प० रा० का० ६१।३१५ 'प० रा०' ३०।८६

६ 'वाघ वराह रारि कह जुट्टेय। तसु कुप्पि रजपूतन कुट्टेय। —पर० रा० ३०।८३

७ बीछी सप विषम मंत्र वान्निनि मिलि लुट्टिय।' —प० रा०, मा० ११।२४।५६

८ गाडिनि पल्लिय जिने जित उटाणी पिठि डारेय।
पनि राम पर इत्ति, किति हस्तिन पर धारेय।
कावरि वष वहार, किति स्वानन मुग लुट्टिय। वही वही

पृथ्वीराजरासो परमालरासो छत्रप्रकाश, वीरसिंह, राजविलास और आल्हखण्ड में चित्रण मिलता है। कवि चन्द ने महाराज पृथ्वीराज का हिरण जल जाल सगरर में 'हुड्डु-प्र मेल' के साथ साथ अथवा जल क्रीड़ा करते प्रदर्शित किया है।[1] परमालरासो में महाराज परमाल गोपियों में अठारह जलक्रीड़ा करते हैं[2] जबकि महाराज राजसिंह तथा उदय जहाज में उदय राजसरोवर में जल क्रीड़ा करते प्रदर्शित किए गए हैं।[3] आल्हखण्ड में नौका में अठारह नजारा तामर गत मनन का उल्लेख किया गया है।[4] चन्द ने महाराज वीरसिंह देव का स्व वनिताओं के साथ जल क्रीड़ा करते चित्रित किया है।[5] गोरेलाल ने जल में झुबकी झुबक्वल के मन का चित्रण किया है जिसमें एक लड़का दूसरा को छून की चेष्टा करता था। जब जल में डुबकी लगाने वाले लड़का को छून की चेष्टा में छूने वाला भरपूर पाद प्रहार न कर पाता था तो उसके सभी साथी, उसकी खिल्ली उड़ाते थे।[6]

(१०) द्यूत क्रीड़ा –

यह एक शुभ लक्षण ही है कि आलोच्यकाल में महाराज युधिष्ठिर या नल की भाँति हम किसी भी नरेश या बादशाह को द्यूत क्रीड़ा के माध्यम से मनोरंजन करते नहीं पाते। कुछ लोग जुआ खेलते अवश्य थे क्योंकि कवि चन्द ने कन्नौज के वर्णन में भी द्यूत गृह प्रदर्शित किए हैं और कहा है कि उनमें भाग लेने वाले कौपीन धारी मात्र रह जाते हैं।[7] द्यूत क्रीड़ा के प्रति रासाकार ने अन्य सन्दर्भों में भी अवहेलनात्मक भाव व्यक्त किए हैं जिनमें उसने युद्ध में पराजित हुए महा० भोला[8] भीम और शाह गोरी को[9] हारे हुए जुआरियों के सदृश चित्रित प्रदर्शित किया है। परमालरासो में भी द्यूत क्रीड़ा की निन्दा की गई है और उस नरेश के पतन के चार कारणों – वेश्या नुरक्ति वारुणी सेवन, और ब्रह्म हत्या की श्रेणी में स्थान दिया गया है।[11] केशव ने दीवाली की रात्रि को जुआ खेलने का प्रचलन दिखाया है।[12] तात्पर्य यह कि द्यूत क्रीड़ा को निंदित समझते हुए भी समाज के एक अंग में उसका प्रचलन अवश्य था।

(११) शतरंज –

महाराज पृथ्वीराज आषाढ़ मास के एक ऐसे दिन शतरंज खेलते प्रदर्शित किए

---

१ से ४ दे० क्रम० पृ० रा० मो० ५।४६३।२ पृ० रा० १७।१०६ रा० वि० ८।१४६ आ० ३१०।२२ २३

५ से १२ दे० क्रम० वी० च० २५।४ छ० प्र० ३।७ पृ० रा० क० १४४०।८२, वही १६८०।४२८ पृ० रा० मो० १।२६। , वही ४३५।३८ पृ० रा० १।१२२ वी० च०, १८।२४

गए हैं जिस दिन धुंध छाई हुई थी और आकाश मेघाच्छन्न था।[1] इससे प्रतीत होता है कि शतरंज ऐसे अवसरों पर ही खेली जाती थी, जब किन्हीं कारणों से क्षत्रियोचित मृगयादि का क्रम न हो सकता था। विशेषत वर्षाकाल मे कालापनयन के लिए ऐसे खेलो की आयोजना की जाती होगी। शतरंज के खेल के विषय में कवि मान जान और चन्द्रशेखर ने भी उल्लेख किया है। कवि मान ने अकस्मात आक्रमण से भयत्रस्त मुगल सैनिकों को अपनी शतरंज और सार पासो के मुहरों को छोडकर पलायन करते प्रदर्शित किया है।[2] जान ने पैदल के फरजी बन जाने पर उसके शीश के बल चलने[3] (पैदल की चाल आगे की ओर एक घर होती है जबकि फरजी अपने चारों ओर के घरों मे टेढी सीधी, चाहे जिस ओर की मार करता है) का एक उल्लेख करके तथा चन्द्रशेखर ने बादशाह की अवध्यता को शतरंज के बादशाह की अवध्यता से उपमित करके,[4] इस खेल के प्रचलन पर प्रकाश डाला है।

बालिकाओं और स्त्रियों के क्रीडा-विनोद

(१) पुत्तलिका या गुड्डियों से खेलना —

पृथ्वीराजरासो में कुछ सयानी हुई संयोगिता अपनी सखी से कहती है कि न जाने क्यों अब मुझे पुत्तलिकाओं का विवाह रचाते समय हृदय में एक कसमसाहट, और उनको एक शय्या पर शयन कराते समय लज्जानुभव होने लगा है।[5] इससे स्पष्ट है कि वह अल्प वय से ही पुत्तलिकाओं से खेला करती थी। आल्हखण्ड में हिरिया मालिन सुनवा का बचपन में गुडियो के साथ साथ खेलने वाली सखी बताकर,[6] लडकियों के इस खेल का प्रकाशन करती है।

(२) पतंग उडाना -

कवि चन्द ने राजकुमारी के अट्टालिका पर से पतंग उडाने का उपमान रूप में प्रयोग करके,[7] विशेषत राजकुमारियों की पतंग उडाने में अभिरुचि प्रदर्शित की है। राजस्थानी रनिवास का वर्णन करते हुए राहुल सांकृत्यायन ने भी इस अंत पुरिकाओं

---

१ पतञ्ज राज वर खेल मंडि। सत्रीन अप्प आरम्भ घडि।' —पृ० रा०, का० १४६६।८६

२ सतरंज पासा सारि, फरप, सु खेलहिं डारि।' रा० त्रि० १२।१०

३ पाइक त फरजी भय चल सीस के जोर। क्या० रा०, छ०८८

४ 'साह न मारत काहु को, जो खेलत सतरंज। 'ह० ह०', छ० १९१

५ से ७ दे० क्रम० 'पृ० रा०', मो० ३।२५३।५, आ० २३६।२३, पृ० रा०' का० ३५२।११२

के मनोविनोद का प्रमुख साधन बनाता है तथा अभिव्यक्त [illegible] किया है कि वर्षा उनके [illegible] पानी के साथ [illegible] विरह के रूप में गई।[1]

(३) शुक-सारिकाओं का पालन

आलोच्यकालीन वनिताएँ मनोविनोद के लिए [illegible] थी। [illegible] भी शुक [illegible] अधिक [illegible] है और [illegible] महारानियों के [illegible] स्वामिनी का [illegible] तथा [illegible] हृदयों को [illegible] करने का माध्यम [illegible] है। [illegible] प्रेम [illegible] शुकों द्वारा [illegible] प्रेषित किए जाते थे।

पृथ्वीराजरासो में [illegible] शुक [illegible] उन रानि [illegible] रहा है।[2] महाराज पृथ्वीराज के सौन्दर्य-वर्णन को सुनकर उन पर आसक्त हुई पद्मावती उस शुक के माध्यम से [illegible] को अपना प्रेम-सन्देश भेजती और संयोगिता में [illegible] होती है।[3] इच्छिनी का शुक बहुत बुद्धिमान दिखाया गया है। [illegible] महारानी के [illegible] रहस्यों का उद्घाटन करता हुआ कहता है कि आज [illegible] सुना जा रहा है।[4] संयोगितानुरक्त महाराज पृथ्वीराज की अपने प्रति उदासीनता का दुखड़ा महारानी इंछिनि अपने शुक के समक्ष ही रोती है।[5] जिससे द्रवित होकर वह [illegible] और [illegible] उनका महाराज से मिलाप करा देता है।[6] वीरचरित में महाराज वीरसिंह देव की वनिताएँ शुक और सारिकाएँ पालकर मनोरंजन करती मिलती हैं।[7] आल्हखण्ड में चन्द्रावली का शुक आल्हखण्ड ऊदल को बन्धन मुक्त कराने के लिए चन्द्रावली का पत्र ले जाकर वस्तुस्थिति से महारानी मल्हना को अवगत कराते चित्रित किया गया है।[8]

(४) अन्य पालतू पशु पक्षियों से मनोविनोद करना —

वनितागण [illegible] में केशव ने महाराज वीरसिंहदेव के रनिवास की वनिताओं को स्वच्छन्द कमलों से शुक सारिका मयूर और हंसों को चुगाते तथा दूर्वादल को चरने में आनाकानी करते हुए मृग शावकों से अपना मनोविनोद करते चित्रित किया है। कुछ वनिताएँ गम्भीर प्रेममयी सूक्तियों के पठन तथा शुक

---

१ दे० राजस्थानी रनिवास पृ० ८८

२ से ८ दे० क्रम० 'पृ० रा० सो० १।३५७।६ १० वही ३,।३६२।२५ पृ० रा० का० १४७४।६०, पृ० रा० का० १६६३।१४, वही १६८२।१७१, दे० 'पृ० रा०' का० १६८३।१७८ से १६८४।१८६, 'वी० च०' २०।२४, आ०, २६१।४५

और सारिकाओं के पाठन में भी अनुरक्त दिखाई गई हैं।[1]

(५) लता-वृक्षों का सिंचन और पुष्प चयन —

लता वृक्षों के सिंचन तथा पुष्प चयन द्वारा मन प्रसन्न करने की विधा का भी केशवदास ने, महाराज वीरसिंहदेव की वनिताओं के सदर्भ में प्रकाश डाला है।[2]

(६) उपवन और क्रीडा पर्वतों पर परिभ्रमण —

आवासों की बनावट का चित्रण करते हुए उनके समीप के उपवनों में शृंगार सकेत माधवी मण्डप, धारा गृह और क्रीडा पर्वत आदि बनाने का उल्लेख किया जा चुका है। इनका मनोविनोदार्थ उपयोग किया जाता था। कवि केशव ने महाराज वीरसिंह देव की वनिताएं उपवन और क्रीडा पर्वत पर परिभ्रमण करते चित्रित की हैं।[3]

(७) जल क्रीडा —

पुरुषों के सदृश स्त्रियों के लिए भी जल क्रीडा स्त्रियों के मनोरंजन का सुखद साधन थी। केशव ने क्रीडापर्वत पर परिभ्रमण से थकित महाराज वीरसिंह देव की वनिताओं[4] तथा जोधराज ने शाह अलाउद्दीन की आखेट में गई बेगमों[5] और अप्सराओं[6] की जल क्रीडा के मनोरम चित्र दिए हैं।

(८) सार-पासे या चौपड़ —

विविध लोक कथाओं में राजकुमारियों के सार पासे खेलने में दक्ष होने का तथ्य हम प्राय सुनते ही रहते हैं। वीर काव्य में भी इस खेल को पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों द्वारा खेलने के अधिक निर्देश मिलते हैं। कवि केशव ने महाराज वीरसिंहदेव की वनिताओं को चौपड़ खेलते प्रदर्शित किया है।[7] आल्हखण्ड में चन्द्रावलि[8] फुलवा[9] सुमिया[10] बम्मनी तथा लाखन और उसकी पत्नी का चौपड़ बिछाकर सार पासे खेलते चित्रित किया गया है। आल्हकार ने तीनों सदर्भों में दो खिलाड़ी होने का उल्लेख किया है, जबकि आजकल इसमें प्राय चार खिलाड़ी भाग लेते हैं।

(९) शतरंज —

धनाढ्य होने के साथ साथ शतरंज के लिए दीर्घ अवकाश की भी आवश्यकता

---

१ एक चतुर चुगावति मोर। लीनो सारो सुक चित चोर।
अमल जलज कर कमलनि लिये। हंस चुगावति चुननि हिये।
जब अंकुर कोमल कर धर। मृगनि चरावति प्रेम हिं चर।
सूछम बानी नीरस ग्रंथ। पंडित पढ़ावति सुकन समथ।' —वी० च० २२।८२-४८
२ ३ दे० वही २२।४२, वही, २४।१५
४ से १० दे० क्रम० वी० च०' २८।२०, 'हा० रा० २१०, वही, १२० वी० च०' २०।१६ 'आ० २४३।१६ १८, 'आ०' ४६६।१२ वही, ३५४, २४ २५

पडती है। अत यह खेल गृहकार्यों से सर्वथा मुक्त रहने वाली रानिया आदि के लिए उपयुक्त रहा होगा। कवि केशव ने इसको महाराज वीरसिंहदेव की अन्त पुरिकाओ के मनोरजन का माध्यम प्रदर्शित किया है।[१]

(१०) मृगया —

असूयम्पश्या जसी कुलीनता की भावनाओ तथा पर्दा प्रथा के दृढ होते जाने के कारण मृगया मध्यकाल म स्त्रियो के मनोरजन का उपयुक्त माध्यम नही रह गई थी। यही कारण है कि सम्राट चन्द्रगुप्त के समकालीन मैगस्थनीज ने जहा नरेशो के साथ अनेक शस्त्रसज्जित स्त्रियो के भी रथा, हाथिया और अश्वो पर आरूढ होकर शिकार खेलने जाने का चित्रण किया है।[२] वहाँ पथ्वीराजरासो म हम सयोगिता आदि रानियो को महाराज पथ्वीराज से यह निवेदन करते पाते हैं — कृपया आप हम यह देखने का अवसर प्रदान कीजिए कि शर और हाथिया का शिकार कसे किया जाता है तथा वाराह आदि जन्तु जाला म कसे फसाये जाते हैं।[३] जब दिल्लीश्वर द्वारा शिकार के समय होने वाली गोठा का व्ययभार वहन करने की शत को[४] सयोगिता स्वीकार कर लेती है[५] तो रानियाँ सदय पानीपत के मैदान मे पहुँचा दी जाती हैं।[६] इससे आगे के पसगो मे उनके शिकार खेलन या देखने का कोई निर्देश नही मिला किन्तु जसा कि उनका आग्रह था रानिया ने उसका प्रेक्षण अवश्य किया होगा।

महाराज पथ्वीराज की रानिया ने तो शिकार देखने मात्र की इच्छा व्यक्त की थी, जबकि शाह अलाउद्दीन की बेग म शिकार खलने जाते चित्रित की गई हैं। कवि चन्द्रशेखर ने वे एसे कानन[७] और ग्वाल न एस खास-बाग[८] मे मृगया खलते प्रदर्शित की है, जिनके चारों ओर कनातें खडी कर ली गई थी। कनाता का प्रयोग पर्दे के

---

१ कहु चौपर खेलें वनिवाल। कहू सतरज मतिरज रसाल। —वी० च० २०।१६

२ ' A third is to go to the chase for which he departs in Bacchanalian fashion Crowds of women surround him and out side of this circle spearmen are ranged Of the women some are in chariots some on horses and some even on ele phants and they are equiped of with weapons of every kind as they were going on a campaign (military expedition)

India as seen by Megasthenese and arrian P 71

३ चरन लगि युग जोरि करि। कह्यौ सुनहु महि इद।
हमहि सिकार दिपाइये। मत्त मृगानि मयन्द।

—प० रा० का० १६८७।४

४ से ८ द० क्रम० 'प० रा०' का० १६८७।६ वही, १६८८।७, वही, १६६३।८४'
'ह० ह०, च० १५ ह० ह०', ग्वा०, ३

लिए किया जाता होगा। इसी प्रकार मुगल बादशाह या तो बेगमों के शिकार खेलने के लिए पशु-पक्षियों से युक्त सुरक्षित-बाग रखते होंगे अन्यथा कवि ग्वाल का तत्सम्बन्धी उल्लेख उस परंपरा का अनुकरण है जिसमें आचार्य चाणक्य ने नरेशों को दंष्ट्र-नख विहीन करके छोड़े गये पशुओं वाले सुरक्षित अरण्यों में शिकार खेलने का परामर्श दिया था।[1] कवि चन्द्रशेखर ने बेगमें मरदाना-वेश में आखेटार्थ जाते दिखाई हैं,[2] जबकि ग्वाल और जोधराज ने जनाना-वेश का ही उल्लेख किया है जो मुगलों की कट्टर पर्दा प्रथा के अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। इस संदर्भ में यह निवेदन अप्रासंगिक न होगा कि मुगल बेगमों द्वारा शिकार खेलने के तथ्य की पुष्टि बेगम नूरजहां के वृत्तान्त से भी होती है जिसने डा० ईश्वरीप्रसाद के अनुसार सिंहों का कई बार शिकार किया था।[3]

निष्कर्ष —

ब्रजभाषा के वीरकाव्य में खान-पान और वस्त्राभरणादि पर प्रकाश डालने वाले निर्देश यद्यपि समाज के उच्चवर्ग से अधिक सम्बद्ध हैं तथापि यह अनुमान करना अनुपयुक्त नहीं है कि समाज का मध्य वर्ग भी अनुकरण के रूप में इन उपादानों का प्रयोग करता होगा तथा निम्न अंशों में व जन सामान्य में भी प्रचलित रहे होंगे।

जन रुचि भोजों के अवसर पर सर्वथा नूतन भोज्य पदार्थ खिलाने की ओर बड़ी जागरूक थी। बेसन मैदा और शक्कर आदि साधारण सामग्री के ही मिश्रण से ऐसे भोज्य पदार्थ बनाने की चेष्टा की जाती थी जिनके खाने वाले नाम तक न जान सकें। मैदा और बेसन में कुछ अन्य पदार्थों के योग से पुष्प और फलों की आकृति वाली ऐसी वस्तुएँ प्रस्तुत की जाती थीं, जिनका पहचानना मानव चक्षुओं के लिए दुस्साध्य हो जाता था। इसी प्रकार अपनी कड़वाहट के लिए प्रसिद्ध नीम की कोंपलों का साग बनाने में भी उनकी नित नूतन व्यंजना के प्रति अभिरुचि प्रतिबिम्बित हो रही है।

भोजों के अवसर पर तले हुए पकवान मिष्टान्न, खीर और बेसन के साथ साथ कच्ची रसोई में परिगणित किए जाने वाले भात दाल और भात भी परोसने का प्रचलन था। भोजनान्त में पाचन शक्ति-वर्धक पछावरि का अनुपान किया जाता था जिसमें खट्टे और चरपरे पेयों की प्रधानता रहती थी। मुख श्वास को सुवासित रखने के लिए भोजन के उपरान्त ताम्बूल भी अनिवार्यतः ग्रहण किए जाते थे। पृथक चौकों में बैठकर, भोजन करने की प्रथा के कारण भोजस्थली चून आदि की सफेद लाइनें डालकर पृथक-

---

१ दे० 'अर्थशास्त्र' पृ० ८१

२ 'मरदानी सब बेगम, आप भूप सुलितान।
हरषि तुरंगनि प चढ़, गहि कर बान कमान। —ह० ह०, च० २१

३ दे० 'मध्य० भा० का स० इति०', पृ० ३६५

पृथक चौका में विभक्त कर ली जाती थी। किसी षडयंत्र के फलस्वरूप भोजन में दिनाई (विष का मिश्रण) न कर दिया गया हो इस दृष्टि से भोजन-स्थल पर कुछ पशु पक्षी रखे जाते थे जिनकी प्रतिक्रिया विशेष से रहस्योद्घाटन हो जाता था।

जन-सामान्य के दैनिक भोजन में भात और राबड़ी का प्राधान्य रहता था। ब्राह्मण वैश्य और माटा के लिए तो मांसाहार वर्ज्य था किन्तु क्षत्रिय और मुसलमानों के भोजन में मांस प्राय अनिवार्यत सम्मिलित रहता था।

मादक द्रव्यों में से सुरा का अनुपान ब्राह्मणों के लिए निषिद्ध होने के साथ साथ उसका क्षत्रियों में भी बहुत कम प्रयोग होता था। मुसलमानों और निम्न हिन्दू जातियों में सुरापान का व्यसन अधिक व्याप्त था जबकि राजपूतों में अफीम के सेवन का प्रचलन अधिक था। भांग का प्रयोग कदाचित् उच्च वर्णों में भी हेय नहीं समझा जाता था। कुछ लोग चरस और गांजे का भी प्रयोग करते थे।

नर और नारियों में आभरण प्रियता पराकाष्ठा को पहुंची हुई थी। आभूषणों के अभाव में स्त्री सौन्दर्य को पूर्ण ही नहीं समझा जाता था। स्त्रियां अपने शीश मस्तक, कान नासिका ग्रीवा बाहु कलाई हाथ की उंगलियां कटि और पैरों में इतनी अधिक संख्या में आभूषण पहनती थी कि उनके कोमलांग आभूषणों के भार से दबे रहते थे और उनमें से दो एक के गिर जाने का तो उन्हें पता तक न चल पाता था। पुरुष भी आभूषणों के प्रयोग में स्त्रियों से पीछे नहीं थे और कानों ग्रीवा कलाई तथा पैरों में आभूषण पहने रहते थे। वीरकाव्य में उल्लिखित स्त्रियों के शताधिक आभूषणों में से तो कुछ का प्रयोग आजकल भी देखा जाता है जबकि पुरुषों में उनका प्राय सर्वथा अप्रचलन हो गया है। सधवा स्त्रियां अपनी पूर्ण रूप सज्जा के लिए सोलह प्रकार के शृंगार करती थी। स्नान से पूर्व उबटन कराना स्नानोपरान्त शरीर पर चन्दनादि का अवलेपन केशों को सुवासित धूम्र में सुखाना वेणी बंधन नयनों में काजल आंजना तथा ताम्बूल सेवन आदि शृंगार के इन प्रयासों का चरम अभिप्रेत सौन्दर्य में अधिकाधिक निखार लाना होता था।

वीरकाव्य के आवास सम्बन्धी विवरण प्राय राजमहलों से सम्बद्ध हैं। ये महल सतखण्ड बनाये जाते थे जिन पर गगन चुम्बी ध्वजाएं फहरती रहती थी। उनके द्वारों पर मुक्ता और विद्रुम की झालरें अथवा जरवाफी वस्त्रों के परदे पड़े रहते थे। इनकी चारदीवारी के भीतर कृत्रिम शैल निर्झर धारा-गृह यन्त्र व्यजन जल-यन्त्र, शृंगार संकेत माधवी मंडप आदि विश्राम स्थानों का निर्माण किया जाता था। दुवारी तिवारी चौबारी दरीची सिदरी और बारहदरी आदि उस काल की विशिष्ट वास्तु कला के एस नमूने थे जिनका आजकल अप्रचलन होता जा रहा है।

ध्वानाच्छादनार्थ पट्टवस्त्र के तैयार करने में एक उत्कृष्ट कारीगरी का वस्त्रों का प्रयोग किया जाता था जिनके तार गिनना प्रकाश में भी कठिनाई से दिखाई देते थे। रेशमी ऊनी सूती तथा जरी और रजत के तारों से युक्त वस्त्रों की वीरकाव्य में लगभग साठ किस्में दिखाई गई हैं। निश्चय ही इन वस्त्रों का महीन्ना जन-सामान्य की सामर्थ्य

से परे रहा होगा और वे वीरकाव्य में उल्लिखित टुकरी और भादी आदि का ही प्रयोग करते होंगे।

पुरुषों के पहनावे में सिर पर पगड़ी बाँधने का बहु प्रचलन था। ऊर्ध्वांग के वस्त्रों में नीमा, नीमास्तीन, दगला, जामा तथा कुरता पहनने, एवं अधोवस्त्र के रूप में मुख्यतः धोतियाँ बाँधने और पाजामा पहनने का उल्लेख मिलता है। कटि-बंध भी मुख्यतः सैनिक-वेश का एक आवश्यक अंग था। पैरों में पनही या जूते पहने जाते थे।

हिन्दू स्त्रियाँ ऊर्ध्वांग में कंचुकी, अँगिया या चोली पहनती थीं जबकि मुस्लिम स्त्रियाँ तनिया, तिलक और कान्हिरी' का प्रयोग करती थीं। हिंदू स्त्रियों में अधोवस्त्र के रूप में लहँगा या 'घाघरा' पहनने का बहु प्रचलन था जबकि मुस्लिम स्त्रियाँ 'सुथनी' और तवा पहना करती थीं। हिन्दू स्त्रियों में साड़ियाँ' बाँधने का भी प्रचलन था। इन वस्त्रों के ऊपर वे चुनरी, चादर या दुपट्टा ओढ़ती थीं जबकि मुस्लिम स्त्रियाँ इनके स्थान पर बुरका ओढ़ा करती थीं।

अन्य वस्त्रों में तौलिए का स्थानापन्न अँगोछा मिलता है, जिसका राज परिवारों में भी प्रयोग किए जाने के निर्देश मिलते हैं। छतरी का काम अभीप्ट व्यक्ति के ऊपर चादर तानकर चलने से लिया जाता था। शय्या पर बिछाने के लिए सेमर के पुष्पों से भरे 'गद्दे' तथा 'तोशक' और पलंग पोशों का प्रयोग होता था। सिर के नीचे तो गेंडुव लगाये ही जाते थे कपोलों के नीचे 'गलसुइयाँ' का भी प्रयोग होता था। ओढ़ने के उपादानों में दुलाई, लोई, कंबल आदि का आश्रय लिया जाता था। सारतः आलोच्य-कालीन पहनावे के अनेक वस्त्रों का आजकल या तो लोप हो गया है अथवा उन्हें नवीन अभिधानों से अभिहित किया जाने लगा है। पुरुषों के पहनावे के नीमा, जामा आदि उपकरण जो मुगल-दरबारीय सभ्यता के अभिन्न अंग थे आज विलुप्त हो गये हैं। स्त्रियों के पहनावे में भी पुरुषों की भाँति आज पर्याप्त अंतर आ गया है।

आवागमन के साधनों में से वृषभ-रथ, अश्वरथ, गजरथ, बहली और फिरक आदि पशुओं द्वारा खींचे जाने वाले साधन थे। कहारों द्वारा उठाकर ले जाये जाने वाले साधनों में डोला, पालकी, नलकी, चण्डोल, सुखपाल और सुखासन नामक उपकरणों का प्रयोग किया जाता था। आजकल इनमें से कुछ के दर्शन रामलीला के अवसर पर विविध अवतार पुरुष और नरेशादि की सवारियों में ही हो पाते हैं।

मनोरंजन की अनेक विधियाँ प्रचलित थीं। पशुओं में हाथियों, महिषों, मेषों, वृषभों और बकरों तथा पक्षियों में लवा और तीतरों की लड़ाइयों का अवेक्षण करके मन प्रसादन किया जाता था। वेश्या नृत्य, नटों के खेल तथा ऐन्द्रजालिक कृत्यों का अवेक्षण भी इसी कोटि की मनोरंजन विधियाँ थीं। अनेक प्रकार की क्रीड़ापरक प्रतियोगिताओं की आयोजना से मनोरंजन के साथ साथ शारीरिक बल-वर्धन को भी प्रोत्साहन दिया जाता था। इनमें लौह और काष्ठ स्तम्भों को सांग अथवा तीरों से भेदने, नाल उठाने, मुगदर घुमाने, हदफ या लक्ष्य-वेधन की प्रतियोगिताएँ परिगणित की जा

सकती है। 'हुरहुरा' गवदी, मल्ल-युद्ध, चौगान-गमना, जल क्रीड़ा और मृगया भी ऐसी ही मनोरंजन विधियाँ थीं जिनसे पर्याप्त शारीरिक व्यायाम हो जाता था। मृगया का प्रचलन तो दूर-दूर की सीमा तक परिव्याप्त था। मृगयार्थ जाने वाले राजा और बादशाहों के शिकारी दल में कुत्ते, गुलगुली, सगर, चूनी, जुर्रा और बाज आदि शिकारी पशु-पक्षी और चित्र आदि का सब-जगह ग यत्न में रहते थे। ... कुरंगी ... शिकार उसकी ... अभिव्यक्त हुए हैं। विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षियों का पालना, ... और ... गमना ... की अन्य मनोरंजन विधियाँ थीं।

... उदाहरण, शिकार में निशाना ... तथा ... मनोरंजन करते मिलते हैं जबकि बालिकाएँ पुतलियों या गुड़ियों के ... में अभिरुचि रखती थीं। स्त्रियों के मनोविनोद में ... का पाठ, पुष्प चयन, जल क्रीड़ा ... पर परिभ्रमण ... तथा ... का प्रचलन था। ये मृगया के ... साथ-साथ ... भी शिकार ... जाया करती थीं।

भारत ... कालीन सामाजिकता के खान-पान, वेश-भूषा, आभरणों के प्रयोग, आवासों की बनावट, आवागमन के साधन तथा मनोरंजन की विधियों के विवरण से स्पष्ट होता है कि ... उनमें से ... उपकरणों का प्रयोग समाप्त हो गया है। ... यद्यपि ... उपकरणों ... लिया है तथापि ... की अमिट छाप प्रायः इन सभी ... पर देखी जा सकती है।

तीसरा अध्याय

पारिवारिक जीवन

भारत की संयुक्त परिवार प्रणाली पश्चिमी देशों की तुलना में अपनी अनूठी विशेषताओं के लिए विख्यात रही है। यहाँ के पारिवारिक सम्बन्धों का ताना-बाना अति जटिल रहा है और प्रत्येक परिवार के सदस्य एवं सम्बन्धियों की संख्या इतनी अधिक होती है कि उन्हें सूचित करने वाले हिन्दी शब्दों के अंग्रेजी में पर्याय ही नहीं मिलते। विविध कारणों से भारत की संयुक्त-कुटुम्ब प्रणाली में आज विघटन के कृमि कीट लग चुके हैं, अतः उसकी अतीतकालीन मर्यादाओं पर दृष्टिपात करना और भी अधिक उपादेय रहेगा। व्रजभाषा के रीतिकाव्य में उपलब्ध हुए पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित निर्देश, विवेचन सौकर्य की दृष्टि से चार उपवर्गों में विभक्त किए गए हैं—

(क) परिवार के सदस्य और सम्बन्धियों का पारस्परिक सम्बन्ध,
(ख) पारिवारिक उत्सव या संस्कार,
(ग) विविध त्योहार, तथा
(घ) अभिवादन और आशीर्वाद एवं अतिथि सत्कार की रीतियाँ।

(क) परिवार के सदस्य और सम्बन्धियों का पारस्परिक सम्बन्ध —

आलोच्यकाल में संयुक्त-कुटुम्ब प्रणाली अपने पारंपरिक रूप में ही विद्यमान थी। परिवार के विभिन्न सदस्य और सम्बन्धियों की पृथक् पृथक् मर्यादाएँ और कर्तव्य निर्धारित थे जिनसे पारिवारिक जीवन में सुख सौहार्द और सौमनस्य बना रहता था। गृहस्वामी को परिवार की धुरी मान लेने पर उसके जिन सम्बन्धियों और उनसे सम्बद्ध धारणाओं का रीति काव्य में प्रकाशन हुआ है। वे अग्रलिखित हैं—

बाबा —

पितामह को बाबा या दादा कहा जाता था। कवि पद्माकर ने बाबा की पिता

में भी अधिक गहरा अंकित की है।[1] कन्या गुन्ना ने भी गौरव के लिए भ्राता की मान का विचार करते पिता की आज्ञा न मान कर बड़ा आदर्श स्थापित किया है।[2] वीरकाव्य में तत्कालीन बालिका का विवाह कम मिलता है जिससे आयु तीस वर्ष में ही की जाती थी।[3] इसलिए उसमें बाबा या भ्राता के सम्बन्ध में उल्लेख भी अधिक नहीं मिलते।

पिता —

पिता के लिए वीरकाव्य में तात, जनक और बाप शब्द का प्रयोग मिलता है। पारिवारिक जीवन में सर्वाधिक महत्व पिता का ही था। परिवार के सभी सदस्य उसके शुभाशीष पर उचित स्थान पाते थे। वर्तमान उसके अनुज और पुत्रादि के लिए उसकी आज्ञा का पालन करना धार्मिक अनुष्ठान के सदृश कर्तव्य समझा जाता था।

पृथ्वीराजरासो में ज्ञात होता है कि पिता और माता की महत्ता पवित्र तीर्थों से बढ़कर समझी जाती थी। घर पर ही निवास करती हुई गंगा और गोदावरी नदियों के सदृश माना जाता था तथा विश्वास किया जाता था कि उनके आज्ञापालन रूपी धर्म का पालन करने से पुण्यार्जन और सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।[4] उनकी आज्ञा का उल्लंघन करने वाली सन्तति का गुरु, नारी, मित्र और पतिव्रता स्त्री की भाँति अनेक नरक-यातनाओं का भागी समझा जाता था।[5] कवि भूषण ने शाह और औरंगजेब द्वारा स्वपिता को कैद करने के कृत्य को, मक्का में आग लगाने के समान अधम कृत्य घोषित किया है।[6] पुत्र और पुत्रियों के लिए महत्वपूर्ण कार्यों के सम्पादन से पूर्व सदैव पिता की आज्ञा प्राप्त करना आवश्यक समझा जाता था।[7]

माता —

अधिकारों की दृष्टि से पिता की तुलना में, माता का स्थान गौण था किन्तु पूजनीयता की दृष्टि से उसका स्थान पिता से बढ़कर समझा जाता था। पृथ्वीराज रासो में उसे तीर्थ और पवित्र नदियों से भी अधिक महत्वपूर्ण माना गया है तथा उस

---

१ २ द० श्रम पद्मा० ग्र० अकी०, ८ 'सु० च० ७।२।१३

३ छत्री बरस बीस तें भाग। जियें तीस नौं ज बडभाग। — छ० प्र०' च० २७६

४ 'अहो आदि माता पिता मूज जान। पछ तीरथ आठ सट्ठ प्रमान।
बहै गंग गोदावरी गेह माहे जिन मात सेव पिता सेव ताहे।
धरा धुम्म राय पिता वाच माने। ग्रहे राज भार सुर पथय थान।
—प० रा० का० २१६६।५५४ ५५

५ से ७ दे० श्रम० प० रा०' का० ३८०।५६ भू० ग्र०', स्फु० २।६५६।२३५ व सु० च० २।१।८

पिता से पूर्व स्मरण किया गया है। रासो में अन्यत्र इस धारणा का प्रकटन किया गया है कि संतति को बेचने के लिए प्रस्तुत पिता का साथ छोड़ा जा सकता है किन्तु घुट्टी में विष मिश्रित करके देने वाली माता का भी साथ नहीं छोड़ना चाहिए।[1] केशवदास जी ने भी पिता की अपेक्षा माता को गौरवास्पद पद प्रदान करते हुए, माता के लिए पिता का त्याग करने का मत व्यक्त किया है।[2]

महत्त्वपूर्ण कार्यों से पूर्व यदि पिता की आज्ञा लेना आवश्यक समझा जाता था, तो माता से आशीर्वाद के रूप में उसकी मौन स्वीकृति भी अनिवार्य मानी जाती थी।

पुत्र के वीरत्व अथवा उसकी कायरता के लिए उसके पिता की अपेक्षा माता को अधिक उत्तरदायी समझा जाता था। वीर पुत्रों की जननियाँ धन्य कही जाती थी,[3] और उन्हें सिंहनी की पदवी प्रदान करते हुए, 'सिंह प्रसविनी' की सम्मान्य संज्ञा दी जाती थी[4] जबकि पुत्र के कायर निकलने पर उनके दूध को दूषित समझा जाता था।[5] यही कारण है कि वे पुत्रों की कल्याण कामना और उनके जन्म हेतु नाना व्रत अनुष्ठानों का आश्रय लेते हुए भी कायर अथवा स्वामि रक्षण में आनाकानी करने वाले पुत्रों को जन्म देने की अपेक्षा वन्ध्या रह जाना ही वरेण्य समझती थी।[6] अपने पुत्रों को युद्धार्थ प्रेषित करते समय भी उनके आशीर्वादात्मक ओजस्वी उपदेश का यही सार होता था कि चाहे वोटी-वोटी कट जाय किन्तु तुम युद्धस्थल से पलायन करना तो दूर रहा पग तक पीछे न हटाना।[7] पुत्र भी हम माता को यह वचन देकर जाते मिलते हैं कि किसी भी दशा में वे ऐसा कोई अधम आचरण नहीं करेंगे जिससे उनकी कुक्षि और दूध को लज्जित

---

१ विष्ष घुटी माता दियै। वेचि पिता ल दाम।
माता सरन न मुक्किये। पिता सरन मन आनि॥
—प० रा०, का० २०६८।८०६

२ 'मातु हेत पितु तजिय, पिता के हेत सहोदर। —र० बा० छ० ५३

३ से ५ दे० क्रम० गो० क०' छ० १३८ प० रा० का० २१६६।३७६
—प० रा० मा० १।३३६।२१

६ (क) दवल दकहि बाँझ न रष्पिय। क्षत्रिय धम्म कम्म गय भष्पिय।
स्वामि सांकर देह न कट्टिय। हा करतार पूप नहि फट्टिय॥
पर०रा० ११।१३१

(ख) पातिसाह श्रवनन सुनी जपी मात निधान।
मैं अग्महु मुभयौ धरयौ मुठिन पट्टीपान।
—प० रा० का० १३५४।८६

७ दे० क्रम० 'ह० ह०' छंद० २८१-८२ व पर०रा० ५।१ व 'ह० ह०' ग्वाल० छ० १४८,

होना पड़े।[१]

सास —

पुत्र की वधुओं द्वारा पति की माता को सास कहा जाता था और उनके लिए उसकी आज्ञा का पालन करना एक आवश्यक धर्म के रूप में समादृत था। उसकी आज्ञा की अवहेलना करने वाली वधुओं पर दैवी आपत्तियां आने की धारणा प्रचलित थी। महाराज पृथ्वीराज को चक्षु हीन होने का शाप मिलने पर संयोगिता मनस्ताप करती हुई उन पाप कारणों के विषय में विचार करती है जिनके कारण उसको पति से विरहित होने का दुःख भोगना पड़ेगा। इन कारणों में से वह एक कारण यह भी सोचती है कि कहीं असावधानी में मुझसे सास की किसी आज्ञा का उल्लंघन तो नहीं हो गया था।[२]

काका या चाचा और चाची —

पिता के छोटे भाई के लिए पृथ्वीराजरासो में काका तथा आल्हखण्ड में चाचा शब्द व्यवहृत हुए हैं जबकि उसकी पत्नी को आल्हखण्ड में चाची कहा गया है। पिता की भांति चाचा की आज्ञा का पालन भी आवश्यक समझा जाता था। महाराज पृथ्वीराज स्व-काका कन्ह की इच्छानुसार शाह गोरी को बन्धन मुक्त कर देते हैं जबकि उनके अन्य सभी सामंत इस विषय में एकमत थे कि शाह को मृत्यु दण्ड दिया जाना चाहिए।[३]

देवर-भावज —

पति के अनुज को देवर[४] तथा अग्रज पत्नी को भावज[५] कहा जाता था। आल्हखण्ड में दिए गए ऊदल और मछला सम्बन्धी विवरण से आलोच्यकाल में भी देवर और भाभी के सम्बन्ध लक्ष्मण और सीता के सम्बन्ध की भांति उदात्त सिद्ध होते हैं। ऊदल मछला के चरणस्पर्श करता है[६] तथा वह अपने अग्रज आल्हा से छिपाये गए तथ्यों को भी मछला के सम्मुख प्रकट कर देता है[७] जिससे स्पष्ट होता है कि अनुजों पर बड़े भाई की अपेक्षा उसकी पत्नी का ममत्व और भी अधिक होता था। मछला द्वारा ऊदल को स्व पुत्र से बढ़कर बताने में भी[८] भावजों के देवरों के प्रति मातृवत स्नेह का प्रकटन हुआ है।

---

१ ह० ह० चद्र० छ० २८७ गो०क० छ० ११०

२ कन्योति विप्र परहरयौ। करयौ नन बन सासु कौ।

— प० रा० का० २०१५।२०२

३ दे० प० रा० का० ६५४।४२ ६४

४ से ७ दे० आ० २५५।१७ वही ३१५।१८ वही ४४५।१० ११ २५५।१६, ३३६।१२

८ देखें २३२

अग्रज और अनुज —

केशवदासजी ने सहोदर की महत्ता पुत्र से बढ़कर समझने की जनधारणा का प्रकाशन किया है।[1] परमालरासो और आल्हखण्ड में बड़े भाई को पिता-तुल्य मानने तथा उसकी आज्ञा का पिताज्ञा तुल्य पालन करने की प्रथा दिखाई गई है।[2] वीरचरित्र में महाराज वीरसिंहदेव ज्येष्ठ भ्राता की सेवा करना अपना कर्तव्य बताते हैं।[3] महा० सोमेश्वर के निधन पर उनके अनुज कन्ह को मनस्ताप होता है कि उनसे पूर्व मेरे प्राण पखेरू क्यों नहीं उड़ गये हैं।[4] महाराज वीरसिंह देव अपने राज्य के पट्टे परवानों को स्व अग्रज को प्रस्तुत करते हैं।[5] इनसे अनुजों की स्व अग्रजों के प्रति आदरास्पद भावनाओं और अटूट स्नेह का परिचय मिलता है। अग्रज कम से कम एक सहोदर की कामना करता था जिससे वह आपद काल में उसका साथ दे सके।[6]

जेठ और अनुज पत्नी —

जेठ की कानि करना आवश्यक समझा जाता था। संयोगिता अपने पति को शाप मिलने पर यह भी विचारती है कि कहीं इसके मूल में जेठ की कानि न करने या उनके प्रश्न का प्रत्युत्तर न देने का पाप वा कुफल तो नहीं है।[7]

पत्नी —

पृथ्वीराजरासो में पत्नी गृहस्थ जीवन की मूल कही गई है।[8] उसमें अन्यत्र इस प्रश्न के उत्तर में 'परिवार के सभी सदस्यों में सच्चा प्रेम किसका होता है? यह अभिमत व्यक्त किया गया है कि पति के विलास रस को तृप्त करने वाली, तथा पति मरण पर स्व-जीवन का मोह त्याग कर सहगमन करने वाली पत्नी के प्रेम को ही सच्चा प्रेम मानना चाहिए।[9] आल्हखण्ड में पुत्र या माता पिता का अधिकार तभी

---

१ सुतहि सहोदर हेत सखा सुत-हूत तजहुवर। —र० बा०, छ० १३

२ (क) जठा बध मारहु मम होइय तात तुल्य जाना जग सोन्य। —पर० रा० ६।३६

(ख) मलिन समुभावों आल्हा को तुम सुनि लेउ हमारी बात।
बाप बराबर तुम लागत हो, जठे भाई लगो हमार। —आ० ३०३।१५ १६

३ से ६ द० क्रम० वी० च० ६।५५ 'पृ० रा०' मो० ३।१०७।४८ 'वी० च०' ६।५६ 'आ० ५६७।११ १२

७ कीनी न कानि न जेठ की। कै बोलत ज्वाब न दयो।
बुल्लयौ सराप रिषि क्त कौं। सती हारु वे हर लयो।' —पृ० रा०, का० २०१५। २०२

८ त्रिय व्याह राह च्यत्तौ सुचित घर तरुणी तरुणी ति घर। —प० रा० मा० ४। ७६७।४८३

६ पूरन सरल विलास रस। सरस पुत्र फल दान।
अत होइ सहगामिनी। नेह नारि का मानि। वही, २०१२।१७६

तक दिखाया गया है, जब तक उसका विवाह नहीं होता। विवाह के पश्चात् उस पर पत्नी का स्वामित्व बताया गया है।[1] रासो में अन्य स्थल पर कहा गया है कि मात्र युद्ध क्षेत्र को छोड़कर पत्नी का साहचर्य जीवन के समस्त प्रसंगों में काम्य होता है।[2] महाराज सामंतश्वर चन्द्रग्रहण के समय अपनी तोमरवंशी रानी के साथ ग्रथिबंधन करके दान देते हैं।[3] इसी भांति महाराज पृथ्वीराज के राज्याभिषेक के अवसर पर उनकी पटरानी इंछिनी को भी उनके साथ ग्रंथि बंधन करके सिंहासनासीन करना[4] पति के धार्मिक अनुष्ठानों में पत्नी के अनन्य महत्त्व के अभिसूचक हैं।

पत्नी अपने पति के माता पिता और ज्येष्ठ भ्रातादि की मर्यादा का निर्वाह करती थी जबकि उसके लघुभ्रातादि के साथ उसका मान वत् स्नेहमय व्यवहार होता था।

वीरों की पत्नियाँ स्व-पतियों को अपना जीवन स्वस्व समझती थीं। पतिमरण पर स्व जीवन को वृथा समझकर वे उससे स्वर्ग में जा मिलन के लिए तुरंत ही सती होने को तैयार होती थीं। पारिवारिक जनों का मोह एवं उनके हितकारियों की शिक्षाएँ उन्हें अपने निश्चय से रंचमात्र भी नहीं डिगा पाती थीं। परमाल रासो में मलिखान की पत्नी के मुख से पत्नी धर्म के अग्रलिखित मार्मिक उद्गार व्यक्त हुए हैं—'पत्नी को वेदों में अर्धांगिनी कहा गया है अतः उसे पति के सुख में ही नहीं वरन् दुःख में भी सम भागी होने का पूर्णाधिकार है।[5] वह आगे कहती है— पति की मन व भाव से सेवा करने वाली स्त्री को सहज ही सद्गति प्राप्त हो जाती है। अपने पति को परमेश्वर मानकर चाहे वह बौना, बधिर, काना, कुब्जा, अथवा गूंगा ही क्यों न हो सेवा करने वाली स्त्री के दोनों लोक सुधर जाते हैं। मृत्युलोक में उसका यश प्रसरित होता है जबकि मरने पर वह स्वर्गगामिनी होती है। इसके साथ साथ उसके मातकुल और पति कुल को भी पुरुष प्रशंसा करते हैं।[6]

पति की सेवा को अपना अनिवार्य धर्म मानते हुए भी वीरकाव्य में उल्लिखित वीर-क्षत्रियाणियों को कायर पत्नी कहलाने के कलंक को सहन करना मृत्यु से भी अधिक दुःखप्रद था। परमालरासो में ऊदल पत्नी उन क्षत्राणियों को जो युद्ध से भागे हुए पति को अपना शरीर सौंप देती थीं, क्षत्रिय-बाला न मानकर कुक्करी कहकर लांछित करती है।[7] वीर बादल की पत्नी अपने भतीजे गोरा के समक्ष यही जिज्ञासा

१　'तब लौं लड़िका माइ बाप को जब लगि ऊन्नि होय न ब्याहु।
ब्याह भय पर तिरिया मालिक बहुअर तुम्हैं देइ लजाउ। —आ० ४६४।१० ११

२ से ४　द० श्रम० पृ० रा० का० १७६१।१२५८, पृ० रा० मो० ३।१७।२६ वही ३।६२।४६

५ ६　प० रा० ४।१४४ ४।१८६ ८६

७　पिय भाग तिस महर सौंपे सकल सरीर।
वह रजपुत्रनि कुक्करी, सुमृतन कहो गहीर। वही, २२।८१

व्यक्त करती है कि वह उस इस तथ्य की सूचना दे कि उसके चाचा युद्ध करते हुए ही वीरगति को प्राप्त हुए हैं अथवा पलायन करते हुए मारे गए हैं।[1] जब उस वीर रमणी को यह ज्ञात होता है कि उन्होंने शत्रु-प्रहार करते हुए रण-समाधि ली है तो उसके आनन्द का पारावार नहीं रहता, और वह आत्मविभोर होकर कह उठती है कि— बहुत अच्छा हुआ कि उन्होंने युद्ध करते हुए प्राणत्याग किए हैं। इससे उनका तो कीर्ति-गान होगा ही उन्होंने मुझे तथा स्वकुल को भी कलंक लगने से बचा लिया है।[2] गोरा की पत्नी भी स्वपति की बलिहारी लेते हुए उस गज दन्ता का मन्थन करते हुए शाह के शीश पर खड्ग प्रहार करने के लिए साधुवाद देती मिलती है[3] तथा महारानी पद्मावती भी उसकी आरती उतारती है तथा गोरा की पत्नी को ऐसा शौर्यवान पति प्राप्त करने पर बधाई और करोड़ वर्ष जीवित रहने का आशीर्वाद देती है।[4] आल्हखण्ड में लाखन की पत्नी स्वपति को यह धमकी देकर युद्धार्थ विदा करती है कि यदि मुझे आपके युद्ध से पलायन करने का समाचार मिलेगा तो मैं कटार मारकर आत्म-हत्या कर लूँगी।[5] केशवदासजी ने भी मर्यादा हीन पति का पत्नी द्वारा अनादर करने का उल्लेख किया है।[6] आलोच्यकालीन वीर रमणियों के उक्त चारित्रौदात्य की पुष्टि बर्नियर द्वारा वर्णित उस अपमानजनक व्यवहार की घटना से हो जाती है जिसे महाराज जसवन्त सिंह को युद्ध से पलायन करने पर भोगना पड़ा था।[7]

सपत्नियाँ

बहु विवाह प्रथा के कुपरिणाम स्वरूप पारिवारिक जीवन कलह और षड्यन्त्रों का केन्द्र बन जाता था। पृथ्वीराजरासो की सौतिया डाह सम्बन्धी कुछ उक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

महाराज बीसलदेव की पत्नियाँ सपत्नियों से मिलने वाली आन्तरिक पीड़ा को वन्ध्या की पीर की भाँति भुक्त भोगिनियों द्वारा ही अनुभव गम्य बताती हैं।[8] महाराज पृथ्वीराज की रानी इच्छिनी के मर्मोद्गारों के अनुसार — 'पितृघातक से कालान्तर में मन मिल सकता है तथा विरह के असह्य शरों का भी शन शनैः प्रतिशोधात्मक दंश क्षीण हो जाता है किन्तु सपत्नी दाह की दुःखाग्नि मन्द होने के स्थान पर, ग्रीष्मकालीन

---

१ "काकी आखल सो कहै गारल न लायो काइ।
मिड मूओ के भजि मुओ सो मुझ बात सुणाइ। —गो० क०, छ० १८१

२ भला हुआ जा मिड मुआ कलंक न आयो काइ।
जस जप सब जगत में, हिव रण ढूंढों जाइ।' वही छ० १४४

३ से ६ द० क्रम० 'गो० क०' छ० १३६, वही छ० १३८, 'आ०' ४६६।२४ वी० च०' ६।८

[7] द० ट्रेवल्स इन मुगल इण्डिया, पृ० ४० ४१

८ को जानि मात बिमनी पीर। सौनि को साल साल शरीर। – पृ० रा०, का० ७४।३७५

सूमा की भाँति हृदय को विदीर्ण किया करती रहती है।[1] कवि के शब्दों में— 'सपत्नियाँ प्रत्यक्षतः तो मीठी चुपड़ी बातें करती हैं किन्तु मन-मन में शाप देती रहती हैं, कि हे भगवन्! इस हृदय-शूलक सौत को शीघ्र यमपुर पहुँचा दो।'[2] स्त्रीजगत् के प्रत्येक पदार्थ—धन, गृह, भाई, बन्धु, हम और भार सभी का बटवारा सहन कर सकती है किन्तु पति-प्रेम मात्र ही एक ऐसी निधि है जिसे वह सपत्नी के साथ बाँटना सहन नहीं कर सकती।[3] सपत्नी का पति-साहचर्य का सुख सम्भोग करना स्त्रियों को उनके शरीर से अंगार छुलाने या करवत (आरा) चलाने की भाँति कष्टकर होता है।[4] माल्हकार ने तो आटे की बनी कृत्रिम सौत को भी हृदय दाहक समझने की धारणा का प्रकटन किया है।[5]

सपत्नियों के अनुताप का उस दशा में पारावार नहीं रहता था जब कोई नव यौवना पति-प्रेम की पूर्ण अधिष्ठात्री बन जाती थी। संयोगिता अपहरण के पश्चात् महाराज पृथ्वीराज की पटरानी इञ्छिनी को सम्भवतः स्थिति का सामना करना पड़ता है। राजमहल में रानियों की गोष्ठी आयोजित की जाती है जिसमें महाराज पृथ्वीराज यद्यपि इञ्छिनी को भी संयोगिता के साथ-साथ सिंहासन पर बिठाते हैं, तथापि उनके हाव-भावों से इञ्छिनी यह लक्षित कर लेती है कि मुग्ध प्रौढ़ा के स्थान पर महाराज मुग्धा संयोगिता के प्रेमार्णव में आमूल चूल निमग्न हैं।[6] यह ईर्ष्या से सन्तप्त शून्य सी हो जाती है और इसी अनुताप में दग्ध रहती हुई खान-पान का त्याग करके अत्यन्त क्षीण हो जाती है।[7] इससे आगे होता भी यह है कि संयोगितानुरक्त महाराज के इञ्छिनि तथा अन्य रानियों को एक वर्ष तक दर्शन भी नहीं होते। वे सभी [illegible] होकर सपत्नी दुःख का रोना रोती हैं।[8] अन्ततः स्व-गुरु के परामर्श पर मान का अभिनय करती हुई, गृहत्याग करके जाने वाली इञ्छिनि को पुनः पति-साहचर्य प्राप्त होता है।[9]

महाराज बीसलदेव की रानियाँ स्वपति और सपत्नी से ऐसा प्रतिशोध लेती हैं, जिसका पर्यवसान अनेक अनर्थों में होता है। पटरानी पावारी में अनुरक्त महाराज

---

१ 'पिय घात सा मन मिले। और बर मिट जाइ।
सौति संग अन्तर जलनि। दिन प्रति ग्रीषम लाइ।' —पृ० रा० का० १९६३।१७

२ 'मुख मिट्ठी बिस्तार कर। मन में देत सराप।
छूट प्रेम सु प्रीय की। अन्तर दहक आप।' वही १९६३।१८

३ 'धन ग्रह वठन मुक्ति ठग। हम पटवर सार।
पुनि प्रिय प्रिय वठन सुरति। लगे अधिक पगधार।' वही १९६४।२१

४ 'सौति सुहागिल सुख्य दिपि। लगत नैन अंगार।
ज्यों ज्यों वह छंदा करे। त्यों त्यों करवत धार।' वही १९६४।२०

५ "सौति चून का भर में साल औ वरी को साले नाम। —आ० ६१५

६ से ९ दे० पृ० रा० १९६१।६७, वही, १९६२।१०, वही, १९६६।४३, वही, १९८३।१७७ से १९८४।१८८

वीसलदेव का,[1] उनकी अन्य रानियां एक यन्त्र-मन्त्र रचकर[2] योगिनी से नपुंसक करा देती हैं जिससे सपत्नी कामवेलि का आनन्दलाभ ही न कर सके।[3] नपुंसकता के अभिशाप से मुक्ति पाने के लिये महाराज तीर्थाटन और शिवाराधना करते हैं जिससे उन्हें उनकी कामाग्नि अत्यधिक प्रबुद्ध होने का वरदान प्राप्त होता है। अपनी अब कामेच्छा की अमर्यादित शान्ति के कारण पहले तो वे स्व प्रजाजनों के कोपभाजन बनते हैं[4] और अन्ततः उन्हें तपस्यारत वणिक पुत्री का सतीत्व भंग करने के फलस्वरूप राक्षस हो जाने का शाप भोगना पड़ता है।[5] सारतः सपत्नियों के कारण पारिवारिक जीवन कलह और षड्यन्त्रों का केन्द्र रहता था।

बहन

आल्हखण्ड की चन्द्रावलि उन बहनों का प्रतिनिधित्व करती है जिनकी दृष्टि में भाई का महत्त्व पति से भी अधिक होता था। चन्द्रावलि ऊदल को संकेत करके विष मिश्रित भोजन के थाल को, स्व पति के थाल से ही नहीं बदलवा देती[6] अपितु मारकाट मचने पर उस स्वपति का मस्तक भी सौंपते चित्रित की गई है। इसके विपरीत वेला स्वपति की संतुष्टि-हेतु अपने भाई का शिरच्छेदन करके स्वपति को सौंपते प्रदर्शित की गई है।[8] प्यारेलाल के अनुसार आपदकाल में कौन किसका भाई है और कौन किसकी बहन। ये सुखकाल में तो आदरभाव दिखाते हैं जबकि आपत्ति के समय किनारा काट जाते हैं।[1] प्यारेलाल की इस उक्ति के मूल में आपद ग्रस्त महाराज छत्रसाल से उनकी बहन की बात तक न पूछने का तथ्य रहा है।[11] जिसे सार्वभौमिक तो नहीं कहा जा सकता किन्तु भाई बहन को संकटकाल में रुलाई दिखाना वस्तुस्थिति से बहुत भिन्न भी नहीं है।

पुत्र --

परिवार की पुत्र-जन्म पर विविध आशा आकांक्षाएँ केन्द्रित रहती थीं। पैतृक सम्पत्ति के रक्षण वंश के विस्तार, कुलकीर्ति के प्रसार तथा पिता के मरणोपरान्त, उनके ऋण के विमोचन तथा पितृऋण से उद्धार के लिए पुत्र का होना आवश्यक समझा जाता था। पुत्रों की सम्प्राप्ति और उनकी कल्याणाकांक्षा से माता पिता मनौतियां मानते और धार्मिक अनुष्ठान तथा दानादि सम्पन्न करते थे। पृथ्वीराजरासो में महाराज पृथ्वीराज का जन्म उनके पिता सोमेश्वर के अपुत्र तप का फल कहा गया है।[12] परमाल रासो में इन्दुमती पुत्र कामना से तीर्थाटन करती और देवताओं से मनौती मानती है।[13] राजविलास में महा० गृहाल्थित पुत्र प्राप्ति के लिए देवों की उपासना षटदरस की पूजा और तीर्थाटन करते हैं तथा तन्त्र मन्त्रात्मक विधियों की शरण लेते हैं।[14] कवि नरहरि ने

---

१ से ३ पृ० रा० वा० ७४।३७०, वही ७४। ३७१ वही ७४।३७२
४ से ११ दे० क्रम० प० रा० वा० ८३।४११, वही, ६७।४६१, आ०' २८८।२२, २३ वही २८६।२० २१, वही ५८३।२ वही ५८७।८, छ० प्र० ८।११ वही ८।११
१२ से १४ दे० क्रम० पृ० रा० वा० १४५।६६६ प० रा० १।१२३, रा० वि०' १।१२५

शाह अकबर को, पुत्र-कामना से पीर मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह तक पैदल जाते चित्रित किया है। आल्हखण्ड के युद्ध प्रसंगों में घायल अथवा मारे जाने वाले वीरों की प्राण रक्षा का मूल कारण उनके माता पिताओं के व्रतोपवासों को प्रदर्शित करते हुए,[1] पुत्रों की कल्याणकामना में माता पिता द्वारा रखे जाने वाले व्रतों पर प्रकाश डाला गया है।

निपुत्र महाराज अनंगपाल मनस्ताप व्यक्त करते हैं कि पुत्र के अभाव में संसार शून्य है क्योंकि वही शत्रुओं का खण्डन करता हुआ स्वर्जित राज्य की रक्षा करता है, तथा वंश वृद्धि करते हुए वंश का यश प्रसारित करता है।[2] पृथ्वीराज रासो में अन्यत्र उसी घर को घर की संज्ञा से उपयुक्त बताया गया है जिसमें कम से कम एक पुत्र हो।[3] उसमें आगे कहा गया है कि पुत्ररहित-परिवार स्तम्भ रहित मन्दिर की भाँति असमय विनष्ट हो जाता है दुनिया से उसका नाम मिट जाता है तथा परिवार के धार्मिक कृत्यों के अवरुद्ध हो जाने के कारण पितरों की योनियों का भी उद्धार नहीं हो पाता।[4] रासो में अन्यत्र उसी पुत्र को सच्चा पुत्र माना गया है जो दिवंगत पिता के ऋण को चुकाकर उसका उद्धार करता है।[5] कयामखां रासो में निपुत्रों के 'भूत' की योनि प्राप्त करने की धारणा का प्रकाशन किया गया है।[6]

पिता के वैर का शत्रु से बदला न लेने वाले पुत्रों को धिक्कारा जाता था[7] तथा उन्हें यह उलाहना दिया जाता था कि पहले स्व पिता का बदला तो चुका लो तभी घोड़े पर चढ़कर बात करना।[8] इसी दृष्टि से महाराज पृथ्वीराज स्वपिता के वध का बदला चुकाने तक पगड़ी न बाँधने और आहार में घृत का प्रयोग न करने की प्रतिज्ञा करते हैं।[9] महाराज कीर्तिसिंह स्व पितृ हंता असलान द्वारा सौंपे जानेवाले राज्य को, पिता का वैर शोधन न कर लेने तक स्वीकार नहीं करते।[10] पितृ वैर शोधन का सर्वाधिक ज्वलंत उदाहरण आल्हखण्ड में मिलता है जिसमें बनाफल भ्राता स्वपिता के हत्यारे नरेश जम्बे के पुत्रों का वध कर देते हैं[11] जम्बे को कोल्हू में पिलवा देते हैं[12] तथा उसकी एकमात्र पुत्री को भी तलवार के घाट उतारकर[13] उसके कुल में किसी नामलेवा या पानी-देवा को शेष नहीं छोड़ते।[14] आल्हकार ने पितृ वैर शोधन करने वाले बनाफल पुत्रों की धन्य धन्य कहकर प्रशंसा करने के रूप में युग प्रवृत्ति का ही प्रकाशन किया है।[15]

---

१ से ७ दे० क्रम० आ० १३८।१६ पृ० रा०' का० ५९३।२१ वही २१९५।५२९ वही २१९५।५३० ३१ वही २४३२।३५८, कया० रा० १११, पृ० रा० का० ११४८।१२४

८ से १५ दे० क्रम० 'आ० ३७।३ पृ० रा० का०, ११४८।१२५ कीर्ति० प० १८, आ०' ७४।१३ वही १०५।२४ वही, १०६।२२ वही, १०६।१९ २०, 'आ० १०६।३

पुत्री —

वीरकाव्य म पुत्री के सम्बन्ध म वही सदभ प्राप्त होते हैं जहाँ वय सधि को प्राप्त पुत्रियाँ प्राय घोर विपत्ति अथवा परिवार की आन को धूलिसात करने का निमित्त बन जाती थी क्योंकि पड़ोसी नरेश और बादशाहों की दृष्टि उन पर लगी रहती थी। पिता या तो अपने से हीनकुलीय नरेश और विधर्मी बादशाहों को स्व पुत्रियों के डोले सौंपने का कुल मर्यादा विरोधी कृत्य करने पर विवश हो जाते थे जिससे उन्हें लोक निन्दा का सामना करना पड़ता था[1] अथवा उनके विवाह भयकर रक्तपात की रगस्थली बन जाते थे। क्षत्रियो की वीरकाव्य म विभिन्न विवाह पद्धति भी इस दोष स युक्त मिलती है कि अधिकांश विवाह रक्त रजित मिलते हैं। यही कारण है कि पुत्र जन्म पर तो नाना प्रकार से हर्षोल्लास व्यक्त किया जाता था जबकि किसी भी पुत्री के जन्म के अवसर पर समारोह मनाए जाने का वीर-काव्य म चित्रण नहीं मिलता।

पिता और माता मे स पुत्रियाँ स्व माता को मनोव्यथाभिव्यक्ति के अधिक उपयुक्त समझती थीं। आल्हखण्ड मे सुनवा गजमोतिन और वेला अपनी सखियों के इस उपहास को कि तुम्हारे पिता हीन-कुल के प्रतीत होते हैं जिससे तुम्हारा कोई कुलीन राजकुमार, विवाह करने को प्रस्तुत नहीं होता अपनी माताओं के अचल में ही मुह छिपाकर परिवाद करती हैं।[2] चन्द्रावली की चौथी विदा न होकर आने पर रुदन करने वाली रानी मल्हना के रूप मे हमे एक पुत्री-वत्सला जननी का हृदय ही करुण क्रन्दन करते सुनाई देता है।[3]

हठीली पुत्रियों की हठवादिता के समक्ष, पिता भी निष्ठुर ही नहीं बने रहते थे। महाराज जयचन्द जो सयोगिता और महाराज पृथ्वीराज के विवाह-सूत्र म बँधने के अतिशय विरोधी थे, सयोगिताहरण सम्बन्धी युद्ध में विजय की सीमा के सन्निकट पहुँचने पर भी स्व पुत्री के अश्रु सिक्त नयन और विवर्ण मुख को देखकर द्रवित हो उठते हैं और यह कहते हुए कि मेरे मन का निवास तथा कन्या का अपहरण करने वाले दिल्लीश्वर, मैं तुम्हें अपनी लज्जा प्रतिष्ठा और पुत्री सभी कुछ समर्पित किए जाता हू कन्नौज लौट जाते हैं।[4] इसी भांति इन्द्रावती के पिता स्व पुत्री द्वारा आत्मघात करने के निश्चय स अवगत होकर वीरचन्द के साथ विवाह निश्चित करने के वचन को भग करने की चिन्ता न करते हुए महाराज पृथ्वीराज को गुप्त रीति से सूचित कर देते हैं कि आपके द्वारा पुत्री-हरण कर ले जाने का, मैं प्रतिरोध न करूँगा।[5]

---

१ तुम आसुर आधीन, धीय द धरनि मु रक्खहु।
इन करनी हम अग्ग, ऊँच मुँह करि करि अक्खहु। — रा० वि०' ३।६१

२ ३ द० श्म० आ०', १५।५।२ ७, वही, २७८।११-१२

४ ५ द० श्म०, पृ० रा०' भो०, ४।८२।१।६२२ २८, 'पृ० रा०' का० ७६६।
२६५ ६६

राजपुत्रियाँ स्वयं को किस सीमा तक दीन-हीन समझती थीं इस तथ्य का महाराज हम्मीरदेव की पुत्री के कथन में अभिव्यंजन हुआ है। वह कहती है कि आप मुझे शाह अलाउद्दीन को सौंपकर स्व राज्य और प्राणों की रक्षा कीजिए। मेरे विषय में आप यह सोचकर संतोष कर लेना कि एक घर घालन वाला कंगाल पैदा हुआ था, जिसे आपने कुल कलंक समझकर दूर फिंकवा दिया था।[1] देवलकुंवरि के शाह अलाउद्दीन से विवाह करने के अनिच्छुक हृदय की यह छटपटाहट इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए और भी महत्वपूर्ण है कि राजविलास में रूपकुंवरि शाह औरंगजेब द्वारा शादी का संदेश भेजने पर आत्महत्यार्थ प्रस्तुत मिलती है,[2] तथा वीरचरित्र में अबुल फजल की हिन्दू पत्नियाँ (जिनके विवाह निश्चय ही बलात् किए गए होंगे) उसके निधन पर विलाप करने की तो कौन कहे—प्रत्युत आंचल में मुंह छिपाकर हंसते और ढोलक आदि बजाकर प्रमुदित होती चित्रित की गई हैं।[3] सारतः, क्षत्रिय राज परिवारों में पुत्री का जन्म विषाद का ही कारण रहता था।

नाती —

पुत्र के पुत्र को 'नाती' कहा जाता था। यदि सूदन ने भरतपुर के जाटों के गढ़ों में पुत्र और नातियों की अपार संख्या प्रदर्शित की है,[4] जबकि आल्हकार ने ताला-सयद के नौ पुत्र और अठारह नातियों का होना[5] उल्लिखित किया है।

धाय —

ब्रजभाषा के वीरकाव्य में 'धाय' पारिवारिक जीवन का एक ऐसा अभिन्न अंग चित्रित की गई हैं, जिनके आचार-व्यवहार और परामर्शों का, उनके द्वारा पालित शिशु अपने माता पिता से भी अधिक आदर करते थे। उनकी नियुक्ति दो दशाओं में मिलती है—शिशुओं की माताओं की मृत्यु हो जाने पर उन्हें दूध पिलाने के लिए तथा माताओं के जीवित होने पर भी उन्हें स्नानादि कराने के लिए। महाराज बीसलदेव की रानी पुत्र-प्रसव के समय ही कालकवलित हो जाती हैं।[6] अतः वे शिशु को एक वैश्य वर्णा धाय को सौंप देते हैं। उस धाय की पुत्री गौरी के साथ वे एक शय्या पर शयन तथा एक स्तन का पय-पान करते हुए पोषित होते हैं[7] और अपनी धाय बहन के साथ उनका इतना

१-२ ह० ह० च० २५३ रा० वि० ७।२७

३ राजकुमारि हंस मुह मोरि। तुरकि नीनि उपज दुख कोरि।
रोवति तन तोरति अति बनी। बिच बिच बजति ढोलक घनी।
—'वी० च० ६।१६

४ से ७ दे० क्रम० 'सु० च०' ७।१।६०, 'आ०'२५।१०, 'प० रा० का० ७०।३४७
वही, ७१।३४७

ममत्व हो जाता है कि उसके वधय्य से खिन्न होकर वे बौद्धमत स्वीकार कर लेते हैं।[1] उनकी कन्य माता के संस्कारों का उनकी इस अहिंसक मनोवृत्ति में अवश्य ही योगदान था, यही कारण है कि महाराज वोसलदेव उसे कुमार को मुण्डी (बौद्ध-साधु) बनाने का अभियोग लगाते हैं।[2] व राज्य धाय के लिए यन-कन प्रकारेण प्रवासित किये हुए राजकुमार को उसके संसर्ग से बचाने की चेष्टा करते हैं और उस धाय को आगाह कर देते हैं कि यदि उसने राजकुमार के समीप जाने का प्रयास किया तो उसे निश्चय ही प्राण दण्ड मिलेगा।[3]

रासो में संयोगिता की धाय-माता का महत्त्व उसकी माता जाह्नवी से भी अधिक प्रदर्शित किया गया है। संयोगिता पर जब माता पिता तथा दूतियों आदि किसी के भी समझाने का अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ता तो अन्ततः उसकी माता संयोगिता की धाय से कहती है कि तुम पुत्री के अन्तर्मन के रहस्यों को मुझसे भी अधिक समझती हो अतः अब तुम्हीं उसे उसके पृथ्वीराज-वरण-सम्बन्धी निश्चय से विरत करने की चेष्टा करो।[4] संयोगिता भी दूती और सखियों को तो दो टूक उत्तर देती है ' अरी तुम इस कुलकानि को क्या समझोगी कि मेरे पिता को बाप (स्वामी) कहने वाले नरेश मेरे लिए भ्राता और सेवक के तुल्य हैं ' किंतु अपनी धाय माता को उत्तर देने से पूर्व वह क्षमा-याचना करती है कि मैं आपके सम्मुख मुख खोलने की धृष्टता कर रही हूं।[5]

राजविलास में मातृहीन बालक राघव के परिपोषण के लिए एक तो प्रचुर दुग्ध वाली धाय रखी जाती है[6] तथा पाँच धायें उन्हें स्नान और वस्त्राभूषणादि से सज्जित करने के लिए रखी जाती हैं।[7] राजसिंहजी का जन्म होने पर भी मान ने उनके लिए पाँच धायें दिलाई हैं किंतु उन्हें दूध राजमाता ही पिलाती थी[8] जिससे माता की जीवितावस्था नियुक्त में क्षत्रियोचित गुणों का नैसर्गिक विकास हो सके।

धाय पुत्र या दौवा —

धाय का समवयस्क पुत्र दौवा कहलाता था। दौवे का छत्रप्रकाश में उल्लेख मिलता है।[9] छत्रप्रकाश के सम्पादक डा० श्यामसुन्दरदास के अनुसार बुंदेलखण्ड के राजदरबारों में दौवा की जाति का विचार न करते हुए उसका विशेष सम्मान किया जाता है। दौवा को नरेश सहोदर की भाँति मानते हैं और उसके पिता को 'कक्का' कहकर संबोधित करते हैं।[10]

समधी —

पति और पत्नी के पिता आपस में समधी कहलाते थे। विवाह के अवसर पर उनके

---

१ से ६ दे० क्रम 'पृ० रा० का० ७१।३४७ ४६ वही ७२।३५६ वही ७२।३५६ ५७ पृ० रा० मो० ३।२८०।३ वही, ३।२३६।१० 'पृ० रा० का०, १३४१।२६

७ से ११ दे० क्रम० 'रा० वि०' १।१४० वही, १।१४१ वही २।१७१ छ० प्र०' ८।४, 'छ० प्र० पृ० ५६ पर पाद टिप्पणी

गले मिलने को 'समधौरा' कहा गया है।[१]

नाना और दौहित्र —

माता के पिता को 'मातुल पिता', 'मात पित' और 'नाना' संज्ञाओं से अभिहित किया जाता था जबकि पुत्री के पुत्र लिए 'दौहित्र' और 'पुत्री पुत्र' संज्ञाएं प्रचलित थीं। (ब्रजप्रदेश में पुत्री पुत्र को धेवता कहा जाता है)। कवि चन्द ने महाराज पृथ्वीराज के मुख से स्वमाता के पिता महाराज अनंगपाल के लिए 'मातुल पिता'[२] और मात पित[३] शब्दों का प्रयोग कराया है जबकि कवि जान और मान ने नाना शब्दों के[४] प्रचलन पर प्रकाश डाला है। अनंगपाल पृथ्वीराज जी को 'पुत्री पुत्र'[५] अभिहित करते हैं जबकि महा० सोमेश्वर स्व पुत्री के पुत्र के लिए दौहित्र[६] संज्ञा का प्रयोग करते हैं।

साले बहनोई —

पृथ्वीराज में बहनोई को देश विशेष के अधिपति[७] या जिस बहिन से उसका विवाह होता था उसका कंत कहकर अभिहित करने की प्रथा दिखाई गई है जबकि आल्हखण्ड में बहनोई कहने का प्रचलन दिखाया गया है। छत्रप्रकाश सुजान चरित और आल्हखण्ड में सारे या साले शब्द का प्रयोग मिलता है।

बहनोई को कुल-पूज्य पाहुना में शिरोमणि तथा अतीव सम्मान्य समझा जाता था। महाराज पृथ्वीराज की बहन पृथाबाई के आगमन पर उनका मार्ग में जाकर स्वागत करते हुए उन पर थाल भरकर मोतियों को न्यौछावर करके बधावा किया जाता है।[८] महाराज पृथ्वीराज उन्हें पाहुना में शिरोमणि एवं चौहान कुल के पूज्य पुरुष कहकर सम्मानित करते हैं।[९] आल्हखण्ड में मलिखान का सूरजमल को उत्तर है कि आपके सम्बन्ध में बहनोई लगने के कारण ही मैं अब तक आपकी मर्यादा का निर्वाह करता हुआ निश्चेष्ट हूँ अन्यथा बौरीगढ़ में आग लगाकर अपनी बहन चन्द्रावली को विदा करा ले गया होता।[१०]

आदिकाल में साले और बहनोई प्रायः एक-दूसरे की हितचिंता में अपना सर्वस्व बलिदान करने को प्रस्तुत रहते थे। महाराज पृथ्वीराज और रावल समर विक्रम सम्बन्धी वृत्तान्त इस तथ्य की पुष्टि करता है। महाराज पृथ्वीराज शाह गोरी से होने वाले अन्तिम युद्ध से पूर्व रावल समर विक्रम को अपने राज्य में लौट जाने का निवेदन करते

---

१ द० अम० आ० २२।१५

२ से ७ द० क्रम० पृ० रा० का० ५६५।८० वही ६२४।५७ क्रमा० रा० ८६६, रा० त्रि० ११।८३ पृ० रा० का० ५६८।२७ वही १०६७।८७१ पृ० रा० का० २१६३।३६७

८ से १० द० क्रम० पृ० रा० का०, २११२।८८ वही २१६४।३६२ आ० २६८।१२

है क्योंकि वे नहीं चाहते कि उनकी बहन के सौभाग्य सिन्दूर को किसी प्रकार की आँच आए।[1] यह प्रस्ताव सुनकर गोपाल का रावत समर सिंह को[2] यह प्रत्युत्तर कि 'अपनी दुनिया में यदि मैं, स्वप्राण लोभ से भाग नहीं दूँगा, तो फिर किस प्रयोजन में निज जाति रक्षा'[3] शान और वहादुरी में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त है।

(आ) पारिवारिक उत्सव या संस्कार

परिवारों के लिए शिशु जन्म तथा विवाह आदि अवसर हर्षोल्लास के निमित्त होते हैं, जबकि किसी सदस्य की मृत्यु उन्हें शोक-पारावार में निमग्न कर देती है। समाजशास्त्र की दृष्टि से ये जीवन घटनाएँ अनेक प्रकार की मनोविज्ञान, भयप्रद और किन्हीं अर्थों में धार्मिक धारणाओं से भी अनुबद्ध होती हैं। इन घटनाओं से संबद्ध और धार्मिक धारणाओं के विस्तार तथा व्यक्तित्व निर्माण में सहायता या सहयोग करने वाले जीवनावसरों की ओर सामाजिकों का ध्यान आकृष्ट करने की कामना से प्राय मनीषियों ने कुछ कर्मकाण्डीय विधि विधान और आचार-विचार का समायोजन कर दिया था जिन्हें धर्मशास्त्रीय सम्प्रदायों ने संस्कारों की संज्ञा प्रदान की गई है। इन संस्कारों से विविध जीवन प्रसंग शरीर की दैनिक आवश्यकताओं एवं भौतिक-व्यापार के समान अनाकर्षक, चमत्कारहीन और जीवन के मधुर संगीत से विरहित होने से बच जाते हैं[4] तथा इस वातावरण में पालित व्यक्ति समाज की महत्त्वपूर्ण इकाई बनकर उसके सर्वांगीण विकास में उचित योगदान करने की क्षमता प्राप्त करता है।

संस्कारों की संख्या तथा नामावली के विषय में सूत्रकारों एवं स्मृतिकारों में मतभिन्नता[1] की उक्ति प्रचलित मिलती है। डा० राजबली पाण्डेय ने स्पष्ट किया है कि 'आश्वलायन गृह्यसूत्र' में—विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, चूडाकर्म, अन्नप्राशन, उपनयन, समावर्तन और अन्त्येष्टि ग्यारह संस्कार माने गये हैं जबकि 'पारस्कर गृह्यसूत्र' तथा 'बोधायन-गृह्यसूत्र' में, इनमें क्रमशः निष्क्रमण और वेदारम्भ तथा उपनिष्क्रमण और कर्ण-वेध नामक संस्कारों की योजना करके उनकी संख्या तेरह बताई गई है।[5] इसी भाँति 'मानवगृह्यसूत्र' में उनकी संख्या तेरह, याज्ञवल्क्य-स्मृति में बारह तथा 'गौतम स्मृति' और 'गौतम धर्मसूत्र' में चालीस मिलती है। उनके अनुसार परवर्ती स्मृतियों और आधुनिकतम पद्धतियों में संस्कारों के नाम भेद तो अवश्य दृष्टिगत होता है किन्तु उनकी संख्या प्रायः सोलह ही मानी गई है। उन्होंने अपने शोध ग्रंथ में १—गर्भाधान, २—पुंसवन, ३—सीमन्तोन्नयन, ४—जातकर्म, ५—नामकरण, ६—निष्क्रमण, ७—अन्नप्राशन, ८—चूडाकर्म, ९—कर्णवेध, १०—विद्यारम्भ, ११—उपन

---

१ से ३ द्र० सम० 'प० रा० का० २१६०।३८८ वही, २१६३।३९९, 'पृ० रा०' का० २१६१।३८६

४ द्र० 'हिन्दू संस्कार', डा० राजबली पाण्डेय, प्राक्कथन, प० ५

५ वही पृ० २१ २८

यन १२–वेदारम्भ १३–केशान्त या गोदान, १४–समावर्तन या स्नान १५–विवाह और १६–अन्त्येष्टि का परिगणन किया है। श्री शिवदत्त ज्ञानी ने सोलह संस्कारों की जो नामावली दी है उसमें इन सदभगत संस्कारों में से विद्यारम्भ और केशान्त या गोदान के स्थान पर वानप्रस्थ और संन्यास को सोलह संस्कारों में से स्थान दिया गया है।[1] तात्पर्य यह है कि सोलह संस्कारों में से जातकर्म विवाह आदि कुछ संस्कारों को तो प्रायः सभी मनीषियों ने संस्कार माना है जबकि कुछ संस्कार ऐसे हैं जो सर्वसम्मति से संस्कारों में सम्मिलित नहीं किये गये हैं। ऐसी दशा में वीरकाव्य प्रणेताओं द्वारा भी कुछ ही संस्कारों का प्रचलन दिखाना अनुचित नहीं है।

ब्रजभाषा के वीरकाव्य में जन्म निष्क्रमण नामकरण विवाह और अन्त्येष्टि संस्कारों का ही अधिक चित्रण मिलता है। उसमें चूडाकर्म और पासनी (अन्नप्राशन) का भी उल्लेख मिलता है किन्तु उनके विधि विधान का वर्णन नहीं किया गया। हाँ छठी आदि कुछ नवीन लोक रीतियाँ तथा मुख्यतः नरेशों के लिए ही होने वाले राज्याभिषेक संस्कार का उसमें अवश्य उल्लेख मिलता है। इन संस्कारों तथा उनसे सम्बद्ध आचारों का वर्णन करने से पूर्व जिन संस्कारों का वीरकाव्य में चित्रण नहीं मिलता उनके विषय में दो शब्द अपेक्षित हैं।

गर्भाधान संस्कार जिसे गर्भ संस्कार और क्षेत्र संस्कार[2] मानने सम्बन्धी दो भिन्न धारणाएँ प्रचलित थीं प्रति उन्नत भावनाओं पर आधृत होते हुए भी जनसाधारण में कदाचित् ही प्रचलित रहा होगा। इस संस्कार के समय की ये प्रार्थनाएँ— विष्णु गर्भाशय निर्माण करें प्रजापति बीजवपन करें धाता भ्रूण स्थापन करें[3] आदि विद्वद्वर्ग में ही प्रचलित रही होंगी। इसी भाँति पुंसवन संस्कार जिसमें गर्भस्थ शिशु के पुत्र ही होने का उपक्रम करते हुए गर्भिणी के दाहिने नासा रंध्र में वट-वृक्ष का रस डाला जाता था[4] तथा सीमन्तोन्नयन-संस्कार जिसमें गर्भिणी की सीमन्त का उन्नयन करते हुए उसकी अमंगलकारी शक्तियों से रक्षा करने के लिए श्री का आह्वान किया जाता था[5] ऐसे संस्कार थे जिनमें पति एक प्रकार से पत्नी के गर्भवती होने का निनादन करता था। ये कृत्य मर्यादाहीन नहीं माने जा सकते, और अपेक्षित सम्भ्रान्त परिवारों में ही इन संस्कारों के अनुष्ठानों को संगत मानते हुए यह कल्पना करना समीचीन है कि, अन्ततः ये कृत्य पति की माता को सौंप दिए गए होंगे। पति के स्थान पर पति की माता का

---

१ अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन पृ० १८८ पर उद्धृत।

२ डा० राजबली पाण्डेय के अनुसार— क्षेत्र संस्कार गर्भ से सम्बद्ध न होकर स्त्री की जननेन्द्रिय की शुद्धता में था। इसमें पति जननेन्द्रिय का स्पर्श करता हुआ विष्णु योनिम् शब्द का उच्चारण करता था। द० हि० सं० पृ० ६८ ६६

३ द० वही पृ० ६०

४ द० वही पृ० ७८

५ द० वही पृ० ७८ ७६

इन संस्कारों की सम्पन्नता का भार मिलने का एक प्रधान कारण यह भी प्रतीत होता है कि शास्त्रकारों ने सीमन्तोन्नयन के पश्चात् पिता के लिए नग और केशों का कटवाना, मैथुन, तीर्थ-यात्रा, श्राद्ध करना, नाव यात्रा में सम्मिलित होना तथा युद्ध करना आदि कृत्य निषिद्ध कर दिये थे।[1] इन निषेधाज्ञाओं का पालन करना वैसे तो सर्वसामान्य के लिए भी कठिन ही प्रतीत होता है किन्तु लूट पाट करते हुए युद्धार्थ प्राणान्त में नरेश और उनके सामन्त इन निषेधों का पालन करते हुए स्वगृहों में छिपे बैठे रहें यह कैसे सम्भव हो सकता था? अतः प्राग्जन्म संस्कारों का आलोच्यकाल में विशेषतः क्षत्रियवर्ग में अप्रचलन असंगत नहीं प्रतीत होता। यह तथ्य ध्यातव्य है कि कृष्ण-भक्ति शाखा के अष्टछापी कवियों ने भी इन संस्कारों का प्रचलन नहीं दिखाया है।[2]

अन्य संस्कारों में से कर्णवेध होता तो अवश्य था, यद्यपि वीरकाव्य में पुरुषों का भी कानों में आभूषण पहने चित्रित किया गया है[3] किन्तु कर्णवेध संस्कार के विषय में पहले से ही यह विवाद था कि उसे संस्कारों में स्थान दिया जाय अथवा नहीं।[4] ऐसी दशा में वीरकाव्य प्रणेताओं द्वारा उसे अनुष्ठानपूर्वक सम्पन्न होते न दिखाना विशेष महत्त्व नहीं रखता। शेष अनुल्लिखित संस्कारों में से विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त या गोदान तथा समावर्तन या स्नान ऐसे संस्कार हैं जिनका सम्बन्ध डा० राजबली पाण्डेय ने विद्यार्जन से दिखाया है।[5] अवशिष्ट वानप्रस्थ और संन्यास चतुराश्रम व्यवस्था से सम्बद्ध हैं। चतुराश्रम व्यवस्था का चित्रण करते हुए पीछे दिखाया जा चुका है कि ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों का उनके परम्परागत रूप में पालन नहीं होता था, अतः उनसे सम्बद्ध इन संस्कारों का भी वीरकाव्य में अप्रचलन मिलना ही संगत है। हाँ, उपनयन संस्कार जो विद्यारम्भ का सूचक होने के स्थान पर शनैः शनैः जनेऊ धारण का वाचक हो गया था, तथा द्विजों को उसे विवाह से पूर्व किसी भी समय करा लेने की स्वीकृति मिल गई थी[6] वीरकाव्य में विवाह तथा राज्याभिषेक के अवसर

---

१ दे० हि० सं०, पृ० ८५।

२ "अतएव जिन संस्कारों का वर्णन अष्टछाप काव्य में मिलता है वे दस हैं—जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, कर्णवेध, चूड़ाकर्म, उपनयन, वेदारंभ, विवाह और अंत्येष्टि।" — अष्ट० का० सां० मू० पृ० १८८

३ वही पृ० ३

४ दे० 'हि० सं०', पृ० १२९-३०

५ डा० पाण्डेय के अनुसार—विद्यारम्भ संस्कार पाँचवें से सातवें वर्ष तक की आयु के (पृ० १४०), उपनयन संस्कार—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को क्रमशः आठवें, ग्यारहवें तथा बारहवें वर्ष में (पृ० १५१) केशान्त अथवा गोदान प्रायः सोलह वर्ष की आयु में (पृ० १८४) तथा समावर्तन या स्नान संस्कार वेदाध्ययन की परिसमाप्ति पर (पृ० १८७) किया जाता था—दे० 'हि० सं०', कोष्ठांकित पृष्ठ संख्याएँ।

६ दे० हि० सं०, पृ० १५५

राजविलास में जन्म के दिवस बुलाया गया ज्योतिषी जन्म समय के ग्रह-नक्षत्रादि पर विचार करता हुआ उनका नाम मेष राशि में रखा जाना निश्चित कर जाता है।[1] बारहवें दिवस महाराज जगतसिंह स्व परिजनों को गोन दार जरी पहरावनी करते हैं,[2] तथा स्वपुत्र का नाम भी इन्हीं परिजनों से पूछते हैं[3] जो उनका नाम राजसिंह निर्धारित करते हैं।[4] यह निवेदन करना भी आवश्यक है कि मान ने मन्त्रोच्चार या यज्ञ किए जाने का उल्लेख नहीं किया है तथा राजसिंह नामकरण ज्योतिषी द्वारा बताई गई मेषराशि के भी अनुकूल न होकर तुला राशि में आता है। नाम निर्धारित हो जाने पर मान ने विप्रों को स्वर्ण दान करने का अवश्य उल्लेख किया है।[5] डा० राजबली पाण्डेय ने भी पद्धतियों में नामकरण की वह मान प्रदत्त विधि से प्रशस्त सादृश्य रखने वाली परिपाटी प्रदर्शित की है जिसके अनुसार पिता शिशु के दाहिने कान की ओर झुकता हुआ, उसके कुलदेवता, जन्म के मास जन्म के नक्षत्र के आधार पर तथा लौकिक चार प्रकार के नामों का उच्चारण करता था जिन्हें वहां पर एकत्र ब्राह्मण यह प्रतिष्ठित हो कहकर स्वीकृति प्रदान कर देते थे। अन्त में उसका अभिवाद्नीय नाम भी रखा जाता था जिससे उसके नामों की संख्या पांच हो जाती थी। ब्राह्मणों को दिए गए भोज तथा देव और पितरों को स्व स्थानों को लौटने का निवेदन करने के साथ संस्कार की समाप्ति होती थी।[6] तात्पर्य यह कि आजकल सामान्यतया नामकरण की जो प्रणाली अपनाई जाती है वह आलोच्यकाल में प्रचलित नहीं थी।

पासनी या अन्नप्राशन –

अन्न प्राशन संस्कार को लोक शब्दावली में पासनी कहा जाता है। इस संस्कार का कवि गोरेलाल ने शिशु छत्रसाल के संदर्भ में उल्लेख किया है। शास्त्रकारों ने यह संस्कार शिशु की छः मास की अवस्था से एक वर्ष की आयु होने तक सम्पन्न करने का विधान किया है।[7] गोरेलाल ने छत्रसालजी को यह संस्कार होने के समय घुटुरुओं के बल चलते तो प्रदर्शित किया है किन्तु आयु का उल्लेख नहीं किया। इस अवसर पर ही कदाचित् शिशु के भावी जीवन क्रम का पूर्वाभास पाने के लिए उसके सम्मुख नाना प्रकार के खिलौने जिनमें लेखनी करवाल आदि होते थे रखकर देखा जाता था कि वह किसका चयन करता है? कवि गोरेलाल ने शिशु को प्रथम बार अन्नाहार देने के स्थान पर इसी प्रथा का चित्रण किया है, जिसमें छत्रसालजी करवाल का चयन करके स्व युद्धवृत्ति

१-५ दे० म० रा० वि० २।१६६ वही २।१७१ वही, २।१७२, वही, २।१७३, वही २।१७४

६ दे० हिन्दू संस्कार, पृ० १०८-१०६

७ दे० वही, पृ० ११५

का परिचय दत है।[1]

चूडाकम —

वीरकाव्य म चूडाकम या चूडाकरण सस्कार जिसका धर्मशास्त्रो म कोई निश्चित विहित काल नही किया गया है[2] किसी शिशु का होते नही प्रदर्शित किया गया है। केशवदास जी ने स्वतन्त्र रूप स बालक के नाश की चूडाकम की सज्ञा देकर इस सस्कार का प्रचलन अवश्य दिखाया है।[3]

शिशु का तुला दान करना —

कवि मान ने शिशु राजसिंह के एक वर्ष के होने पर उनकी प्रतिमास मुक्ताओ से तुला करने और उन मुक्ताओ का दान करने की प्रथा दिखाई है।[4] निर्धन लोगो म मुक्ताओ के स्थान पर अनाज आदि से तुला करने का प्रचलन रहा होगा।

विवाह —

मनुस्मृति म—ब्राह्म दैव आर्ष प्राजापत्य आसुर गान्धर्व राक्षस और पैशाच आठ प्रकार के विवाह बताए गए है।[5] इनका उत्तरोत्तर निकृष्ट मानते हुए पैशाच विवाह को निम्नतम कहा गया है जिसम अचेतन सुप्त अथवा प्रमत्त कन्या के साथ एकान्त म बलात् मैथुन करके सम्बन्ध स्थापित किया जाता था।[6] गान्धर्व और राक्षस विवाह की पद्धतियो को यद्यपि शास्त्रकारो ने अन्य पाँच विवाह पद्धतियो से निकृष्ट बताया है तथापि पृथक वर्णो के लिए पृथक प्रकार के विवाहो को प्रशस्त दिखाते हुए क्षत्रियो के लिए यही दो पद्धतिया प्रशस्त घोषित की हैं।[7] कदाचित् यही कारण है कि ब्रजभाषा के वीरकाव्य म वर्णित अधिकाश विवाह गान्धर्व और राक्षस विवाह-पद्धतियो की ही कोटि म

---

१ प्रगट पामनी में छवि छाई। भुजमर सहित कृपान उठाई।
सो लखि कवि कवित्त बनाय। किय दान तिन कौ मन भाये।
घुटुरन चलत घूघरू बाज। लिजित सुनत हस हिय लाज। —छ० प्र० ४।३

२ डा० राजबली पाण्डेय ने स्पष्ट किया है कि चूडाकरण के समय निर्धारण में सूर्य का उत्तरायण में होना आवश्यक था तथा वह शिशु के पाच वर्ष से बडा हो जाने पर भी किया जा सकता था।" —दे० हि० स० पृ० १२३

३ बालनास है चूडाकम। तीछनता आयुध के धम। —वी० च० १८।१०

४ द० 'रा० वि०' २।१८२ ८३

५ ब्राह्मो दैवस्तथैवार्ष प्राजापत्यस्तथासुर।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधम। —मनु० ३।२१

६ सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति।
स पापिष्ठो विवाहाना पैशाचश्चाष्टमोऽधम। वही, ३।३४

७ (क) राक्षस क्षत्रियस्यैकमासुर वैश्य शूद्रयो।' मनु० ३।२४
(ख) गान्धर्वो राक्षसश्चैव धर्म्यौ क्षत्रिस्य तौ स्मृतौ।' —वही, ३।२६

प्राप्त है किन्तु यह तथ्य अवधारणीय है कि शास्त्रकारों द्वारा प्रस्तुत इन विवाह लक्षणों में, क्षत्रियों द्वारा विवाहार्थ अपनाई गई पद्धतियाँ पूर्ण साम्य नहीं रखतीं। उदाहरणार्थ, मनुस्मृति में राक्षस विवाह का लक्षण — रोती चीखती हुई कन्या को उसके सम्बन्धियों को मारकर या क्षत विक्षत करते हुए बलात् अपहरण कर ले जाना[1] किया गया है। वीरकाव्य में विवाह अपहरण के माध्यम से तो होता है और विवाहार्थ युद्ध भी होता है किन्तु कन्याएँ पूर्वानुरागिनी होने के कारण रोती चीखती नहीं मिलतीं। यही दशा गांधर्व विवाह के विषय में मिलती है। शास्त्रीय लक्षणों में स्वेच्छापूर्वक से आसक्त युगल द्वारा मैथुनार्थ किया गया सम्बन्ध गांधर्व विवाह कहलाता है[2] जबकि वीरकाव्य में इससे सादृश्य रखने वाले विवाह सम्बन्धों में मैथुन सर्वथा विलुप्त है। इसी भाँति विवाह के पूर्वोक्त आठ प्रकारों में अनुल्लिखित स्वयंवर प्रथा विनिमय विवाह, पद्धति खड्ग विवाह की रीति आदि ऐसी पद्धतियाँ हैं जिनका गृह्यसूत्रों में भी उल्लेख नहीं मिलता और उनमें से अन्तिम दो कदाचित् आलोच्यकालीन विवाहों की ही विशेष रीतियाँ हैं। अतः शास्त्रीय विधि से सम्पन्न किए जानेवाले विवाहों में जिन जिन आचारों का अनुपालन किया जाता था, इसका चित्रण करने से पूर्व वीरकाव्य में उपलब्ध परम्परागत और नवीन पद्धतियों का संक्षेप में अवलोकन प्रयोजनीय रहेगा।

स्वयंवर-पद्धति —

सीता द्रौपदी इन्दुमती और दमयन्ती आदि के विवाह स्वयंवर-पद्धति से प्राचीन साहित्य में दिखाये गये हैं। हमारे आलोच्यकाल के आरम्भिक भाग में भी इसका प्रचलन था। डा० राजबली पाण्डेय के अनुसार— आरम्भ में सभी वर्णों की कन्याओं के विवाह के लिए स्वीकृत यह विवाह पद्धति शनैः शनैः मध्ययुग में प्रायः राजकुलों तक ही सीमित रह गई थी।[3] डा० दशरथ शर्मा ने भी हेमचन्द्र और जयानक के साक्ष्य पर ईस्वी सन् एक हजार के लगभग तक स्वयंवर प्रथा का प्रचलन दिखाया है।[4] पृथ्वीराज रासो और आल्हखण्ड में दिए गए संयोगिता स्वयंवर के विवरण से इस पद्धति के विषय में अधोलिखित तथ्य प्रकाश में आते हैं —

स्व पुत्री का स्वयंवर पद्धति से विवाह करने के इच्छुक नरेश इतस्ततः के नरेशों को आमन्त्रित करते थे।[5] निश्चित दिवस स्वयंवरार्थ सज्जित किये पाण्डाल में विवाहेच्छु

---

१ हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशन्तीं रुदन्तीं गृहात्।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते। —मनु० ३।३३

२ इच्छयान्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः। वही ३।३२

३ दे० हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग १ पृ० १२०

४ दे० अर्ली चौहान डाइनेस्टीज पृ० २८६

५ दे० पृ० रा० का० १५६६।११, 'आ०' ६।१८ १५

व्यक्तियों को सम्मवत मण्डलाकार रूप में बिठाया जाता था। हाथ में जयमाल लिए कन्या को राजकवि प्रत्येक नरेश के देश, जाति, गुण तथा पितरों के विरुद मुनाता हुआ पाण्डाल में चारों ओर भ्रमण कराता था।[1] जिस किसी भी नरेश के पास कन्या पहुंचती वही स्व ग्रीवा को झुकाकर, उसमें वरमाला डाले जाने की प्रतीक्षा करता किन्तु जब कन्या आगे बढ़ जाती तो उसको आत्मग्लानि की सीमा न रहती थी।[2] पृथ्वीराज रासो से यह तथ्य भी प्रकाश में आता है कि यदि किसी कारण वश कन्या का आत्मनिर्णय पिता को स्वीकार न होता था, तो वह पुत्री को किसी दूसरे वर का चयन करने के लिए, दो अवसर और प्रदान करता था। संयोगिता द्वारा दिल्लीश्वर की प्रतिमा ग्रीवा में माला डालने पर महाराज जयचन्द उक्त रीति का आश्रय लेते चित्रित किए गए हैं।[3]

पूर्वानुरागाश्रित युद्धान्तक विवाह पद्धति —

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है वीरकाव्य में उपलब्ध कन्यापहरण के विवरण, शास्त्रकारों की राक्षस विवाह पद्धति से साम्य नहीं रखते इनमें कन्या और वर एक दूसरे का गुण श्रवण करके पूर्वानुरागित मिलते हैं। इन विवाहों को कवियों की कपोल कल्पना की संज्ञा नहीं दी जा सकती। प्रथमत तो यह रीति सुभद्रा और रुक्मिणी के अपहरणों की परम्परा से साम्य रखती है। द्वितीय कारण यह है कि राजकुमारियों के विवाह उनकी प्राय षोडशवर्षीय अवस्था में होने चित्रित किय गये हैं[4], जिससे यह सहज कल्पना की जा सकती है कि उन्हें अपना भला-बुरा सोचने और रूच्यनुकूल पति वरण की समझ होती थी। साथ ही प्रेम सदेश के माध्यम हस[5] और शुक[6] ही नहीं थे अपितु एक दरबार से दूसरे दरबार में जाने वाले नट भाट अथवा इसी प्रकार का अन्य कोई स्त्री या पुरुष पात्र[7] उन्हें एक दूसरे के गुण सुनाकर उनमें एक दूसरे के प्रति अनुराग जाग्रत

---

१ से ३ दे० क्रम० पृ० रा० का० १५६६।१३ आ० ६।२३ २४, पृ० रा० का० १५।६६।१७ १४

४ दे० कन्याओं के विवाह का आयु प्रकरण।

५ शशिव्रता के अनुराग का विवरण दिल्लीश्वर को हस देते दिखाया गया है जिसे कविराव मोहनसिंह ने हस नामक ब्राह्मण माना है—दे० पृ० रा० मो० २।६११

६ पद्मावती और दिल्लीश्वर के मध्य प्रेमाकुर शुक द्वारा एक-दूसरे के गुण सुनाने से होता है—दे०

७ (क) महाराज पृथ्वीराज के हृदय में शशिव्रता के प्रति प्रेमाकुर शशिव्रता के पिता का राज नट तथा शशिव्रता के हृदय में एक विधवा क्षत्रियाणी दिल्लीश्वर के वीर कार्यकलापों का विवरण सुनाकर जाग्रत करते चित्रित की गई है। दे० पृ० रा० का० प० ७६१ ६३ तथा पृ० ७८६

(ख) संयोगिता और पृथ्वीराज के परस्परानुरागित होने का मूल कारण उन्हें ब्राह्मणी और ब्राह्मण, तथा जगम साधुओं द्वारा एक दूसरे के गुण सुनाना दिखाया गया है। दे० प० रा० का० प० १२७५ तथा १५६५

कर देता था। पिता द्वारा मनोनीत वर को अपने लिए योग्य न समझकर, ये क्षत्रिय कन्याएँ अभीष्ट वरों को क्षत्रियत्व की दुहाई देकर अपना अपहरण कर ले जाने का संदेश भेजकर इष्ट साधन कर सकती थीं जिसका वीरकाव्य में प्रयोग दिखाया गया है।[1] आत्महत्या की धमकी[2], और क्षत्रियत्व की दुहाई ही, किसी वीर पुरुष का अपहरण के लिए सन्नद्ध करने को पर्याप्त थी, फिर ये नरेश तो स्वयं भी पूर्वानुरागित होते थे, अतः युद्ध की चिन्ता किए बिना वे अपहरणार्थ आते थे, और मार काट का सामना करते हुए उनकी भावी पत्नियों द्वारा निर्धारित संकेत स्थलों से[3] उनका अपहरण करके लाते थे।[4] पृथ्वीराज रासो में वर्णित पद्मावती और शशिव्रता के अपहरण इसी कोटि में आते हैं। संयोगिता स्वयंवर की चरम परिणति भी इसी प्रकार के युद्धातंक अपहरण में होती है, जिसमें दिल्ली और कन्नौज की सैन्य शक्ति का बृहदांश विनष्ट हो जाता है।[5] स्व पुत्री की इच्छा से अवगत होकर यदा-कदा सहृदय पिता अपने द्वारा पूर्व निर्धारित वर से विवाह करने के स्थान पर पुत्री के चाहे हुए वर से विवाह कराने में गुप्त-सहायता पहुँचाते थे। शशिव्रता के पिता, कन्नौजेश्वर के भतीजे वीरमदेव के स्थान पर (जिससे वे रिश्ता तय कर चुके थे)[6] महाराज पृथ्वीराज को स्व पुत्री का अपहरण कर ले जाने की सहमति भेजते दिखाए गये हैं,[7] क्योंकि उन्हें यह ज्ञात हो चुका था कि 'वीरम' से विवाह की वार्ता को सुनकर शशिव्रता ने आत्मघात करने का प्रण कर लिया है।[8] अपहरण करके लाई गई कन्याओं से स्व नगर में शुभ लगन में विवाह कर लिया जाता था।[9]

गांधर्व-विवाह —

क्षत्रियों के लिए प्रशस्त बताई गई इस विवाह पद्धति के उस मनोरम रूप को जो आकर्षण-जन्य तो है, किन्तु मैथुनाश्रित नहीं है, पृथ्वीराज रासो, खुमाण रासो और राजविलास में चित्रित किया गया है।

पृथ्वीराज रासो में संयोगिता का विवाह वस्तुतः स्वयंवर, गांधर्व और राक्षस

---

१ 'जो पिथ्थी कुल सुद्ध। बरनि वर रष्षहु प्रानह। — पृ० रा० का०, ६०५।३८

२ (क) 'मानो तुम चहुआन वर। अरु कहि इहै संदेस।
सास सरीरह जो रहै। प्रिय प्रथिराज नरेस॥ वही, ६३५।१३

(ख) तहाँ तुम पिता कृपा करि जाउ। दिल्ली के अनुराग उपाउ।
नाम पढह हौं वृत्तह मंडो। अपुना आव तौ तन छंडौ। वही ७७२।७६

३ (क) 'पा रवमनि कं हर करो। ज्यों करि समरि काम।
शिव मंडप दच्छिन दिसा। पूजि समय स प्रान। वही ६३८।३५

४ से ६ द्र० क्रम० पृ० रा० का० ६३८।१६-४८, वही १०३७।१०५८ से १६४६।२४५८, वही ७७१।७३, वही ७६६।६६, वही ७६६।६५, वही, ६४०।६६

पद्धतियो की एक ऐसी त्रिवणी है—जिसका आरभ तो स्वयवर प्रथा से होता है किन्तु मध्यान्तर गाधव और अवसान राक्षस पद्धति म होता है। रासोकार क अनुसार यमुना पुलिन पर मछलियाँ चुगात हुए दिल्लीश्वर को सयोगिता की सखी उसक महल म बुला ल जाती है। वहाँ सखियाँ दोनो का ग्रथि-बधन करती है तथा महाराज को सयोगिता का कर थमा देती हैं जिस वे वामाग म बिठा लत हैं और विवाह सपन्न हो जाता है।[1] यह तथ्य ध्यातव्य है कि यह विधि विधान सखी और दासिया द्वारा ही किया जाता है तदथ किसी पन्कर्मी पडित को नही बुलाया जाता। रासो म इस विवाह पद्धति क विषय म यह उद्गार भी व्यक्त किए गए है कि यद्यपि इस विधि का निषिद्ध बताया जाता है तथापि इसकी रसाप्रता को भुक्तभागी भली प्रकार जानत है।[2] इससे स्पष्ट हाता है कि आलोच्यकाल म यह विधि उत्तम नही समझी जाती थी।

क्यामखाँ रासो म चंद्र' नग्नावस्था म स्नान करती अप्सराओ क वस्त्र चुराकर उन्ह तभी लौटाता है जब व उसकी अभीष्ट अप्सरा म उसका विवाह कर जाती है।[3] इस सदभ म कवि जान का यह उल्लेख भी कि हृदय म प्रम जाग्रत हाने पर प्रमी कुल और जाति क बधना की चिता नही करत, इस गाधव विवाह की कोटि म ल आता है।[4]

राजविलास म एक सौ आठ कुमारियाँ बाप्पा रावल क शौय और कदर्पाकृति पर मुग्ध होकर उनका सामूहिक वरण करत चित्रित की गई है। वे जगल म स गुजरती हुई मदमगन कन्याओ की एक सिह स रक्षा करते है जिससे प्रभावित होकर व उनसे अरण्य म ही विवाह कर लती है।[5] उनके विवाह क समय तरुवरो क विवाह मण्डप तथा आम्र मजरियो के मौर बनाए जात है।[6] कुमारियो का वन्य लता पुष्पादि से शृगार करक मगलगाना क मध्य विवाह रचा जाता है। इन कन्याओ के पिता भी पुत्रीऋण स उऋण होन की कामना स वहाँ आ पहुँचते है तथा दायज अपण करते है।[7] इनम म काव जान और मान क विवरण अगत कल्पनाप्रत प्रतीत हाते है फिर भी उनस गाधव विवाह की रीति पर प्रकाश अवश्य पडता है।

खड्ग विवाह पद्धति —

पृथ्वीराज रासो म इन्द्रावती का महाराज पृथ्वीराज क खड्ग क साथ विवाह चित्रित है जिसस अधोलिखित तथ्यो पर प्रकाश पडता है—

पूव निर्धारित तिथि पर यदि वर किसी कारण विवाह क लिए स्वय नही जा सकता था तो कभी समवयस्क को तदथ अपना खड्ग सौंपकर अर्पित कर देता था।

---

१ स ३ दे० क्रम० पृ० रा० का० १७।८।१२०२ ०८ पृ० रा० मो० ४।७२०।
३७६, क्या० रा०, ६८ १०।
४ स ७ द० क्रम० क्या० रा० ६२, रा० वि० ११६४, 'रा० वि०' ११६५,
वही, ११६७

[illegible] ही, [illegible] है।

[illegible] है तो वह कहता है कि विवाह के लिए [illegible] यह तो मेरी [illegible] भांवरें डाल लीजिए अथवा [illegible] भेज दीजिए।[8] प्रस्तुत प्रसंग में यद्यपि डोला भेजा जाता है[9] तथापि उसमें सहज विवाह की रीति के प्रचलन पर प्रकाश पड़ता है।

आसुर विवाह

मनुस्मृति में उस विवाह सम्बन्ध को जिसमें पति कन्या तथा उसके सम्बन्धियों [illegible]

१ से ५ द० ग्रम० पृ०रा० ना० ६६८।२१ २५ वही ६६८।२३ वही १०११।११५
वही १०१७ ११,

६ छत्तीन वंस छत्तीस कुल। सम समान गिनिय [illegible] वर।
घर जाहु राज कुमारी वरन। करौ ब्याह उच्छाह [illegible] र। वही १०१७।११

७ से १० दे० ग्रम० 'क्या० रा०, छ० ४३२, ३, ३, वही, ४३४, वही, ४३५

को यथाशक्ति धन प्रदान करके स्वच्छन्दतापूर्वक विवाह करता था[1] आसुर विवाह बताया गया है। राजविलास में शाह औरंगजेब मानसिंह राठौर को, अश्व गज ग्राम और देश खण्ड प्रदान करने का प्रलोभन देकर उसकी बहन की जो माँग प्रस्तुत करते हैं तथा मानसिंह जिसे स्वीकार कर लेता है वह इसी कोटि में आती है।[2] रूप कुमारी के तदर्थ प्रस्तुत न होने तथा महाराज राजसिंह को स्व रक्षा के निमित्त निवेदन भेजकर बुला लेने से[3] यह विवाह सम्बन्ध पूरा नहीं हो पाता और रूपकुमारी से महाराज राजसिंह विवाह कर ले जाते हैं।

प्रलोभन देकर विवाह करने के सदृश ही शत्रुओं से उनकी पुत्रियों के डोला की माँग रखकर की गई अनाक्रमण सन्धियाँ भी इसी श्रेणी में रखी जा सकती हैं। परमालरासो और आल्हखण्ड में महाराज पृथ्वीराज को महाराज परमाल से तथा हम्मीररासो और हम्मीरहठ में शाह अलाउद्दीन को महाराज हम्मीरदेव से ऐसी ही माँग करते चित्रित किया गया है।

पुत्रियों के स्थान पर पत्नियों की माँग रखने की अधमता हिन्दू नरेशों में किसी भी प्रसंग में दृष्टिगत नहीं होती जबकि केशव ने शाह अलाउद्दीन द्वारा देवगिरि नरेश की पत्नी छिताई का बलात अपहरण करने का उल्लेख किया है[4] तथा कवि जटमल ने वह महाराज रतनसेन की पत्नी पद्मावती को प्राप्त करने के लिए आक्रमण करते प्रदर्शित किया है। पद्मावती को अपनी बहन बताते हुए उसके मुख-दर्शन मात्र की लालसा प्रकट करना[5] विश्वासघात से महाराज रतनसेन को बन्दी बना लेना[6] उन्हें राजमहल के सम्मुख कोड़ों से पिटवाकर तथा अन्य कष्ट देकर पद्मावती समर्पित

---

१ नातिम्यो द्रविण दत्त्वा कन्याय चैव शक्तित ।
कन्याप्रदान स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते। —मनु०' ३।३१

२ हमहिं देहु चित हरषि बहिन तुम मुनिय रूप धर।
देहुँ तुमहिं घर देस, गाउ हय गय समान गुर। — रा० वि०' ७।२३

३ प्रभु कुंभु लुलि लुलि पाय परों, कर जोरि इती अरदास करो।
सजि सैन सु आवहु नाह इत, अबला सु छुड़ावहु आसुर तें।' वही, ७।३४ ३५

४ (क) साहि छिताई कौं ल जाइ। बिहना फूल्यो अंग न माइ। —बी० च० १।३६
(ख) हती छिताई अति सुंदरी। सो पुनि छनबल तुरकनि हरी। —वही, २।१

५ म्हे बहिन करु पदमिनी तुझे भाई कर थप्पू।
दहूँ मुख्य पदमिनी, अवर बहु देस समप्पू।
गल कंठहार पहिराइ कै नाक नवण कर बाहडू।
राणा रतनसेन। सुलताण कहै नहीं गढ़ पर चढू। —गो० क०' ७६

६ 'रहे प्रात जडलोक सारे सकल गढ म परो।
राजा ले गया रोक कपट कियो सुलताण ने। —वही, ८७

करने के लिए विवश करना[1]—अलाउद्दीन के इस कृत्य हैं जो भारतीय संस्कृति की दृष्टि से अनीति गर्हित ही कहे जायेंगे।

विनिमय विवाह-सम्बन्ध

मुसलमानों राजा में दोनों ही परिवारों में मुसलमान होने की दशा में इस सम्बन्ध का प्रचलन दिखाया गया है कि एक परिवार के पिता ने अपनी पुत्री अथवा बहन का दूसरे परिवार में विवाह कर दिया और उस परिवार की पुत्री या बहन का अपने परिवार में विवाह कर लिया जाता था जिसे हिन्दुओं के स्थान पर मुस्लिम सभ्यता की ही विशिष्ट रीति समझना उचित है। शाह बहलोलखां लोदी पनहगी चौहान के समक्ष यह प्रस्ताव रखते हैं कि यदि हमसे अपना अपनी का विवाह-सम्बन्ध स्थापित हो जाए तो यह पारस्परिक प्रीति के विवर्धन में एक सुदृढ़ माध्यम का कार्य करेगा।[2] पनहगी चौहान समझता इस ही मानकर अपने यहाँ कोई भी अविवाहित कन्या न होने का बहाना लगा देता है[3] जिससे मन्तव्य को भाँप कर शाह बड़े कुपित होते हैं।[4] शाह द्वारा जब यही प्रस्ताव मसगनी चौहान के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है[5] तो वह उसे स्वीकार करके उनके साथ अपनी बहन का विवाह कर देता है और उनकी पुत्री का स्व पुत्र से विवाह कर लेता है।[6] इस प्रकार के विवाह सम्बन्ध का वीरकाव्य में अन्यत्र उदाहरण नहीं मिलता और जैसा कि कहा जा चुका है हिन्दुओं में इस प्रकार के विवाह सम्बन्ध का प्रचलन भी नहीं है।

अन्य विवाह पद्धतिया —

आल्हखण्ड में वर्णित आल्हा और सुनवा के विवाह में कई पद्धतियों का सम्मिश्रण मिलता है। सुनवा के पिता द्वारा भेजे गए टीके को उसके अतीव लड़ाकू तथा जादू में पारगत होने के भय से कोई भी नरेश स्वीकार नहीं करता।[7] वे अपने नगर की सीमा पर एक नगाड़ा रखवाकर घोषित कर देते हैं कि उस पर चोट मारने वाले के साथ सुनवा का विवाह कर दिया जायगा।[8] स्व पुत्री के वर निर्धारण में वे इस बार भी असमर्थ रहते हैं क्योंकि किसी भी नरेश को डंके पर चोट लगाने का साहस नहीं होता। निदान स्वयं सुनवा आल्हा को चुनौती भरा प्रेम संदेश भेजती है कि यदि सच्चे राजपूत हो तो मुझे विवाह कर ले जाइये।[9] महोबे से आई हुई बरात डंके पर चोट लगाती है।[10] सुनवा के पिता का उनसे दीर्घकाल तक भयंकर युद्ध होता है किन्तु अन्तत बना-

१ दे० गो०क० छ० ८८

२ से ६ दे० अम० क्या० रा० ४३८ ३६ वही ४४० वही ४४१ वही, ४४२ वही ४४३

७ से १० दे० क्रम० आ ११२।६ १० वही, ११२।१७ १८ वही ११३।११ १२, वही ११६।१६

फिर विजयी होकर विवाह कर ले जाते हैं।

पुनवा और ऊदल का विवाह रागगिनी से प्रारम्भ होता है। नरवरगढ़ आये हुए ऊदल पर आसक्त होकर पुनवा उसके साथ गुप्त रीति से भाँवरें डलवाने के लिए प्रस्तुत हो जाती है[१] किन्तु ऊदल गुप्त रीति से कन्यापहरण को क्षत्रिय मर्यादा के विरुद्ध बताकर जारी जोरा (मारकाट के पश्चात्) विवाह कर ले जाने का वचन देता है,[२] जिसकी अभिपूर्ति भयंकर युद्ध के पश्चात ही हो पाती है।[३]

विधिवत् विवाह के अवसर पर किए जाने वाले आचार-विचार एवं मांगलिक कृत्य —

वीरकाव्य में सभी विवाह गीतों उल्लिखित विधियों से ही सम्पन्न हुए नहीं मिलते, उसमें तात्कालिक विवाह-सम्बन्धी उन आचार विचार और मांगलिक कृत्यों के भी प्रचुर निर्देश मिलते हैं, जिनको शैली को हम आजकल विरासत के रूप में उपयोग करते हैं और जिन्हें हिन्दुओं की सामान्य विवाह पद्धति की संज्ञा दी जा सकती है। पृथ्वीराज रासो में इस प्रकार की विवाह-पद्धति को 'देव विधि' का विवाह बताया गया है।[४] धर्मशास्त्रों में विवाह के आचारों की सर्वसम्मत सूची नहीं मिलती। डा० राजबली पाण्डेय ने अपने 'हिन्दू-संस्कार' नामक शोधग्रन्थ के विवाह प्रकरण में —पारस्कर और बौधायन के गृह्य सूत्रों में इनकी संख्या क्रमशः तीस और पच्चीस प्रदर्शित की है जबकि उनकी वर्तमान संख्या पर प्रकाश डालते हुए, उन्होंने माडलिक द्वारा बत्तीस तथा गदाधर द्वारा तैंतीस मानने का उल्लेख किया है। इसके साथ साथ हिन्दी साहित्य के बृहत् इतिहास में उन्होंने, विवाह के समय सम्पन्न किए जाने वाले आचारों की संख्या बयालीस प्रदर्शित की है।[५]

---

१ से ३ 'आ० २४६।३, वही, २८६।४१, द० वही, पृ० २६१-२७६

४ (क) अपहृता संयोगिता की भाँवरें आदि डालकर देव विधि से विवाह सम्पन्न कर आने के लिए महा० जयचन्द अपने कुलपुरोहित को दिल्ली प्रेषित करते हैं।

'विधि विचित्र संजोगी को। करहु देव विधि ब्याह।' — पृ० रा०', का० १८५०। २४८८

(ख) रावल समर विक्रम और पृथाकुँवरि के विवाह को भी देव विधि की संज्ञा दी गई है

'देवरय ब्याह चहुआन कीन। दथ्य सु ब्याह सम विरह चीन्ह।' —वही ६१।६१। १३६

(ग) दे० हिन्दू संस्कार, पृ० २५६ ६३

५ इन वैवाहिक आचारों की सूची इस प्रकार है —१—वर-वधू गुण परीक्षा, २—वर प्रेषण (कन्या को देखने के लिए वर को भेजना) ३—वाग्दान (विवाह की स्वीकृति) ४—मंडपकरण, ५—पुण्याह वाचन तथा नान्दी श्राद्ध, ६—वधू-

डा० पाण्डेय ने वैवाहिक आचारों के क्रमिक इतिहास का विवरण करते हुए स्पष्ट किया है कि सूत्रकाल के पश्चात् उनकी विधि विधानों में परिवर्तन होने लगा था तथा बहुत से गृह्य सूत्रों में यह स्थापना मिलती है कि विवाह में जनपद धर्म तथा ग्राम धर्म का निर्वाह करना चाहिए और पद्धतियों का अनुसरण ग्राम्य लोकाचार के अनुसार करना चाहिए।[1] संस्कार कौस्तुभ के अनुसार जो अनेक लोग धर्मशास्त्र की स्पष्ट विधियों का अतिक्रमण करके लोकाचार का अनुसरण करते थे।[2] वीरकाव्य में वर्णित विवाह-पद्धतियों में भी इन देशाचारों की बहुलता मिलती है। उसमें यह स्पष्ट कहा भी गया है कि हमारे देश में तो यह आचार इसी रीति से सम्पन्न होता है। अन्य कुलाचारों में वभिन्य होने के कारण हम अपनी हमारी ही पद्धति से सम्पन्न करना पड़ेगा[3] प्राग दिए गए आचारों में से कुछ ऐसे भी हैं जो युद्धप्रिय एवं स्वतन्त्र मना राजपूतों की ही निजी परम्परा प्रतीत होते हैं अतः युद्धाश्रित प्रसंगों को जनजीवन के स्थान पर क्षत्रिय नरेशों की विवाह पद्धति के प्रतीक मानना ही अधिक उपयुक्त है।

(क) सगाई या वाग्दान —

धर्मशास्त्रीय शब्दावली का 'वाग्दान' आचार लोक शब्दावली में सगाई कहलाता है जिसे वर निर्धारण के लिए प्रयुक्त किया जाता है। पृथ्वीराजरासो में महाराज साहस्राय आठ वर्षीय पृथ्वीराजजी को एक माला पहनाकर तथा वस्त्र प्रदान करके यह वचन देते हैं कि उनकी अवस्था सोलह वर्ष की होने पर मैं स्व पुत्री का विवाह कर

गृहागमन (कन्या पक्ष के घर वरपक्ष का आना) ७—मधुपर्क ८—विष्टरासन (वर को बैठने के लिए आसन देना) ९—गौरीहरपूजा १०—स्नापन ११—परिधापन एवं सन्नहन १२—समंजन (वर वधू को अंगराग लगाना) १३—प्रतिसर बन्ध (कन्या के हाथ में कवच बाँधना) १४—वधू वर निष्क्रमण १५—परस्पर समीक्षण १६—कन्यादान १७—अक्षत् रोपण १८—कंकण बन्धन १९—आर्द्राक्षत रोपण २०—तिलककरण २१—अष्ट फलिदान २२—मंगल सूत्र बन्धन, २३—गणपति पूजा २४—वधू वरयोत्तरीय प्रान्तबंधन २५—लक्ष्मी पार्वती शची पूजा २६—वायनदान २७ अग्नि स्थापन तथा होम २८—पाणिग्रहण २९—लाजाहोम ३०—अग्नि परिणयन ३१—अश्मारोहण ३२—गाथा गान ३३—सप्तपदी ३४—मूर्द्धाभिषेक ३५—सूर्योदीक्षण, ३६—हृदय स्पर्श ३७—सिंदूर दान ३८—प्रसवानुमन्त्रण ३९—दक्षिणादान, ४०—गृह प्रवेश, ४१—गृहप्रवेशनीय होम, ४२—ध्रुवारुन्धती दर्शन, ४३—आग्नेय स्थाली पाक ४४—त्रिरात्रव्रत ४५—चतुर्थी कर्म, ४६—देवकोत्थान ४७—मण्डपोद्वासन। हि० सा० बृ० इ० भा० १ अ० ५, पृ० १३२

१ से २ द० हि० सं० वही पृ० २६१

३ 'देश हमारे यही रीति है आगे कुला कुला ब्योहार। — आ०, २१७।२५

दूँगा।[1] रासोकार ने इस आचार के लिए किसी विशेष सभा का तो प्रयोग नहीं किया किन्तु यह 'वाग्दान' प्रथा का ही प्रचलन दिखाया है। गोरेलाल ने महाराज छत्रसाल की लग्न धार के समय उल्लेख किया है कि उनकी सगाई पहले ही हो चुकी थी।[2] इस प्रसंग में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि वीरकाव्य में वर्णित अधिकांश विवाहों का समारम्भ टीका अथवा लग्न-पत्रिका भेजने से दिखाया गया है।

(ख) टीका लगन अथवा श्रीफल भेजना

इसकी चार पद्धतियाँ मिलती हैं यथा—कुल पुरोहित को लग्न सामग्री प्रदान करके यह अधिकार दे देना कि वह जिस किसी वर को कुलीनता आदि की दृष्टि से उपयुक्त समझे उसके साथ विवाह निश्चित कर आये। यह प्रथा पृथ्वीराजरासो के पद्मावती विवाह में अपनाई गई है।[3] द्वितीय पद्धति में पहले ब्राह्मण और भाटों को वर अन्वेषणार्थ भेजा जाता था, तथा उनके द्वारा बताए गए वर को उपयुक्त समझने पर 'लग्न-सामग्री' भेज दी जाती थी। यह प्रथा परमालरासो के लाखन विवाह में घटित होती है।[4] तृतीय प्रथा में कन्या के पिता स्वयं निर्धारित लड़के का कुल पुरोहित के हाथों नारियल भेजकर वर मनोनीत करके भेजता था। पृथ्वीराजरासो में इञ्छिनी,[5] प्रिथाकुँवरि[6] इन्द्रावती[7] और रुक्मिणि[8] परमालरासो के बेला,[9] तथा राजविलास के राव छत्रसाल हाडा की पुत्रियों[10] के विवाहों में इसी रीति का अनुसरण किया जाता है। चतुर्थ पद्धति में नाई बारी भाट और पुरोहित के साथ कन्या के भाई को टीके की सामग्री के साथ भेजा जाता था। उन्हें कन्या का पिता वर्णित देशों के नाम बताकर यह अधिकार सौंप देता था कि इन देशों के अतिरिक्त जहाँ कहीं भी उपयुक्त वर मिले उसका टीका चढ़ाकर विवाह सम्बन्ध निश्चित कर आयें। आल्हखण्ड के गजमोतिन,[11] बेला[12] सुनवा[13] और कुसुमदे[14] के वर निर्धारण में इसी पद्धति का आश्रय लिया जाता है।

(१) टीके में अथवा लग्न पत्रिका के साथ प्रेषित की जाने वाली सामग्री

टीके अथवा लगुन के रूप में विविध प्रकार के वस्त्र, गज, अश्व, पालकी, स्वर्णाभरण, स्वर्ण मुद्राएँ, स्वर्ण खचित कटार, तथा मेवा मिष्टान्नादि भेजे जाते थे। पृथ्वीराजरासो में इञ्छिनी की लगुन के साथ रत्नजटित नारियल भेजा जाता है[15] तथा प्रिथाकुँवरि की लग्न पत्रिका के साथ अश्व, मुक्तामालाएँ तथा लाखों की निधि भेजी जाती है।[16] परमालरासो में लाखन की 'लगुन' (लोकशब्दावली में लग्न को लगुन ही

१, २ दे० 'प० रा०' का ३३५।२४-२६, छ० प्र० ११९

३ से १० दे० क्रम० पृ० रा० मो० १।३६०।१९ पर० रा०, २४।८२-८४, पृ० रा० मो० १।२९३।३ वही १।३७२।९ वही, २।८९९।५ 'पृ० रा०' का० ३६४।१७५, पर० रा०, १३।१४ रा० वि० ३।५०-५१

११ से १६ दे० क्रम० आ० १८।१८-२१, वही १९।२-१३ वही ११।२-६, वही ३८।११-१६ पृ० रा० मो० १।२९३।३, पृ० रा०, का० ६४।८-११

कहा जाता है) में सौ अश्व, दस हाथी तथा पाँच सौ महागुरु स्वर्ण मुद्राएँ आती हैं[1] जबकि महाराज पृथ्वीराज जल्हा की लगुन में अनेक गज और अश्व बहुमूल्य असुर, पाँच स्वर्ण पत्र विविध अस्त्रास्त्र तथा एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ भेजते चित्रित किए गए हैं।[2] राजविलास में छत्रसाल हाडा अपनी पुत्रियों के श्रीफल प्रेषित करते समय स्वर्णाभरण एवं जरी की जीन कसे हुए अश्व अनेक प्रकार के जरकसी सिरोपाव मुक्ताफल, मणिमालाएँ स्वर्णखचित कटार तथा प्रचुर मात्रा में मेवा मिष्ठान्न भेजते हैं।[3] आल्हखण्ड में सुनवाँ[4] और कुसुमा[5] के टीके तो तीन-तीन लाख के बताए हैं जबकि वेला[6] और गजमोतिन[7] के टीका में बावन पालकी नब्बे गजरथ एक हजार उत्तम कोटि के अश्व शाल-दुशाले मोहनमाला चीरा-कलगी दो रूमाल मोहरों के थाल[8] तथा एक स्वर्णथाल का उल्लेख करते हुए उसे तीन लाख का टीका होने की सूचना प्रदान की है।

(३) सगुन और टीका चढ़ाने की रीतियाँ

कवि चन्द ने लगुन चढ़ाने की रीति का वर्णन करने में रुचि नहीं ली है,[8] और मात्र प्रिया कुँवरि के प्रसंग में मोतियों से चौक पूरकर नारिकेल प्रदान किया जाना चित्रित किया है।[9] अन्य ग्रंथों में इस अवसर पर विप्रों के वेद पाठ चौक पूरे जाने वर को तिलक करने नेगियों को नेग प्रदान करने तथा सम्बन्धियों को प्रीतिभोज देने की प्रथा दिखाई है। परमालरासो में नायन के हाथ पर लगुन सामग्री रखी जाने के समय पंडित वेद पाठ और स्त्रियाँ मंगल गायन करती हैं, तथा उसके पिता खुशी मनाते हुए

---

१ से २ प० रा०' २४।८७ वही १३।२३ २४

३ मन हरखन सु पठ्ठव नारिकेर नर राव।
तपनिय साकति वर तुरग भूषन कनक सुभाव।
जरकस के बहु भांतियुत अवरमति सिरपाव।
मुक्ताफल माला समनि, जारित कटार जराउ।
मेवा खादिम बहु मधुर अरु कहि बहु अरदास।
पठयौ प्रोहित उदयपुर, अप्पि मुदन उल्लास। रा० वि०' ३।५२ ५६

३ तीनि लाख का टीका लकै सो नगिन को दसो गहाय।' आ० ११२।२

५ ल० आ० ३८१।१८

६ बावन पलकी नब्बे गजरथ उम्दा घोड़ा एक हजार।
शाल दुशाला मोहनमाला चीरा कलगी दुइ रूमाल।
धारिख तोरा दुइ मोहरन के औ एक थार सोवरन क्यार।
तीन लाख को टीका लकै सा नगिन को दओ गहाय। — आ० १६७।७ १०

७ से ९ द० आ० १५५।१६ १८, 'प० रा० का० ५४३।६ वही ६३४।२७

करोड़ों का द्रव्य लुटा देते हैं।[1] राजकुमार ब्रह्मा के लग्न-हेतु चौक में बैठने पर विप्र वेद पाठ करते हैं। शगुन लेकर आने वाला पण्डित उसे पान का बीड़ा खिलाता है और उसके हाथ पर नारियल रखता है। शगुन में आई हुई सामग्री उसके हाथ से छुआकर चौक में रख दी जाती है।[2]

राजविलास में महाराज छत्रसाल हाड़ा द्वारा प्रेषित पुरोहित राजकुमार राजसिंह को नारियल अर्पित करते हुए उनके मस्तक पर तिलक लगाता है तथा आशीर्वाद देता हुआ कहता है कि भावी नवरूपानी दीर्घायुष्य प्राप्त कर।[3] महाराज जगत सिंह इस अवसर पर उस पुरोहित को अपार द्रव्य, अश्व सिरोपाव जरकसी एवं रत्न जटित वस्त्र के थान तथा स्वर्ण आभूषण प्रदान करते हुए, आदर भाव प्रदर्शित करते हैं।[4]

आल्हखण्ड में ब्रह्मा का टीका चढ़ाने आते हुए ताहर की सूचना पाकर रानी मल्हना स्व वैभव प्रदर्शन एवं ताहर के स्वागतार्थ महाव के प्रत्येक द्वार पर कंचन कलश स्थापित करा देती हैं तथा गलियों में बिछौने बिछाकर उन पर इत्र छिड़कवा देती हैं।[5] महोबे की वीथियों में गुजरते समय उस पर चंदन चोवा अबीर गुलाल तथा केशर जल की वर्षा की जाती है।[6] टीका चढ़ाने का स्थल गाय के गोबर से लीपा जाता है, तथा उसमें चन्दन की चौकियाँ डालकर मंगल-कलश स्थापित कर दिए जाते हैं।[7] ब्राह्मणों द्वारा वेद पाठ एवं स्त्रियों के मंगल गानों की सुमधुर ध्वनियों के मध्य[8] ताहर ब्रह्मा को पान का बीड़ा खिलाकर टीका चढ़ाता है।[9] ताहर महोबे के नेगियों को नेग में स्वर्णाभूषण प्रदान करता है जबकि महाराज चंदेल की ओर से टीका लेकर आए हुए नेगियों को ही स्वर्णाभरण प्रदान नहीं करते, अपितु बहुत से अन्य आभूषण यह कहकर चामुण्डराय पण्डित को सौंप देते हैं कि आपके जो नेगी दिल्ली में रह गए हों, ये आभूषण उन्हें नेग में दे देना।[10] मलिखान और लाखन को टीका चढ़ाते समय भी इसी भांति सुरभि के गोबर से चौका लगाया जाता है कलश स्थापन, वेदपाठ मंगल गान बिरदावली सुनना आदि कृत्य होते हैं।[11] उनमें इतना अन्तर अवश्य है कि टीका लाने वाले का पूर्वाभास न होने के कारण उनका ताहर की भांति स्वागत नहीं किया जाता, इसके अतिरिक्त टीका चढ़ाने की रीति में यह वैषम्य भी मिलता है कि कन्या का भाई वर के चरण-स्पर्श करके उनको पाँच पान का बीड़ा प्रदान करता है[12] जबकि ताहर ब्रह्मा के चरण स्पर्श

---

१ प० रा०' २४।८७

२ से ४ द० श्रम० पर० रा० १३।३१ ३२ 'रा० वि०, ५।६१ ६२, वही ३।६४

५ से १० द० श्रम० आ० २०३।१९ २०, वही, २०४।९ १० वही २०३।२५, २०६।१ वही २०७।६ वही २०५।८, वही, २०५।२० २५

११ से १२ दे० श्रम० आ०' १।६११-१७, आ०' १५६।११,

[illegible] किया है जो बीभत्स दृश्य चित्रित किया गया है। इस प्रसंग में आल्हखण्ड में टीका के लिए 'सगुन' तथा 'फलदान' शब्दों का भी प्रयोग किया है।

(४) सगुन सम्बन्धी कुछ अन्य उल्लेख्य तथ्य —

राजविलास तथा परमालरासो में सगुन सम्बन्धी कुछ अन्य तथ्यों का और पता चलता है। राजविलास में राजकुमार राजसिंह को श्रीफल [illegible] करने के उपरान्त ... द्वारा का पुरोहित उदयपुर में ही निवास करता है तथा विवाह का ... उनके पिता महाराज जगतसिंह से ... निमित्त भजन का निवेदन करता है।[3] परमालरासो में महाराज ... महा० पृथ्वीराज द्वारा सगुन में भेजी गई एक लाख स्वर्ण मुद्राओं के साथ साथ दो करोड़ और भी मुद्राओं का निर्देश में ... एक प्रकार से ... का ... करता है।[4] जिसकी सूचना पाकर ये भी ... में बरात के आगमन पर उसके परमालाय विवाह से पूर्व ... लगाकर उन्हें द्विविधा में डाल देते हैं।[5]

(ग) नहछूर —

यह शब्द नख तथा और ... का भ्रष्ट समास रूप प्रतीत होता है, जिससे ध्वनित होता है कि इस आचार के समय श्मश्रु और सिर के केश तथा नाखूनों को काटा जाता था। धर्मशास्त्रीय पद्धति में इस क्रिया को ही स्थानापन्न माना जा सकता है जो डा० राजबली पाण्डेय के अनुसार आरम्भ में तो ब्रह्मचारी के सम्भवतः क्षौर करके उसे यौवनपूर्ण प्रवृत्तियों का नियमन करते हुए कुछ वर्ष तक पुनः ब्रह्मचर्य व्रत के पालन का स्मरण दिलाने के लिए सम्पन्न किया जाता था किन्तु बाल विवाह का प्रचलन बढ़ने पर उसे ब्रह्मचर्य की समाप्ति का प्रतीक माना जाने लगा था।[6] हमारा अनुमान है कि गुरुकुलों में विद्याध्ययन करने न जाने वालों का यह संस्कार विवाह से पूर्व उसी भाँति किया जाता होगा, जैसे विवाहावसर पर यज्ञोपवीत संस्कार या जनेऊ लेने की प्रथा प्रचार पाती जा रही थी। आल्हखण्ड में गोमय से लीपी हुई संस्कार स्थली में मोतियों का चौक पूरकर तथा पंडित द्वारा बताये गये शुभ मुहूर्त में नाई द्वारा वर को चौकी पर बिठाकर यह आचार सम्पन्न होते दिखाया गया है तथा स्त्रियाँ इस अवसर पर मंगल गान करते चित्रित की गई हैं।[7] आल्हखण्ड में

---

१ से ५ दे० क्रम० आ० ३८३।१३ १५ वही ३८३।१६, रा० वि० ३।६४ ६६, पर० रा० १३।३८ ३९ वही १३।४०

६ दे० हिन्दू संस्कार पृ० १८५ ८६

७ सखिया मंगल गाती आम सं ले नाम बीर मलिखान।
सुरह गऊ को गोबर लवें गजमोतिन के चौक पुराय।
चौकी परि गई मलियागिरि की तापर मलिखे बठे जाय।
नहछुर होन लगो मलिखे को पंडित वेद विचारन लाग।

—आ० १६२।१३ १६

मनिराग,[1] आल्हा,[2] ऊदल[3] और लाखन[4] सभी के विवाहों में इस सत्कार का उल्लेख मिलना उस विवाह का एक आवश्यक अंग अभिव्यंजित करता है। नाई भी इस अवसर पर अपने नेग के लिए झगड़ा करते थे।[5]

(घ) तेल चढ़ाना —

मड़वा के पश्चात् तेल चढ़ाने समय आजकल सात सौभाग्यवती स्त्रियाँ वर के पाद जानु स्कंध, कर्ण तथा सिर पर तेल लगाती हैं। आल्हाकार ने नारीगणा का तो उल्लेख नहीं किया किन्तु सात-सुहागिन आल्हा[6] मलिखान,[7] ऊदल,[8] और लाखन,[9] पर तेल चढ़ाना प्रदर्शित की है।

उबटन —

हल्दी, बेसन और तेल का मिश्रित करके, वर एवं कन्या का उबटन करने से उनकी शरीर कांति दीप्त हो उठती है। आल्हकार ने इस सामान्य उबटन के स्थान पर ऊदल[10] मलिखान[11] और आल्हा[12] का केशर से उबटन किया जाना, तथा नाई द्वारा उन्हें गंगाजल से स्नान कराना चित्रित किया है। कन्याओं का उबटन करने की भी प्रथा दिखाई गई है। स्त्री शृंगार का वर्णन करते हुए, पद्मिनी और इच्छिनी के उबटन लगाकर स्नान कराने का जो विवरण दिया गया है वह उनके विवाह से पूर्व के शृंगार वर्णन से सम्बद्ध है।[13]

(ङ) कंकण बन्धन —

कवि चन्द ने इच्छिनी विवाह की ज्योनार के समय महाराज पृथ्वीराज के कर में कंकण सुशोभित दिखाकर[14] कंकण बाँधन की प्रथा दिखाई है। आल्हकार ने आल्हा[15] और ऊदल[16] को स्वयं कर में कंगन बाँधकर दूल्हा बनते चित्रित किया है। केशवदासजी ने भी महाराज वीरसिंह के योद्धाओं को दूल्हा के वेश से उपमित करते हुए उनके कर में कंकण रूपी जयकंकण बंधा दिखाया है।[17]

---

१ से ४ दे० आ०' १६२।१६ आ०' ११२।१८ २१, वही, २८८।१७ २०, वही, ३८७।१३ १४

५ नाऊ भिगरे रहि मल्हना से हमरो नेगु देऊ मगवाय। —वही १६२।२७

६ से १७ दे० क्रम० 'आ०' १६२।१७ वही, ११६।२० वही १६२।२०, वही, २८८।१६ वही ३५८।१५, वही, २५८।२१, वही, १६२।१६, वही ११६।२५, प० रा० का०, ५५६।६३, 'आ०', ११७।१, वही, २५८।२३, वी० च०', ८।२८

(च) दर्जी का वस्त्र लेकर आना —

रासो में वर द्वारा पहने जाने वाले वस्त्र विशेष का वर्णन भी किया गया है।[१] आल्हखण्डकार ने मात्र मलिखान विवाह में मण्डप में दर्जी को वस्त्र लेकर आते तथा इनाम पाते चित्रित किया है।[२]

(छ) मौर तथा सेहरा बाँधना —

कवि दलपत ने मेवाड़ेश्वर रावल समर विक्रम आनन्द मौर रूप में अन्य मौर बाँधने[३] तथा दिल्लीश्वर पृथ्वीराज हंसावती विवाह प्रसंग में रत्नजटित मौर पहने प्रदर्शित किए हैं।[४] यह उल्लेख्य है कि संयोगिता से विवाह रचाते समय दिल्लीपति मौर के स्थान पर मुकुट पहने दिखाए गए हैं।[५] कवि मान ने राजकुमार राजसिंह को तो मौर के स्थान पर सेहरा बाँधे चित्रित किया है[६] जबकि राज्याभिषेक के उपरान्त विवाहार्थ जाते समय वे स्वर्ण, नग एवं लाल खचित सेहरा बाँधने के साथ साथ शीश पर स्वतछत्र भी धारण करके जाते हैं।[७] आल्हखण्डकार ने मौर को मालिन द्वारा लाने के तथ्य पर भी प्रकाश डाला है।[८] वर के सहित वाहन को भी सेहरा बाँधने की प्रथा का कवि मान ने निर्देश किया है। रूपकुँवरि स्वर्ण एवं मणियों जटित सेहरा बाँधे हुए विवाह मण्डप में पदार्पण करती हैं।[९] मालिन को मौर लाने पर नग भी प्रदान किया जाता था।[१०]

(ज) कुआँ विवाहना अथवा कुएँ की भाँवरें (कुँअनावरो)

इस लोकाचार में वर की माता कुएँ में टाँग लटका कर बैठ जाती है। वर-यात्रा आरम्भ करने से पूर्व, वर उसे कुछ वचन देता हुआ कुएँ से टाँग निकालने का आग्रह करता है। इस अवसर पर वर कुएँ के सात चक्कर लगाते हुए उसमें प्रत्येक चक्कर के पश्चात् सकोरे भी गिराता है। इसे लोक शब्दावली में कुएँ की भाँवरें डालना या कुआँ ब्याहना कहा जाता है। बारात के प्रस्थान काल में सम्पन्न होने वाले इस देशाचार के विषय में लोगों के विविध विश्वास हैं। एक मत के अनुसार पहन ओढ़ लो जब तक धीय नहीं तथा खा पी लो जब तक बहू नहीं की लोकोक्ति के अनुरूप वधू-आगमन पर अपनी खान पान सम्बन्धी सुविधाएँ नष्ट हो जाने के भय से वधू से ईर्ष्या करती हुई वर की माता अपने पुत्र को कुएँ में कूदने की धमकी देकर विवाहार्थ जाने से रोकने की चेष्टा करती है। इस मत की पुष्टि वर द्वारा माता को दिये जाने वाले इस वचन से भी होती कि वह उसके लिए एक दासी लेने जा रहा है अर्थात् अर्धांगिनी या गृहस्वामिनी जैसे किसी भी शब्द का उल्लेख न करके—वर माता को प्रकारान्तर से यह विश्वास दिलाता है कि नवागत वधू की इस परिवार में एक दासी की भाँति होगी, जिससे किसी भी प्रकार के

१ से १० दे० क्रम० वी० च० ८।२५ आ० १६२।२१ प० रा० का० ६८०।५५ वही १०८८।१६७, वही ६७२।८६ रा० वि० ३।७६ वही ७।८१ आ०, १६२।२२, रा० वि० ७।६७, आ०, १६२।२४

भय की आवश्यकता नहीं है। इस देशाचार की सम्पन्नता का द्वितीय पक्ष वर को वैवाहिक जीवन की कठिनाइयों से आगाह करने से सम्बद्ध है। इसके अनुसार वर मां कुएँ की सात बार प्रदक्षिणा लगाते हुए उसमें झँकवाना, वस्तुतः उसके गुरुचिन्तनों की ओर से इस चेतावनी का प्रतीक होता है कि, तुम्हें गृहस्थ जीवन की कठिनाइयों के कूप में धकेला जा रहा है। अतः यदि उसकी आपदाओं से मुक्त रहना चाहता है तो अब भी विवाहार्थ जाने को स्थगित कर दे। इसका मूल प्रयोजन चाहे जो कुछ हो यह देशाचार व्रज प्रदेश की एक अनूठी परम्परा है।

आल्हखण्ड में आल्हा, मलखान, ऊदल और लाखन चारों के विवाहार्थ जाने से पूर्व कुआँ व्याहने का चित्रण मिलता है। आल्हा की निकासी (बारात निष्क्रमण) के समय उसको मातृवत स्नेह करने वाली रानी मल्हना आल्हा की माता से स्वयं कुआँ व्याहने का अधिकार माँगती हुई, कुएँ में टाँगें लटकाकर बैठ जाती है।[1] आल्हा कुएँ की प्रथम प्रदक्षिणा के आरम्भ में उनकी बाँह पकड़ कर यह निवेदन करता है कि मैं आपके नाम का बाग लगाऊँगा आप कुएँ से पैर निकाल लीजिए।[2] इसी भाँति अन्य वचन देते हुए वह कुएँ की सात परिक्रमाएँ पूरी करता है और रानी मल्हना को गोद में उठा कर खड़ी कर देता है। उनके चरण स्पर्श करते हुए आल्हा उनसे विवाहार्थ जाने का आशीर्वाद माँगता है जिसके प्रतिदान में उस की पीठ पर हाथ फेरते हुए, उसका बाल भी बाँका न होने का आशीर्वाद प्रदान करते हुए रानी मल्हना उसे स्वीकृति दे देती है।[3] मलिखान की पालकी कुएँ के समीप पहुँचने पर, उसका भागिनेय उसे गोद में उठा कर कुएँ तक लाता है[4] मलिखान की माता कुएँ में पैर लटका कर बैठ जाती है। मलिखान की पहली भाँवर के पश्चात उनके नाम का बाग लगाने[5] तथा दूसरी भाँवर के उपरान्त उनके लिए एक टहलनी बन जाने का निवेदन करता है।[6] इसी भाँति कुआँ व्याहने का कुलाचार समाप्त हो जाता है जिससे माता तो रनवास को चली जाती हैं तथा मलिखान पालकी में बैठता है।[7]

ऊदल द्वारा कुआँ व्याहने के समय उसे भी चन्द्रावलि के पति, जो बनाफल भ्राताओं के सम्बन्ध में बहनोई लगते थे, पालकी से उतारकर लाते हैं।[8] इस बार भी रानी मल्हना ही कुएँ में गोड़ लटकाकर बैठती हैं—जिन्हें ऊदल नेग में स्व प्राणार्पण

१-६ द० क्रम० आ०, ११७।२ ६, वही, ११७।७ ८, वही, ११७।९ १२, वही १६३।५, वही १६३।६ ७, वही १६३।८ ९

७ पल में परिगो कुअनावारो रानी रंग महल को जाय।
मलिखे बैठे तब नलकी में हुकरत धाम घने कहार।' —वही, १६३।१० ११

८ जिनहिं बिआही हैं चन्द्रावलि इन्दसेन है जिनको नाम।
गोद उठाय लयो ऊदनि को औ कुअटा पर पहुँचे जाय। वही, २५९।३ ४

करने का वचन देकर विवाहार्थ जाने की अनुमति प्राप्त कर लेता है।[1]

(झ) अगवानी —

अतिथियों का मार्ग में जाकर स्वागत करना भारतीय आतिथ्य में एक अभिन्न अंग के रूप में समादृत रहा है जिसका बारात के संदर्भ में भी प्रयोग किया जाता था। इच्छिनी के पिता सुंदर वेश में, दिल्ली से आई बारात की अगवानी के लिए जाते हैं।[2] पदमावती समय में समुद्र शिखिर दुर्ग से आई बारात की भी अगवानी की जाती है।[3] इसी भाँति परमालरासो में ब्रह्मा[4] राजविलास में महाराज राजसिंह[5] और आल्हखण्ड में ब्रह्मा की बारात की[6] अगवानी के लिए अन्य सम्बन्धियों के साथ कन्या के भाई अथवा पिता के जाने का चित्रण किया गया है।

(ञ) तोरण एवं कलश वन्दन —

अगवानी के उपरान्त वर पक्ष की ओर से सर्वप्रथम सम्पन्न किया जाने वाला आचार तोरण एवं कलश वन्दन था जिसमें वर कन्या गृह के तोरण द्वार (मंडपाकार या मेहराबदार फाटक)[7] पर जाकर उक्त आचार का पालन करता था। इसमें वर एक छड़ी से तोरण में लटकी हुई काठ या मिट्टी की कृत्रिम चिड़िया का लक्ष्य वेध सा करता है जो किसी समय क्षत्रियों द्वारा वस्तुतः लक्ष्य वेध करने का भग्नावशेष प्रतीत होता है। क्षत्रिय घरानों में यह प्रथा अब तक प्रचलित है तथा जैनियों में भी इसे टेड़ला या नगाचार के रूप में विद्यमान बताया जाता है।[8] पृथ्वीराजरासो में

---

१ 'गोड डारिके तब कुअरा में मल्हना बठि गई हरसाय।
सातो भौरी उन्नि फिरि ग भी धरि बहियाँ लम्रो उठाय।
प्रान नग गैं तुमको दीन्हा माता कान्हो कुम्रा स पार।
मल्हना पाउँ कुआँ स कान्हो ऊन्नि पलकी बठ जाय। आ० २१६।१८

२ 'सुनि आवत चहुआन। करि आयीन मलय वर।' पृ० रा० का० ५४६।२२

३ अगिवानिय अगिवान। कुँअर बनि-बनि हय सज्जति। वही ६३७।८१

४ आग हु व चावड लियव रन बंकुर अगिवान। पर० रा० १८।१३७

५ रा० रा० वि० ४।८८

६ हम अगमानी को आय हैं पठओ माहिल पिथौरा राय। आ० २१७।१८

७ तोरण का हिन्दी मानक कोश में—किसी बड़ी इमारत या नगर का वह बड़ा और बाहरी फाटक बनाया गया [redacted] जिसका ऊपरी भाग मंडपाकार हो, और प्राय पताकाओं और मालाओं आदि से सजाया जाता हो।
हि० मा० को० २ पृ० ५८५

८ डा० अम्बाप्रसाद सुमन ने तोरन का अर्थ मिट्टी या काठ की बनावटी चिड़िया करते हुए, पादटिप्पणी में लिखा है कि जैनियों के विवाह के समय

इच्छिनी[1] हंसावती,[2] और पुंडीर-दाहिनी[3] के विवाह में महाराज पृथ्वीराज, राजविलास में रूपकुंवरि[4] और छत्रसाल हाडा की पुत्री[5] के परिणयावसर पर महाराज राजसिंह तोरण वन्दन करते हैं। राजविलास में एक ही लग्न में दो बारातें आने पर, दोनों ही वर-पक्ष पहले तोरण-वन्दन करने के लिए युद्ध तक पर उतारू मिलते हैं जिससे इस आचार की महत्ता समझी जा सकती है। हां, वीरकाव्य में तोरण-वन्दन की रीति नहीं प्रदर्शित की गई, जो सम्भवतः उपर्युक्त विधि द्वारा ही सम्पन्न किया जाता होगा।

कवि मान ने तीनों प्रसंगों में से किसी में भी कलश-वन्दन का उल्लेख नहीं किया है जबकि पृथ्वीराजरासो में तोरण एवं कलश-वन्दन का साथ साथ उल्लेख करके उनका एक ही समय सम्पन्न होना चित्रित किया है।[6] कलश-वन्दन से अभिप्राय उस आचार से है जिसमें सधवा स्त्रियां शीश पर कलश रखकर वर का स्वागत करती हैं तथा उसकी आरती उतारी जाती है। इस अवसर पर वर-पक्ष की ओर से कलशों में कुछ द्रव्य डाला जाता है। महाराज पृथ्वीराज की आरती उतारी जाती है तथा सधवा स्त्रियां उन पर अक्षत और मुक्ता निक्षिप्त करती हैं।[7] दूल्हा-रूप में राजसिंहजी पर भी स्त्रियां दाम, रूपा (चांदी का रुपया) और मुक्ता न्योछावर करती हैं।[8] महाराज पृथ्वीराज स्वागतार्थ लाए गये कलशों में तथा उस थाल में, जिसके माध्यम से उनकी आरती उतारी जा रही थी, मुहरें डालकर इस आचार को सम्पन्न करते चित्रित किए गये हैं।[9] यह तथ्य भी उल्लेख्य है कि कवि मान की दृष्टि में तोरण-वन्दन की अधिक महत्ता रही है, जबकि रासोकार ने कलश-वन्दन को अधिक महत्त्व दिया है। एक ही लग्न में दो बारातें आने पर रासोकार ने पहले कलश-वन्दन करने का महाराज पृथ्वीराज को अधिकार दिलाया है।[10]

कवि मान ने आजकल पुष्प एवं कागजों से सजाए जाने वाले स्वागत द्वारों का स्वरूप में भी प्रचलन दिखाया है। उसके अनुसार दो रजत स्तम्भों को खड़ा करके उनमें रत्नों के तोरण बांध जाते हैं तथा स्तम्भों के ऊपर स्वर्ण-कलश स्थापित किए

एक टेहला (नेगाचार रस्म) होता है जिसे तोरनबींदी कहते हैं। इसमें भांवरों से पहले सन्ध्या के समय लड़का लड़कीवाले के द्वार पर आता है और स्त्रियों द्वारा उसका स्वागत होता है। उस समय वह दरवाजे पर लटकी हुई लकड़ी की बनी एक चिड़िया में निशाना लगाता है। यह रस्म 'तोरनबींदी' कहलाती है। —हि० ग्रा० स० अ० श० दा०, भा० २ पृ० १५

१ 'तोरन करवर वंद तह। मुत्तिय अच्छित ढारि।' —पृ० रा०, का० ५४७।२९

२ 'वंदन वर आयौ नृपति। तोरन सभ परिवार।
प्रीति पुरातन जानिक। कामिनि पूजत मार।' —पृ० रा०, का० १०८७।१९६

३ से ९ द० क्रम० 'पृ० रा०', ५७५।१४ 'रा० वि०' ७।६९, वही, ३।९६ ९९

६ से १० द० क्रम० 'पृ० रा०' का० ५४७।२६, वही, ५६८।३१, 'रा० वि०' ७।६४, 'पृ० रा० का० ६४-।३२, वही, ५७३।१३ १८

जाते हैं।[1] कवि चन्द ने भी तोरणों पर मुक्ताओं के वन्दनवार बाँधने की प्रथा दिखाई है।[2]

आल्हखण्ड में कलश वन्दन के स्थान पर कलश उतारने की प्रथा दिखाई गई है। महाराज पृथ्वीराज अपने फाटक के समीप एक बल्ली पर स्वर्ण कलश टँगवाकर उसकी रक्षा के लिए मस्ताकुल हाथी छोड़ देते हैं। अगवानी करके फाटक तक लाई गई बारात को कहा जाता है कि हमारी कुल रीति के अनुसार द्वाराचार से पूर्व हाथियों को पछाड़ना तथा कलश को उतारना आवश्यक है।[3] चौहानों की इस कुल रीति को मलिखान और ऊदल भी कठिनता से ही पूरी कर पाते हैं।[4]

परमालरासो में एक अन्य अभिनव देशाचार दिखाया गया है। महाराज पृथ्वीराज द्वाराचार के लिए आने से पूर्व वरपक्ष द्वारा एक लौह स्तम्भ भेदन की शर्त लगा देते हैं[5] जिसकी अभिपूर्ति बड़ी कठिनता से हो पाती है। हमारा विनम्र निवेदन है कि हाथियों को पछाड़ने, कलश उतारने, लौह-स्तम्भ भेदन जैसे कुलाचार अवश्य कल्पनाश्रित तो अवश्य प्रतीत होते हैं किंतु उनकी विद्यमानता में सर्वथा सन्देह नहीं किया जा सकता। हाँ इस आचार के मुख्य अंग—वर द्वारा छड़ी से तोरण में लटकी हुई चिड़िया का लक्ष्य वेध करना, उसका कलशवाली हुई स्त्रियों द्वारा स्वागत करना और आरती उतारा जाना थे जिसकी परिसमाप्ति वर पक्ष द्वारा कलश और आरती के थालों में मुद्राएँ डालने पर होती थी। आजकल भी यह प्रथा विशेषतः क्षत्रियों में ज्यों की त्यों जीवित है।

(८) बारात को जनवासे में ठहराना —

बारात को ठहराने का स्थान जनवासा कहा जाता था। राजकीय बारातें अत्यन्त दीर्घाकार हुआ करती थी। पृथ्वीराजरासो में महाराज जयचन्द का भ्राता पुत्र वीरचंद एक लाख दस सहस्र सैनिकों को बारातियों के रूप में लाता है।[6] रावल समर विक्रम के बारातियों की संख्या भी कम नहीं थी—उसमें पाँच सौ वदिर पण्डित दो सहस्र कोविद, एक सहस्र मागध तथा आठ सहस्र अन्य लोग सम्मिलित दिखाए गए हैं।[7] परमालरासो में ब्रह्मा और लाखन के बारातियों की संख्या क्रमशः एक लाख[8] तथा तीन लाख दी गई है।[9] राजविलास में कवि मान, महाराज राजसिंह की बारात में जाने वाले सैनिकों की संख्या को अपार बताता हुआ उसे भाद्र मास के मेघों की भाँति घुमड़ती उमड़ती हुई तथा सागर की भाँति स्थित तक प्रसरित चित्रित करता है।[10] आल्हखण्ड में भी क्षत्रिय ही नहीं, अपितु उनसे सम्बन्धित विविध नरेशों को भी सनाढ्य बारातियों के रूप में जाते हैं।[11]

१-२ रा० वि० ७।४७ प० रा० का० ६४८।३४-३

३ से ५ द० मा० पृ० २१३ १० वही २१८।३ से २२०।२१ प० रा० १४।१६

६ से ११ प० अप्र० प० रा० का०, ७६४।२४८ वही ६५४।६३, प० रा० १३।१०५, १०६ वही २४।८६, रा० वि० ३।७८ मा० २०७।१३,

डा० बेनीप्रसाद ने भारत की प्राचीन सभ्यता पर प्रकाश डालते हुए एक ऐसी बारात का उल्लेख किया है जिसमें ७४०० बनिये, ३०० भाट, ७००० आतिशबाजी वाले तथा सैकड़ों मशालची थे।[१]

ऐसी, बहुसंख्यक बारातियों से युक्त बारातों के निवास की व्यवस्था करना वस्तुतः एक कठिन समस्या रहती होगी। ये बारातें भी आजकल की भाँति रात्रि को आकर प्रातःकाल प्रयाण पर जाने वाली न होकर पाँच से सोलह दिवस पर्यन्त ठहरती मिलती हैं। इच्छिनी के पिता बारात को पाँच दिन तक स्वनगर में रखते हुए, उसके साथ-साथ नगर के समस्त लोगों को भी भोज देते हैं।[२] प्रियाकुँवरि की बारात बारह दिवस पर्यन्त दिल्ली रखी जाती है, जिसको चन्द ने महाराज पृथ्वीराज के सम्बन्धी सामंतों द्वारा भी भोज दान का उल्लेख किया है।[३] परमालरासो में ब्रह्मा की बारात सोलह दिवस तक दिल्ली के निकट रुकती हुई चित्रित की गई है।[४] इस प्रसंग में यह तथ्य उल्लेख्य है कि वीरकाल में तो कुछ बारातें चार मास तक ठहरती थीं।[५] इन बारातों के लिए हम दो प्रकार के जनवास स्थानों का निर्देश पाते हैं। इच्छिनी के पिता महाराज पृथ्वीराज की बारात के लिए सतखण्डे महल में जनवासा निर्धारित करते हैं। उस महल की साज सज्जा पर प्रकाश डालते हुए रासोकार ने उसे जालों और गवाक्षों से युक्त पचवर्णीय चित्रकारी से चित्रित रेशमी गिलम और दुलीचा से आपूरित, पुष्पराशि से मंडित द्वादश सेजों और उनके आस-पास गद्दीदार मूढ़ों से सज्जित कुमकुम एवं अन्य सुगन्धित द्रव्यों के छिड़कन तथा कपूर और अगर धूप से सुवासित तथा इत्र-फुलेलों की मशालों के प्रकाश से जगमगाता प्रदर्शित किया है।[६] आल्हकार ने बारात को तम्बुओं में ठहरते दिखाया है।[७]

बारातियों का मधुपर्क प्रदान करने की सनातन प्रथा को, वीरकाव्यकारों ने सम्भवतः नगण्य तथ्य समझकर अनुल्लिखित छोड़ दिया है। इच्छिनी के पिता जनवासे में पानों के एक लाख बीड़े अवश्य पहुँचाते हैं।[८] आल्हखण्ड की बारात के लिए मधुपर्क का जन प्रचलित रूप शरबत भेजने की प्रथा प्रदर्शित की गई है।[९]

---

१ दे० हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, पृ० ६३४
२ पंच दिवस ज्यौनार करन। भुंजत अन अपार। ~
छरन अन्न छह रितिन सुष। अनू व आचार। —प०रा०, का० ५६०।१२०
३ दे० पृ० रा० का० ६६५।१८६
४ दे० परि० रा० १५।१८८ ८६
५ दे० हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता —डॉ० बेनीप्रसाद, पृ० ८४
६ दे० प० रा०, का० ५४८।३४ ३८
७ दी जनवासो पथरीगढ़ में औ तम्बू ठाढ़े दउ कराय। —आ०,१६७।६
८ इक लाष पान बीरा बनाइ। घनसार मद्धि बीरन लगाइ।' —प०रा० का० ५४६।३८
९ 'शरबत लाये हैं हम तुमको सो नुअरन को देउ बटाय। —आ० १६७।१३

(ठ) ऐपनवारी भेजना —

आल्हखण्ड में ऐपनवारी भेजने की रीति का उसमें वर्णित सभी विवाह प्रसंगों में प्रचलन दिखाया गया है। अन्य किसी ग्रंथ में इसका उल्लेख नहीं मिलता, कदाचित् इसलिए यह रीति सार्वभौमिक नहीं है। ब्रज प्रदेश में यह रीति वरनुआ के नाम से अब तक प्रायः यथावत् रूप में ही मिलती है। इस देशाचार का मूलोद्देश्य वर पक्ष के द्वाराचारार्थ आने की सूचना देना होता है। इसके अन्तर्गत एक मिट्टी के पात्र में जौ या धान[1] भरकर पात्र पर ऐपन से चित्रकारी की जाती है तथा इसके मुँह पर ढक्कन को ऐपन[2] की सहायता से चिपकाकर कन्या गृह भेजा जाता है। कन्या पक्ष वाले उस पात्र में भरे जौ या चावलों को पलट लेते हैं (जो बाद में भाँवरों या टीके के समय बोने के काम आते हैं)[3] तथा उसमें धान भरकर लौटा देते हैं। बारात के प्रत्यागमन-काल में इसके चावलों को निकालकर पात्र को अनिवार्यतः किसी छोकरे के पेड़ पर लटकाया जाता है। वरनुओं को कन्या गृह लेकर जाने वाले व्यक्ति की स्त्रियाँ बेलन और डंडों से उसी भाँति पिटाई करती हैं जैसे आल्हखण्ड में एपनवारी लेकर जाने वाले रूपना नामक बारी के साथ युद्ध किया जाता है। आल्हखण्ड में इस देशाचार की अधोलिखित प्रथा दिखाई गई है जिसके मुख्य तथ्य पाँचों विवाह प्रसंगों में प्रायः समान हैं —

प्रत्येक बार ऐपनवारी भेजने से पूर्व उसका मुहूर्त्त शोधित कराया जाता है।[4] मार काट के भय से पहले तो रूपना बारी उसे लेकर जाने को प्रस्तुत ही नहीं होता किंतु प्रोत्साहित करने पर वह वर की घोड़ी ढाल और तलवार लेकर जाता है।[5] ऐपनवारी पहुँचने पर युद्ध होता है किंतु रूपना जैसे-तैसे करके भाले की नोक से ऐपनबारी को उठाकर अपने अधिकार में कर लेता है और वर-पक्ष में आ मिलता है।[6]

(ड) बारौठी या द्वाराचार —

बारौठी से अभिप्राय है—कन्या के पिता की ड्योढ़ी या गृहद्वार पर होनेवाला

---

१ अलीगढ के आस पास तो वरनुआ नामक पात्र में जौ भरकर भेजे जाते हैं जबकि मुजफ्फरनगर की ओर धान भरकर भेजने की प्रथा है—शोधक

२ गेहूँ या चावल के आटे और हल्दी के मिश्रण से तैयार किया गया घोल ऐपन कहलाता है। नाल्ह की विशाल शब्द सागर में चावलों का आटा प्रयुक्त दिखाया गया है — दे० पृ० १७६ जबकि ग्रामों में अधिकतर गेहूँ का ही आटा प्रयुक्त किया जाता है।

३ अलीगढ के समीप वरनुओं से निकाले गये जौ टीके के समय लड़की के माता पिता और भाई भावज आदि द्वारा बोये जाते हैं जबकि मुजफ्फरनगर की ओर धानों को कन्या का भाई भाँवरों के अवसर पर बोता है—शोधक

४ 'साइति अबही अति नीकी है ऐपनवारी देउ पठाय।' —आ० ३८६।१३, और भी दे० १६४।१ २ १२०।८ ६ २११।१ २, २६०।६ ७ ३८६।१२ १३

५ दे० आ० १६४। १३ १५ १२०।१७ २२, २११।१५ १८, २६०।१६-१९

६ दे० आ० १६५।२१ २२

आचार। व्रज प्रदेश में वस्तुएँ प्रेषित करने के उपरान्त अगला कृत्य यही होता है, जिसमें साधारणतया वर को पाँचों वस्त्र स्वर्ण मुद्रिका यज्ञोपवीत, माण्ड, वाहन तथा द्रव्य प्रदान किये जाते हैं। पृथ्वीराजरासो में इच्छिनी विवाह प्रसंग में रासोकार ने भी इस आचार का वर्णन किया है।[1] ज्योतिष में निष्णात गणकों द्वारा शुभ मुहूर्त शोधन कराकर महाराज सलखवाराज बारोठी के अवसर पर अपने जामातृ को पांच मदाकुल हाथी, बीस पवनगति वाले इराकी अश्व एवं जरी का यज्ञोपवीत, हाथ के लिए नगजटित स्वर्ण शृंखला एवं सात स्वर्ण जटित मुगपात्र प्रदान करते हैं।[2] परमालरासो में राजकुमार ब्रह्मा की दिल्ली बारात आने के अवसर पर जब वे बारोठे के लिए आते हैं तो विप्रों द्वारा चौक पूरा जाता है[3] तथा उन्हें अनेक गिनिवाएँ पाँच सहस्र स्वर्ण मुद्राएँ, निशान मुक्ताओं वाली मालाएँ तथा अन्य वस्त्र प्रदान किए जाते हैं।[4] अश्व एवं गजों के एकत्र होने से मचते हुए शोर, भाटों के विरदपाठ तथा स्त्रियों के मंगलगानों के मध्य यह आचार सम्पन्न होता है। बखतदासजी ने भी बारोठे के आचार में दूल्हा की पहरावनी करने की प्रथा दिखाई है।[5]

(ड) भांवरें तथा उनसे सम्बन्धित मांगलिक कृत्य —

विवाह का मुख्य अंग भांवरें या फेरे होते हैं, जिनमें अग्नि को साक्षी करके वर कन्या का कर ग्रहण करता हुआ, उसे आजीवन जीवन सहचरी के रूप में समादृत करने का वचन देता है। वीरकाव्य में इसे भांवर हथलेवा, और फेरा की संज्ञा दी गई है। इस अवसर पर सम्पन्न होने वाले मंडप रचना चढ़ावा चढ़ाना कन्या शृंगार पट पर बैठना गणेश पूजन ग्रंथि बंधन वेद मन्त्रोच्चार सहित होनेवाला यज्ञ, यज्ञ वेदी की सात प्रदक्षिणा आदि कृत्य बहुत कुछ अंशों में आजकल के ही सदृश मिलते हैं—हाँ इतना अन्तर अवश्य है कि पृथ्वीराजरासो में जहाँ प्रत्येक भाँवर के समय दहेज दिया जाता है, वहीं आल्हखण्ड में कन्या-पक्ष का कोई सम्बन्धी वर का शिरच्छेद करने की चेष्टा करते मिलता है। भांवरों के समय सम्पन्न होने वाले आचार इस प्रकार हैं—

(ढ) (१) मंडप रचना -

अपहृत पदमावती और महाराज पृथ्वीराज का दिल्ली में विधिवत विवाह होते समय, हरे बांसों का मण्डप बनाया जाता है।[7] कवि मान ने महाराज राजसिंह के रूप

---

१ से ४ पृ० रा० का० ४७।२८ पर०रा० १५।१४३, वही १५।१४४ वही, १५।१४५

६ बारोठे को चार करि कहि वेशन अनुरूप।
द्विज दूलह पहिराइयो पहिराय सब भूप।
—हिंदी शब्द सागर पृ० २३९५ पर उद्धृत।

७ दे० पृ० रा०, का० ६४।६९

कुँवरि से हुए परिणय के समय स्वण-स्तम्भा पर जरकसी पट तानकर मडप बनाया जाना प्रदर्शित किया है।[1] आल्हखण्ड म बाँसा के स्थान पर च दन स्तम्भ गाडकर तथा उनके ऊपर पान के पत्ता को मडलाकार रचकर मडप निर्मित किया जाता है। मडपस्थली को गाय के गोबर से लीपकर उसम मोतिया स चौक पूरा जाता है तथा वहाँ पर मगल घट स्थापित करके मडप रचना को पूणत्व प्रदान किया जाना है।[2] कवि मान न विवाह मडप को रग मण्डप की सना प्रदान की है जिसम महाराज राजसिंह और सखिया सहित रूप कुँवरि भावरा के लिए पधारत हैं।[3]

(२) चढावा चढना तथा कन्या शृगार—

वर पक्ष की ओर से कन्या के लिए वस्त्राभूषण प्रेषित करना, चढावा चढाना कहलाता था। आल्हखड म इसकी दो प्रथाए प्रदर्शित की गई हैं। सुनमा[4] बेला[5] तथा फुलवा[6] के लिए भावरा से पूव आभूपणादि भेजे जाते हैं जबकि गजमोतिन का चढावा उसकी भावरें पड जाने के उपरात चढाया जाता है। आजकल भी प्रात-भेद से ये दोना प्रथाए जीवित हैं—बुदेलखड की ओर प्रथम प्रथा प्रचलित है जबकि अलीगढ के आस पास द्वितीय प्रथा का आश्रय ग्रहण करते हुए चढावे का बरीपुरी का नामाभिधान देते हुए भावरो के पश्चात् बढहार (बारात आने से आगेवाला दिवस) वाले दिन चढाया जाता है।[7]

(३) पटे पर बैठना —

वर और कन्या का 'पटे पर बैठना', भावरा के समय का प्रथम आचार है। विवाह सस्कार का वास्तविक आरम्भ इसी कृत्य से होता है। पथ्वीराजरासो म इच्छिनी और महाराज पथ्वीराज[8] तथा आल्हखड म लाखन और कुसुमदे[9] की भाँवरों का आरम्भ उनके पटे पर बठने से ही दिखाया गया है।

(४) गणेश एव कलशपूजन —

किसी भी शुभ काय के आरम्भ म गणेश पूजन की परिपाटी के सदृश कन्या और वर भाँवरो से पूव गणेश का पूजन करत हैं। इस अवसर पर कलश की भी पूजा की जाती है, जिसे डा० वासुदेवशरण अग्रवाल न सृष्टि तथा भरे पूरे व्यक्तित्व का प्रतीक[10] बताया है। महाराज पथ्वीराज और इच्छिनी[11] तथा लाखन व कुसुमदे[12] भावरा से पूव

---

१ स ३ रा० वि० ७।४८ वही १८७।५ ८ रा० वि० ७।७१
४ से ६ दे० क्रम० आ० १४६।२१ वही २२२।१८ वही २७४।११ १२ वही ६३।१० १२ प० रा० का० ५५५।८२ आ० ४०६।२०
१० दे० कला और सस्कृति, पृ० १८३
११-१२ दे० क्रम० पृ० रा० का० ५५५।८२ आ० ४०६।२१

गणेश एव कलश की पूजा करते दिखाए गए हैं।

(५) ग्रंथि-बंधन —

भावरो से पूर्व वर और कन्या के भावी जीवन में परस्पर[1] सम्बद्ध रहने के बाह्य प्रतीक उनके दुपट्टों में गाँठ लगाने को पृथ्वीराजरासो में पट गँठि और 'अचल बंधन तथा राजविलास में 'गँठजोरा' की संज्ञा प्रदान की गई है। कवि मान के शब्दों में — "सूर्य, चन्द्र तथा अन्य देवों को साक्षी करके किया जाने वाला यह 'गठजोरा' दंपती-युगल के पारस्परिक सम्बन्धों में दृढ़ स्थैर्य का अभिसूचक होता है।"[3]

(६) पाणिग्रहण —

आजकल जिस भाँति पाणिग्रहण शब्द के उच्चारण मात्र से विवाह के समस्त आचारों का अभिद्योतन हो जाता है—कवि चन्द ने भी उसी तरह 'पानि-ग्रहन और 'हथलेवा' शब्दों के प्रयोग द्वारा विवाह की समस्त क्रियाओं की सम्पन्नता प्रदर्शित की है। उसने महाराज अनगपाल[4] एवं नाहरराय[5] की पुत्रियों के विवाहों का मात्र 'पानि ग्रहन' शब्द का प्रयोग करके अभिसूचित किया है—किसी अन्य आचार का उल्लेख नहीं किया। इसी भाँति पुंडीर-दाहिनी के विवाह का विस्तृत वर्णन न करके, उसने मात्र 'हथलेवे' का उल्लेख करा,[6] तथा संयोगिता द्वारा यह प्रतिज्ञा कराकर कि—"हथलेवा करूँगी तो महाराज पृथ्वीराज के साथ—अन्यथा समुद्र में डूब मरूँगी,"[7] 'हथलेवा' शब्द का पूर्ण विवाहार्थी प्रयोग किया [redacted]।

'राजविलास' में कवि मान ने यद्यपि स्वतन्त्र रूप से पानि-ग्रहन[8] शब्द का प्रयोग किया है, तथापि पाणिग्रहण के अवसर पर—राव छत्रसाल हाडा की पुत्री के प्रसंग में 'हथलेवा',[9] तथा रूपकुँवरि के संदर्भ में 'कर ग्रहन'[10] अभिधान प्रयुक्त किए हैं। मान ने हथलेवे के समय प्रचुर धनराशि, हय-गय सुखपाल, मणि मुक्ता, स्वर्णाभरण पहने हुई दासियाँ, गाँव और रेशमी वस्त्रादि देने की प्रथा प्रदर्शित की है[11] जबकि साधारणतया ये वस्तुएँ बारौठी और पलकाचार के समय प्रदान की जाती है। पृथ्वीराजरासो में भी प्रियाकुँवरि की भावरो के समय बहुत सा दायज दिया जाता है।

(७) भावर या फेरे पड़ना —

पृथ्वीराजरासो के इंछिनी विवाह प्रसंग में ज्ञात होता है कि भावरो के समय वर और कन्या पक्ष के कुल गोत्र और प्रवर आदि का उल्लेख करते हुए ब्रह्मा, गृहदेव

---

१ से ३ पृ० रा०' भा० ५५५।८७ वही ७०८०।२०० 'रा० वि० ७।७३

४ से ११ द० क्रम० 'पृ० रा०', भा० १३५।६८३ वही, ३६५।१७८, वही, वही, १३४१।२७ 'रा० वि०' ३।२६, वही, ३।१०२ वही ७।७४, 'रा० वि०', ३।१०२

ताम्रा, अग्नि और ब्राह्मणों की पूजा की जाती थी। चन्द्र सूर्य वह्नि, वरुण बुध एवं पवनादि देवों की साक्षी करके, तथा कुलगुरु द्वारा उपदेश करने के पश्चात् कन्या वामांग में आकर पत्नी बन जाती थी।[1] भाँवरों के समय मन्त्रोच्चार का तो प्राय सभी ग्रंथों में वर्णित विवाहों में उल्लेख किया गया है।[2] परमालरासो में ब्रह्मा की भाँवरों के अवसर पर—चंदेलों के कुलगुरु सिद्धराम महाराज चंदेल का[3] तथा गुरु राम पुरोहित चौहानों का शाखोच्चार करते हैं।[4] इसके अतिरिक्त चौहानों की वंशावली की कवि चन्द विरुदावली सुनाता है किन्तु चंदेलों की वंशावली का भी वर्णन सिद्धराम ही करते हैं।[5] भाँवरों के विषय में एक नई रीति यह मिलती है कि पृथ्वीराजरासो और आल्हखण्ड के विवाहों में भाँवरों के पश्चात कन्यादान प्रदर्शित किया गया है। भाँवरों के पश्चात किया जाने वाला कन्यादान—वस्तुतः उसके शब्दगत अर्थ के विपरीत प्रतीत होता है। उस समय तक तो कन्या कन्या न होकर परिणीता बन चुकी होती है अतः उसे कन्यादान की संज्ञा दी ही कैसे जा सकती है? इस देशाचार में भिन्नता का मूल कारण सम्भवतः आल्हखण्ड में वर्णित वह पद्धति रही है जिसमें भाँवरें पड़ने तक तो कन्या पक्ष वाले वर का शिरोच्छेद करने को प्रस्तुत रहते थे,[6] किन्तु बलात् भाँवरें डाल लेने पर विवश होकर कन्यादान कर देते थे।

(८) कन्या-दान —

जैसा कि पीछे उल्लेख किया जा चुका है वीरकाव्य में अधिकतया भाँवरों के पश्चात कन्यादान करने की प्रथा मिलती है। पृथ्वीराजरासो में इच्छिनी के महाराज पृथ्वीराज के वामांग में आ जाने पर, उसके पिता और माता अपने आँचल बाँधकर यह निवेदन करते हुए कन्यादान करते हैं कि स्वसुता को मैं आपके दासीपन के लिए सौंप रहा हूँ।[7]

---

१ द्रुव कुल वारि विचार कर। ब्याही बाम नरेस।
 ग्रहन पूजि ग्रह देव पुजि। पूजि अगनि दुज देव।
 साषोचार उचार धुनि। प्रसन भए नृप वेव।
 चंद सूर तहाँ साषि दिय। बहू बसन बुध वाह।
 प्रोहित गुर उपदेस करि। वाम अंग तब आइ। —पृ० रा० का० ५५५।८२-८४

२ दे० वही ६४०।६६ रा० वि० ७।७७

३ से ६ 'रा० वि० १५।१६६, पर० रा० १५।१६५ वही—वही 'आ०' पृ० १८८-८६

७ (क) अंत्रु पति पट गठि त्रिय। विनय जारि कर कीन।
 इह कन्या नप सोम सुन। दासपन पन दीन।' पृ० रा०, का० ५५५।८६

(ख) सलम्पराज के सदमगन कथन में स्त्रियों की अधोदशा तथा विवाह के उद्देश्य में भाता हुआ अंतर स्पष्ट झलक रहा है जिसमें कन्या को दासी के रूप में समर्पित करना दिखाया गया है। मनुस्मृति में कन्यादान का उद्देश्य 'साथ-साथ धर्माचरण करना बताया गया है जबकि जगन्नाथ कृत विवाह पद्धति में कन्या

आल्हखण्ड में मलिखान[1] और लाखन[2] की परिणीताओं के पिता भी भाँवरों के पश्चात उनके पद प्रक्षालित करते हुए कन्यादान करते हैं। ऊदल के विवाह प्रसंग में कन्यादान करने के पश्चात भाँवरें पड़ने दिखाई गई हैं।[3]

आल्हखण्ड में भाँवरों के समय लड़की के भाई द्वारा धान बोने की प्रथा का भी निदर्शन हुआ है। (मुजफ्फरनगर जिले में यह प्रथा आजकल भी इसी रूप में मिलती है। जबकि अलीगढ़ के समीपस्थ प्रदेश में यह कृत्य पलकाचार या टीके के समय किया जाता है।) आल्हा विवाह प्रसंग में सुनवा के भाई जोगामल को ऊदल मलिखान से यह कहते हुए जीवित बचा लेता है कि, उसके मारे जाने पर धनववा पहनकर, धान बोने की प्रथा का आचार कैसे सम्पन्न होगा।[4] ब्रह्मा विवाह प्रसंग में भाँवरों के उपरान्त दह बाँधे हुए सूरजमल से बनाफल वलाने धान बुवाकर कन्यादान कराते हुए चित्रित किए गए हैं।[5]

(ख) लहकौरि या कुँवर कलेवा —

स्थल भेद से 'लहकौरि' सम्बन्धी देशाचार के स्वरूप में भिन्नता है। डा० मन मोहन गौतम के अनुसार पूर्वी भारत में—भाँवरों के पश्चात वर और वधू से गृह-देवताओं की पूजा करवाकर, 'जुआ' खिलवाने का कृत्य 'लहकौरि' कहा जाता है। डा० गणेशदत्त ने भी अपने शोध प्रबन्ध में ऐसा ही मत व्यक्त किया है।[6] इसके विपरीत आल्हखण्ड में वर' के कलेवा करने जाने को 'लहकौरि' नामक आचार दिखाया गया है जो ब्रज प्रदेश में 'कुँवर-कलेवा' के नाम से इसी रूप में प्रचलित है।[7] आल्हखण्ड के लहकौरि सम्बन्धी दो प्रसंगों में से प्रथम में सोहन वर को कलेवे के लिए अकेले ले जाना चाहती है,[8] किन्तु ऊदल पुराने कुल में वर के साथ सहबाला जाने की रीति बताकर ब्रह्मा के साथ कलेवे के लिए जाता है।[9] लाखन लहकौरि खाने जाते समय अपने साथ एक मुकना

दान के समय पिता को इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए कि — मैं स्वर्णाभूषणों से अलंकृत यह कन्या, तुम्हें विष्णु को ब्रह्मलोक जीतने की इच्छा से दे रहा हूँ।—हि० हिन्दू संस्कार, डा० राज० पाठ पृ०

१ से ५ दे० क्रम० 'आ० १६०।३ ५ वही, ६०८।८ ११ वही २७८।१५-१८ वही, १३५।१३ वही २२७।८६

६ 'गृहदेवता की पूजा कराकर जो कोहबर के नाम से प्रसिद्ध थी, वर को गालियाँ सुनाई जाती थीं। वहीं पर वर और वधू को जुआ खिलाते थे। यह लहकौरि कहलाती थी। यहीं पर साले का भी नेग होता था।'—मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में समाज चित्रण, टंकित प्रति, पृ० १११

७ 'कुँवर कलेवा या कनऊ में वर के साथ कुछ अन्य अल्प वयस्क बच्चे कलेउ करने जाते हैं। व्युत्पत्ति की दृष्टि से भी लहकौरि शब्द लघु कुँवर का अपभ्रष्ट समास रूप प्रतीत होता है—लेखक

८ ९ दे० क्रम० 'आ० २२६।५ ६, वही, २२६।८ ९

द्वार भी ले जाता है जिस पर गृह-द्वार रोककर खड़ी हुई ननन्द द्वारा नेग मांगने पर, उसे दे देता है[1] और स्वर्ण-थाल में परोसी हुई खीर खाकर लौट आता है।[2]

(थ) समधौरा--

बुन्देलखण्ड की भांति आजकल भी विवाहोत्सव में वर और वधू के पिता एक दूसरे से प्रसन्नता से दही और पान लगाकर गले मिलते हैं। (गोवर्धन क्षेत्र की भांति विवाहोत्सव में यह दृश्य होते समय देखा है।) आल्हखण्ड में इसे समधौरा कहा गया है तथा चौहान के दुल्हा राजा को उल्टे बताते हुए[3] महाराज पृथ्वीराज और परमाल में भाँवरों से पूर्व समधौरा होना लिखाया गया है। पारस्परिक प्रीति प्रकट के माध्यम समधौरे की आलोच्यकालीन क्षत्रियों में विमोचिका का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि महाराज परमाल दिल्लीश्वर के विशाल वक्ष और असीम बल को दृष्टिगत करते हुए, उनसे समधौरा करने में अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए लौट जाते हैं।[4] अनन्तर बड़े भाई को पिता-तुल्य मानने की धारणा के अनुसार[5] इस आचार की सम्पन्नता के लिए आल्हा आता है। दिल्लीपति और आल्हा एक दूसरे के वक्षस्थल में दही मलकर उसके ऊपर पान चिपटा देते हैं और एक-दूसरे से तब तक बार-बार गले मिलते हैं जब तक दोनों अर्द्ध मूर्छित नहीं हो जाते।[6] अन्ततः दिल्लीश्वर भाँवरें डालने प्रस्तुत हो जाते हैं। यह प्रसंग कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण हो सकता है किन्तु गले मिलते समय वर और कन्या पक्ष के क्षत्रिय पिता स्व बल प्रदर्शन भी करने लग जाते होंगे इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता।

(द) दहेज —

पृथ्वीराजरासो और राजविलास में दहेज में प्रदान की गई वस्तुओं की वृहत तालिकाएँ मिलती हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि दहेज में दास दासी और पंडित आदि व्यक्ति,[7] गज अश्व रथादि यान[8] हीरे जवाहरात तथा वस्त्राभूषण[9] और अनेक प्रकार

---

१ २ दे० आ० ४०।१५ ६ वही ४०।१७ १०

३ उलटे नेग होय दिल्ली म उल्टे सबै होय व्योहार।
पान लगाय लेउ छाती में तब बेला की करौ बियाहु।
—आ० २२१।१८ १९

४ से ६ दे० 'आ०' २२१।२१ २३, वही, २२२।६ वही, २२२।१० १४

७ दे० क्रम० 'पृ० रा० का ६६।१५६ गो० क० छ० २७ पर० रा० १५।१८९ 'रा० वि०', ११।७०

८ दे० क्रम० 'पृ० रा० का० १३२।३३८ ६६।२१३ 'रा० वि० ११।६८ ६९, ३।१०२, ७।८७ ८९

९ दे० क्रम० 'पृ० रा० का० ५५।११६ से ५६०।१२५ १६५०।२४८५ 'रा० वि०', ७।६५ ६७

के सोने चादी, कासे और पीतल के बरतन[1] प्रदान किए जाते थे।

(ध) बारात के प्रत्यागमन के समय दान देना —

बारात के विदा होते समय गरीबो एव वदीजन आदि को विविध प्रकार का दान दिया जाता था। इ च्छिनी की विदा के समय मगते निहाल हो जाते हैं।[2] पुडीर-दाहिनी की विदा वेला मे जिस किसी वस्तु की माग की जाती है उसे वही प्रदान की जाती है।[3] जबकि इन्द्रावती की विदा के समय वदियो को अपार दान दिया जाता है।[4] महाराज राजसिंह छत्रसाल हाडा की पुत्री को विदा कराकर लाते समय याचको पर जलधर की भाति कचन-वर्षा करते दिखाए हैं।[5] रूपकुवरि के विदा कराकर लाते समय भी मान ने उनको इसी भाति याचको की इच्छापूर्ति करते चित्रित किया है।[6]

(न) कन्या को माता की शिक्षा —

कन्या के विवाहित जीवन को सुखद रखने की दृष्टि से यद्यपि उसका विवाह से पूर्व भी विनय मगल की शिक्षा प्रदान करने का प्रचलन था तथापि पुत्री की विदा वेला मे भी विह्वल माता उसे गार्हस्थ्य जीवन के लिए उपयोगी शिक्षाएँ प्रदान करना नही भूलती थी। इन्द्रावती की माता उसको पातिव्रत्य धर्म को ही सर्वस्व मानने का उपदेश देती हुई समझाती है कि स्त्री के सुख-दुख उसके पति के जीवन में ही केन्द्रित रहते हैं। अचल सौभाग्यवती रहने के लिए तुम मेरी इस शिक्षा को कदापि न भूलना कि पति की इच्छा अनिच्छा से ही पत्नी का जीवन सुखागार अथवा नारकीय बना करता है।[7]

(प) वर और वधू का स्वागत —

वीरकाव्य में वर्णित सभी बारातें नरेशो की हैं अत वर-वधू का उनके कुल की स्त्रियो द्वारा स्वागत करने के साथ साथ समस्त नगरवासी भी उनके स्वागत में विविध प्रकार के कृत्यो की आयोजना करते मिलते हैं। महाराज पृथ्वीराज द्वारा इ च्छिनी का विवाह करके लौटने पर अजमेर की स्त्रिया उन पर मुक्ता अक्षता की वर्षा करती हैं तथा

---

१ दे० पृ० रा० का० ५६०।१०३-७४ पर० रा० १५।१८६

२ से ६ दे० क्रम० पृ० रा० का०, ५६१।१२८, वही ५७५।१६, वही, १०२७।७०
रा० वि० ३।१०४ वही ७।६८

७ 'मात पुत्ति परठिय सुमति। विधि विवेक विनयान।
पतिव्रत सेवा मुष धरम। इहै तत्त मनि ठान।
पति सुप्प-दुप्पं जनम। पति वच बचाइ।
इहै सीष हम मन धरौ। ज्यौं सुहाग समचाइ।
—पृ० रा० का०, १०२६।६८-६६

मंगल गान करते हुए वर और वरणी की वंदना करते हुए उनका स्वागत करती हैं।[1] पद्मावती प्रसंग में वर वधू की स्त्रियाँ शीश पर कलश धारण करके स्वर्ण थाल में रखे दीपकों से आरती उतारती है।[2] इसी भांति संयोगिता को लेकर दिल्लीश्वर के दिल्ली पहुंचने पर नाना शृंगारों से सज्जित स्त्रियाँ सिरों पर स्वर्ण कलश रखकर मंगल गान गाती हुई स्वागतार्थ आती हैं। उन पर चँवर ढाले जाने के साथ साथ वर और वधू की आरती उतारी जाती है। यही नहीं कुछ स्त्रियां स्ववेश से उनकी चरण धूल को भी साफ करते मिलती हैं।[3]

परमालरासो में ब्रह्मा की बारात लौटकर आने की सूचना सुनकर रानी मल्हना मिष्टान्न की दो लाख तश्तरियाँ तैयार कराती है जिन्हें क्षुधावर्तों को खिलाकर तृप्त किया जाता है।[3] नगर की सभी वीथिकाओं में जरकसी वस्त्र बिछाकर, बारह कोस पर्यन्त बाजार में वितान तानते हुए पावड़े बिछा दिए जाते हैं तथा मार्ग के उभयत की दीवारों को चंदन जल से लीपकर वर वधू के स्वागत की सज्जा की जाती है।[4] महोत्सव के प्रत्येक धाम पर सप्त वर्ण ध्वजाएँ भी फहराई जाती हैं।[5] ब्रह्मा के नगर प्रवेश के समय सौधों पर चढ़ी हुई पुरनारियाँ पुष्प एवं लाजाओं की वर्षा करती है।[6] ब्रह्मा के आगे ले जाई जाती हुई बेला की डोली पर लाखों की संख्या में स्वर्ण सिक्कों की वर्षा की जाती है जिन्हें लोग उठाते चलते हैं।[7]

राजविलास में महाराज के रूपकुँवरि से विवाह करके लौटने के अवसर पर वर वधू के स्वागतार्थ समस्त नगर को सज्जित किया जाता है। उत्तुंग द्वारों पर हीरा प्रवाल मणि और मुक्ताओं के वंदनवार बाँधे जाते है।[8] तोरण द्वारों पर लटकी हुई पुष्पमालाएँ दिगन्त को सुरभित कर देती हैं जबकि उन पर लटकाए हुए मुकुर खंड जटित जरबाफी वस्त्रों की कांति सूर्य की किरणें पड़ने से सहस्रगुणी होकर दृष्टि को ठहरने ही नहीं देती।[9] बाजार को भी रेशमी जरकसी मखमली आदि वस्त्रों द्वारा चित्र विचित्र प्रकार से सज्जित किया जाता है।[10] स्थल-स्थल पर भवनों के ऊपर बैठी हुई शृंगारावेष्टित पौर वधू एवं कुमारिकाएँ मंगल गान गाती है।[11] उत्तमांगों पर जलकुंभ धारण की हुई सुहासिनियों द्वारा महाराज की वंदना की जाती है जो उनके कलशों में स्वर्ण मुद्राएँ डालते है।[12]

(क) कुलदेवी की पूजा —

कवि चन्द की दृष्टि नव-परिणीता वधू और महाराज पृथ्वीराज के समागम वर्णन की ओर रही है अतः उसने इनमें से किसी भी आचार का वर्णन नहीं किया। परमाल रासो में रानी मल्हना ब्रह्मा के विवाहार्थ जाने से पूर्व तथा विवाहोपरान्त दोनों अवसरों पर

१ ७ द० नम० पृ० रा० का० ५६।१।१३८ वही १६।१।२८८८ वही १५।२०८
१० वही १५।२१०-२१२ पृ० रा० १५।२१५ वही, १५।२१८ वही १५। १६
८ से १२ रा० नम० पृ० रा० ७।१०० रा० वि० ७।१०१, वही, ७।१०२, वही, ७।१०३ वही ७।१०४

कुलदवी की पूजा करती हैं।[1] राजविनास म कवि मान न वर वधू द्वारा कुनदेवी की पूजा करने का उल्लेख किया है।[2]

विवाह से सम्बद्ध कुछ अन्य आचार और तथ्य

(क) श्वसुरालय में ही सुहाग रात्रि मनाना —

यह प्रथा या तो प्रदेश विशेष की रीति रही होगी अथवा इसका बाराते कई दिवस तक डटने के कारण प्रचलन रहा होगा। इच्छिनी विवाह प्रसग म भाँवरो क पश्चात ज्यानार होती है।[3] उसके उपरा त सकुचित इच्छिनी को उसकी सखिया महाराज पथ्वीराज के शयनागार म पहुचा आती ह।[4] उनक प्रथम समागम का कवि ने आठ छन्दो मे चित्रण किया है।[5] प्रात काल वर और वधू जनवासे म आकर दान देत है।[6] बारात पाँच दिवस तक आबू म रहन के पश्चात विदा हात प्रदर्शित की गई है।[7]

(ख) सोलह दिवस के उपरा त पिता का पुत्री को शिक्षा देने जाना —

इस प्रथा का परमालरासो म उल्लख मिलता है। बेला को विदा कराकर ले जाने पर भी बारात सालह दिवस तक दिल्ली के ही समीप डटी रहती है जिसके अन्त म दिल्लीश्वर स्व पुत्री को शिक्षा देते (यह गाहस्थ्य धम की ही रही होगी) तथा पुन दहेज प्रदान करत चित्रित किए गये हैं।[8]

(ग) वधू को विवाह के समय विदा न करके एक वष के मध्य गौना करना —

इस लोकाचार का आल्हखण्ड म उल्लेख किया गया है। ब्रह्मा और लाखन की नव परिणीता विवाह के समय विदा नहीं की जाती वरन उन्ह एक वष के मध्य गौना करने की कुल रीति का कथन करत हुए पित गृह म ही रख लिया जाता है।[9] गौने के पश्चात वधू के तीसरी बार आने को आल्हखण्ड म गौना कहा गया है।[1]

(घ) चौथी या नवविवाहिता का प्रथम बार पितृ-गृह आना —

आल्हखण्ड म विवाहोपरान्त लडकी के प्रथम बार पित गृह आने के कृत्य को 'चौथी की सज्ञा दी गई है,'[11] जिससे ध्वनित होता है कि नव विवाहिता चौथे दिवस लौटकर आती होगी। व्रज-प्रदेश म इसे 'दसई कहा जाता है और प्राय नव विवाहिताएँ दसवें

---

१ २ दे० पर० रा १५।२२।, रा० वि०' ७।१०६

३ से ७ दे० क्रम० प० रा०' का० ५५६।८८ वही ।५७।१०० वही ५।८।१०२ वही, ५।८।११० , वही, ५६०।१२० २१

८ से ११ दे० क्रम० पर० रा० १५।१८६ , आ०' २३।१२२ २३ , वही, १५८।२०, आ०', २७८।१२

दिवस ही पितृ गृह लौटती है। इस अवसर पर मिष्ठान्नादि व 'भेन्ट' तथा वर, उसके माता पिता तथा अन्य सम्बन्धियों के लिए वस्त्राभरण भी भेजे जाते हैं जिसका आल्ह खण्ड म भी निर्देश किया गया है।[1]

(ड) कन्याओं को विनय मंगल अथवा सुखी गृहस्थ जीवन की शिक्षा प्रदान करना —

वय सन्धि अवस्था को प्राप्त हुई कन्याओं को, जिनका विवाह आसन्न होता था, उनके भावी गृहस्थ जीवन के साफल्य के लिए तत्सम्बन्धी उपयोगी सूक्ष्मताओं से परिचित कराने के लिए ब्राह्मणी आदि के द्वारा विनय मंगल की शिक्षा दिलाई जाती थी। पृथ्वीराजरासो म संयोगिता को बारह वर्ष नौ मास की आयु म मदना ब्राह्मणी द्वारा सदमगत शिक्षा प्रदान कराई जाती है। संयोगिता के साथ-साथ उसकी एक सौ पाँच सखियाँ भी यह शिक्षा प्राप्त करते प्रदर्शित की गई हैं। रासो म विनय मंगल का उद्देश्य कन्याओं को उस वशीकरण मंत्र से अभिज्ञ करना बताया गया है जिसके माध्यम से मुग्धा और प्रौढ़ा वधुएं स्व-पतियों के चित्त को अपने स्नेह पाश म निबद्ध कर लेती हैं।[2] मदना-ब्राह्मणी द्वारा संयोगिता को दिये गये उपदेश का सार अधोलिखित है —

पत्नी को चाहिए कि वह प्रातःकाल जगकर सर्वप्रथम पति मुख का दर्शन करे और अपने शीश से उसके चरणारविन्दों का स्पर्श करते हुए दैन्य प्रकट करे।[3] भोजन के साथ पति को प्रेम पूर्वक सुस्वादु भोजन स्वयं बनाकर खिलाए।[4] मनसा वाचा कर्मणा सदैव इस तथ्य की ओर सचेत रहे कि तीनों लोकों मे पति से बड़ा देव कोई भी नहीं है। किसी अन्य देव की पूजा या जाप से मनोरथ पूर्ण नहीं हो सकते अपितु पत्नी की मनोरथ सिद्धि पति की कृपा दृष्टि पर ही निर्भर रहती है।[5] पति को भोजन कराकर वह सुरुचिपूर्ण वस्त्रादि पहनकर और नाना शृंगार करके पति हृदय म स्व प्रेम की ग्रंथि लगाने की चेष्टा करे।[6]

पति के प्रति पत्नी को सदैव विनयशील रहना चाहिए। दूतियों या सखियों का कहना मानकर पति से कभी भी मान न करे क्योंकि इससे उसकी कामेच्छा विद्ध होने के कारण उसके हृदय म रोष जाग्रत होता है।[7] मान करने से स्नेह मे क्षीणता आती है उससे भला कभी नहीं होता अपितु दुःख का बीज-वपन होता है। अतः सौभाग्यवती स्त्रियों को इसका शूल के समान परिहार करना चाहिए।[8] मानिनी को सदैव यह स्मरण रखना चाहिए कि उसका यह दुर्गुण उसकी सुखी जीवन रूपी वाटिका को तुषार की भाँति दग्ध कर देगा।[9]

मान करने के विपरीत विनयशीलता गुणागार है। उसमे दोष तो लेशमात्र भी नहीं होते।[10] विनय का आचरण ज्यों ज्यों अधिक किया जाता है पति उसी अनुपात म

---

१ दे० क्रम० आ २८०।१८ २२

२ से ७ दे० पृ० रा० का० १२६६।५७ वही १२६६।५६ वही १२२६।६२, वही १२६६।६२ ६३, वही १२६७।६४ ६५, वही १२६७।६७ ६८

८ से १० दे० पृ० रा० का० १२६८।७६ १२६६।७९

पत्नी की ओर अधिकाधिक आकर्षित होता जाता है।[1] विनय से रमणी पति का गलहार बन जाती है। वयक्रम के साथ साथ, कन्याओं में चापल्य के स्थान पर विनम्रता का प्रादुर्भाव अत्यावश्यक है, क्योंकि यह गुण स्त्री शृंगारों में शीर्षस्थ स्थान रखता है। वय संधि की अवस्था में विनय अमृत के समान गुणकारी होता है और इस अवस्था वाली पत्नियों के लिए यही एक ऐसा अमोघास्त्र होता है जिसके माध्यम से वे सपत्नियों की ईर्ष्या से परित्राण पाती हुई, कंत को स्ववश में कर सकती हैं।[3]

मदना ब्राह्मणी विनय मंगल का उपसंहार करती हुई उसकी महत्ता पर प्रकाश डालती हुई संयोगिता से पुनः कहती है कि तुम सुखी गृहस्थ जीवन की आकांक्षा करने पर विनय के पालन में कमी भी असावधानी न करना। स्त्री जीवन में विनयशीलता का महत्त्व शरीर के लिए 'जीव' की भाँति अपरिहार्य होता है। उसके अभाव में पत्नी अधम कही जाती है तथा पति भी उसे नाना क्लेश पहुँचाता है जबकि उसका अनुपालन करने से पति अनुदिन वश में होता जाता है।[4] समस्त जलचर थलचर और नभचर पशु पक्षियों की मादाएँ भी इसको स्व साथियों को वश में करने के लिए प्रयोग करती पाई जाती हैं। स्त्रियों का जीवन तो विनय के अभाव में मरुस्थली की भाँति सर्वदा नीरस ही हो जाता है।[5] संयोगिता पर इस उपदेश का बड़ा प्रभाव पड़ता है, और वह निश्चय कर लेती है कि मैं अपने कंत के समक्ष अधिकाधिक विनम्रता का आचरण करूँगी।[6]

(च) बहु विवाह प्रथा —

आलोच्यकालीन नरेशों में हम बहु-पत्नीत्व प्रथा का प्रचलन पाते हैं। यथा राजा तथा प्रजा की लोकोक्ति के अनुसार यह सर्वथा स्वाभाविक है कि राजेतर वैभव सम्पन्न व्यक्तियों में भी यह प्रथा प्रचलित रही होगी जबकि जन-सामान्य अपनी अपनी विभिन्नता अथवा सम्पन्नता के अनुसार, एक या एकाधिक पत्नियों से विवाह करते होंगे।[7]

महाराज पृथ्वीराज के दस पत्नियाँ प्रदर्शित की गई हैं जबकि शाह गौरी के हरम में पाँच सौ दस बेगमें दिखाई गई हैं।[8] महाराज वीसलदेव के भी रासाकार ने अनेक रानियाँ प्रदर्शित की हैं।[9] महाराज परमाल की रानियों की संख्या परमालरासो

---

१ से ३ दे० अम० पृ० रा० का० १२६६।८२ से १२६६।८४

४ से ६ दे० 'पृ० रा० का० १२७०।६० १२७२ १०६

७ महाराज पृथ्वीराज के स्वर्गमन इच्छिनी पुंडीर-दाहिनी, इंद्रावती, हंसावती, शशिव्रता, पदमावती और संयोगिता आदि दस रानियाँ दिखाई गई हैं —
— पृ० रा० का०, पृ० २१०३

८ पंच सत्त दस हरम। साह कामी तप भारी। —पृ० रा० का० ७२५।३१४

६ तब सकल भइय एकत्र नारि। पुरुपातन तिन वध्यौ विचार।' वही, ७४। ३७१

में एक सौ साठ दी गई हैं।[१] तथा उनके पुत्र ब्रह्मा की पचास पत्नियां निगाह गयी हैं।[२]

अन्त्येष्टि —

अन्त्येष्टि सम्बन्धी यत्र तत्र मिलने वाले निर्देशों तथा महाराज सोमेश्वर के निधन पर उनके पुत्र पृथ्वीराजजी द्वारा अनुपालित आचारों व विवरणों से अन्त्येष्टि के विषय में अधोलिखित तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है —

ब्रह्म रंध्र से शरीर-त्याग करने वालों के विषय में यह धारणा प्रचलित थी कि उन्हें निश्चय ही हरिपुर का अधिवास प्राप्त हुआ होगा। परमालरासो में महाराज चन्द्र ब्रह्मा[३] तथा वीरचरित्र में महाराज मधुकरशाह[४] द्वारा ब्रह्म रंध्र से प्राण-त्याग करने पर सद्गत धारणा व्यक्त की गई है।

युद्ध क्षेत्र में वीर गति प्राप्त करने वालों के पारिवारिक जनों के शोक मनाने को अनुचित समझा जाता था। महाराज पृथ्वीराज को स्व पिता के निधन पर यही कह कर सांत्वना दी जाती है कि आपके पिता ने क्षत्रियों के धर्मानुकूल वीरगति प्राप्त की है अतः आपका शोक करना उचित नहीं है।[५] हम्मीररासो में तो वीर पुरुष और सती स्त्री के देहावसान पर मंगलोत्सव मनाने का परामर्श दिया गया है।[६] मृत्यु के विषय में यह धारणा भी प्रचलित थी कि हंस में हंस अथवा पंचतत्व पंचतत्व में विलीन हो गए हैं।[७]

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक दुःखकातर हुआ करती हैं। वीरकाव्य में हमें उन्हीं के विलाप और छाती पीटने के निर्देश मिलते हैं। मलिखान का निधन सुनकर हिन्दू स्त्रियाँ उच्च स्वर में विलाप करते प्रदर्शित की गई हैं[८] जबकि केशव ने मुस्लिम स्त्रियों को अबुल फजल के निधन पर छाती पीटकर शोकाभिव्यक्त करते प्रदर्शित किया है।[९] भूषण ने भी जंगल में भटकती हुई मुस्लिम स्त्रियां छाती पीटकर रोती हुई चित्रित की हैं।[१०]

वीरकाव्य में किसी पुरुष की शव यात्रा का चित्रण नहीं मिलता, अतः उसके

---

१ एक सत साठ रानी सहित राजा परमाल चलत भय। —पर० रा० वाच० प० ५४१

२ पचीस दुय नारि ब्याही तुम्हारी मत्र सुन्दरी शाह चाहत यारी।' वही २६।३१

३ रानिन स्यों हरिपुर गयव ब्रह्म रंध्र तजि प्रान। — पर० रा० २।६६

४ ब्रह्म रंध्र मग छांडि सरीर हरिपुर गयो नपति रणधीर। — वी० च० २।३६

५ 'करत दुक्ख चहुआन, बरजि प्रम्मार स्यध तह।
आदि ध्रम्म छत्रीनि करण सताप समर ग्रह। —पृ० रा० मो० ३।८८

६ 'सती सूरमा पुरुष को मरत ही मंगल होय।' — ह० रा०, छ० ६६६

७ स १० दे० क्रम० प० रा० ना० ११४७।११८, पर० रा० ११।३४, वी० च०, ६।१५, शि० बा०', छ० ६

नायकों (मुख्यतः क्षत्रियों) की शव-यात्रा सम्बन्धी विवरण के लिए कर्नल टॉड के विवरण की सहायता अपेक्षित है। इससे ज्ञात होता है कि राजपूत योद्धाओं को दाहकर्म के लिए ले जाते समय उनके प्रत्येक शरीरांग को उनकी जीवितावस्था की भाँति शस्त्र सज्जित किया जाता था। उनकी पीठ पर ढाल बाँधी जाती थी जबकि उनका सामरिक चिह्न उनके हाथ में दे दिया जाता था। उनकी सवारी का अश्व भी श्मशान भूमि तक ले जाया जाता था जिसका बलिदान न करके, उसे ईश्वरार्पित करते हुए पुरोहित को सौंप देते थे।[1] व्रजभाषा के वीरकाव्य में हम अन्त्येष्टि की तीन विधियों के दर्शन होते हैं। हिन्दू युद्ध में खेत रहे वीरों के शवों का अग्निदाह,[2] अथवा उन्हें नदियों में प्रवाहित करते थे[3] जबकि मुसलमान उनको भू-निखात करते हुए उन्हें जमीन में गाड़ते थे। अग्निदाह को परमालरासो में बहि देना कहा गया है[4] जबकि छत्रप्रकाश में दाग देना। छत्रप्रकाश में गोरेलाल ने कबरों के लिए गोर शब्द प्रयोग किया है।[5]

पिता की मृत्यु पर पुत्रों के लिए भूशयन आदि कृत्यों तथा अशौच की शास्त्रकारों ने विभिन्न वर्णों के लिए पृथक् पृथक् अवधियाँ निर्धारित की हैं।[6] महाराज पृथ्वीराज स्व पिता के निधन पर बारह दिन तक भूशयन करते हैं।[7] भूशयन के साथ साथ वे इन आचारों का भी पालन करते हैं कि—इन दिनों में वे मात्र एक बार भोजन करते हैं, तथा भोग-विलास सम्बन्धी सभी प्रकार के कृत्यों से विरत रहते हैं।[8] आजकल भी इन आचारों का प्रायः इसी रूप में पालन होता है।

मृतक की आत्मा की परिशान्ति के लिए पिण्डदान किया जाता था। शास्त्रकारों ने अशौच दिवसों में भिन्न भिन्न प्रकार के पिण्डदान करने का विधान किया

---

1 'A Rajput warrior is carried to his funeral abode armed at all points as when alive his shield on his back and brand in his hand while his steed though not sacrificed is often presented to the diety, and becomes a prequisite of the priest

— Annals and antiquities of Rajasthan Vol I p 61

२ से ५ दे० भ्रम० छ० प्र०, २०।१५ मु० च०' ६।३।=, 'पर० रा०' २५।६७, छ० प्र०' २०।१५

६ डा० राजबली पाण्डेय के अनुसार—"गृह्य सूत्रों में ब्राह्मण और क्षत्रियों के लिए अशौच की अवधि दस दिन वश्यों के लिए पन्द्रह तथा शूद्रों के लिए एक मास बताई गई है, जबकि सम्प्रति वह ब्राह्मणों के लिए दस दिन, क्षत्रिय के लिए बारह दिन, वश्य के लिए पन्द्रह तथा शूद्रों के लिए एक मास है—दे० हिन्दू संस्कार, पृ० ३२५-२६।' महाराज पृथ्वीराज का बारह दिवस तक भूशयन, इस परवर्ती प्रथा का अनुसरण है।

७-८ दे० 'पृ० रा०', का० ११४८।१२३

है।[1] महाराज सोमेश्वर के निधन पर अग्नि विशेष प्रकार के पिण्डदाना का तो उल्लेख नही किया गया है अपितु षोडश दान अर्थात् भूमि, आसन, जल, वस्त्र, अन्न, ताम्बूल, छतरी, मुर्गा घृत द्रव्य, पुष्प मालाए, फल शय्या, पादुका, धनु कचन और रजत[2] का दिया जाना चित्रित करके, उनकी अभिपूर्ति करा दी गई है।[3] पृथ्वीराज तरहवें दिवस स्नान करके, अपने दिवगत पिता को जलाजलि देते हैं[4] तथा पुन स्वर्ण से खुर और सीग मढ़ी हुई गाया का दान देते हैं।[5] देहवसान के तरहवें दिवस जलाजलि और दान देने का कवि मान और गोरेलाल[6] ने भी प्रचलन दिखाया है।

गया म पिंड-दान अथवा पितृ-तर्पण को लोक धारणा म बडा महत्व दिया जाता है। इस जन धारणा की आल्हखण्ड में विवृति हुई है। उसम पुत्रो के जोगी हो जाने पर दिवगत पिता की आत्मा इस दुश्चिन्ता म ग्रस्त चित्रित की गई है कि अब मेरी गया कौन करायेगा।[7] वश हीनता को प्राप्त हुए नरेश जम्बे भी वनफलो स यह निवेदन करते हैं कि मेरे वश मे पितरो को पानी देने वाला कोई नही है अत आप मेरी खोपडी को गया म सिरा देने की कृपा करना।[8]

---

१ डा० राजबली पाण्डेय के अनुसार— मृतक को प्रथम अग्नि चावलो के गोले का पिण्डदान दिया जाना इस धारणा पर आधृत है कि वह प्रेत के शरीर (पिण्ड) के अवयवो का पूरक माना जाता था। उन्होंने आगे स्पष्ट किया है कि पिण्डदान के विधानानुसार—पहले दिन मृतक की क्षुधा और तृषा को तृप्त करने तथा उसके भावी शरीर की रक्त नालियो के निर्माण के लिए एक भात पिण्ड पानी का एक घडा तथा अन्य खाद्य पदार्थ देने चाहिए दूसरे दिन मृतक के श्रवण नेत्र और घ्राण क निर्माण के लिए पिण्डदान करना चाहिए। तीसरे दिन गले कन्धे बाहु और वक्ष स्थल के निर्माण के लिए इसी विधि से नवें दिन तक मृतक के विविध अगो क निर्माण के लिए पिण्दान करने चाहिए। —दे० हिन्दू सस्कार, पृ० ३३५

२ "भूम्यासन जल वस्त्र प्रदीपान्न तत परम। ताम्बूलच्छत्रग धाश्च माल्य फलमत परम।

शय्या च पादुका गाव काचन रजत तथा। दानमेवत् षोडशक प्रेतमुद्दिश्य दीयते।"
—केशव ग्रथा०, मा० ३ प० ८०४

३ 'सुर्यो राज प्रथिराज। भूमि सिज्जा अवधारिय। तात काज तिन। दान षोडस विस्तारियौ। —प० रा०, का० ११४७।१२३

४ से ८ दे० क्रम० प० रा०, का० १४४७।१२४, वही १२००।५ 'रा० वि०' ३।१३६, 'छ० प्र० ६।६, 'आ० ५०।३ ७

६ 'पानी दिवया कोई नाहीं रह्यो गुण करि डारी वसकी हानि।
हमरी खुपडी ऊदनि सके तुम काशी म दीजो सिराय।' वही, १०६।६१०

सती प्रथा —

पति के शव के साथ जलने की प्रथा हमारे आलोच्यकाल के पहले भी प्रचलित थी,[1] किन्तु उसका इतना अधिक प्रचलन कभी नहीं रहा, जितना विवेच्यकाल मे मिलता है। हमारी काल सीमा के अंतिम वर्षों में उसे अवैध घोषित कर दिया गया था,[2] अतः यह मुख्यतः हमारे आलोच्यकाल का ही सौभाग्य या दुर्भाग्यपूर्ण आचार रहा है।

सती होने के विवरण पृथ्वीराजरासो, परमालरासो, गोरा बादल की कथा तथा आल्हखण्ड में मिलते हैं। हम्मीररासो, हम्मीर हठ और सुजान चरित में जौहर प्रथा दिखाई गई है जिसकी मूल भावना सती प्रथा से सादृश्य रखते हुए भी उसका इस दृष्टि से पृथक् विवेचन किया गया है कि उसमें पत्नियाँ प्रायः पति से भी पूर्व मृत्यु का वरण करती थीं।

पृथ्वीराजरासो में कमास की पत्नी अपने पाँच-वर्षीय अल्प वयस्क पुत्र की भी चिन्ता न करते हुए सती हो जाती है।[3] उसमें प्रियाकुंवरि और पांच सहस्र अन्य राजपूत रमणियाँ भी स्व पतियों के निधन पर सती होते चित्रित की गई हैं।[4]

परमालरासो में महाराज परमाल की पाँच-वर्षीय बाल्यावस्था को देखते हुए प्रजा उनकी माता मालवती का सती होना पसन्द नहीं करती, किन्तु वे सती हो जाती

---

१ (क) 'डा० बेनीप्रसाद ने, ऋग्वेद की एक ऋचा के आधार पर — जिसमें विधवा को सती होते तो नहीं दिखाया जाता किन्तु वह पति के शव के साथ श्मशान भूमि में लेटती है, ऋग्वेद काल में सती प्रथा सिद्ध करने वाला का विरोध किया है। विरोध करते हुए भी वे यह स्वीकार करते हैं कि पति के शव के साथ लेटने का कृत्य, किसी और भी प्राचीन प्रथा का अनुकरण रहा होगा जिसमें स्त्री को कदाचित् सचमुच ही पति के शव के साथ गाड़ा या जलाया जाता था। उनके मत में सती प्रथा का प्रचलन मौर्य काल में कुछ विदेशी जातियों के अनुसरण पर आरम्भ हुआ था।' —दे० 'हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता' पृ० ५४ तथा ३३६

(ख) श्री राहुल सांकृत्यायन ने सती प्रथा का प्रचलन गुप्त काल के पश्चात् स्वीकार किया है। —दे० 'मानव समाज', पृ० १६७

(ग) "डा० ब्रजनारायण शर्मा ने मत व्यक्त किया है कि आठवीं शताब्दी तक सती प्रथा राजकुलों तक सीमित थी।" —दे० सोशल लाइफ इन नार्दन इण्डिया', टंकित प्रति, पृ० ३०

२ यह (सती प्रथा) मुख्य रूप से राजपूताने में प्रचलित थी। १८३५ ई० में लार्ड विलियम बेंटिङ्क ने अंतिम रूप से इस प्रथा का अन्त कर दिया।' — हिन्दू संस्कार' पृ० ३१६

३ ८ दे० क्रम० 'पृ० रा०', मो० ३।४६१।६५, पृ० रा०', का० २३७३।१६२२,

है।[1] उसमें सजमराय की पैंतालीस,[2] ब्रह्मा की पचास,[3] लाखन की पच्चीस[4] तथा अन्य वीरों की दस सहस्र पत्नियाँ[5] सती होते प्रदर्शित की गई हैं, जबकि आल्हा ऊदल की माता ब्रह्म-रंध्र से शरीर त्याग करती है।[6]

गोरा बादल की कथा में गोरा युद्ध में जाने से पूर्व ही उसमें अपना मरण निश्चित जानकर पत्नी को स्व जूड़ा में से कुछ केश काटकर दे जाता है जिससे वह उनके साथ सती हो सके।[7] जटमल ने आगे चलकर गोरा की पत्नी को उसकी पगड़ी के साथ सती होते प्रदर्शित किया है।[8] परमालरासो में ऊदल और ब्रह्मा की पत्नियों को उनके अनुकों के साथ सती होते दिखाया गया है।[9] हम्मीरहठ में पति के खड्ग के साथ भी सती होने की प्रथा की अभिव्यजना हुई है।[10] कहना न होगा कि पति के वस्त्र और पगड़ी के साथ सती होने की प्रथा का उल्लेख निकोलस विलिंगटन नामक यात्री ने भी किया है। उसके अनुसार गवर्नर के आदेश की अवहेलना करती हुई एक दस वर्ष के लग भग आयु वाली पत्नी अपने सैनिक पति के खेत रहने का समाचार पाकर उसके वस्त्र और पगड़ी के साथ सती हुई थी।

राजविलास में महाराज गहादित्य के निधन के समय उनकी पत्नी धनवती सती होते मिलती है।[11]

आल्हखण्ड में मलिखान पत्नी गजोमतिन[12] तथा ब्रह्मा की पत्नी वेला[13] सती होते प्रदर्शित की गई है। वेला के प्रसंग में यह निवेदन अप्रासंगिक न होगा कि डा० वेणीप्रसाद ने वेला का सती के पर्यायवाची रूप में प्रयोग दिखाते हुए कहा है कि—"गुप्तकाल में वेला अर्थात सती की प्रथा का बहुत सम्मान था।[14] आल्हखण्ड में उल्लिखित वेला, लोक धारणा में विद्यमान सती प्रथा का ही तो मूर्तिमान रूप नहीं है क्योंकि महाराज पृथ्वीराज के वेला नामक पुत्री का होना अन्य साक्ष्यों से समर्थित नहीं है।

रासोकार ने चित्ररेखा नामक पात्रा को मीर हुसेन के साथ कबर में गड़ते दिखाकर मुस्लिमों में भी विशेष प्रकार की सती प्रथा दिखाई है।[15] कबर में गड़ने की यह प्रथा मिस्र में प्रचलित थी[16] और विदेशी यात्रियों ने दक्षिणी भारत में भी इससे साम्य रहने

---

१ से ८ दे० क्रम० 'रा० रा०' ६।४२ वही ३७।५२ वही ३७।६८, वही ३७।९१, वही ३७।७३ वही ३७।८१ गो० क० छ० ८८ वही, छ० ७९०

९ १० दे० क्रम० प० रा० ३७।७५, ह० ह० ग्वाल छ० २२३

११ 'निज उअर फारि काढयो गरम पावक पिंड पइटठयो।
सनि धन्य कहै सुर धनवती पति सम प्रान परटठयो।' —रा० वि० ११।३७

१२ १३ दे० 'आ० ४४१।११ वही६०८।१३

१४ 'हिन्दु० की पुरानी सभ्यता पृ० ४०२

१५ परयो हुसन सु पात्र सुनि चिंतिय चित्त इमान।
सन्यो घोर हुस्सन सथ, करयो प्रवेस अपान। —प० रा०', मो० १।२६६।७१

१६ मिस्र में राजाओं के शव उनकी रानियां, दास, दासी आदि सुख की सामग्रियों के→

वाली प्रथा दिखाई है।[1] डा० सत्यकेतु विद्यालंकार ने भारतीय-मुस्लिमों में भी सती प्रथा का धार्मिक प्रचलन होने का उल्लेख किया है।[2]

वीरकाव्य में सती होने के मुख्य प्रयोजन पतियों के साथ सतत् ससर्ग, स्वर्ग प्राप्ति तथा मातृ और पति कुल को यश के उज्ज्वल प्रदर्शित किया गया है जबकि सती न होने वाली स्त्रियों को नरक वास मिलने का उल्लेख किया गया है। पृथ्वीराजरासो के महोबा खंड में ऊदल की पत्नी सती होने की आवश्यकता पर प्रकाश डालती हुई कहती है कि पति की मृत्यु हो जाने पर जीवित रहने वाली स्त्रियों के लिए सदा में नरक वास मिलने का विधान किया गया है।[3] जीवित रहने के साथ-साथ पुनराशा (पुन विवाह) करने वाली स्त्रियों तो घोर नरक की अधिकारिणी बताई गई हैं।[4] प्रिथा कुवरि आदि पाँच हजार स्त्रियों के सती होकर स्वर्ग में स्व-पतियों से जा मिलने का उल्लेख करके चन्द ने सतियों को स्वर्ग प्राप्त होने की धारणा का अभिद्योतन किया है।[5]

परमालरासो में लाखन की पत्नियाँ सती होने से पूर्व कहती हैं कि "प्राणेश्वर आपसे सम्मिलन-हेतु हम शीघ्र ही आपके समीप स्वर्ग में आ रही हैं।[6] उनके सती होने पर परमालरासोकार ने उन्हें इन्द्रलोक को स्वराजधानी बनाते हुए उनका सत्यलोक में मग्न चित्रित किया है।[7] उसने वहाँ की पत्नियों का स्वपति के साथ स्वर्गलोक में साढ़े तीन करोड़ वर्ष पर्यन्त स्वर्गीय विहारों का उपभोग करते प्रदर्शित किया है।[8]

→ साथ पिरामिडों में बैठ दिए जाते थे। यूनानियों, रूसियों, स्लाव आदि कई प्राचीन जातियों में पति के साथ स्त्रियों को गाड़ने और जलाने की प्रथा थी, किन्तु यह प्रथा राजाओं, सामन्तों और श्रीमन्तों तक ही सीमित थी।

—हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, पृ० १६८

१ (क) टेवर्नियर के अनुसार कोरोमण्डल में सती होने की एक विधि यह भी थी कि आदमकद से एक दो फुट गहरे गड्ढे में स्त्री पति के शव के साथ खड़ी हो जाती थी। गड्ढे को मिट्टी से भरकर लोग उसके ऊपर नाचते-कूदते थे, जिससे स्त्री का दम घुट जाता था। —दे० टेवर्नियर भाग २ पृ० १६८

(ख) थवेनाट नामक यात्री ने इस विधि में यह अन्तर प्रदर्शित किया है कि जब गड्ढे में स्त्री की गर्दन तक मिट्टी भरी जा चुकी होती थी, तो स्त्री की गर्दन दबाकर उसका दम घोट दिया जाता था। —दे० वही, पृ० १६८ की पा० टि०

२ दे० 'भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास' पृ० ४३४

३ ठकुरानी ऊदलि की वानिय। सुनियहु साम वचन यह बोलिय।
निहचे बद नरक तहिमाणे। पिय को मरत त्रिया तन राषे।"
— पृ० रा०', का० ६५५६।३४१

४ 'पीयहि मरत जीया रहै। कर पुन की आस।
वह नारी निहचै करि। घोर नरक मे वास।' वही, २५५६।३४२

५ से ८ दे० क्रम० 'पृ० रा०' का० २३७१।१६२ 'पर० रा०' ३७।९१, वही, ३७। ९६, वही, ३७।७०

आल्हखण्ड में ढाल पद्मसन के रूप में सती प्रथा के विरोधियों का यह तर्क प्रस्तुत कराया गया है कि मृतक पति के साथ जीवित स्त्री का प्राणाहुति देना व्यर्थ है, क्योंकि इससे पति तो जीवित नहीं हो जाता, पत्नी को वृथा ही अपने जीवन से हाथ धोना पड़ता है।[1] ढाल पद्मसन के इस प्रश्न के उत्तर में अभिराम-पत्नी गजमोतिन के अनुसार, इस प्रथा में समाज के मन का अभिप्राय प्रतीत होता है। वह कहती है कि 'पति को प्राण प्रिय कहा जाता है जिसकी सार्थकता उसके मरण पर पत्नी द्वारा प्राण-त्याग करने से ही सिद्ध होती है। इसके साथ ही सती होने वाली पत्नी को युगों तक कीर्ति मिलने के अतिरिक्त उसे और अन्य लाभ भी होते हैं उसकी इस सक्रिया से क्रमश अभिवृद्धि होती है, स्वर्ग का अधिवास प्राप्त होता है, उसके सास और ससुर के कुल का यश विस्तार होता है तथा उसके मातृकुल की भी कीर्ति प्रसारित होती है।'[2] सती होने से वीरकाव्य में उल्लिखित लाभ धर्म प्रथा में निर्दिष्ट ऐसे अलौकिक लाभों से बहुत कुछ सादृश्य रखते हैं।[3]

सती होने की विधि —

सती होने का विवरण विवाहावसर पर होने वाले आचारों से सादृश्य रखता है। विधवा को भाँवरों के समय की भाँति सोलह शृंगार से सज्जित किया जाता था। मुख में पान का बीड़ा तथा हाथों में नारियल लेकर सती होने के लिए गाजे बाजे के साथ श्मशान भूमि को प्रयाण करती हुई उसकी यात्रा नव वधू की विदा के समान प्रतीत होती थी। उसी भाँति वेद मन्त्रोच्चारण, चिता की परिक्रमा आदि दृश्य हठात् उन स्मृतियों को कौंधा देते हैं जब इन्हीं आचारों का पालन करते हुए वर-वधू ने एक-दूसरे का आजन्म साथ देने की प्रतिज्ञाएँ की थीं।

पृथ्वीराजरासो में रावल समर विक्रम की पत्नियाँ को जब उनके निधन का

---

१ 'मरी मिहरिया क्यों तन जारे जीवत इस मुर्दे के साथ।
मरे पिया तेरे ना मिलि हैं नाहक दी है प्राण गमाय।' —आ० ४४०।२२ २३

२ दे० आ०, ४४१।१६

३ डा० राजबली पाण्डेय ने धर्मप्रथा के अनुसार सती होने के अलौकिक लाभों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि पति के मर जाने पर जो स्त्री हुताशन (अग्नि) पर आरोहण करती है वह अरुंधती (वसिष्ठ की पत्नी) के समान आचार वाली स्वर्गलोक में महत्ता को प्राप्त होती है। साढ़े तीन करोड़ जो रोम मानव शरीर में होते हैं पति का अनुगमन करने वाली स्त्री उतने वर्षों तक स्वर्ग में निवास करती है। जिस प्रकार साँप का पकड़ने वाला साँप को बिल से निकाल देता है वैसे ही अधोगति से अपने पति को बचाकर उसके साथ स्त्री स्वर्ग को जाती है। पति का अनुगमन करने वाली नारी अपने माता पिता तथा भर्ता तीनों के लोकों को पवित्र करती है। —'हि दी सा० का० वृ० इति०', प १५१

समाचार ज्ञात होता है तो वे प्रेम पथ का अनुसरण करती हुई सती होने का संकल्प करती हैं। तदर्थ वे अपना समस्त प्रकारीय शृंगार करके मुक्ता और मणियों के हारादि धारण करती हैं तथा सती होने के लिए यमुना तट पर जाने हेतु अश्वारूढ होती है। नगर के नर-नारी इस कारुणिक दृश्य को देखकर हाहाकार कर उठते हैं किन्तु वे स्वचित्तों पर म्लानता की रंचमात्र भी छाया नहीं पड़ने देती, वे मुक्ताओं के अक्षत क्षिप्त करते हुए मुखों से हरिहर का जाप करती हुई करों में नारियल लेकर बिलखती सखियों को छोड़कर सती होने के लिए यमुना-तट की ओर प्रयाण आरम्भ कर देती हैं। अन्य सूर सामंतों की भी पांच सहस्र पत्नियां शृंगाराभूषणों से सज्जित होकर स्वपतियों से मिलनाकांक्षा लेकर यमुना-तट पर पहुंचती हैं।[1] उनके लिए चंदन-दारु से सामर्थ्यानुसार लघु और दीर्घ मंदिराकृति चिताएं बनाई जाती हैं। मंदिर जैसे आकार वाली चिताओं में प्रवेश मार्ग बने हुए थे, तथा उनको पुष्पों और वस्त्रों से भलीभांति सज्जित किया हुआ था। सती होने से पूर्व वे स्त्रियां दान में रथ हाथी अश्व, मणि मुक्ता तथा धेनुएँ प्रदान करती हैं। विप्र वेद मंत्रों का उच्चारण करते हैं जबकि जनसमुदाय उन पर चारों ओर से पुष्प वर्षा करता है। उनको स्वर्ग ले जाने के लिए आतुर देवगणों के विमान उनके शीशों पर मँडराने लगते हैं। अन्ततः वे स्वशरीरों को हव्य सामग्री की भांति चिताओं की अग्नि में हवन कर देती हैं।[2]

परमालरासो में ऊदल पत्नी के लिए गया-क्षेत्र में सर रचना की जाती है। वह वहां गंगा नदी में स्नान करके देव दर्शन करती है तथा स्व शरीर को कुंकुम चर्चित करके वस्त्राभूषण धारण करती है। अपनी सास के चरण स्पर्श करते हुए ऊदल पत्नी स्वपति का अंशुक लेकर अग्नि प्रवेश करती है, और देखते ही देखते उसे देव विमान स्वर्ग ले जाते हैं।[3] लाखन की पत्नियों को जब उसके निधन का समाचार ज्ञात होता है तो वे उसके [illegible]शुका को शीशों पर धारण किए हुए शीघ्र ही सत्यलोक में उसके समीप पहुंचने का कथन करती हुई सती होने चल देती हैं। सहस्रों दास चंदन की लकड़ियां लेकर गंगा-तट पर आते हैं और उनके लिए सरथी बना देते हैं। सती होने से पूर्व वे नावों में बैठकर हरिस्मरण करती हुई गंगा में जलकेलि करती हैं। तट पर आकर वे दान देती हैं और वस्त्राभूषणों से अप्सराओं की भांति सज्जित होकर सरों पर बैठ

१ 'पृ० रा०' मा० २३७०।१६२० २२

२ चंदन मंदिर दारु। रचिय वर दिप्पय लघ्घु दर।
विवह कुसुम वर राहि। सोहि पर बसन सुरह वर।
जिय जव नद दान। रथय हय गय अगता मनि।
विप्र वेद उच्चरहि। धेन मुरवर आयामनि।
त्रिय लोक लोक अं जुलि कुसुम सजि विमान सुर सिर फिरहि।
सकु मिय अप्प साहागवनि। मझि गवन हाव्वहि हरहि।' —वही, २३७१।१६२३

३ दे० 'पर० रा०' ३७।६६

जाती है।[1] पद्मिनी में शक्ति प्राप्त की जाती है जिससे उसके सारे शरीर की दुर्गन्ध नष्ट हो जाते हैं किन्तु उसकी छाया को सूर्य के किरण [illegible] के पति के प्राण ले जाते हैं। बड़ी की [illegible] के [illegible] हुए [illegible] किन्तु है [illegible] हाथों से मालिन्य मैलापन नहीं होते जाती है।[2]

[illegible] में [illegible] होने के लिए [illegible] सोलह सब तरह की रचना की जाती है। [illegible] हुए [illegible] बाद बनाए जाते हैं। गजगामिनी का [illegible] और [illegible] शृंगार [illegible] किया जाता है जिसमें पुष्पादि और सिन्दूर से उसकी मांग भी भरी जाती है तथा [illegible] की अधीर चूड़ियाँ पहनाई जाती हैं। [illegible] और [illegible] के [illegible] तथा [illegible] नहीं हुई [illegible] जाती है। मुख में पान का बीड़ा [illegible] हाथ में नारि[illegible] [illegible] की ओर बढ़ती है तथा [illegible] और [illegible] को स्मरण करके [illegible] जाती है। [illegible] जाती है और [illegible] हुई [illegible] पति के साथ भस्मीभूत हो जाती है।[3]

[illegible] पति [illegible] और [illegible] सोलह शृंगार की [illegible] रचना की जाती है। उन सौभाग्यवती स्त्रियों की भाँति सोलह शृंगार करके [illegible] होने का वर्णन किया गया है। उनकी मांग भी भरी जाती है तथा [illegible] में महावर लगाया जाता है, यह भी गजगामिनि की ही भाँति पान का बीड़ा चबाती हुई हाथों में नारियल लेकर सती होती है।[4]

(घ) सती प्रथा सम्बन्धी अन्य उल्लेख्य तथ्य

(१) सतियों में सत का प्रादुर्भाव —

सती होने का निश्चय करने वाली स्त्रियों में [illegible] में विशेषता तथा गुण [illegible] एक विशेष प्रकार का सत आ जाता था जिसे ईश्वर प्रदत्त समझा हुआ कहा जाता था कि जिसके [illegible] सती होने में [illegible] सत [illegible] किया है। वीर-काव्य में सत सम्बन्धी [illegible] की उस मनोवृत्ति का पता चलता है जिसमें [illegible] चित्तवृत्तियों को यथाशीघ्र पति के सन्निकट पहुँचने की आतुरता की ओर केन्द्रित कर रखी थी। [illegible] विविध प्रकार के [illegible] सती होने से न रोक सकते थे। [illegible] में पृथ्वीराजरासो में [illegible] के आक्रमण का समाचार सुनकर सोमेश्वर के [illegible] पर [illegible] भोज की रानी में सत के समान कहा गया है।[5] [illegible] में [illegible] उसके माता पिता और दासियाँ सती होने से विरत करने की [illegible] करते हैं किन्तु [illegible] के [illegible]

---

१ से २ दे० प० रा० ३७।६१ से ३७।६३

३ ४ दे० आ० [illegible] ६०७।१३ से ६०८।३

५ दे० [illegible] पृ० रा०, मो० ३।४४।१६,

म वह 'सत्त' के आवेश म थी अत धनवती स्वं उदर को विदीण करके गभस्थ शिशु की बाधा को दूर कर देती है और सती हो जाती है।[1] आल्हखड म गजमोतिन महाराज पथ्वीराज से कहती है कि मुझे सती होने के लिए विधाता ने सत्त प्रदान किया है अत यदि आप मेरे सती होने म विघ्न डालेंगे तो मैं शाप देकर भस्म कर दूँगी।[2] शेख अहमद गजमोतिन को सती न होने के लिए कई तर्क प्रस्तुत करते हैं किन्तु वह अपने निश्चय पर अटल रहती है।[3] गजमोतिन की भाति बेला भी ऊदल से कहती है कि मुझे ईश्वर ने सती होने के लिए सात दिवस तक सत्त प्रदान किया है। उसमे से आज तीन दिन व्यतीत हो चुके हैं, अत तुम शीघ्र ही मेरे पिता का चदन स्तम्भ तोड़कर लाओ। जिसमे मैं उस सत्त की अवधि म सती हो सकू।[4] ऊदल और लाखन बेला को निर्भय होकर महोबे का राज्य-सचालन करने का आग्रह करते हैं उनके यहा पारस-पत्थर होने का प्रलोभन देते हैं जिससे वह इच्छानुसार लोहे को स्वण म बदल सकती है तथा यह भी विश्वास दिलाते हैं कि हम प्राणपण से आपके राज्य की रक्षा करने का प्रयत्न करेंगे किन्तु बेला अपने पूव निश्चय पर ही अडिग रहती है।[5] विदेशी यात्रियो ने भी सतियो मे सती होने के लिए मिलने वाली इच्छा तथा अपूर्व साहसिकता दिखाई है जो उनकी इस सत्त वाली अवस्था की ही निदशक है।[6]

(२) सती चौराओं की स्थापना —

सतियो के सती होने के स्थान पर 'सती चौरा' नामक एसे पवित्र स्थलो की रचना की जाती थी, जिनकी स्त्रिया घी और गुड से पूजा किया करती थी। आल्हखण्ड

---

१ स ३ दे० रा० वि०' १।१३७ आ० ४४।१ १ ३ आ०, ४४१।१ ६

४ ५ द० 'आ०' ८६२।१-३ ८६३।५ ७

६ (क) कुछ पाश्चात्य यात्रियो का यह भ्रम हुआ था कि, विधवाओ को भाग या धतूरा पिलाकर सज्ञा शून्य कर दिया जाता है किन्तु एक सती होने वाली स्त्री की डाक्टरी-परीक्षा कराने पर यह सदेह निमूल सिद्ध हुआ था ।

—दे० टवर्नियर, भा० २ पृ० १६५ की पा० टि०

(ख) इसके साथ साथ टवर्नियर और बर्नियर ने एस कई दृश्यो के प्रत्यक्षदर्शी होने के आधार पर विवरण दिए हैं, जिसमे सती होने के लिए इच्छित सन्नारियो ने जलती मशालो म अपने हाथ झुलसाकर दृढेच्छा का परिचय दिया था। उन्होने यह भी दिखाया है कि मुस्लिम शासको द्वारा अनेक प्रकार के प्रलोभन देने और भय दिखाने पर भी स्त्रियाँ सती होने से नही रुकती थी। टवर्नियर ने बलात् कमरो म बद कर दिए जाने पर विजय नगर के रामराजा की ग्यारह विधवा रानियो द्वारा शरीर-त्याग कर देने का भी उल्लेख किया है।

—दे० ' बर्नियर', भा० २, पृ० १७० ७२ तथा 'ट्रवेल्स इन मुगल एम्पायर', बर्नियर, पृ० ३०६ ३०७

में मलिखान की पत्नी गजमोतिन का 'सती चौरा' बनाया जाता है,[1] जिसकी ब्रह्मा पत्नी वेला भी थी और युद्ध से पूजा करते अंकित की गई है।[2]

सतियों में कुछ दैवी अंश के विद्यमान होने के कारण जन धारणा का पता आला च्यकालीन विदेशी यात्रियों के विवरणों में मिलता है। उदाहरणार्थ टर्वनियर के अनुसार यह समझा जाता था कि सती होने वाली स्त्रियों को उनको समर्पित किए गए उपहारों को उपहारदाताओं के स्वर्गस्थ सम्बन्धियों तक पहुँचाने की क्षमता होती है और इस दृष्टि से उनकी चिताओं में विभिन्न सदस्यों के साथ विविध उपहार सामग्री डाली जाती थी।[3]

निष्कर्षत: ब्रजभाषा के वीररास के में उल्लिखित सती प्रसंगों से ऐसा रंचमात्र भी आभास नहीं मिलता कि विधवाओं को सती होने के लिए पारिवारिक जनों द्वारा बाध्य किया जाता था। वे स्वेच्छा से सती होती थीं जिसके मूल में इनके स्वर्गवासी पतियों से सम्मिलन की आकांक्षा अन्तर्निहित रहती थी। उनके सती होने का कृत्य विवाहावसर पर सम्पन्न होने वाले आचारों से सादृश्य रखता था। सतियों को भविष्य कथन और शाप देने की अलौकिक शक्तियों से भी सम्पन्न समझा जाता था।

जौहर प्रथा

युद्ध में अपनी पराजय को निश्चित मानकर मरणान्तक युद्ध करने की लालसा से युद्धार्थ जाने वाले वीर स्वपरिवार की स्त्रियों की विजेताओं के हाथों में दुर्दशा को बचाने के लिए दो विधियों का प्रयोग करते थे - या तो वे उन्हें मरने समक्ष मरवाकर तब युद्धार्थ प्रयाण करते थे—अथवा उन्हें कुछ ऐसे संकेत बता जाते थे जिन्हें देखकर वे शत्रु विजय मान लेती थीं और विभिन्न विधियों से सामूहिक आत्मघात कर लेती थीं।

चन्द्रशेखर कृत हम्मीरहठ में महाराज हम्मीरदेव स्वमाता और पत्नियों से कह जाते हैं कि, यदि तुम्हें उलटे (शत्रु के) निशान लौटते दिखाई दें तो जौहर कर लेना। युद्ध में महाराज की विजय होती है, किन्तु जीत के उत्साह में वे भूल से निशानों को नीचे करके लौटते हैं। दुर्ग की नारियाँ समझती हैं कि महाराज को वीरगति प्राप्त हुई है और शत्रु दुर्ग की लूट पाट करने आ रहा है। वे महाराज की आज्ञा का पालन करते हुए जौहर करने का निश्चय करती हैं और स्नान करके दान देती हैं। तदुपरान्त उनमें से कुछ छुरी और खड्ग मारकर आत्मघात करती हैं कुछ भवन इतस्तत: बारूद रखकर उसमें आग लगा देती हैं, कुछ कुओं में कूदकर आत्महत्या करती हैं जबकि अन्य अपने

---

१ जह पचपेड़ा है मनिखे का सती चौरा दयो बनाय।' आ० ४४१।१५

२ डोला धरि दौ तब बगिया में बेला उतरि धरनि म जाय।
सान को भारत बेला लीन्हा घी गुड़ लीन्हा तुरत मगाय।
पूजा की न्हा वा चौरा की तब बेला ने कही सुनाय।' —आ० ५७६।७६

३ दे० टर्वनियर, भा० २, पृ० १६६

सर पटक पटककर प्राणान्त करते चित्रित की गई हैं।[1]

कवि ग्वालकृत हम्मीरहठ में भी महाराज से इसी प्रकार की भूल होने पर उनकी पत्नियां और दुर्ग नारियां, करोड़ों गायें दान में देकर राम राम और कृष्ण-कृष्ण कहती हुई जौहर की अनेक विधियां अपनाती हैं। कवि ग्वाल ने इनमें उच्च स्थानों से कूदने, तालाबों में डूबने पेशकब्जों से उदर विदीर्ण करने खड्गों के साथ सती होने विषपान करने, हीरे की कनी चाटने, बारूद में आग लगाकर उसमें भस्म होने, तथा गर्म तेल के कड़ाहे में कूदने की विधियों का चित्रण किया है।[2] इस सामूहिक आत्मोत्सर्ग के कारण कवि ग्वाल के शब्दों में दुर्ग में रानी खवासिनि और बंदियां का तो कहना ही क्या परिन्दा तक जीवित नहीं बचता, जिसे देखकर नगर के नर नारी सिर पीटते हुए अश्रुपात करते हैं।[3]

सुजानचरित में घासहरा नामक दुर्ग के शासक राव बहादुरसिंह बड़गूजर महाराज सूरजमल के हाथों पराजय की सीमा पर पहुँच जाते हैं। विजेता-वाहिनी उनके दुर्ग की प्राचीर ध्वस्त करके रनिवास के समीप मार काट आरम्भ कर देती है। बड़गूजर अपना अन्तिम समय सन्निकट जानकर, अपने परिवार की स्त्रियों की ओर से निश्चित होकर मरण का निश्चय करते हैं। इस कार्य के लिए वे अपने एक विश्वस्त सेवक को आदेश देते हैं कि मेरे परिग्रह की हत्या करके, मेरी लज्जा की रक्षा करो। अश्रुपूरित नेत्रों से महल में गया हुआ सेवक उनकी महिषी, दुहिता और राजकुमार को जौहर के लिए प्रस्तुत पाता है, तथा खड्ग से उन तीनों के शीश उतार लेता है। उस रक्तरंजित खड्ग का महाराज को दिखाता हुआ वह उनके आदेश के पूर्ण किए जाने की प्रतीति कराता है।[4]

त्यौहार —

ब्रजभाषा के वीरकाव्य में मनौना, नवदुर्गा विजय दशमी, दीवाली, गोवर्द्धन, वसन्त पंचमी, शिवरात्रि और होली जैसे प्रमुख त्यौहारों के मनाए जाने का ही चित्रण मिलता है। केशवदासजी ने मदन महोत्सव नामक पर्व की भी आयोजना प्रदर्शित की है। इन पर मास क्रम के अनुसार प्रकाश डाला जा रहा है।

(क) मदन महोत्सव —

यह पर्व कदाचित समाज के उच्च-वर्ग में ही प्रचलित रहा होगा। 'व्रत परिचय' नामक ग्रंथ में इसकी तिथि चैत्र-शुक्ला त्रयोदशी बताई गई है।[5] कवि केशव ने महाराज

---

१ दे० 'ह० ह०', च० २८८ से ३६५
२ ३ दे० ह० ह०' ग्वाल, छ० १५९ से २२५
४ दे० 'सु० च०' ५।४।३६
५ दे०, व्रत परिचय', प० हनुमान शर्मा प० ६८

प्रथा का चित्रण किया है[1] जबकि आल्हखण्ड में उसी कृत्य को 'भुजरिया का सिराना'[2] अथवा 'भुजरिया की पवनी'[3] बताया गया है। ब्रज प्रदेश में यही कृत्य स्थल भेद में घूघा सिराना कहलाता है। इस प्रथा में इस पर्व पर रक्षा सूत्र बाँधने आदि विधि विधानों का चित्रण नहीं मिलता, अपितु राजपूतों की उस विचित्र प्रथा का चित्रण किया गया है जिसमें शत्रु सामन्तों द्वारा कजरिया या भुजरिया के निर्विघ्न खोटन या पवनी को लज्जास्पद समझा जाता था। इसके विपरीत गृह पक्ष इस पर्व के अवसर पर सागर में सिराए जाने वाले दोनों को, शत्रु द्वारा लूट लिया जाना, स्व मर्यादा के विरुद्ध मानकर उनके निर्विघ्न परिसमापन का प्रयास करता था[4] जिससे यह पर्व बहुधा भयंकर मारकाट की रणस्थली बन जाता था। परमालरासो और आल्हखण्ड के विवरण से सलोने के विषय में अधोलिखित तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है—

कजरी या भुजरिया के दोने (ये दोने स्वर्ण निर्मित दिखाए गए हैं।[5] उत्तर पूर्वी भारत में इस समय भी दोनों में ही जौ या गेहूँ उगाए जाते हैं जबकि ब्रज प्रदेश में उन्हें प्रायः मिट्टी के बने सकोरों में उगाया जाता है।) कुएँ या सागर पर सिराये जाते थे। इनमें से विशेषतः राजपूतों में शत्रु भय से उन्हें कुएँ पर 'सिराना' लज्जास्पद समझा जाता था।[6] निवास स्थान से भुजरियों को उठाते समय ब्राह्मणादि को दान देकर[7] स्त्रियाँ मंगल गान करती हुई सागर की ओर कूच करती थीं[8] तथा प्रायः हरे रंग के वस्त्र पहनती थीं।[9] माताएँ स्व-पुत्रों के नामों का उल्लेख करते हुए दोनों को खुटती थीं। महारानी मल्हना, आल्हा, ऊदल आदि का नाम लेते हुए आठ दोने खुटते चित्रित की गई हैं।[10] बहनों द्वारा सागर में सिराये गये दोनों को भाई निकालकर पुनः बहन को सौंप देता था।[11] वे इसमें से भुजरिया तोड़कर भ्राताओं के कानों में खुरसती थीं[12] और प्रतिदान में भाई की सामर्थ्यानुसार द्रव्य प्राप्त करती थीं।[13] सतत मल्हार गाते हुए झूला झूलने के साथ इस पर्व का समापन होता था।[14] परमालरासो में भुजरिया के खुटने की समाप्ति पर दान देने की भी प्रथा दिखाई गई है।[16]

(ग) नवदुर्गा —

कवि चन्द ने इस पर्व को 'नवदुर्गे'[17] तथा मान के नौ दोह[18] की संज्ञा प्रदान की

---

१ से ४ दे० क्रम० आ० ४४।७।७, पर० रा०' १०।३२४, वही ४४३।२४ आ०' ४४८।७ ८

५ से १२ दे० क्रम० 'आ०, ४४४।१५, पर० रा०' १०।४६३ 'आ० ४५३।२३ २४ पर० रा०' १०।४८४, 'पर० रा०' १०।४८४, 'आ०' ४५५।१५, 'पर० रा०', १०।४६४ आ०, ४७१।६,

१३ १६ दे० आ० ४७१।१० वही ४७१।१६, वही, ४७१।६, वही, ४७१।२४ २५, वही ४७५।११ पर० रा०' १०।६६१

१७ १८ दे० क्रम० प० रा०, मो० ४।८६६।४, 'रा० वि०' १।१४६.

है। यह त्यौहार असोज और चैत्र मास के शुक्ल पक्ष के प्रथम नौ दिवसों तक वर्ष में दो बार मनाया जाता था।[1] विजयादशमी से पूर्व की नवरात्रियों की पृथ्वीराजरासो में क्षत्रियों के लिए बड़ी महत्ता प्रदर्शित की गई है।[2] इन दिनों में दुर्गा के दर्शन करके उसका हवन कराने तथा उसे बलि प्रदान करने की प्रथा थी।[3] चौंसठ योगिनियों के लिए भी उतनी मात्रा में दीपक जलाए जाते थे, तथा उनके लिए कण्डीलों में शृंगार सामग्री लटका दी जाती थी।[4] इस पर्व पर ब्राह्मण कन्याओं को क्षीर भोज देने का बड़ा माहात्म्य समझा जाता था।[5] अभीष्ट कार्यों में साफल्य के लिए देवी की 'जात' (लोक शब्दावली में पीले वस्त्र पहनकर कांगड़ा ज्वालामुखी या बेलोन नामक स्थानों की देवियों के दर्शन करने जाना—देवी की जात करना कहलाता है) बोलने की भी प्रथा थी। रासोकार ने धीर पुण्डीर को देवी से यह मनौती मांगते चित्रित किया है कि यदि तेरी कृपा से मैं जलस्तम्भ भेदन की प्रतियोगिता में सफल रहा तो तेरे दर्शन करके ही अन्नाहार ग्रहण करूंगा।[6]

कवि मान ने चैत्र मास के 'नवदीहों' की तृतीया को अनेक सधवाएँ पातिव्रत्य की कामना से तथा कुमारियाँ उत्तम पति प्राप्त करने की आकांक्षा से सुमधुर गीत गाती हुई वन में (हरी दूब और पुष्प लेने) जाते प्रदर्शित की हैं।[7] आजकल यह पर्व गौर-पूजा के रूप में प्रचलित है।

(घ) विजया दशमी —

विजया दशमी के विषय में वीरकाव्य में अधिक निर्देश नहीं मिलते। पृथ्वीराज रासो में महाराज पृथ्वीराज विजया दशमी को स्व सामन्तों के बल परीक्षण निमित्त स्तम्भ भेदन की प्रतियोगिता आयोजित करते हैं।[8] राजविलास में महाराज राजसिंह विजया दशमी के पर्व पर अपनी स्वर्ण-तुला कराकर स्वर्ण को दरिद्रों में वितरित करते चित्रित किए गए हैं।[9] इन निर्देशों से स्पष्ट होता है कि इस पर्व पर क्षत्रिय शस्त्र सचालन और पौरुष परीक्षण की प्रतियोगिताएँ किया करते थे और उसे क्षत्रियों की विजय का दिवस मानकर दान दिया करते थे।

(ङ) दीपावली —

दीपावली चतुर्दिक् मनाया जाने वाला त्यौहार था।[1] पृथ्वीराजरासो में इस त्यौहार के प्रचलन के मूल में यह कथा दी गई है कि—सतयुग में किसी कार्तिक अमा

---

१ से ४ पृ० रा० मो० मो० ४।८६६।४ वही ४।८६८।१ वही ४।८६६।४ वही ४।८७०।५

५ से ६ द० श्म० पृ० रा०, मो० ४।८६६।३ वही का० २०२१।६० रा० वि०' १।१५८ ६० पृ० रा० मो० ४।८६८।१ रा० वि०', ८।१५७

१० द० श्म० पृ० रा०, का० ६७६।३४

वस्या को मात्र एक ब्राह्मण के ही गृह में दीपमालाएँ जल रही थी। लक्ष्मी को जब इस ब्राह्मण के अतिरिक्त कहीं पर भी प्रकाश किरण न दिखाई दी तो वह उसी के गृह में निवास करने आ गई। बाद में अन्य प्रजाजनों ने भी ब्राह्मण की समृद्धि का मूलकारण जानकर वित्त कामना से कार्तिक अमावस्या को दीपमालिका जलानी आरम्भ कर दी।[1] दीपावली के विषय में वीरकाव्य में मात्र यह उल्लेख और मिलता है कि उस रात्रि को जुआ खेलने की प्रथा थी।[2]

(च) गोवर्द्धन पूजा —

यह पर्व दीपावली के अग्रिम दिवस मनाया जाता है। सुजानचरित में वह कथा दी गई है जिसमें श्रीकृष्ण द्वारा इन्द्रपूजा को बन्द कराकर गो धन और विप्रों की पूजा आरम्भ कराने पर, इन्द्र ने कुपित होकर व्रज प्रदेश को डुबो देने की आकांक्षा से सात अहोरात्रि पर्यन्त मूसलाधार वर्षा की थी, तथा श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को छिगुनी पर उठाकर त्रस्त नर नारियों की रक्षा की थी।[3]

(छ) वसंत-पंचमी —

पृथ्वीराजरासो के अनुसार— ऋतुराज वसंत के आरम्भ में वसंत पंचमी को श्रीकृष्ण के फाग खेलने का आयोजन किया जाता था।[4] कपूर, अगरु, केसर, कस्तूरी अनेक प्रकार के पुष्प, अबीर, रोली और गुलाल आदि पूजा सामग्री और भोग लगाने के लिए मेवा मिष्ठान्नादि उत्सवस्थल पर लाए जाते थे।[5] महाराज के आवास के प्रांगण में तम्बू गाड़कर, गुलाबजल छिड़की हुई और अबीर धूलि उड़ती हुई स्थली पर जाजिम बिछाकर उसके ऊपर अमूल्य गलीचे बिछाए जाते थे तथा नाना सुगंधित धूपों के धूम्र से वातावरण को सुवासित बनाया जाता था।[6] मध्य में नगजडित स्वर्ण सिंहासन पर श्रीकृष्ण की मूर्ति आसीन की जाती थी।[7] पूजा के आरम्भ होने पर घंटे, शंख, झालर, मृदंग, वीणा, नफीरी, भेरी, शहनाई, ढोल, नगाडा और वंशी की मधुर तान बजाई जाती थी।[8] अनेक प्रकार की वेशभूषा में सुसज्जित आबालवृद्ध नर नारियों तथा महाराज पृथ्वीराज और उनके सामन्तों की उपस्थिति में[9] नृत्य और नाट्य विद्याओं में प्रवीण कलाकार श्रीकृष्ण जीवन के विविध प्रसंगों का अभिनय प्रस्तुत करते थे।[10] विश्वास किया जाता था कि श्रीकृष्णलीलाओं के प्रेक्षण और श्रवण से प्रेक्षकों के पाप प्रक्षालित हो जाएंगे।[11] नाटक के अन्त के साथ ही उत्सव समाप्त हो जाता था।[12]

(ज) शिवरात्रि —

यह महोत्सव फाल्गुन मास की त्रयोदशी को मनाया जाता है किन्तु पृथ्वीराज

---

१ से ४ 'पृ० रा०' का० ६७७।१६ से ६७६।३८, वी० च०, १८।२४, 'सु० च०, ७।१४२ ७।१४७, पृ० रा०', का०, १।६२।७८ ७६

५ से १२ दे० पृ० रा०' का० १५६२।६६ से १५६४।६६

रासो के अनुसार चतुर्दशी को मनाया जाता था।[1] कवि चन्द ने शिवरात्रि के अवसर पर महाराज सोमेश्वर का पंचगव्य से स्नान करके शिव का हवन और जप करते, शिव पिण्डी को सहस्र जलघटों से स्नान कराते तथा घृत दीप जलाकर पुष्पार्पण करते चित्रित किया है। वे उपवास रखते हैं तथा शिवरात्रि के चारोयाम जागरण में बिताकर उषा काल में अपना स्वर्ण तुल कर स्वर्ण को तथा वस्त्र और अन्न ब्राह्मणों में वितरित करते हैं। वे एक विशाल भोज भी देते है जिसमें जो चाहे उसको पेट भर भोजन खिलाए जाते हैं।[2] कहना न होगा कि सोमेश्वर अपने राजसी वैभव के कारण जहाँ दीपों एवं जलघटों की सहस्र संख्या का प्रयोग करते और दान में स्वर्ण वस्त्र तथा अन्न का भंडार लुटाते हैं, वहाँ जनसामान्य इनकी सामर्थ्यानुसार मात्रा का प्रयोग करते होंगे।

(झ) होली —

होली के अवसर पर समस्त सामाजिक वर्ण भेद और ऊँच नीच की भावनाओं को तिलांजलि देकर परस्पर मिलते जुलते थे।[3] रासोकार ने होली मनाने का मूल कारण, होलिका और प्रह्लाद की बहु प्रचलित कथा के स्थान पर ढुंढी नामक राक्षसी से परित्राण पाना दिया है।[4] कवि चन्द ने होली मनाने की जो विधि दिखाई है, उससे ज्ञात है कि इस अवसर पर नर-नारी गम्यागम्य और सामाजिक मर्यादाओं का ध्यान नहीं रखते थे।[5] वे सिरों पर सूप रखकर गधों पर सवारी करते हुए अनर्गल बकवाद करने लगते थे।[6] स्त्रियाँ भी लोक कानि को ताक पर रखकर पुरुषों के साथ नृत्य गान करतीं और निरर्थक गीत गाती थीं।[7] गृह गृह में जलाई गई होलिका की राख और धूल को एक दूसरे पर फेंकना ही उनकी होली मनाने का प्रमुख अंग था।[8]

रासो के विवरण से स्पष्ट होता है कि होली मनाने की विधि में कीचड़ राख और धूल आदि डालने की प्रधानता रहती थी। गदहों की सवारी अश्लील शब्दावली अभक्ष्य भक्षण और निर्लज्जता की सीमा को पहुँचा हुआ स्त्री पुरुषों का नृत्य गान वस्तुतः होली मनाने की अद्यतन ग्रामीण पद्धति का मूल रूप है।

कवि तानसेन ने श्रीकृष्ण द्वारा फाग रचाने का जो वर्णन किया है उससे अकबर काल में सामन्त-वर्ग में प्रचलित होली के स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। इससे ज्ञात होता है कि ताल, पखावज, झांझ ढोलक, बीना रबाब और मुरज आदि वाद्य-यन्त्र

---

१ ग्यारह सौ गुननीस वदि फागुन चवदसि सोम।
सिवरत्ती सोमस नृप निसा मंडि जप होम। प० रा० का० ३२६।१

२ दे० वही ३२६।२ से ३२६।६

३ 'च्यारि वरन इक्कन मिल। कलह रूप कन्दर्त।
पाप मपाधि न जानही। ज्यो मन नहि जिलमत। —प० रा० का०, ६७१।३

४ दे० पृ० रा० का० ६७१।२१

५ से ८ दे० पृ० रा०, का०, ६७३।१७ से ६७३।१८

यजते हुए कुंकुम, केसर, चन्दन, अबीर और गुलाल की झोरियाँ उँडेलकर फाग रचाया जाता था।[1] राजमहलों में इस अवसर पर स्त्रियाँ में से कोई मृदंग बजाती कोई गाती और अन्य तालियाँ बजा बजाकर नृत्य करती थी। वे अबीर केसर और गुलाबजल की एक दूसरे पर पिचकारियाँ छोड़ती तथा गालियाँ गाती थी। कवि जोधराज और तानसेन ने फगुआ[2] माँगने की प्रथा का भी उल्लेख किया है।[3]

कवि केशव ने महाराज रतनसेन पर पठानों द्वारा चारों ओर से वार किए जाने की उपमा गडल छुड़ाने वाले व्यक्ति पर स्त्रियाँ द्वारा चारों ओर से वार किए जाने से देकर[4] व दन्तखण्ड में होलिकावसर पर 'गडल छुड़ाने' नामक क्रीडात्मक आयोजन पर प्रकाश डाला है। लाला भगवानदीन के अनुसार, इस खेल में—एक चिकना स्तम्भ जमीन में गाड़कर उसके सिर पर गुड़ की एक पारी[5] और रुपया बाँधकर लटका देते हैं। गुड़ और रुपये की रक्षा के लिए खम्भे के चारों ओर स्त्रियाँ लम्बे डंडे लेकर खड़ी हो जाती है। पुरुष रुपया और गुड़ उतारने के लिए उस चिकने खम्भे पर चढ़ने का प्रयास करते हैं, जबकि स्त्रियाँ उनको डंडों से पिटाई करके उनके प्रयास को निष्फल करने की चेष्टा करती हैं। पुरुष के एक हाथ में अपनी बचाव करने के लिए लकड़ी का चौखटा या जेरी भी होती है। यदि कोई पुरुष उस पोटली को उतारने में सफल हो जाता हैं तो रुपया तो वह स्वयं रख लेता है जबकि गुड़ वहाँ पर एकत्र लोगों में वितरित कर दिया जाता हैं। यदि उसमें कोई भी पुरुष सफल नहीं होता तो दोनों ही वस्तुएँ स्त्रियों को मिलती हैं।[6]

मुस्लिम त्यौहार —

वीरकाव्य में मुसलमानों के ईद, बकरीद नामक त्यौहार तथा नवरोज नामक उत्सव का उल्लेख मिलता है। कवि मान और श्रीधर ने मुसलमानों द्वारा ईद मनाने का उल्लेख मात्र किया है जबकि कवि सोमनाथ ने आजमखाँ, गाजी द्वारा ईद मनाने का वर्णन करते हुए उसके दरबार में सुरपति जैसे राग रंग का आयोजन प्रदर्शित किया है। मदन वेणु आदि वाद्यों की सुमधुर तानों पर काम कला जैसी वारांगनाएं नृत्य करती हैं, जिन पर रीझकर गाजीखाँ कंचन वर्षा करते और पुरस्कार रूप में सौ गयंद प्रदान करते हैं।[7] तानसेन ने सम्राट अकबर को युग युगान्तर तक ईद मुबारक होने की

---

१ से ३ दे० अ० द० वेहि० क०' ४१३।१४१ वही, ४१३।१४२ 'हू० रा०,' ३१, 'आ० द० वेहि० क०, ४१३।१५२

४ 'इक इक्क पाउ घल्लिय सबन रतनसेन रघुबीर कह।
जनु ग्वाल वाल होरी हरषि, गड्डन छोरत और कह।' —वी० च०, ८०

५ व्रज प्रदेश में पारी को भेली कहते हैं—शोधक

६ द० 'केशव ग्रंथावली, भा० ३ पृ० ८१३

कामना प्रकट की है।[१] जिससे आजकल की भांति उस समय भी ईद के अवसर पर मुबारकबाद देने की प्रथा का अभिज्ञान होता है।

श्रीधर ने जंगनामा में मदिरा-तरंग से आपूरित मोजुद्दीन द्वारा नवरोज का उत्सव मनाने का प्रसंग दिखाया है।[२] नवरोज वस्तुतः नृत्य गान और रंगरेलियाँ मनाने से ही सम्बद्ध उत्सव था।[३] कवि सोमनाथ ने आजमशाह द्वारा बकरीद मनाने का वर्णन करते हुए, उसे निज-प्रशंसा में कवित्त सुनने दरबार में अनेक कलाकारों का नृत्य कराने तथा चतुर्दिक से मुबारकबाद पाने का उल्लेख किया है।[४]

अभिवादन और आशीर्वाद की प्रणालियाँ —

माता पितादि गुरुजनों की आज्ञा पालन के सदृश ही उनके सम्मुख नतमस्तक होकर उनकी शुभेच्छाओं का प्राप्त करना पुत्रादि के लिए अति प्राचीन काल से काम्य रहा है। इसमें द्विविध भावनाएं सन्निहित रहती हैं—गुरुजनों को स्वयं से पारिवारिक या सामाजिक महत्ता की दृष्टि से कनिष्ठ व्यक्तियों को सम्मान प्रदर्शित करते देखकर जहाँ आत्म-परितोष का अनुभव होता है वहीं अभिवादकों के अन्तस में यह धारणा बद्धमूल रहती है कि गुरुजनों के हृदय से निःसृत मंगलेच्छाएं उनके दुःख-दर्दों का निरसन करती हुई सुख-समृद्धि प्रदान करती हैं। इस विनम्रता प्रदर्शन का परिधि विस्तार पारिवारिक जनों के समतुल्य अन्य सामाजिकों तथा राजकीय मर्यादा में श्रेष्ठ पदाधिकारियों के लिए होता हुआ समस्त समाज-व्यवस्था को आपूरित कर लेता है। विभिन्न मर्यादाओं में अनुकूल अभिवादन और आशीर्वाद भी भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं। वीरकाव्य में इनके जिन रूपों का निदर्शन हुआ है उन पर आगे प्रकाश डाला जा रहा है—

दण्डवत —

दण्ड के समान सीधे होकर तथा पृथ्वी पर औंधे लेटकर किया जाने वाला नमस्कार दण्डवत् कहलाता है। कोशग्रंथों में इसे साष्टांग प्रणाम से अभिन्न दिखाया गया है, जिसमें सिर हाथ पैर, हृदय आंख, जांघ, वाचा और मन इन अष्टांगों से अभिवादन किया जाता था।[५] अभिवादन की इस प्रणाली का देवताओं, महापुरुषों तथा ब्राह्मणों के लिए प्रयोग किया जाता था। महाराज पृथ्वीराज अपनी नित्य क्रिया में

१ से ४ अकबरी दरबार में हिंदी कवि० ४११।१४२ जंग० ६६८ ६६ आईन ए अकबरी भा० ३, पृ० २८६, नवाबोल्लास श्री० हि० सा० स०, पृ० ४ पर उद्धृत।

५ जानुभ्यां च तथा पदभ्यां पाणिभ्यामुरसाधिया।
शिरसा वचसा दृष्ट्या प्रणामोऽष्टांग ईरितः ॥ —संस्कृत हिन्दी कोश, पृ० १६६६

देवों को प्रणाम दण्डवत करते थे।[1] कवि चन्द के समक्ष जब उसके द्वारा सिद्ध किए गए बावन-वीर प्रकट होते हैं तो वह उनको दण्डवत करके, अंजलि बांधकर खड़ा हो जाता है।[2] परमालरासो में महाराज अनंगपाल एक आगन्तुक विप्र को दण्डवत करते चित्रित किए गए हैं।[3]

चरणों में गिरना तथा चरण स्पर्श करना —

माता पितादि के चरणों में गिरकर अभिवादन करना एक प्रकार से दण्डवत प्रणाम का ही छोटा रूप था। इसी से साम्य रखने वाली वह अभिवादन प्रणाली थी, जिसमें चरणों में गिरने के स्थान पर उन्हें मात्र स्पर्श करके विनम्रता प्रकट की जाती थी। चरणों में गिरकर, उन्हें पकड़ लेने की विधि का सर्वाधिक प्रचलन परमालरासो में दिखाया गया है। उसमें हेमवती सुरगुरु और चन्द्र आदि देवों के[4] महाराज चन्द्रब्रह्म और उनकी रानियाँ, उनकी माता[5] के, आल्हा ऊदल अपनी माता और मौसी के[6] मलखान आल्हा के[7] तथा मछला और इन्दल जगनिक के चरणों में गिरते चित्रित किए गए हैं।[8] पृथ्वीराजरासो[9] वीरचरित्र[10] सुजानचरित[11] हम्मीरहठ[12] और आल्हखण्ड[13] में भी यद्यपि माता और अग्रजों के लिए इस अभिवादन प्रणाली का प्रयोग दिखाया गया है। क्यामखाँ रासो[14] और वीरचरित्र[15] में बादशाहों के चरणों में गिरने की भी प्रथा दिखाई गई है।

पृथ्वीराजरासो में महाराज सारंगदेव की रानी अपनी सास के पग-लगते (पग लगना ब्रज प्रदेश में वधुओं की उस क्रिया के लिए रूढ़ हो गया है जिसमें वे उनकी पिंडलियाँ छूती हैं) चित्रित की गई हैं[16] जो चरण स्पर्श की कोटि में आता है। इसके अतिरिक्त महाराज सारंगदेव[17] पृथ्वीराज,[18] सूरजमल[19] और राजकुमार रनसी[20] स्व-स्वपिता के, हिमालय का पुत्र नन्द स्व माता पिता के[21] शाह अलाउद्दीन की बेगम स्व-पति के,[22] आल्हा ऊदल स्व मामा देवा[23] तथा माता-तुल्य रानी मल्हना के,[24] तथा इन्दल स्व चाचा मलखान के[25] चरण-स्पर्श करते मिलते हैं।

सम्मान्य अतिथियों और सम्बन्धियों के आगमन पर, उनके भी चरण-स्पर्श

---

१ से ३ दे० पृ० रा० का०, १६६।१६८ वही, ३०६।५८, पर० रा०, १।३७

४ से १५ दे० क्रमशः पर० रा० १।१३०, वही, ७।१६, वही १८।१२५ वही १५।१२१ वही, ११।२०, 'पृ० रा० का० २००६।१६४ वी० च०' १४।४ सु० च० २।३।१७ 'ह० ह० च० २७८, 'आ० ४।१३, क्या० रा० २७६, 'वी० च० ४।१२

१६ से २५ दे० क्रमशः पृ० रा० का० ७२।३६१, वही ७२।३५६, पृ० रा० मा० ११।६७।८६, सु० च० ७।२।२८, 'पृ० रा० का० ७५०।८८६ वही, ४१।१६७ ह० ह० चन्द्र०, छं० ८६, 'पर० रा०' १०।८१०, 'आ० ११५।१६, वही, २७०।६

करने का प्रचलन था। पृथ्वीराजरासो में ऋषि वशिष्ठ के आगमन पर हिमालय द्वारा सपत्नीक, उनके चरण स्पर्श करने[1] तथा महाराज पृथ्वीराज द्वारा अपने बहनोई रावल समर विक्रम के चरण स्पर्श करने[2] से उक्त तथ्य की पुष्टि होती है।

जनता नरेशों के तथा शरणार्थी पुरुष और युद्धबन्दी भी शरण प्रदाता और विजेताओं के पादों का स्पर्श करके अभिवादन और दया प्रदान करते थे। पृथ्वीराज रासो में महाराज सारंगदेव के राज्याभिषेक के अवसर पर कवि चन्द ने अनेक क्षत्रिय और वैश्य प्रजा-जनों को उनके चरण स्पर्श करते प्रदर्शित किया है।[3] महाराज पृथ्वीराज से भयत्रस्त अनेक नरेश उनके चरण स्पर्श करके विनम्रता का प्रकटन करते हैं। परमाल रासो में बन्दी वसुपाल और उसकी रानियां आल्हा के पाद स्पर्श[4] करते चित्रित किये गये हैं।[5] हम्मीररासो में महिमा शाह महाराज हम्मीरदेव के चरण स्पर्श करके उनको शरण प्रदान करने की याचना करता है।[6]

मुसलमानों में भी शेख आदि पूज्य व्यक्तियों के चरण-स्पर्श करने का प्रचलन था। शाह गौरी के उमराव, दरबार में आने के समय शाह को तो सलाम करते हैं किन्तु शेख चमन के चरण-स्पर्श करते हैं।[7] स्वयं शाह गौरी को भी हम उनके पाद स्पर्श करते पाते हैं।[8]

हाथ जोडकर शीश झुकाना —

अभिवादन की एक विधि—हाथ जोडकर शीश झुकाना मात्र भी थी। महाराज हम्मीरदेव स्व माता को[9] उनकी रानी[10] और सुरजन नामक चचेरा भाई महाराज हम्मीरदेव को[11] महाराज पृथ्वीराज के सामंत दरबार में पलायन के समय दिल्ली श्वर को,[12] तथा युद्धार्थ अश्वारूढ होते समय महाराज सूरजमल[13] इसी विधि से अभिवादन करते चित्रित किए गए हैं।

प्रणाम —

अभिवादन की इस प्रणाली का कई ग्रंथों में चित्रण मिलता है जिससे इसका पर्याप्त प्रचलन सिद्ध होता है। पृथ्वीराजरासो में महाराज भोला भीम का दूत महाराज सलख पवार को प्रणाम करता है।[14] परमालरासो में चामुंडराय महाराज पृथ्वीराज को[15] तथा आल्हा महाराज परमाल को प्रणाम करते हैं[16] जबकि महाराज जयचन्द आल्हा ऊदल के

---

१ से २ दे० क्रम० पृ० रा०', का० ३७।१७६ वही १०६८।५७

३ से १३ दे० क्रम० 'पृ० रा०' का० ७२।३६१, पृ० रा० मो० २।६५७।५ ह० रा०', छ० २८४, वही, छ० २६६ पृ० रा० का० ६०७।४० वही, ६०७।३५ 'ह० ह० ख्या० १४६ ह० रा० छ० ६६६, वही छ० ६६२, पृ० रा०, का० ६६७ सु० च०' ७।२।२८

१४ से १६ दे० क्रम० 'पर० रा०' २१।८६, 'पृ० रा० का० ४४६।२२, वही, ८।२१

माध्यम से महाराज परमाल को प्रणाम भेजते चित्रित किए गए हैं।[1] इसी भांति कीर्तिलता में महाराज कीर्तिसिंह शाह गयासुद्दीन को, वीरचरित्र में रायराया नामक सरदार शाह अकबर को[3] हिम्मत बहादुर विरुदावली में मरणासन्न माधाता नामक योद्धा महाराज अर्जुनसिंह को[4] तथा राजविलास में महाराज राजसिंह के सामंत, दरबार में आने के समय उन्हें प्रणाम करते मिलते हैं।[5]

राम-राम —

लोक-जीवन में आजकल के अभिवादन की एक बहु प्रचलित प्रणाली, तथा औरंगजेब काल में थेवनाट नामक यात्री द्वारा भी मित्रों के पारस्परिक अभिवादन की एक व्यापक विधि घोषित की गई है।[6] राम राम के विषय में प्रायः नहीं अधिकांश वीरकाव्य प्रणेता क्या मौन रहे हैं। सूदन ने महाराज सूरजमल को उनके सैनिकों[7] तथा राजदूत द्वारा राम राम कराकर,[8] उसके प्रचलन पर अवश्य प्रकाश डाला है।

जुहार —

परमालरासो में राजकुमार ब्रह्मा की बरात में आमंत्रित नरेशगण महाराज परमाल को 'नइ नइ' कर जुहार करते हैं।[9] तथा कवि जान ने मुण्डमाला के बोझ के भार से नत ग्रीवा योगिनी की उत्प्रेक्षा शिव को जुहार करने से की है,[10] जिससे स्पष्ट होता है कि, जुहार करते समय शीश अवश्य झुकाया जाता था। हिन्दी शब्द सागर में जुहार को राजपूतों या क्षत्रियों में प्रचलित एक प्रकार का प्रणाम, अभिवादन सलाम, या बंदगी कहा गया है।[11] अभिवादन की इस प्रणाली का पृथ्वीराजरासो परमालरासो, क्यामखां रासो हम्मीररासो और हम्मीर हठ में प्रचलन दिखाया गया है। परमाल रासो में देवों को भी जुहार करने की प्रथा दिखाई गई है।[12]

पृथ्वीराजरासो में महाराज पृथ्वीराज के राज्याभिषेक के अवसर पर अनेक सुभट और प्रजा जन उनको जुहार करने आते हैं।[13] उनके सम्बन्ध की दृष्टि से साले

---

१ से ५ 'पृ० रा० का०, १६।१८ कीर्ति०' पृ० ५८, 'वी० च०', ६।२६, हि० ब०, वि०, छ० १३४, 'रा० वि० १०।२६

६ दे० 'इण्डियन ट्रैवल्स आफ थेवनाट एण्ड करी', प० ६१

७ ८ दे० 'सु० च०, ३।५।१, वही ४।३।८६

९ 'उतरि अस्व गजराज त नै न करत जुहार।' —पर० रा० १३।१८

१० मुंडनि भार नईमुकि नार मनो हर हार जुहार कियो है।'—क्या० रा०, छ०६०४

११ दे० 'हि० श० सा० प० ११८१

१२ किय मुक्कानम कल्पी सहर, कल्पेस्वरहि जुहार। —प० रा० १०।४५३

१३ दे० अम० 'पृ० रा०', का० ६६६।७८

लगने वाले जतराउ[1] और रमाल,[2] महाराज अनगपाल का दूत[3] और निड्डर राय[4] द्वारा उन्हें जुहार करने के अतिरिक्त उनके चाचा कन्ह चौहान भी जुहार करते चित्रित किए गये है। [5] कन्ह द्वारा भी जुहार किये जाने का कारण कदाचित् यह होगा कि राजकीय दृष्टि से महाराज पृथ्वीराज की स्थिति उच्च थी। महाराज पृथ्वीराज उनको आशिष देने वाले दुर्गा केदार के प्रति जुहार करते हैं।[6]

परमालरासो में आल्हा महाराज परमाल को,[7] आल्हा ऊदल महाराज जयचन्द[8] को तथा कवि जल्हन दिल्लीश्वर पृथ्वीराज को जुहार करता है।[9] हम्मीर हठ में महाराज हम्मीरदेव के दरवान नरणार्थी और मंगोल को पाहुना बताकर गले मिलते और जुहार करते हैं।[10]

प्रत्यार्दशियों से जुहार करने के साथ साथ समवयस्कादि के लिए जुहार कहला भेजने की भी प्रथा थी। रुष्ट हाहुलि हम्मीर को मनाने गया, कवि चन्द उसे उसके साथी सामंतो द्वारा जुहार कहला भेजने का संदेश देता है।[11] रावल समर विक्रम भी संयोगिता की दासियों के माध्यम से उसे जुहार कहला भेजते हैं।[12] इसी भांति परमाल रासो में महाराज परमाल द्वारा भेजे गए तुणीर कलगी और कमान को स्वीकार करता हुआ मलिखान उन्हें जुहार करता है।[13]

क्यामखा रासो में जुहार करने का कई अर्थों यथा—अधीनता दीनता और युद्ध में दो दो हाथ दिखाने के अभिप्राय में प्रयोग किया गया है। क्यामखां चौहान के पुत्र स्व पता के शत्रु खिजरखां का जुहार करने नही जाता यद्यपि वह उन्हें दरबार में बुलाने की बहुत चेष्टाएँ करता है।[14] फतेहखा चौहान जब फतहपुर नामक नगर बसाकर वहाँ दुर्ग की स्थापना करता है तो आस पास के अनेक भूमिधर उसे जुहार करके स्व अधीनता की प्रतीति कराते हैं।[15] युद्धार्थ प्रयाण करते हुए शाह बहलोल लोदी से फतहखां का ससैन्य जाकर जुहार करने[16] और दौलतखा से भयत्रस्त कुछ भूमिधरो के जुहार करने को भी, कवि जान ने सदर्भगत अर्थ में प्रयोग किया है।

जुहार का युद्ध में दो दो हाथ करने के अर्थ में प्रयोग नाहरखां और जगमाल पवार के संदर्भ में किया गया है।[17] नाहरखा आदि द्वारा स्व ग्रामो की लूट सुनकर क्रोधान्वित जगमाल स्व-दूत के माध्यम से उनको यह चुनौती भिजवाता है कि मैं युद्धार्थ आ रहा हूँ —आप लोग पलायन मत कर जाना। नाहरखा प्रत्युत्तर देता है कि जगमाल युद्धार्थ आने में अधीरता न दिखाकर धीरे धीरे चला आये मैं यहा से तब तक कूच नहीं करूँगा, जब तक उससे जुहार नही कर लेता।[18]

---

१ से १३ दे० पृ०रा० का० २३०५।१२०३ वही, ३११६।१३४ वही ६२२।८३, वही, १२०३।२८ वही ६५५।८५ वही १५२१।७२ पर० रा० ३।११० वही, १०।६२ वही ७।६६ ह० ह० च० ५८ पृ० रा० का० २२१७।६७४, वही, २११५।७० पर० रा० ५।४२

१४ १८ दे० क्या० रा०' ३११ वही, ३८१, वही ३८७ वही, ७७२, वही, ६०६

मुजरा —

अभिवादन की इस प्रणाली का सर्वाधिक उल्लेख छत्रप्रकाश में कवि गोरेलाल ने किया है। उन्होंने मुजरा के अतिरिक्त अभिवादन की अन्य किसी विधा का उल्लेख किया ही नहीं है। गोरेलाल के विवरणों से ज्ञात होता है कि मुजरा करते समय शीश झुकाया जाता था।[1] छत्रप्रकाश में महाराज चम्पतिराय[2] छत्रसाल और दलेलखां[3] शाह औरंगजेब को तथा महाराज छत्रसाल का आगन्तुक राजदूत[4] मुजरा करते चित्रित किए गए हैं। पृथ्वीराजरासो में विजयी होकर लौटे महाराज पृथ्वीराज पर उनकी रानियों द्वारा न्योछावर करने की संज्ञा दी गई है।[5] इसके अतिरिक्त वीरचरित्र में महाराज वीरसिंहदेव का दूत शाह सलीम को[6] तथा राजविलास में महाराज राजसिंह को उनके सैनिक[7] मुजरा करते दिखाए गए हैं। मानक हिन्दी कोश में 'मुजरा' अरबी के 'मुजरा' शब्द का रूपान्तर बताया गया है तथा उसका अर्थ किसी बड़े के सामने झुककर किया जाने वाला अभिवादन दिया गया है जो कवि गोरेलाल प्रदर्शित मुजरा करने की विधि से साम्य रखता है।[8]

बन्दगी —

अभिवादन की इस रीति का ज्ञान आल्हखण्ड में उल्लेख मिलता है। इस ग्रंथ में कहीं वह सलाम की पर्यायवाची दिखाई गई है[9] और कहीं सलाम से पृथक अभिवादन प्रणाली प्रदर्शित की है।[10] मानक हिंदी कोश में बंदगी के अर्थ—किसी का आदरपूर्वक किया जाने वाला अभिवादन नमस्कार और सलाम दिए गए हैं।[11] आल्हखण्ड से ज्ञात होता है कि किसी को बाएँ हाथ से बंदगी करना अपमानजनक माना जाता था। उपर्युक्त तथ्य के आधार पर उसके कई प्रसंगों में अभिवाद्य पुरुष अत्यन्त क्रुद्ध चित्रित किए गए हैं।[12]

सलाम —

मुसलमानों से अनुदिन बढ़ते हुए संसर्ग तथा शाही दरबारों में बादशाहों को अनिवार्यतः सलाम करनी पड़ने की प्रथा के कारण, अभिवादन की इस प्रणाली का हिंदुओं में भी प्रचार बढ़ता जा रहा था। पृथ्वीराजरासो में मुसलमानों द्वारा मुसलमानों के प्रति[14] हिंदुओं द्वारा मुसलमानों के प्रति[15] तथा मुसलमानों द्वारा हिंदुओं के प्रति सलाम करने[16] के उल्लेखों के अतिरिक्त हिंदू भी परस्पर सलाम करते दिखाए गए हैं।[17] परमाल

---

१ 'छ० प्र० ६।६

२ से १३—दे०क्रम० छ० प्र० ६।६, वही, ७।६, वही, २२।१, वही ११।१४, पृ० रा०, का० ७५०।४८८ ८६, वी० च०, ७।५२ 'रा० वि०, १८।६८, 'आ०' २५०।६ ७, वही २३।१२ वही ६।४६, वही, ६१।६

१४ से १७ दे०क्रम० पृ० रा० का० १३५७।६७, वही, ७२२।२६६, वही, ६५८।४६, वही ७०४। ३०६५

रासो[1] सुजान चरित्र[2] हम्मीररासो[3] और आल्हखण्ड[4] में भी सलाम द्वारा हिंदुओं के परस्पर अभिवादन की प्रणाली चित्रित की गई है। कवि सूदन ने तो कुमार जवाहरसिंह के। अपने पितामह महाराज बदनसिंह से सलाम करते दिखाकर,[5] उसका प्रचलन पारिवारिक जीवन में भी दिखाया है। प्रतीत होता है कि सूदन ने ऐसा निर्देश या तो प्रमाद-वश किया है, अथवा उसके सम्मुख पद-पूर्ति का व्यवधान रहा होगा। मुसलमानों में परस्पर, अथवा हिंदू और मुसलमानों द्वारा एक दूसरे को सलाम करने का तो—बयामता रासो,[6] रणमल छन्द[7] जंगनामा[8] सुजान चरित[9] हम्मीररासो[10] हम्मीर हठ[11] गोरा-बादल की कथा[12] और भूषण ग्रंथावली[13] सभी ग्रंथों में बहुलता से प्रचलन दिखाया गया है।

कोर्निश और तस्लीम —

अभिवादन की ये दोनों प्रणालियाँ मुख्यतः बादशाहों के लिए प्रयुक्त की जाती थीं और दरबारी [illegible] अनिवार्य अंग थीं। तस्लीम का बयामता रासो[14] वीर[illegible][15] और परमालरासो[16] में उल्लेख किया गया है। पृथ्वीराजरासो में भी [illegible] समय शाह गोरी[17] तथा उनके वज़ीर[18] को महाराज पृथ्वीराज से तथा गोरा बादल की कथा में गोरा और बादल को शाह अलाउद्दीन[19] से तीन बार सलाम करते प्रदर्शित किया गया है जो तस्लीम से बहुत कुछ साम्य रखता है। आईन-ए-अकबरी से ज्ञात होता है कि बादशाह से भेंट किए जाने, जागीर आदि प्राप्त करने के अवसर पर तीन बार तस्लीम करने की प्रथा थी।[20] इसकी विधि यह थी कि तस्लीम-कर्ता अपने दाहिने हाथ के पृष्ठ भाग को ज़मीन पर रखकर धीरे-धीरे ऊपर उठाता था और सीधा खड़ा हो जाने पर अपनी हथेली को शिरोभाग से लगाता था।[21]

अभिवादन की कोर्निश प्रणाली जिसका छत्रप्रकाश[22] और आल्हखण्ड[23] में उल्लेख किया गया है, तस्लीम से इस दृष्टि से भिन्न थी कि इसमें हाथ के पृष्ठ भाग को भूमि से छुआकर ऊपर नहीं उठाया जाता था अपितु हथेली को मस्तक पर रखकर शीश

---

१ से १३ [illegible] ३।८१ [illegible] ६।० [illegible] १६८। १२ [illegible] ३।१।१० [illegible] १० १ [illegible] १२० [illegible] १।३ [illegible] ३२८ [illegible] १२० [illegible] १८ [illegible]

१४ से २३ [illegible] १६१ [illegible] १।८ [illegible] ११२ [illegible] १० १ [illegible] १६३ [illegible] १६३ [illegible] १८।१

२ [illegible] —[illegible] ३५। १ और [illegible] ३ १०

झुकाया जाता था।[1]

आशीर्वाद —

चरणों में गिरना अथवा चरण-स्पर्श अभिवादन की ऐसी विधियाँ हैं जिनसे अभिवाद्यों के हृदय द्रवित होकर अभिवादकों पर कल्याणकामनाओं की वर्षा करने लगते हैं। पिता से भी अधिक जननी हृदय वात्सल्य प्रेम की अगम निधि हुआ करता है यही कारण कि है पिता तो हमें मात्र सिर सूँघकर आशीर्वाद देते मिलते हैं, जबकि माता पुत्रों की शुभेच्छा से उन पर पानी उतारकर पीते, उनके भुज-युग्मों का पूजते पीठ पर हाथ फेरते तथा दीर्घजीवी होने का आशीर्वाद प्रदान करते मिलती है।

माडो के आक्रमण से पूर्व वनाफर भ्राता स्व माता के चरणों में गिरकर उससे ध्येय में कृतकृत्य होने का आशीर्वाद प्रदान करने का निवेदन करते हैं[2] जिसके प्रतिदान में वह उनका चुम्बन करकर पीठ पर तीन बार हाथ फेरती है और भुजयुग्मों की पूजा करके तथा मस्तक पर मंगल तिलक लगाकर विजय कामना करती है।[3] कन्नौज से मनाकर लाए गए आल्हा ऊदल को रानी मल्हना कंठ से लगाती हैं और उनके शीश की बलैया लेती हुई मुख चूमती हैं।[4] मनियान की माता चरणों में गिरे आल्हा ऊदल को उठाकर उनके मुखों का चुम्बन करती हैं तथा सिर सूँघते हुए बहुत आशीर्वाद प्रदान करती हैं।[5] आल्हा केवटों की पहिरावनी करता है जिसके प्रतिदान में केवट स्त्रियाँ उन्हें कोटि-कल्प जीवी होने का आशिष देती हैं।[6] कन्नौज गए जगनिक के जब मछला और इन्दल चरण स्पर्श करते हैं, तथा देवा उससे गले मिलकर दर्शन करती है तो वह उन्हें कोटि कोटि वर्षों तक जीवित रहने का आशीर्वाद प्रदान करता है।[7] युद्धार्थ विदाई लेने आए महाराज हम्मीरदेव को उनकी माता आरम्भ में तो दीर्घजीवी होने का आशिष प्रदान करती है[8] किन्तु जब महाराज उनसे यह निवेदन करते हुए चरणों में गिर जाते हैं कि मुझे शाह अलाउद्दीन को परास्त करने अथवा ससम्मान वीरगति प्राप्त करने का आशीर्वाद दीजिए[9] तब उनके शीश पर हाथ रखकर जो आशीर्वाद देती है[10] —वह वीर क्षत्राणियों की परम्परा के अनुकूल तो है ही, आज की भी सभी वीर जननियों के लिए अनुकरणीय है। वे कहती हैं —हे मेरे पुत्र ! मैं तुझे आशीर्वाद देती हूँ कि तू मुजाओं, मुख

1 His majesty has commanded the palm of the right hand to be placed upon the fore head and the head to be bent down wards this mode of salutation in the language of present age is called kornish'

—आईने ए अकबरी भा० ३ पृ० १६६

२ से ८ दे० क्रम० आ० ८०।१८ वही ८०।१५ १८ परि० रा०, १०।७८६, वही १५। १२५ वही, १८।२८, वही ११।२१ ह० ह० च० २७८

९ १० दे० क्रम० ह० क०, च०, २७६ ७७, वही २७८

और वक्ष स्थल पर शत्रु के तीर सेल, और खड्गाघातों को (तृणाघात के समान) सहन करता हुआ युद्ध में अग्रसर होता रहे और तेरा पलक तक न झपके। तेरी काया के अंग प्रत्यंग चाहे तिल तिल करके क्यों न कट जायें किन्तु तू युद्धस्थल में पीठ न दिखाए। तेरा विजयी होकर लौटना अथवा वीरगति प्राप्त करना—दोनों ही स्थितियाँ मुझे काम्य हैं अतः मैं तुझे मंगल गानों के साथ युद्धार्थ विदा करती हूँ।[1]

पीछे प्रदर्शित जसराज की भाँति सिर सूँघकर आशीर्वाद प्रदान करने की प्रथा रामायण कालीन समाज में भी प्रचलित थी।[2] इसका कवि केशव और सूदन ने भी प्रचलन दिखाया है। महाराज वीरसिंहदेव जब स्व भ्राता के चरणों में गिरकर अभिवादन करते हैं तो वे उनका सिर सूँघकर गले मिलते हैं।[3] महाराज सूरजमल द्वारा स्व पिता के पग छूने पर वे पुत्र को अंक में भरकर उनका सिर सूँघते चित्रित किए गए हैं।[4]

चरणों में गिरकर अभिवादन करने वालों को उठाकर गले लगा लेने की प्रथा का कवि जान[5] और आल्हकार[6] ने भी प्रचलन दिखाया है।

बादशाह और नवाब आदि सलाम और मुजरा आदि की स्वीकृति, मात्र प्रफुल्लित नेत्रों से सूचित करते थे। कवि सूदन ने नवाब सलाबतखाँ को महाराज सूरजमल के वकील की सलाम नेत्रों ही नेत्रों में लेते प्रदर्शित किया है।[7] गोरेलाल ने औरंगजेब को मुजरा करने वाले महाराज चंपतिराय की प्रसन्नता का उस दशा में उल्लेख किया है जब वे शाह के नेत्रों में प्रसन्नता की झलक देखते हैं।[8]

स्वागत-सत्कार

भारतीय परिवार अपने अतिथि सत्कार के लिए विख्यात रहे हैं। उनमें सदैव "अतिथिदेवो भव" की धारणा विद्यमान रही है। अतिथि सत्कार में अपना सर्वस्व बलिदान कर देने वाले गृहस्थों के उदाहरणों की दृष्टि से पुरातन भारतीय संस्कृति का इतिहास बड़ा समृद्ध है। भारत में भ्रमणार्थ आए हुए विदेशी यहाँ से बड़ी मधुर स्मृतियाँ लेकर लौटे हैं तथा भारतीयों के आतिथ्य की उन्होंने भूरि भूरि प्रशंसा की है। अज

---

१ द० नम० ह० ह० च० २७६ ८२

२ द० रामायणकालीन संस्कृति डा० शान्तिकुमार नानूराम व्यास पृ० १३

३ अंग लगायो लै सिर बास। निपट मिल्यो बंधु को उल्हास —वी०च० १४।१०

४ पग भेंटे बन्धान के भूपज मन वच काय।
तब उठाइ सिर सूंघि कै, लायौ उर लगाइ। —सु०च० २।३।१३

५ सिर गातु पाइन परयो उर लग्यो चहुवान। —ज्ञा० रा० २७६

६ 'चरन लागि के नव मलिक ते इन्ह साथ लग लगाय।

भाषा के वीर-काव्य में भी अतिथि सत्कार सम्बन्धी इन शिष्टाचारों का मनोरम अभिव्यजन हुआ है। अतिथियों के सत्कार में पलक पावडे बिछा देना उनके स्वागतार्थ उनसे मार्ग में ही जा मिलना, मगल कलश लिए हुए स्त्रियो का उनकी आरती उतारना गृहागत अतिथियों को दमकर प्रगाढालिगन करना उन्हें अर्घ्यादि देना सामर्थ्यानुसार भेंटो का आदान प्रदान करना तथा अतिथि रूप में आए शत्रु के परिवार की मगल कामना करना, आलोच्यकालीन अतिथि सत्कार की मुख्य विशेषताएँ मिलती है।

(क) अतिथियों को उपहार प्रदान करना —

पृथ्वीराजरासो परमालरासो सुजान चरित और आल्हखण्ड में अतिथियों के स्वागतार्थ उपहार प्रदान करने की प्रथा निभाई गई है। कवि चन्द द्वारिका स्नान के लिए जाता हुआ महाराज पृथ्वीराज के बहनोई रावल समर विक्रम की राजधानी से गुजरता है। महाराज की बहन प्रियाकुवरि उनके स्वागतार्थ 'स्वर्णथाला में सजाकर सुन्दर वस्त्र मुक्तामालाएँ एक सहस्र सीतारामिया (सीतारामी एक प्रकार का ग्रीवा आभूषण होता है) व्यजन, पान के बीड और रजत पालकी भेजती हैं। इन उपहारों के साथ एक स्वर्ण-पुत्तलिका भी थी जो स्वर स्वर में पखा झलने के साथ साथ मुख से मधुर गान भी गाती थी।[1] द्वारिका से प्रत्यागमन के समय कवि चन्द महाराज भोलाभीम की राजधानी से गुजरता है जो उसके समीप एक हाथी और सौ अश्व प्रेषित करके सत्कार करते हैं।[2] इसी भाति कवि चन्द के कन्नौज गमन पर सयोगिता की माता, उसके लिए विविध प्रकार के भोज्य पदार्थ एक सहस्र स्वर्ण सिक्के दो सहस्र पीताम्बर, मुक्ता जटित वस्त्र मणिमालाएँ और एक माता मत्त एवं माणिक्य जटित स्वर्ण द्रुम उपहार-स्वरूप प्रेषित करती है।[3]

परमालरासो में महाराज चन्द्रवर्मा के जलपोत के ध्वस्त हो जाने के कारण वे किसी अभिनवी द्वीप में पहुच जाते हैं। द्वीप निवासियों में से कोई पत्र पुष्प फल और जल लेकर आता है जबकि अन्य लोग मेवा पकवान मुर्गाथिया और भात लेकर आते हैं, तथा महाराज से मिष्ट सम्भाषण करते हुए उपहार स्वीकार करने का निवेदन करते हैं। द्वीप नारियाँ भी उनके सत्कार में पीछे नहीं रहती। वे उनकी अर्चना करती हैं तथा वृहदाकार शीशा से उनकी शिरच्छाया करके उनमें उनकी मुख छवि दिखाती हैं।[4] स्वागत के समय शीशा दिखाने की यह अभिनव प्रथा कदाचित् उस द्वीप

---

१ से ३ दे० क्रम० 'पृ०रा०' मो० ३।८२।५ पृ०रा० का० ११७४।६२, वही १६६१।७५८ ७६५

४ इक दल फल जल सुमन ल, इक मवा पक्वान।
आतपत्र गजनाह लिय कुल्लत मिष्ट जुवान।
अ मान आदर ल बाला पहुँचिय आय।
सीरप पर छाया करिय, नृप कहु दियव दिपाय।

विदाय की परिपाटी रही होगी। सुजान चरित में वजीर मनसूर का स्वागत करते हुए महाराज सूरजमल उसको बहुत से रुपए तथा हाथी घोड़े भेंट करते हैं।[1] आल्हखण्ड में जयचंद का कन्नौज आगमन सुनकर महाराज जयचन्द, कवि चन्द का मन में आनन्द के लिए शाल-दुशाले माहमाना, तीर कलगी, रूमाल, मुक्तामालाएँ हीरा रत्न जवाहिर, लाल तथा अश्व और गज भेंट किए गए हैं।[2]

भेंट प्रदान करने की प्रथा का समापन करते हुए हम इस तथ्य को प्रकाश में लाने का लोभ संवरण नहीं कर सकते कि भारतीय आतिथ्य की यह अनूठी प्रथा इससे अनभिज्ञ पाश्चात्य यात्रियों से यदा-कदा विवाद का कारण बन जाया करती थी। फ्रांस के राजदूत एस० डी० ला० बौना और वकर जब भारत के श्रीरामपुर नामक नगर में पहुँचे तो वहाँ के निवासी लगभग तीस रुपए तथा कुछ फल और मिष्ठानादि लेकर उनका स्वागत करने गए। उन राजदूतों ने समझा कि यह सामग्री हमको अति निर्धन जानकर भिक्षा के रूप में प्रदान की जा रही है अतः वे बड़े क्षुब्ध हुए और उनको तभी शान्त किया जा सका जब उन्हें अतिथि शिष्टाचार की भारतीय रीति में भेंट प्रदान करने की अनिवार्यता समझाई गई।[3]

(ख) मार्ग में पावड़े बिछाना—

परमाल रासो में आल्हा और ऊदल जब अपने मौसेरे भाई मलिखान की जागीर सिरसागढ़ में जाते हैं तो उनके मार्ग में पावड़े बिछाकर स्वागत किया जाता है।[4] उसमें रानी मल्हना के स्वागतार्थ देवा द्वारा भी वीथिकाओं में वस्त्र बिछवा देने का चित्रण किया गया है।[5] छत्रप्रकाश में महाराज चम्पतिराय से भेंट करने की कामना से आने वाले नृप पहाड़सिंह के मार्ग में पावड़े बिछाये जाते हैं।[6] आल्हखण्ड में ऊदल जब चन्द्रावली को विदा करने के लिए बौरीगढ़ जाता है तो नगर की गलियों में शतरंजी बिछा दी जाती है।[7]

(ग) स्त्रियों का मंगल कलश लेकर आना तथा आरती उतारना—

सत्कार की इस विधि का प्रयोग सिरसागढ़ गए हुए आल्हा ऊदल[8] तथा महोबा आए हुए लाखन[9] के स्वागतार्थ किया जाता है। कन्नौज से मनाकर लाए गए आल्हा

गंधिय सकल सुगंध ले पुर पुरजन की ओर।
उपहार लिज्ज नृपत कहै बन के कीर। —प०रा० २०।७७ ७८

१—२ दे० अम० सु०च० ४।२।३३ आ०' १०। १२१८
३ दे० 'दी इण्डियन ट्रैवल्स आफ थवनाट एण्ड करी' पृ० ९९ १००
४—६ दे० क्रम० पर० रा०' १५।१२३ वही १५।३९ 'छ० प्र०' ५।८ 'आ०' २८८।१८ पर० रा०' १५।१२३

ऊदन[1] तथा दिल्ली आने वाले रावलसमर विक्रम का भी[2] आरती उतारकर और मानी न्योछावर करके सत्कार किया जाता है।

(घ) अर्घ्य-प्रदक्षिणा और चरण प्रक्षालन —

ऋषि और ब्राह्मणों के आगमन पर उन्हें अर्घ्य दिया जाता था तथा उनकी आरती उतारकर, चरण-पखारकर एवं प्रदक्षिणा लगाकर सत्कार किया जाता था। पृथ्वीराज रासो में सलष पवार आगन्तुक ब्राह्मण मंत्री को अर्घ्य देते चित्रित किए गए हैं।[3] गुरुराम पुरोहित के आगमन पर कवि चन्द उनकी धूप-दीप सामग्री से अर्पण करता है।[4] महापुरुषों के स्वागत में भी कविचन्द ने उनकी पूजा करने और आरती उतारने की विधि का प्रयोग दिखाया है।[5] स्व पिता के आगमन पर सुमन्त ऋषि द्वारा उसकी प्रदक्षिणा लगाकर स्वागत किया जाता है। रासोकार ने संयोगिता भी महाराज पृथ्वीराज की प्रदक्षिणा लगाकर स्वागत करते चित्रित की है।[7] वीरचरित्र में महाराज वीरसिंह देव राजदरबार में आने वाले ब्राह्मणों को सिंहासनों पर बिठाकर उनके चरण पखारते हैं।[8] रतन बावनी में भी ब्राह्मणों के चरणोदक को सुखवर्द्धन का मूल बताकर[9] विप्रों के चरणोदक को अन्य वर्णों द्वारा शरीर पर छिड़कने की प्रथा दिखाई गई है।

(ङ) स्वागतार्थ खड़े होना तथा आगे बढ़कर गले मिलना —

छत्रप्रकाश में महाराज शिवाजी छत्रसाल जी को देखकर उठ खड़े होने का शील निभाते चित्रित किए गए हैं।[10] हम्मीर रासो में महाराज हम्मीर देव द्वारा महिमा शाह का स्वागत खड़े होकर किया जाता है।[11] इसी भाँति हम्मीर हठ में देवल कुँवरि भी अपने पिता को आते देखकर उनके स्वागतार्थ खड़ी होती प्रदर्शित की गई है।[12]

समवयस्क तथा समान प्रतिष्ठा वाले व्यक्तियों से गले मिलकर स्वागत किया जाता था। सुजान चरित में महाराज सूरजमल फतहअली[13] और वजीर मनसूर[14] का, तथा मनसूर महाराज सूरजमल का[15] इसी रीति से स्वागत करते हैं। क्यामखाँ रासा में शाह बहलोल लोदी क्यामखाँ चौहान का[16] तथा छत्रप्रकाश में भी महाराज सुजानसिंह[17] और रतनसाह छत्रसाल जी का इसी रीति से सत्कार करते दिखाए गये हैं।

---

१ २ पर० रा०' १६।३० 'प० रा० का० २११२।८५

३ से ६ दे० क्रम० प० रा०' का० ४५२।२८ वही, २१३५।१६१ वही, ३०६।५८, प० रा० मो० ३।२६६।७८, प० रा०' का० २२०७।६१५, वी० च० २८।१०, 'र० बा०' १४

१० 'तह सिवाराम सौन अति बाढे। देखत भय दूर त ठाढे।'—छ० प्र० ११।५

११ सभा समत राव दलि सेस की सु उटिठय।'—ह० रा०, ७६५

१२ न्हयौ कुँवरि तात घर आयौ। सहसा उठी सकुचि सिर नायौ।—ह०ह० न० २१०

१३ से ७ दे० क्रम० मु० च०', १।७।१८ वही ४।२।३८, वही, ६।२।२६, क्या०रा० ३८८, 'छ० प्र० ११।१५, वही, १२।६

(घ) नायिका के स्तनों पर सुगंधित द्रव्य लगाना—

गीतिकाव्यकारों ने नायिका के महत्त्व के वहाँ जब नगर वधू का वर्णन करते हैं तो वक्ष पर कपूर, कस्तूरी और कुंकुम आदि की सुगंधियाँ लगाना चित्रित किया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि सम्भवतः यह प्रसाधन सत्कार का एक अंग रहा होगा।[1]

निष्कर्ष —

गीतिकाव्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि आलोच्यकाल में संयुक्त परिवार प्रणाली भारतीय समाज में अधिक रूप से व्याप्त थी। पितामह को बाबा और दादा कहा जाता था। माता पिता गृह स्थित गंगा और गोदावरी के प्रतिरूप समझे जाते थे। उनकी आज्ञा का अनुपालन इन पवित्र नदियों में स्नान के तुल्य पुण्यकर माना जाता था जबकि आज्ञोल्लंघन का परिणाम नरकगमन स्वीकृत किया जाता था। माता की महिमा पिता से भी बढ़कर समझी जाती थी। महत्कार्यों के समारम्भ में पितृाज्ञा के सदृश माता से आशीर्वाद के रूप में उसकी मौन स्वीकृति को प्राप्त करना भी आवश्यक समझा जाता था। संतति के सत्कृत्य और दुष्कृत्यों के लिए जननियों को ही यश अपयश मिलता था अतः वे उसको बाल्यकाल से ही नीति, स्वामि भक्ति एवं सत्कृत्यों में प्रवृत्त रहने का पाठ पढ़ाती थी। पुत्र-वधू द्वारा सास की आज्ञा का पालन एक आवश्यक धर्म के रूप में समादृत था और उसकी अवहेलना करने वाली वधुओं के अनिष्ट होने की धारणा व्याप्त थी।

पिता के अनुज को काका और चाचा सम्बोधनों से अभिहित करते थे। इनका आदर पिता के सदृश ही किया जाता था। अग्रज पत्नी को मातृ तुल्य मानते हुए उसके चरण स्पर्श किए जाते थे तथा सुख दुःखात्मक मनोभावों के अभिव्यक्तिकरण के लिए वह भाई से भी अधिक उपयुक्त माध्यम समझी जाती थी। भावज भी देवरों को प्रायः स्व पुत्र से भी अधिक स्नेह प्रदान करती थी। भ्राताओं के आपसी सम्बन्ध प्रायः मधुर ही हुआ करते थे।

पत्नी गृहस्थ जीवन का मूल और परिवार के सदस्यों में सर्वाधिक सच्चा प्रेम करने वाली समझी जाती थी। अनन्य भाव से पति सेवा करना उसके भव सागर संतरण का मूल माध्यम स्वीकार किया जाता था। पति सेवा एक आवश्यक धर्म के रूप में समादृत होते हुए भी वे कायर पति को शरीर का समर्पण करना क्षत्राणियों की मर्यादा के प्रतिकूल एवं अधम समझा करती थी। चिन्ता नहीं थी यदि पति के वीर गति प्राप्त करने से भी पूर्व वे जौहर रचकर स्वर्ग द्वार पर पत्यागमन की प्रतीक्षा में पलक पाँवड़े बिछाए रहतीं अथवा धराशायी पति के शव के साथ सती होकर स्व पति से शीघ्र ही स्वर्ग में जा मिलतीं किन्तु कायर पत्नी कहलाकर समवयस्काओं से उपहासित होना,

---

1. दे० अम० प० रा०, का० २१३०।१६४

उन्ह सभी प्रकार की पीडाओं से बढकर क्लेशकर था।

आलोच्यकालीन परिवारों में यदि विघटन का कोई तत्व था, तो वे थी सपत्नियां। वे सपत्नियों को पितघातक से भी बढकर रिपु एव निदाघ की तप्त लुओं की भांति निशिदिन हृदय दाह करने वाली कहकर ही अपनी अन्तव्यथा अभिव्यक्त कर के नही रह जाती थी अपितु यदा कदा एेसे षडयन्त्रों की भी रचना करती थी जिनके चक्र में सपत्नी का तो कहना ही क्या पति के भी हिताहित को तिलांजलि दे दी जाती थी।

पितरों के निस्तारण के लिए परिवार में पुत्र जन्म आवश्यक समझा जाता था। निष्पुत्रों के अऊन-योनि प्राप्त करने की धारणा प्रचलित थी। इसके साथ साथ वंश के विस्तार कुल-कीर्ति के प्रसार पित ऋण के विमोचन तथा पितृ वैर के शोधन की दृष्टि से भी पुत्र जन्म का अत्यधिक महत्त्व था। पुत्रियां निष्पन्न क्षत्रिय राजवंशों में आपत्ति का ही निमित्त बनती थी। धर्मशास्त्रकारों द्वारा क्षत्रियों के विवाह के लिए प्रशस्त घोषित की गई राक्षस और गान्धव पद्धतियों से पुत्रियों के अपहरण अथवा स्वेच्छानुसार पति चयन को तो किसी सीमा तक सहन भी किया जा सकता था किन्तु विधर्मी शासकों की लोलुप दृष्टि भी उन पर लगी रहती थी। फलत युवा पुत्रियों वाले राज परिवारों की कुल मर्यादा सदैव सकट ग्रस्त रहती थी। कदाचित यही कारण है कि वीरकाव्य में किसी भी पुत्री के जन्मावसर पर आनन्दोत्सव की योजना नही दिखाई गई है।

धायें मातृहीन शिशुओं को तो दुग्धपान भी कराती थी जबकि उनका मुख्य कार्य शिशुओं की सेवा शुश्रूषा करना ही होता था। इनमें से प्रथम प्रकार की धायों के, आचार विचार का उनके द्वारा पालित शिशुओं पर बडा प्रभाव पडता था —जो नैसर्गिक ही था। द्वितीय श्रेणी की देखभाल मात्र के लिए रखी गई धायों का भी, अनुरक्ति के सम्पर्क के कारण, उनकी देख रेख में पले बच्चों पर पर्याप्त प्रभाव रहता था जिससे उन्हे एक प्रकार से परिवार की सदस्या मानना ही सगत है। धाय माता के समवयस्क पुत्र और पुत्रियों का भी प्रायः सहोदर भाई बहनों की भांति समादर किया जाता था।

पति पत्नी के पिता आपस में समधी कहलाते थे। माता के पिता के लिए 'मात पित' 'मातुल पित और नाना सज्ञाएँ प्रयुक्त की जाती थी जबकि पुत्री पुत्र को दौहित कहा जाता था। बहनोई को पाहुना में शिरोमणि मानते हुए उसकी मर्यादा का सम्यक निर्वाह आवश्यक समझा जाता था। अन्य सम्बन्धियों में मातुल और भागिनेय या मामा और भानजा, श्वसुर और जामात फूफू मौसी और बहनोतिन का उल्लेख मिलता है।

परम्परागत सस्कारों में से वृद्धिकर्म नान्दी श्राद्ध और जातकर्म संस्कारों के सम्बन्ध में अल्प निर्देश मिलते हैं। हाँ पुत्र जन्म परिवार के लिए असीम हर्षोल्लास का अवसर होता था। और नामकरण के अवसर पर मित्र और कुल-बान्धवों को प्रीति भोज देने की प्रथा थी।

उपनयन वेदारम्भ केशान्त और समावर्तन एेसे सस्कार हैं जो कदाचित ब्राह्मणों में तो प्रचलित रहे होंगे, किन्तु क्षत्रियों में अप्रचलित हो गये थे। इनमे से

उपनयन यज्ञोपवीत के रूप में, और कशा त नहखुर के रूप में विवाह के समय सम्पन्न किए जाते थे। वस्तुतः आलोच्यकाल का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पारिवारिक उत्सव विवाह संस्कार से सम्बंधित था। क्षत्रियों में विवाह की कई प्रणालियाँ प्रचलित थी। विशेष प्रतिष्ठित राजकुल स्व पुत्रियों के परिणयन के लिए आलोच्यकाल में भी परम्परा गत स्वयंवर प्रथा का आश्रय लेते थे, जबकि कुछ विवाह सम्बन्ध गांधर्व रीति पर भी आधृत होते थे। खड्ग विवाह ऐसी रीति थी, जिसमें प्राय अपने से कुछ हीन वंश की कन्याओं से विवाहार्थ स्वयं न जाकर अपना खड्ग देकर एक प्रतिनिधि भेज दिया जाता था। विवाह के अन्य आचारों को तो वह प्रतिनिधि सम्पन्न करता था जबकि भाँवरें उस खड्ग के साथ डाली जाती थी। सम्बंधियों को क्षत विक्षत करते हुए बलात कन्यापहरण की विधि – जिसे धर्मशास्त्रकारों ने विवाह की राक्षस पद्धति का अभिधान देते हुए भी क्षत्रियों के लिए प्रशस्त बताया है—आलोच्यकालीन क्षत्रियों में भी प्रचलित थी। उसमें इतना अन्तर अवश्य था कि इन अपहरणों में कन्याओं की पूर्व स्वीकृति मात्र ही नहीं होती थी अपितु वे प्रायः संदेश भेजकर अपने भावी पति को उसके पौरुष और क्षत्रियत्व की आन देकर अपहरण कर ले जाने के लिए उत्तेजित भी करती थी। हमारी दृष्टि में इन्हें पूर्वरागाश्रितयुद्धान्तक विवाहों की संज्ञा देना अधिक उपयुक्त है। शास्त्रोक्त आसुर पद्धति से साहश्य रखने वाले विवाहों का भी प्रचलन था जिनमें मुगल नागरों द्वारा नाना प्रलोभन देकर हिन्दू नरेशों से उनकी ललनाओं के डोले प्राप्त करने की चेष्टा की जाती थी। दोनों ही परिवारों के मुस्लिम होने की दशा में ऐसे विवाह सम्बन्ध भी किए जाते थे जिनमें स्व-परिवार की भगिनी या पुत्री का दूसरे परिवार में विवाह करके, दूसरे परिवार की भगिनी या पुत्री का अपने परिवार में विवाह कर लिया जाता था।

इन विधि से सम्पन्न होने वाले विवाहों का समारम्भ वाग्दान अथवा सगाई नामक आचार से होता था किन्तु कुछ विवाहों में आचार का पालन न करते हुए, उनका आरम्भ टीका अथवा लग्न भेजने से किया जाता था। क्षत्रिय कन्याओं के वर निर्धारण में कुल पुरोहित का प्रमुख हाथ रहता था। टीके और लग्न में वस्त्राभरण दान शस्त्रास्त्र और द्रव्य सभी प्रकार की सामग्री अर्पित की जाती थी। नहखुर तेल चढ़ान और बाँधने तथा कुंआ-व्याहन के आचार सम्पन्न किए जाते थे। कन्या पक्ष वालों द्वारा बरात की अगवानी करके ले जाने पर कलश एवं तोरण वन्दन नामक आचार सम्पन्न होता था और बरात जनवासे में पहुंचा दी जाती थी। राजस्थान की ओर कदाचित तोरण वन्दन के समय ही गोठी नामक आचार किया जाता था जिसे ब्रजप्रदेश में वरनुआ या छपनवारी भजन के पश्चात सम्पन्न किया जाता था। छपनवारी भजने की प्रथा पृथ्वीराजरासो और राजविलास में नहीं दिखाई पड़ती है किन्तु आल्हखण्ड में इसका प्रचुर उल्लेख मिलते हैं।

भाँवरों या फेरों के लिए स्थान भेद से कई प्रकार के मण्डपों की रचना की जाती थी। कवि चन्द ने दिल्ली में हरे बाँसों का मण्डप बनाए जाने का चित्रण किया है, जबकि

मान न बूदी मे स्वण स्तम्भा पर जरकसी-पट तानकर मण्डप बनाने की प्रथा दिखाई है। आल्हखण्ड ने एक अ य ही विधि का चित्रण किया है जिसम चन्दन स्तम्भ के चारो ओर पान के पत्ता से मण्डप बनाया जाता था। भाँवरा के समय के प्राय सभी आचार आजकल के आचारो से सादृश्य रखत थे उनम यह अन्तर अवश्य मिलता है कि, आल्हखण्ड के युद्धाश्रित विवाह प्रसगा म ही नही वरन पथ्वीराज रासो के दव-विधि स होने वाले इञ्छिनी के विवाह म भी भाँवरें पडकर क या क वामाग म आ जान के पश्चात क यादान करन का प्रचलन दिखाया गया है। पथ्वीराज रासा म दिखाई गई, श्वसुरालय म ही सुहागरात्रि मनान तथा प्रात काल वधू का जनवास म लाकर दान दन की प्रथाएँ भी व्रज प्रदश म प्रचलित नही है। बरात के विदा होने स पूव किए जान वाल आचारो म स पलकाचार और कुवर-कलवा या लहकौरि नामक देशाचार प्रचलित थ।

दहज म दी जान वाली सामग्री क स्थूलत चार विभाग किए जा सकत हैं। प्रथम वग म पुराहित, पडित, कवि, वद्य और साहूकारा को दहज म दना आता है। कन्या की सखियाँ और दासिया भी इसी काटि म आती हैं। दासिया क विषय म यह तथ्य उल्लख्य है कि उनके व्यय भार को प्राय क या पक्ष ही वहन करता था। द्वितीय श्रेणी म गज, अश्व और सुखपाल आदि सवारिया का देना आता है जा अत्युत्तम और बहुमूल्य होते थे। नाना प्रकार के वस्त्राभरण और जवाहिरात ततीय श्रेणी म तथा अनक प्रकार के स्वण एव रजत भाण्डा को दायज की चतुथ कोटि म परिगणित किया जा सकता है। यह दहेज सामग्री निश्चय ही समाज के उच्चतम वग के प्रतिनिधि नरेशा द्वारा ही दी जाती होगी जबकि जन सामान्य स्व सामर्थ्यानुसार दायज देत हाग।

समधिया का एक-दूसरे के वक्ष स्थल से दही मलकर और पान चिपकाकर गल मिलना समधौरा कहलाता था। बरात की विदा का समापन क या क पिता द्वारा, वर पक्ष की मर्यादा के अनुकूल दहज न दे सकने और बरात का भली प्रकार आतिथ्य न कर पान क लिए क्षमायाचना करने क शिष्टाचार स होता था।

वर वधू के स्वागताथ वर माता भ य आयोजन किये रहती था। नगर-वीथिकाओ का तो सज्जित किया ही जाता था, यदा-कदा बरात क प्रत्यागमन माग के ऊपर कई कोसा तक वितान तान दिय जात और माग म पाँवडे बिछा दिए जात थ। नगर क प्रवश द्वारा पर तोरणा की रचना करना तथा गह द्वारा पर बदन वार बाँधना भी इस सज्जा के अग थ। सिंह पौर पर आये वर वधू का सधवा स्त्रियाँ शीशा पर मगल कलश रखकर स्वागत करती थी, तथा माता द्वारा उनकी आरती उतारी जाती थी। वर और वधू पर लाजा पुष्प, मणि मुक्ता और मुद्राओ की वर्षा करने हुए हर्षाभिव्यक्त किया जाता था। कवि चन्द ने दासियो द्वारा वर वधू की चरण धूलि को स्व केशो स झाडने का भी प्रचलन दिखाया है। वर वधू को कुदष्टि क दुष्प्रभाव से मुक्त रखने के लिए, तिनका तोडने और उन पर राई एव नोन वारने

के टोने टोटके प्रयुक्त किए जाते थे। परछन के उपरान्त कुल देवी की पूजा वन्दन, कंकण खोलन और मुंह दिखराई प्रभृति रस्में के आचार सम्पन्न किए जाते थे, जिनके विषय में वीर काव्य प्रणेताओं ने अत्यल्प निर्देश किए हैं।

कन्याओं के वय संधि की अवस्था को प्राप्त होने पर, उनके भावी गृहस्थ जीवन को मंगलमय बनाने की दृष्टि से उन्हें किसी ब्राह्मणी शिक्षिका से विनय मंगल नामक शिक्षा दिलाई जाती था। इस शिक्षा के अन्तर्गत अनेक प्रकार के तर्क वितर्क तथा दृष्टान्त देकर अंकुरित यौवनाओं के मानस-पटल पर यह तथ्य अंकित कर दिया जाता था कि सुखी गृहस्थ जीवन का मूल मंत्र विनयशील आचरण होता है। साथ ही पति सेवा को भवसागर संतरण का मूलाधार बताते हुए उन्हें मनसा-वाचा-कर्मणा पति सेवा में दत्तचित्त रहने का उपदेश दिया जाता था।

वर निर्धारण के समय उसकी कुलीनता, आरोग्य, उच्चकुल में विवाह सम्बन्ध तथा शूर वीरता के गुणों को महत्ता प्रदान की जाती थी। अभीष्ट अथवा उत्तम वर वधू की प्राप्ति के लिए विधिपूर्वक शिव और शिवा की पूजोपासना करने का प्रचलन था। वीरकाव्यों से राज कन्याओं के विवाह की अवस्था तेरह से सोलह वर्ष पर्यन्त सिद्ध होती है। बहु विवाह प्रथा का व्यापक प्रचलन था, जिसमें हिन्दू नरेशों की पत्नियों की संख्या दो से लेकर सौ तक ही मिलती है जबकि मुगल बादशाहों के हरमों में पांच सौ से लेकर दो सहस्र तक बेगमें दिखाई गई हैं।

राज्याभिषेक संस्कार को भी बड़े समारोहपूर्वक आयोजित किया जाता था। राज्यारोहण के पश्चात् यदा कदा शोभा यात्रा भी निकाली जाती थी जिससे नागरिक नवाभिषिक्त नरेश के दर्शन कर सकें। मुस्लिम बादशाहों के तख्तासीन होने के समय उनके नाम सहित खुतबा पढ़ा जाता था। उनके ऊपर चँवरों के साथ साथ मोरछल ढालने का भी प्रचलन था।

अन्त्येष्टि संस्कार के समय आजकल जैसे ही आचारों का प्रचलन था। मृतक के लिए पिण्ड दान में षोडश प्रकारीय उपादान प्रदान किए जाते थे। दिवंगत व्यक्ति का पुत्र बारह दिवस तक भू शयन करते हुए समस्त प्रकार के भोगविलासों से दूर रहता था तथा तेरहवें दिवस जलांजलि प्रदान की जाती थी। अशौचकाल में यज्ञादिक कार्यों का सम्पन्न करना वर्ज्य समझा जाता था। अन्त्येष्टि के विषय में यह तथ्य उल्लेख्य है कि विशेषतः क्षत्रिय परिवारों में मृत-व्यक्ति की पत्नियाँ पति के शव के साथ सती हो जाती थीं। राजपरिवारों के अतिरिक्त सामान्य क्षत्रिय परिवारों में भी सती प्रथा का प्रचलन था। सती होने वाली नारियों द्वारा स्व पिता और पति कुल के यश में चार चांद लगने की धारणा प्रचलित थी। यह भी विश्वास किया जाता था कि वे शरीर के रोमकूपों की संख्या के बराबर वर्षों तक पति साहचर्य में स्वर्ग विहारों का उपभोग करती हैं।

सन्नारियाँ के सती होने के समय की साज सज्जा और विविध आचार, हठात् विवाहोत्सव जैसा दृश्य उपस्थित कर देते थे। उनका विवाहावसर की भाँति पूर्ण

शृगार किया जाता तथा मुख म ताम्बूल एव हाथो म नारियल लेकर पति सम्मिलन के लिए उनका श्मशान भूमि की ओर गाजे बाजे के साथ कूच करना—उनके विवाह की विदा-वेला का ही प्रतिरूप होता था। यज्ञवेदी के स्थानापन्न मदिराकृति की बनाई गई 'श्री' अथवा 'सर' हान थे जिनकी वे उसी भाँति प्रदक्षिणा लगाती थी, मानो उनकी पुन भावरें पड रही है। अन्तत हरिस्मरण करती हुई सन्नारियाँ पति के शव वस्त्र अगुक अथवा जूडे को गाद मे रखकर, मत्यु का सहष आलिगन कर लेती था। इस विषय म यह तथ्य उल्लेखनीय है कि सतिया का अपने निश्चय से विरत करन के भी प्रयास किए जात थ, किन्तु वे प्राय निष्फल ही रहत थे। सती हाने स पूव उन सन्नारिया म सत्त का प्रादुर्भाव होन, अभिशाप देन और भविष्य कथन की अलौकिक शक्तियाँ आ जाने का भी विश्वास किया जाता था। सतिया की स्मति को चिरस्थायी रखने के लिए सती चौराओ की स्थापना की जाती थी जिनकी पूजा करन का भी प्रचलन था।

वीरकाव्य म कुछ क्षत्रिय पत्नियाँ सती होत नही भी दिखाई गई है, जिससे यह प्रथा अनिवाय नही सिद्ध हाती। वश्य और ब्राह्मण विधवाओ सम्बन्धी मात्र एक ही उदाहरण मिलने के कारण, निश्चयपूवक तो कुछ नही कहा जा सकता, किन्तु सम्भवतया उनम सती होने के स्थान पर ब्रह्मचय व्रत के पालन का ही अधिक प्रचलन था।

जौहर प्रथा भी, सती प्रथा का ही एक रूप थी। इस प्रथा के मूल म यह धारणा कायरत रहती थी कि विजेता विधर्मियो के हाथो भ्रष्ट होने की अपेक्षा मृत्यु का आलिंगन कर लेना वरण्य है। यदा कदा एसी दुघटनाए भी घटित हो जाती थी, जिनम भ्रम वश विजेता नरेशो के दुग की नारियाँ भी जौहर कर लती थी। जौहर से पूव भी विप्रादिक को दान प्रदान किया जाता था।

आलाच्यकाल के पर्वोत्सवा पर दष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि, चत्र शुक्ला त्रयोदशी को प्रतिष्ठित घरानो मे मदन महोत्सव की आयोजना की जाती थी। प्राचीन काल की भाँति इसम कामदेव और रति की प्रतिमाओ के पूजन के स्थान पर पत्नियाँ कामवेश धारी पति की पूजा करती थी। श्रावण शुक्ला पूर्णिमा का सनीना' नामक त्योहार मनाया जाता था। वीरकाव्य मे इस पव पर भुजरियाँ अथवा कजरियाँ सिरान की प्रथा, और उस अवसर पर होन वाले युद्धो का अधिक चित्रण किया गया है। इससे अग्रिम पव नव दुर्गा थे, जिनम देवी का जाप और हाम कराय जाते थे तथा विप्र क याओ का भाज दन का विशेष माहात्म्य समझा जाता था। विजय दशमी क अवसर पर बल परीक्षण की प्रतियागिताएँ आयोजित की जाती थी। दीपावली का पव लोक प्रचलित था। बसत पचमी के दिवस श्रीकृष्ण के बसत खेलन के नाटक की आयोजना करन का प्रचलन था। विश्वास किया जाता था कि श्रीकृष्ण की लीलाओ के प्रेक्षण और श्रवण से प्रेक्षक और श्रोताओ के पाप प्रक्षालित हो जायेंगे। शिवरात्रि क पव पर उपवास रखने, रात्रि को जागरण करने तथा दान दने

का विशेष माहात्म्य था। होली प्रायः अत्यन्त धूमधाम से मनाई जाती थी। लोग गधों पर सवारी करते और अटपटाभ्य विचार का विनोद करते थे। नारियाँ भी पीछे नहीं रहती थीं, और इस पर्व पर वे भी नाच-गाकर इकट्ठा गुल्ला के साथ नृत्य-गान करती थीं। होली मनाने में रंग-वर्षा और अबीर आदि के स्थान पर प्रायः राख, धूल और कीचड़ का प्रयोग किया जाता था। होली का इस प्रकार पद्धति से मनाने का मूल कारण यह समझा जाता था कि मानव जाति को भय से बचने का वर प्राप्त करने वाली वही ढोंढा नामक राक्षसी से मात्र इस असभ्यतापूर्ण आचरण के कारण ही परित्राण पा सकते थे। इसके में होली मनाने का गुणानुवाद रूप भी प्रचलित था।

विशेष अवसरों में अभिवादन की विशिष्ट प्रणालियाँ थीं। साधु आदि पूज्य व्यक्तियों को दण्डवत या साष्टांग प्रणाम करके अभिवादन किया जाता था। माता पिता और अग्रजों के चरणों में गिरकर चरण-स्पर्श करके तथा हाथ जोड़कर अभिवादन करने का प्रचलन था। प्रणाम, राम राम, नमस्कार और जुहार हिन्दुओं के अभिवादन की अन्य हिन्दू प्रणालियाँ थीं। इनमें से जुहार का सर्वाधिक प्रचलन था जबकि नमस्कार का सबसे कम। मुजरा, बन्दगी, सलाम, कोर्निश और तस्लीम मुस्लिम संस्कृति से अपनाई गई अभिवादन शैलियाँ थीं जिनमें से अन्तिम दो शाही दरबारों तक ही सीमित थीं। आशीर्वाद देते समय अभिवादक का सिर चूमने की प्रथा थी।

अतिथि-सत्कार की भी सभ्य प्रणालियों का प्रचलन था। यदि अतिथि के आगमन का पूर्वाभास हो जाता था, तो उससे मार्ग में ही जा मिलने की चेष्टा की जाती थी, तथा उपहार प्रदान किए जाते थे। मार्ग में पाँवड़े बिछाना, उसकी आरती उतारना, स्वागतार्थ खड़ा होना, आगे बढ़कर गले मिलना, अर्घ्य प्रदान करना, कुशल प्रश्न पूछना तथा ताम्बूल प्रदान करना—अतिथि शिष्टाचार के अन्य अंग थे।

समग्र पारिवारिक-व्यवस्था के विषय में संक्षेप में कहा जा सकता है कि उसमें भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का अक्षुण्ण रूप दृष्टिगत होता है। इस समय उसकी संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली अवश्य विशृंखलित हो चुकी है, विवाह सम्बन्धों में से कौशाधिक अपहरण विलीन हो चुके हैं, सती प्रथा अप्रचलित हो गई है, अभिवादन करते समय साष्टांग प्रणाम जैसी अति आदरसूचक विधियाँ तो उठती ही जा रही हैं, जुहार करने का भी आलोच्यकाल की भाँति व्यापक प्रचलन नहीं है, तथा अतिथि सत्कार में भी उस काल जैसी आत्मीयता के दर्शन नहीं होते, फिर भी हमारा पारिवारिक जीवन आमूल चूल परिवर्तित नहीं हुआ है और हम आजकल भी उसके विविध अंगों का यथाविधि रूप में ही अनुसरण करते हैं।

□

चतुर्थ अध्याय

धार्मिक स्थिति

आलोच्यकाल की धार्मिक स्थिति सम्बन्धी निर्देशों के आधार पर उन्हें स्थूलतः तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों के अनुयायियों का अन्यान्य के प्रति दृष्टिकोण।

(ख) परलोक सुधारने की कामना से किए जाने वाले धार्मिक कृत्य।

(ग) विविध प्रकार के धार्मिक विश्वास और मान्यताएं।

(क-१) विष्णु, शिव और शक्ति के उपासक

वीरकाव्य में हिन्दू धर्म के विभिन्न मतावलम्बियों के पारस्परिक दृष्टिकोण पर प्रकाश डालने वाले निर्देशों से विष्णु, शिव और शक्ति की आराधना में पारस्परिक सौहार्द तथा बहुदेवोपासना की प्रवृत्ति पर प्रकाश पड़ता है। उदाहरणार्थ कवि चन्द ने महाराज पृथ्वीराज को युद्ध गमन से पूर्व इष्टदेव के रूप में श्रीकृष्ण का स्मरण करते चित्रित किए हैं।[1] उनकी नित्यिक क्रिया का वर्णन करते हुए वह उनके द्वारा रघुनाथ चरित्र श्रवण करने का चित्रण करता है।[2] अन्य प्रसंगों में दिल्लीश्वर शिव की पूजोपासना करके अभीष्ट सिद्धि का वरदान प्राप्त करते प्रदर्शित किए गए हैं[3] जबकि अन्यत्र वे शक्ति की भी आराधना करके उसे तुष्ट करते मिलते हैं।[4] कवि चन्द ने महाराज की दैनिक चर्या का वर्णन करते हुए राजमहल में प्रातःकाल कहीं हरि की, कहीं हर या शिव की और कहीं दुर्गा की पूजा होते दिखाकर भी, इस तथ्य में सन्देह नहीं रहने दिया है कि विष्णु, शिव और शक्ति की बिना किसी भेद भाव के पूजोपासना की जाती थी।[5] परमाल रासो में महाराज राहिल ब्रह्मा भगवान राम और शिव के भक्त प्रदर्शित किए गए हैं।[6] महाराज परमाल को भी शिव और राम में एक-जैसी आस्था दिखाई

१ से ६—दे० 'पृ० रा०', का० २२०२।५७८, वही, १६६५।७१, वही १५७४।६८, वही, ७५३।४६८ ६९, वही, १६८८।१० १२, पर० रा०, २।८७

गई है और ये देवों की पूजा करते मिलते हैं।[1] इस दृष्टि से इस आधार पर कहा जा सकता है कि जन सामान्य का भी विभिन्न देवों के विषय में यही दृष्टिकोण रहा होगा। कदाचित् विभिन्न सम्प्रदायों के धार्मिक गुरुओं में अपने आराध्य देवों को दूसरों के आराध्य देवों से बढ़कर बताने की प्रवृत्ति अवश्य विद्यमान थी जिसके विषय में कवि चन्द को लिखना पड़ा है कि शिव और विष्णु वस्तुतः अभिन्न हैं, अतः जो उनके पार्थक्य का प्रतिपादन करते हैं वे निश्चय ही नरक वास का दण्ड भोगते रहेंगे।[2] हमारा विनम्र निवेदन है कि कवि चन्द का मन्तव्य निश्चित जन-सामान्य के दृष्टिकोण का सुस्पष्ट रूप है और उन धार्मिक गुरुओं के प्रति प्रजा की अश्रद्धात्मक धारणाओं का प्रकटन करता है जो शिव और विष्णु में किसी प्रकार का विभेद समझने का उपदेश देते थे। कवि 'मान' ने भी उदयपुर में भगवान राम, श्रीकृष्ण, दुर्गा, महेश्वर और गणेश की निर्विरोध पूजोपासना प्रदर्शित की है।[3] इससे इसी तथ्य का अभिव्यञ्जन होता है कि जन-सामान्य की दृष्टि में इन देवी देवताओं की पूजोपासना के विषय में किसी प्रकार का विभेद नहीं था। आलोच्यकाल की धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डालने वाले इतिहासकारों से भी वीरकाव्य में चित्रित धारणाओं की पुष्टि होती है।[4]

(घ-२) वैदिक तथा बौद्ध मतावलम्बी

पृथ्वीराज रासो के एक संदर्भ में जैनों के धर्म ग्रन्थों के सदृश बौद्ध धर्म के ग्रन्थों के पठन से भी पौरुष क्षीण होने का तर्क देकर उन्हें न पढ़ने का परामर्श अवश्य

---

१ पृ० रा०, ३०।१६

२ करिय भक्ति कवि चन्द हर। हरि जपिय इह भाइ।
ईस स्याम जू जू कहै। नरक परतह जाइ।
— पृ० रा०, का० २२।७६

३ 'कहूँ रघुवीर कहूँक रमेस, कहूँ हरसिद्धि कहूँक महेस।
कहूँ इक दंत गजानन आप, पुलै तिन देखत पाप सताप।।'
—रा० वि० ७।१०४

४ 'डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने सन् ६०० से १२०० ई० तक की धार्मिक स्थिति का विवेचन करते हुए कहा है कि अंत में हिंदुओं के पाँच—सूर्य, विष्णु, देवी, रुद्र और शिव—मुख्य उपास्य देवता रह गये जिन्हें सामान्य रूप से पंचायतन कहते हैं। + + + विभिन्न देवों के उपासकों में वैमनस्य न होकर अंत में समन्वय हो गया था। कन्नौज के प्रतिहार राजाओं में यदि एक वैष्णव था तो दूसरा परम शिव और तीसरा भगवती का उपासक था तो चौथा परम आदित्य भक्त। धर्म इतने समीप आ गये थे कि उनकी दंतकथाओं में विभेद करना भी कठिन हो गया।" —मध्यकालीन भारतीय संस्कृति', पृ० ३०-३१

किया गया है,¹ किन्तु ग्रन्थ में कोई भी ऐसा प्रसंग नहीं मिलता जिसमें उनके पारस्परिक सम्बन्धों में कटुता चित्रित की गई हो। यही नहीं प्रत्युत वीरकाव्य में विष्णु के दस अथवा चौबीस अवतारों की जो तालिकाएं दी गई हैं उनमें भगवान बुद्ध को भी विष्णु के अवतारों में परिगणित किया गया है। इससे ध्वनित होता है कि हिन्दू और बौद्ध मतावलम्बियों में कटुता तिरोहित हो चुकी थी और बुद्ध को विष्णु का अवतार मान कर दोनों मतों में विवाद के मूल कारण का ही अन्त कर दिया गया था।

पृथ्वीराज रासो में उपलब्ध विवरण से ज्ञात होता है कि हमारे आलोच्यकाल के आरम्भ में वैदिक और जैन मतावलम्बियों का एक-दूसरे के प्रति कुछ असहिष्णु दृष्टिकोण था। कुछ नरेश ऐसे थे जो मत विशेष के संरक्षक बनकर दूसरे मत की पूज्य वस्तुओं का विनष्ट करना अनुचित नहीं समझते थे। दोनों मतों के अनुयायी एक दूसरे की साधना पद्धति का उपहास भी किया करते थे। रासो में गुजरात नरेश भोलाभीम जैन मतावलम्बी प्रदर्शित किए गए हैं। कवि चन्द के शब्दों में वे 'वेद धर्म के भंजक थे, तथा मात्र जैन मत को ही प्रमाण मानते थे।'² उन्होंने कुत्सित लुंचिता (केश नुचवाने वालों) का पथ अपनाते हुए महावीर को अपना परमाराध्य बना रखा था, तथा यज्ञ धर्म या सुधर्म का उत्थापन करके अधर्म का प्रतिष्ठापन करने का बीड़ा उठा रखा था।³ रासोकार ने वे शिवपुरी में आग लगवाकर उसे विनष्ट करते भी चित्रित किए हैं।⁴ उपर्युक्त विवरण में जैन मतावलम्बी नरेशों द्वारा यज्ञादिक वैदिक धर्म और शिव आदि देवों के मन्दिरों को भूसात करा देने के तथ्य के साथ साथ कवि चन्द ने महाराज भोराभीम के लिए जो विशेषण प्रयुक्त किए हैं उनमें वैदिक मताव-लम्बियों की, जैनों के प्रति विगर्हणा के भी दर्शन किए जा सकते हैं।

कवि चन्द ने द्वारिका-तीर्थ की यात्रा से लौटते हुए तथा अन्यत्र भी जैनियों की साधना पद्धति का जो खण्डन किया है उसमें स्पष्ट होता है कि वैदिक मतावलम्बी जैन मतावलम्बियों की साधना पद्धति का उपहास इन शब्दों में करते थे— जिनका वेश अभद्र होता है, जो गोमती आदि नदियों में स्नान नहीं करते, अपने केशों का लुंचन कराते हैं वस्त्रों के धोने का तो कहना ही क्या, जो मुख तक प्रक्षालित नहीं

---

१ "परमोध तजो वाचक पुरान। रामाइन सुन भारत निदान।"

—'पृ० रा०,' का० ७१।३।२

२ 'ठानिज्जे मानिज्ज मत हानिज्जे गुर ग्यान।
वेद धर्म जिन भजए, जैन ध्रम परिमान।'

—'पृ० रा०' मो० २।४३२।२५

३ "महाबीर वीर चित जाप लीनो। जिनें कुच्छित लुंचित पथ कीनौ।
जिन जग्य ध्रम चर नंति भज। सुध्रम उथाप अध्रम सुरज।"

—'पृ० रा०', का० ४६४।२८८

४ "भोराराइ भीमग, सोर सिवपुरी प्रजारिय।" —'पृ० रा०', का० ४४७।१

करते आँखो से अश्रुपात हो जाने की दशा म (केशा को नुचवाते समय—आँसुआ का आना वर्ज्य था) जो अनेक उपवास करत हैं, जिनका देवताओं के दशन तथा गगा-स्नान और श्राद्ध कम आदि हिन्दू परम्पराओ म विश्वास नही है—एस जैनी लोग न जान किस भ्रमजाल मे ग्रस्त रहते हैं और भगवान ही जान कि इन्ह सदगति कस प्राप्त होगी ?'[1]

महाराज बीसलदेव के पुत्र सारगदेव के हृदय म अपनी धानबहिन गौरी के वध्य मे दुखित होकर वराग्य जाग्रत हो जाता है और वे अहत की सेवा करते हुए, अहिंसावृत्ति का पालन करन का निश्चय कर लेते है।[2] महाराज बीसलदेव को जब यह ज्ञात होता है तो वे उन्ह समझाते हुए कहत हैं कि तुम्ह इस ज्ञान नष्ट करन वाले धम की बातें तो कानो तक म नही पडने देनी चाहिए। इसस पुरुषाथ क्षीण होता है तथा अपयश लगता है। राजपुत्रो के लिए तो रामायण और महाभारत जस ग्रथो का पठन और श्रवण करना आवश्यक होता है न कि बुद्धि भ्रष्ट करने वाले जन और बौद्ध पुराणो का सुनना।'[3]

रासो मे महाराज भोलाभीम स अपनी बहिन इच्छिनी के विवाह प्रस्ताव का प्रतिरोध करते हुए उसके भाई जतसिंह द्वारा भी यही तक प्रस्तुत किया जाता है कि वे तत्त्व ज्ञान (वदिक मर्यादाओ) मे ममन न होकर पाखण्ड और तन्त्र म त्र म दक्षता के कारण गर्वान्ध हैं।[4] जन मतावलम्बी अपनी तान्त्रिक साधनाओ की उपलब्धि को वदिक पण्डितो की अवमानना और उनकी उक्तियो के खण्डन के लिए भी अपनाते थ। पथ्वीराज रासो म वणन है कि महाराज भोलाभीम के दरबारी अमर सेवरा ने अपनी सिद्धि के बल से अमावास्या को चन्द्र दशन कराकर विप्रो को शीश मुण्डाकर निकलवा दिया था।[5] रासोकार न अमर सेवरा द्वारा अमावास्या को बारह कोस पयत तक चन्द्र का प्रकाश दिखाकर विप्रो के सिर मुडवाने[6] तथा उनके धन का अपहरण कर लेने[7] का प्रयत्न भी उल्लेख किया है। कदाचित इस तिथि निर्णायक विवाद के मूल म भी वदिक और जन मतावलम्बियो क मध्य धार्मिक विद्वेष ही कायरत था जिसम उनके पचाग आदि को सारहीन सिद्ध करन के लिए जन मतावलम्बी अमर सेवरा न

१　भद्र भेप नह हुए। जाइ गामति न हाव।
　　तज न भ्रम सवरा। हाइ करि केस लुचाव।
　मुप पावन हन कर। वस्त्र धाव न विवक।
　　आँसू अप परत। करत उपवास अनेक।
　दरसन सब मान नही। गगा ग्यान श्राद्ध क्रम।
　　कवि चन्द कहत इन कहा गति। किहि मारग लग्ग सुभ्रम।'
　　　　　　　　　　　　　　　—प० रा० का० ११७२।४६

२ स ७—८० प० रा०' का० ७१।३४६ वही, ७१।१५१ ५२, वही, ४५४।४०
　वही ४४६।६ ४८२।२४ ४६१।२७८

स त म न्त्रों का आश्रय लिया होगा।

भारत की भावी दशा के निर्धारण में राज्य-स्तर पर चलने वाले इस धार्मिक विद्वेष का दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जायगा। यदि महाराज पृथ्वीराज और भोलाभीम न आपसी युद्धों में शक्ति क्षय करने के स्थान पर शाह गोरी का सगठित होकर सामना किया होता तो कदाचित भारत को दासता की शृंखलाएँ नहीं पहननी पडती। यह तथ्य ध्यातव्य है कि डा० दशरथ शर्मा ने भी सवत १२०० के लगभग, जैन धर्म के प्रचार में राजकीय सहायता लेने और तदर्थ यदा-कदा रक्तपात की भी घटनाएँ घटित होने का उल्लेख किया है[1] जिससे रासो में दिखाया गया विरोध तथ्याधृत सिद्ध होता है। यह विरोध शनै शनै उपशमित अवश्य होता जा रहा था और जैसा कि राज विलासकार मान ने चित्रण किया है एक ही नगर में जिनराज और राम श्रीकृष्ण तथा शिव आदि देवों के मन्दिर होते थे और वैदिक तथा जैन मतावलम्बी बिना किसी वैमनस्य के स्व आराध्यों की पूजोपासना करने लगे थे।[2]

(ग १) हिन्दू और मुस्लिम धर्मावलम्बी

हिन्दू और मुस्लिम धर्मावलम्बियों के पारस्परिक दृष्टिकोण के सम्बन्ध में दो तरह की धारणाएँ प्रचलित मिलती हैं। दोनों धर्मों के उदार चेता वर्ग की दृष्टि में ईश्वर और अल्लाह एक थे, अतएव हिन्दू और मुसलमानों में किसी भी प्रकार का वैमनस्य व्यर्थ और निद्य था। दूसरा वर्ग उन लोगों का था, जिनकी दृष्टि में एक दूसरे के धर्म की बातों का श्रवण ही नहीं अपितु उनका कर्णगोचर मात्र होना भी उन्हें सुनने वालों को नरक अथवा दोजख वास दिलाने के लिए पर्याप्त था। पहले दोनों धर्मावलम्बियों के असहिष्णु दृष्टिकोण पर प्रकाश डाला जा रहा है—

हिन्दू और मुसलमानों के पारस्परिक दृष्टिकोण को विषाक्त करने के मूल में राजनीतिक स्वार्थों की प्रधानता मिलती है। उदाहरणार्थ भारत पर आक्रमण करने का औचित्य सिद्ध करने के लिए शाह गोरी अपने सैनिकों को विगत घटनाओं पर आधृत या काल्पनिक आख्यान सुनाते हैं, उन पर दृष्टिपात करने से इस तथ्य में सन्देह नहीं रहता कि उनका मूल अभिप्रेत तो अपने राज्य का विस्तार करना होता था, किन्तु उसके धार्मिकता के आवरण में प्रच्छन्न करके, सैनिकों में धर्म-युद्ध की भावना जाग्रत करने का प्रयास करते थे।

शाह के वजीर आदि राज्य मन्त्रियों का भी दृष्टिकोण ऐसा ही था। कवि चन्द के गजनी पहुँचने पर उनका वजीर कहता है कि इस अदीन काफिर का आप नाम तक कानों में मत पड़ने दीजिए और इसे शीघ्रातिशीघ्र स्व राज्य से निष्कासित कर दीजिए।[3] शाह गोरी द्वारा महाराज पृथ्वीराज का आक्रमण का कारण बनाते हुए

---

१ स २—दे०, 'अर्ली चौहान डाइनेस्टीज', पृ० २२३, 'रा० वि०', २।१०२ १०४
३ पृ० रा०', का० २६।२६१।३०८

हिंदू धर्म को मिटाने की कामना से उनके मंदिरों को नष्ट कराते[1] तथा उन पर रंगे तीर्थकर और जजिया लगाकर,[2] उन्हें हिंदू धर्म का परित्याग करने के लिए विवश करना उल्लिखित किया है। उन्होंने यह धारणा भी व्यक्त की है कि हिंदू और मुसलमानों की शत्रुता देव और दानव तथा केहरी और करि की शत्रुता की भांति पारस्परिक रूप में चलती ही रहती है।[3] जोधराज ने महाराज हम्मीर देव अपने राज्य की मसजिदें नष्ट कराकर मंदिर बनवाते चित्रित किए हैं।[4]

हिंदू और मुस्लिम धर्मावलम्बियों सम्बन्धी उपयुक्त विवरण पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि उसका मूलकारण मुगल बादशाहों का निहित स्वार्थ अधिक रहा है। स्वधर्म को श्रेष्ठ मानने के विषय में तो विधर्मियों को आपत्ति हो क्या हो सकती है, किन्तु ऐसा धर्मोन्माद जो बल प्रयोग द्वारा विधर्मियों को अपने अनुयायी बनाने पर आधृत हो, अक्षम्य ही कहा जायगा। इस प्रसंग में यह निवेदन भी अप्रासंगिक न होगा कि हिंदू नरेशों द्वारा मसजिदों को नष्ट कराकर उनके स्थान पर मंदिर बनवाने का जो उल्लेख किया गया है उसमें आश्रयदाताओं की प्रशस्ति का अंश अधिक है क्योंकि मुगलों की दुरंत वाहिनी के कारण औरंगजेबकाल तक ऐसे हिंदू नरेश अत्यल्प ही हुए हैं जो उनकी मसजिदों को विनष्ट कराने का साहस कर सके होंगे। कवि मात्र का उल्लेख ऐतिहासिक साक्ष्यों के निष्कर्ष पर खरा नहीं उतरता।[5] इसके विपरीत शाह औरंगजेब प्रायः जिनको लेकर ही दोनों धर्मों के अनुयायियों में विरोध का तीव्र स्वर अधिक व्यक्त किया गया है अपनी धार्मिक कट्टरता और मन्दिरों को नष्ट कराने के लिए इतिहास प्रसिद्ध हैं।[6] टवर्नियर आदि पाश्चात्य यात्रियों ने

---

१ से ४—द०, 'छ० प्र०' ६।३ ११।१० वही ११।३ ह० रा० ३६

५ स्वयं महाराज राजसिंह के राज्य में ही औरंगजेब की सेना द्वारा डा० गौरीशंकर हीरा० ओझा के अनुसार २३६ मन्दिर तोड़े गये थे जबकि एम० सी० सरकार ने उनकी संख्या ३०२ दी है—'हिंदी वीरकाव्य' पृ० २४८ पर उद्धृत।

६ डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के अनुसार मंदिरों को ध्वस्त कराने की कुप्रथा सम्राट अकबर और जहाँगीर के शासनकाल में बंद रही। शाहजहाँ ने नये मन्दिरों का निर्माण तथा पुरानों की मरम्मत बंद कराने के साथ साथ खुद मन्दिर गिरवाये भी थे। औरंगजेब के राज्यकाल में यह कृत्य पराकाष्ठा को पहुँचा जिसने बनारस के विश्वनाथ और गोपीनाथ तथा मथुरा के केशवराय के प्रसिद्ध मंदिरों को ध्वस्त कराने के साथ साथ अपने सूबेदारों को यह आदेश भेज दिया था कि वे काफिरों के समस्त मन्दिर और स्कूलों को भूमिसात कर दें। यही नहीं मन्दिरों के ध्वंसीकरण के कार्य में किसी प्रदेश में ढील तो नहीं की जा रही है इसकी देखरेख के लिए और इस कार्य को गति प्रदान करने के लिए उसने एक दरोगा भी नियुक्त कर दिया था।" —द० मुगल एम्पायर', पृ० ५३५

उनकी उस प्रच्छन्न राजनीतिक स्वार्थपरता की ओर स्पष्ट संकेत किया है, जिसको ग्रस्त बनाकर उन्होंने अपने भाई दारा की भी उनको काफिर करार देकर, निर्मम हत्या कराई थी।[1] गोरेलाल ने शाह औरंगजेब द्वारा हिन्दुओं पर जो मँहगे तीर्थकर और जजिया लगान का उल्लेख किया है, वह ऐतिहासिक साक्ष्य से समर्थित है।[2] डॉ० ईश्वरी प्रसाद के अनुसार शाहजहाँकाल में भी प्रयाग जाने वाले यात्रियों से सवा छः रुपये वसूल किये जाते थे तथा मृत व्यक्तियों की गंगा में अस्थि प्रवाह करने के लिए भी कर देना पड़ता था।[3] बर्नियर ने उल्लेख किया है कि शाह औरंगजेब सूर्य ग्रहण के अवसर पर तीर्थ स्थलों पर मेला के आयोजन की तभी अनुमति प्रदान करते थे जब ब्राह्मण लोग उन्हें एक लाख रुपये की भेंट प्रदान कर देते थे।[4] बर्नियर का उल्लेख उस काल का है जब रुपये की क्रय क्षमता आज से कम से कम पचास गुनी तो अवश्य थी—आईन ए अकबरी में अकबर काल में गेहूँ और चना का भाव क्रमशः १२ और ८ दाम प्रदर्शित किया गया है जो एक रुपये में चालीस होते थे[5]—अतः अनुमान किया जा सकता है कि औरंजेबकाल में हिन्दुओं को तीर्थ-यात्रा आदि करने जाना कितना दुष्कर रहता होगा। पृथ्वीराज रासो में बांग का शब्द सुनने तथा छत्रप्रकाश में शंख का शब्द सुनने से जो नरक और दोजख का वास मिलने का उल्लेख किया गया है वह सामान्य नागरिकों के अन्यान्य के प्रति दृष्टिकोण का परिचायक नहीं अपितु दोनों धर्मों के प्रति कट्टर आचार्यों के मस्तिष्क की उपज प्रतीत होता है।

सहिष्णु दृष्टिकोण —

हमारी आधार सामग्री के प्राचीनतम ग्रन्थ पृथ्वीराज रासो में मुसलमान जालन्धरी देवी की पूजा करते दिखाए गये हैं।[6] उसमें शाह गोरी की माता भी दाना

---

१ (क) ट्रैवल्स इन मुगल इण्डिया भाग २, पृ० ११६

(ख) ट्रैवल्स इन मुगल एम्पायर' बर्नियर, पृ० १०६

२ 'आमेर के महाराज जयसिंह और जोधपुर के महाराज जसवंतसिंह के निधन के पश्चात औरंगजेब ने तीर्थकर और जजिया वसूल करना पुनः चालू कर दिया था, जिसे वह उनके विरोध के कारण उनके जीवनकाल में बन्द करने के लिए विवश हो गया था।' —द मुगल एम्पायर, पृ० ५३८

३ 'मुगलकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास' पृ० ४१४

४ 'ट्रैवल्स इन मुगल एम्पायर', पृ० ३०३

५ 'आईन ए अकबरी, भा० ३, पृ० ६५

६ तहँ हिन्दू बर मुसलमान। लष्प विप्र सुआवहिं।
जवनिक कुल छत्री। कुलाल पोड्स मिलिधावहिं।"

—पृ० रा०' का० २०३०।७३

और कयाम खा-रासा म ईश्वर और अल्लाह अथवा करतार की जिस एकता का प्रतिपादन किया गया है, वह उन उदारचेता सामाजिकों के चिंतन का प्रतिनिधित्व करता है जिन्होंने धार्मिक समन्वय की दृष्टि स अल्लोपनिषद की रचना करके, अल्लाह को विष्णु के अवतारों म परिगणित करने का प्रयास किया था। जोधराज द्वारा शाह अलाउद्दीन को शिवोपासक दिखाना काल्पनिक हो सकता है किन्तु हिन्दू और मुस्लिमों द्वारा एक दूसरे के देवी देवताओं और पीर पैगम्बरों की पूजा करने लगने का तथ्य बहिस्साक्ष्यों से भी समर्थित है।[२] केशवदासजी का शाहजहां को गो विप्र रक्षक घोषित करना तथा भूषण का शाह अकबर आदि की उदार धार्मिक नीति की प्रशंसा करना भी तथ्याश्रित है क्योंकि ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि सम्राट अकबर ने अपने भोजनालय म गोमांस का पकाया जाना निषिद्ध घोषित कर दिया था[३] तथा देवी देवताओं के प्रति उनका दृष्टिकोण इतना उदार था कि उनकी हिन्दू पत्नियों ने महल म मन्दिर बनवा रखे थे और उन्हें अपने देवी देवताओं की मूर्तियों के पूजन की सम्राट् की ओर से पूर्ण स्वतन्त्रता थी।[४] उन्होंने हिन्दुओं से तीर्थ कर और जजिया वसूल करने की प्रथा भी स्थगित कर दी थी।[५] शाह जहांगीर की भी मान्यताओं को छोड़कर अन्य हिन्दू धर्मावलम्बियों के प्रति, अपने पिता शाह अकबर की ही भांति उदार मनो वृत्ति बताई जाती है।[६]

हिन्दू और मुस्लिम धर्मावलम्बियों की अन्यान्य के प्रति सहिष्णु और असहिष्णु धारणाओं पर युगपत् रूप म दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि उनके सम्बन्धों म तिक्तता का प्रादुर्भाव करने म धार्मिक धारणाओं के स्थान पर राजनीतिक स्वार्थों का अधिक हाथ था। जब दोनों धर्मावलम्बी साथ साथ निवास करने लगे तो जन सामान्य म एक दूसरे की धार्मिक आस्थाओं का पूर्णतया खण्डन करने के स्थान पर एक दूसरे के धर्म की कुछ बातों को अपना लेने की भी प्रवृत्ति बढ़ती गई। औरंगजेब आदि कुछ नरेशों ने राजनीतिक स्वार्थों से उनके विभेद की खाई को और भी चौड़ा करने की कोशिश की थी, जिसका घोर विरोध हुआ और अन्तत उसका दुष्परिणाम यह निकला कि हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्मावलम्बी अंग्रेजों की दासता के बंधनों म जकड़ गये।

(ख १) तीर्थाटन और देवी देवताओं की पूजोपासना

वीरकाव्य धारा के विविध ग्रन्थों म चित्रित घटनाओं से स्पष्ट होता है कि प्रयाग या काशी, मथुरा द्वारामती (द्वारिकापुरी) जगन्नाथपुरी, बद्रीनाथ उज्जैन,

---

१ भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास डा० सत्यकेतु विद्यालंकार पृ० ४१४
२ वही पृ० ४१८
३ द मुगल एम्पायर डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पृ० ५३२
४ से ६—डा० वही, पृ० ५३३, वही, पृ० ५३२, वही पृ० ५३३

[illegible] (मठुरागी) [illegible] हिमराज [illegible] माहवाद ने [illegible] तथा दक्षिणी भारत के [illegible] नायक [illegible] में [illegible] [illegible] करने में [illegible] [illegible] पुन [illegible] से [illegible] होने [illegible] के पूजन [illegible] का विवरण किया जाता था।[1] [illegible] भी प्रयत्न किया है कि आल्हखंड [illegible] में [illegible] इस प्रकार [illegible] है। [illegible] पतिव्रता नहीं [illegible] जीवन का [illegible] करना पड़ता है।[2]

[illegible] की पूजा आराधना करके [illegible] की सिद्धि का उपक्रम किया जाता था। [illegible] शिव [illegible] [illegible] की पूजा का [illegible] स्थान [illegible] मिलते हैं। [illegible] सम्बद्ध [illegible] पौराणिक [illegible] का पर्याप्त प्रभाव [illegible] होता है। [illegible] पूजा से [illegible] प्रकार के वरदान प्राप्त करना [illegible] होकर [illegible] तथा [illegible] जाकर उन्हें पुनरुज्जीवित कर देना [illegible] ऐसी ही धारणाएँ हैं [illegible] कालीन [illegible] की भी इस प्रकार [illegible] मिलती है।

शिव —

शिव [illegible] में सर्वाधिक [illegible] देव थे। वीरकाव्य में अधिकांश नरेश शिव की पूजा करते मिलते हैं। उनमें [illegible] भक्तों की सेवा से [illegible] [illegible] का विशिष्ट गुण स्वीकार किया जाता था। चाहे अभीष्ट वर या वधू की प्राप्ति की कामना हो और चाहे युद्ध में विजयी होने [illegible] [illegible] [illegible] की अगाध्य समस्याएँ—[illegible] भगवान् शिव की आराधना से सहज ही हो जाता है।

वीरकाव्य में समस्त देवी देवताओं द्वारा वरदान देने के जो [illegible] मिलते हैं उनका अधिकांश अकेले शिव से सम्बद्ध है। महाराज पृथ्वीराज[3] और [illegible][4] [illegible] के वरण के लिए शिवाराधना करते हैं जिनसे उन्हें अभीष्ट सिद्धि का वरदान प्राप्त होता है। [illegible] नामक योद्धा एक कन्या के रूप में पैदा हुआ था किन्तु उसके माता पिता ने उसे पुत्र घोषित करके उसका पालन पोषण किया। जब उसने [illegible]

---

१ (क) प० रा०', का० २२१७।६७४ (ख) वही ११।५५६ ५७ (ग) 'प० रा० १।१६६ (घ) वही १।१६४, (ङ) वही १।११२
२ वही, प० रा०' का० ११७।७८
३ स ४ – दे० प० रा०' मा० ११३६।१, 'प० रा० का० ७६३।३२ ३३

म स्त्री लक्षण प्रस्फुटित होने लगे, तो माता के आदेश से उसने शिवाराधना की, और स्त्री से पुरुष हो जाने का वरदान प्राप्त किया।[1] परमाल रासो में मत्तातार्ई का पुत्र के रूप में पालन ही नहीं किया जाता, अपितु उसका विवाह भी कर दिया जाता है।[2] इस विकट परिस्थिति से परित्राण के लिए वह शिव को अपना शीशापण करके पुनरुज्जीवित किये जाने के साथ साथ पुंसत्व और युद्ध में एक बार को देवों को भी परास्त करने के वरदान प्राप्त करता है।[3] आल्हा ऊदल के पूर्व पुरुष चिंतामनि शिव को शीशापण करके[4] पुनरुज्जीवित किए जाने के साथ साथ[5] उनके अत्यन्त पराक्रमी वंशजों का वरदान प्राप्त करते हैं।[6] परमाल रासो में महाराज पृथ्वीराज बटेश्वर के मन्दिर में शिवपूजा करके, प्रार्थना करते हैं, कि यदि युद्ध में मेरी विजय हुई, तो आपके दर्शन करने पुनः भी आऊंगा।[7] शिव उन पर प्रसन्न होकर विजय का वरदान देते चित्रित किए गए हैं।[8] उसमें लाखन और ऊदल भी युद्ध में विजय प्राप्ति का वरदान प्राप्त करने के लिए शिवोपासना करके कृतकृत्य होते हैं।[9]

राजविलास में महाराज गहादित्य पुत्र प्राप्ति हेतु शिवाराधना करते हैं, जो उन्हें शीघ्र ही उनकी इच्छा पूर्ण होने का स्वप्न देते हैं।[1] हम्मीर रासो और हम्मीर-हठ में शिवभक्त महाराज हम्मीरदेव को उनसे यह वरदान मिलते चित्रित किया गया है कि तुम चौदह वर्ष पर्यन्त तक शाह अलाउद्दीन से निर्भय होकर युद्ध कर सकने हो। इस अवधि में तुम्हारा बाल भी बांका न होगा।[11]

शिव के रुद्र रूप का कवि भूषण ने—ब्रह्मा को जगत का स्रष्टा, विष्णु को पालक और शंकर को संहारक बताकर अभिव्यक्त किया है।[12] शिव के रुद्र और भूतनाथ रूप वस्तुतः बहुत साम्य रखते हैं। युद्धावसरों पर उनके भूतनाथ विशेषण का सार्थक सिद्ध करने वाले रूप का प्रायः सभी ग्रंथों में चित्रण मिलता है। इसमें वे अपनी पत्नी चंडी तथा भूत प्रेत खबीस और योगिनी डाकिनी आदि के साथ युद्धस्थलों में नृत्य करते तथा श्रेष्ठतम वीरों के मुण्डों को अपनी मुण्डमाला में पिरोते प्रदर्शित

---

१ से २—दे० प० रा० खं० १८७५।१६७४ से १८७७।६४ पर० रा०, ३४।३१

३ महादेव सिर जोरिया मन्त्र जग मान्या चित्त।
बनिता सहित प्रसन्न है किय पुत्री ते पुत्र।
जाहि धाम चौरंगि सुन, हम दिन्नव वरदान।
इक्क वार समता करे, नर सुर कह षमसान। —प० रा०, ३४।३८-३९

४ से १०—दे० प० रा० २।१७३, वही, २।२७४, वही, २।१७८, वही, ४।१३१, वही, ४।१३२ वही, १०।४५४, 'रा० वि० ११।२६,

११ से १२—दे०, ह० रा०, ४२८ शि० भू०' २२८

किए गये हैं।[1] युद्ध स्थल में योगी द्वारा हर हर का उच्चारण करते हुए शत्रु दल पर टूट पड़ने सम्बन्धी उल्लेख भी धाराधामी और शिव के अटूट सम्बन्ध का अभिद्योतन करते हैं।[2]

शक्ति —

शक्ति अपने विविध रूपों में आलोच्यकाल की एक बहुजन आराध्या देवी सिद्ध होती है। वीरकाव्य प्रणेताओं ने उमा दुर्गा भवानी चामुण्डा राधा पार्वती महामाया तथा सरस्वती आदि विभिन्न रूप धारण करके जगत के नाना विधि कार्यों का सम्पन्न करते चित्रित किया है। शक्ति का सृष्टि का उद्भव और विनाश करने स्वभक्तों की इच्छापूर्ति करने तथा विच्छिन्न शीश को जोड़कर प्राणधारी को पुनरुज्जीवित करने में सक्षम दिखाने से स्पष्ट होता है कि वह वस्तुतः विश्व-जननी समझी जाती थी।

पृथ्वीराज रासो में चौहानों के आदि पुरुष मानव चाहमान शक्ति की ही सहायता पाकर दुष्ट-दलन में समर्थ होते हैं तथा उसके आशापूर्णा रूप को कुलदेवी निश्चित करते हैं।[3] धीर पुण्डीर शक्ति को भोग योग और मुक्ति की प्रदाता, जड़ चेतन पदार्थों की आधार नर और सुरों को विजयी बनाने वाली तथा सुखों का मूल कहते हुए उसके जालंधरी देवी रूप की आराधना करता है।[4] कमास और चामुंडराय शक्ति की पूजा करके अपराजेयत्व की सिद्धि प्राप्त करते हैं।[5] अपने पुत्र का स्वप्न में योगिनी द्वारा राज्याभिषेक करने का समाचार सुनकर महाराज पृथ्वीराज की माता शक्ति के तुष्ट्यर्थ होम कराती है।[6] सदूबन का धन निकालने से पूर्व महाराज पृथ्वीराज भी होम कराते हैं।[7] स्वयं कवि चन्द भी शक्ति के आराधक थे और देवी

---

१ पत्र भरें जुगिनि रुहिर ग्रिद्धिय मस डकारि।
नच्यौ ईस उमया सहित रुण्डमाल गल धारि।
— पृ० रा० मा० १।४१०।३३
और भी द० — पृ० रा० ५।१५७।१६१ क्या० रा० ६०५, शि० भू० ४ सु० च० २।३।८ प्र० वि० ६४

२ (क) 'जय हर जपै राज चल्यौ थप्परि हय हथ। पृ०रा० मा० १।२५७।४५
(ख) ले सहस्र जोगी सु संग हर हर शब्द वखान। परि० रा०', १०।५६८
(ग) तब हमीर हर ध्यान करि हर हर हर उच्चारि।
गज निज सनमुख पेलि कै जुरे साह सों रारि। — ह० रा० १७८
(घ) तह हरषि हर हर हरषि हर हर हरषि हर हर करि पिल्यौ।
वह कहनि हर हर हरी सु धुनि सुनि जिगर सत्रुन को हिल्यौ।
— हि० व० वि०', १२०

३ से ७—दे० 'पृ० रा० का० ५२।२६४ से ५३।२६८ वही २०१६।१२, पृ० रा, मो० १।३५०।१०, 'पृ० रा० का०, २६५।४६, वही, ७४८।४४१

की अनेक स्थलों पर आराधना करते मिलते हैं।[1] छत्रप्रकाश में बुंदेलों के पूर्व पुरुष पंचम विंध्यवासिनी देवी के[2] तथा राजविलास में मानसिंह वक्रेश्वरी देवी के भक्त चित्रित किये गये हैं।[3] कवि चन्द ने राजमहलों में प्रातःकाल दुर्गा सप्तशती का पाठ किये जाने के तथ्य पर भी प्रकाश डाला है।[4]

कवि चन्द गोरेलाल और मान ने जगत-कल्याण की कामना से शक्ति विविध रूप धारण करते चित्रित की है। कवि चन्द ने शक्ति द्वारा—कल्याणी, कमला, कन्दर्पिणी, कराली, कंकाली, गंगा, गोमती, गान्धर्वी, चामुंडा, जया, जगन्माता, ज्वालामुखी, डाकिनी, दुर्गा, नरसिंही, नवदा, पार्वती, भद्रकाली, मंगला, महालक्ष्मी, महामाई, यम, यमुना, यामिनी, राधिका, वाराही, विष्णु मोहिनी, शिवा, शंकरी, सरस्वती और शाकिनी आदि के रूप धारण करने का उल्लेख किया है तथा धारणाएँ व्यक्त की हैं कि वह करोड़ों सूर्य और चन्द्रों को प्रकाशित करती है एवं समुद्र का गाम्भीर्य, पवन का पराक्रम विश्व-भर्त्ता विश्व-हर्त्ता जड़ जंगम का प्रवर्तन करने वाली तथा पापों का विनाश करने वाली शक्ति ही है।[5]

गोरेलाल ने 'छत्रप्रकाश' में शक्ति को विंध्यवासिनी देवी के रूप में प्रतिष्ठित दिखाते हुए कहा है कि वह अपने आनन्दमय स्वरूप में ब्रह्मा की पत्नी बनती है, तथा विद्या, बुद्धि और अविद्या के बल से वह विश्व का बंधन युक्त और बन्धन मुक्त करती है। योगनिद्रा में शयन करने वाले नारायण पर आक्रमण के लिए प्रस्तुत मधु और कैटभ नामक दैत्यों का वध करके नारायण को उसी ने सुरक्षित रखा था। देवों के परित्राण के लिए महिषासुर, धूम्रलोचन, चंड मुंड, रक्तबीज, शुम्भ और निशुम्भ आदि दैत्यों का संहार करने वाली, तथा योगनिद्रा के रूप में नन्द के गृह में जन्म लेकर, कंस को उसके आसन्न विनाश की सूचना देने वाली भी शक्ति या विंध्यवासिनी देवी ही थी।[1] कवि मान ने इस धारणा का प्रकटन किया है कि शक्ति अपने सौम्य रूप में सरस्वती आदि का रूप धारण करके मंगलकारिणी, संकटों से उबारने वाली तथा तारनारिणी है जबकि रुद्र के शत्रुओं के विनाश के लिए वह शंकरी और रौद्रिणी रूपा होकर उनका संहार करती है।[2]

शिव की भाँति शक्ति में भी स्व भक्तों का अमंगल हरने तथा नाना प्रकार के वरदान प्रदान करने का विश्वास किया जाता था। कवि चन्द का वह काव्य-कौशल और तंत्र मंत्रात्मक कार्यों में अपराजेयत्व का वरदान[3] अप्रत्यक्ष में घटित षड्यंत्र का स्वप्न देकर उनकी सूचना[4] तथा यात्राकाल में हताश हुए चंद को दिव्य पट प्रदान करके,

---

१ से ६—दे० 'पृ० रा०', का० ४६०।२७३, छ० प्र० ९।१२, रा० वि०, १६।२, 'पृ० रा०, का० १६८८।१२ वही ४८२।२८० २३६०।२३ २८, २४०३।१३० १३५, छ० प्र० ९।३, वही ३।११ १२ 'रा० वि०' ३।१२, पृ० रा०' का० १५२८।११३, वही, १४८१।१०८-१०९

उसकी सहायता करत चित्रित की गई है।[१] धीर पुण्डीर जालपादेवी के पूजन स जत स्तम्भ के भेदन का वर प्राप्त करता है।[२] छत्रप्रकाश म महाराज छत्रसाल क पूर्वपुरुष पचम के शीशापण हेतु प्रस्तुत होने पर विध्यवासिनी देवी, उन्हे राज्य वापस मिलन और वशजो क पराक्रमी होने का वरदान देती है।[३] परमाल रासो म आल्हा और ऊदल के भयकर युद्ध स घबरा कर, महाराज पृथ्वीराज चडी को शीशापण करन प्रस्तुत हो जाते हैं,[४] तो प्रसन्न होकर देवी उन्हे आल्हा और ऊदल मे किसी एक वीर के खेत रहन, तथा उनकी विजय होने का वरदान देती हैं।[५] आल्हखण्ड म देवी का भक्त आल्हा उनको स्व शीश काटकर अर्पित कर देता है। उसकी भक्ति से तुष्ट हुई देवी उस पुनरुज्जीवित ही नही करती, वरन अमर होने का वरदान भी प्रदान करती है।[६] उसम इन्दल भी जब देवी को शीशापण के लिए उद्यत हो जाता है तो उसस प्रसन्न होकर वह उसकी आपत्ति का कारण पूछती है और इन्द्रलोक से अमृत लाकर बनाफलो की जादू द्वारा मारी गई सेना को जीवित कर देती है।[७] राजविलास म कवि मान न भी सरस्वती के प्रकट होन, तथा उसे ग्रथ रचना म सहायता प्रदान करन का वरदान दन का उल्लख किया है।[८]

शक्ति के चडी रूप का जगत के विनाश और नर सहार से अधिक सम्बद्ध समझा जाता था। इस धारणा का पृथ्वीराज रासो मे प्रकटन हुआ है। चडी देवराज इन्द्र स कहती है कि रामायण और महाभारत के युद्धो म भी मेरी तथा पूर्णत शान्त नही हो पाइ थी। म तभी स यह आशा कर रही हूँ कि तुम मेरी क्षुधा शा त करान का प्रयत्न कराग।[९] देवी चडी की इच्छा पूर्ति के निमित्त इन्द्र एक गधव का भूतल पर प्रपित करत है और आदश देत है, कि वह दिल्ली और कन्नौज क मध्य किसी प्रकार स कलह का बीज वपन करे।[१] इन्द्र प्रेषित गधव सयोगिता और दिल्लीश्वर म प्रेम का जागरण और विवधन करके अन्तत महाभारत के ही सदश जन सहार वाला युद्ध करान म सफल रहता है। इसके साथ साथ वीरकाव्य प्रणताओ न युद्ध क्षत्र म रुद्र क ताडव नत्य का चित्रण करत हुए उनकी सहचरी चामुडा और काली आदि देविया भी रक्त स भपन खप्पर भरत चित्रित की हैं जिसके मूल म स-भवत धारणा ही कायरत है। शक्ति का पूजा म बलि की प्रधानता मिलना भी इसी तथ्य का निदशन करता है।

उपरिलिखित विवरण स स्पष्ट होता है कि विविध देवियो के रूप म शक्ति विश्व की प्रधानतया एक कल्याण कर्त्री शक्ति ही स्वीकार की जाती थी और जन-मानस म यह विश्वास व्याप्त था कि उस तुष्ट करक अनेक प्रकार क मनोरथ सिद्ध

---

१ स १०—द० पृ० रा० का० २४०२।१२३ वही २०२१।२४, 'छ० प्र०', ३।१६, प० रा० ४।१४ वही ४।१६ आ०' ५६५।६७, वही १७८।१६ १८ रा० वि० १।३४ ३५ 'पृ० रा० का० १२२६।१, वही, १२३४।५१

किय जा सक्त हैं। उसका एक रूप विनाश से भी सम्बद्ध था और वह दुष्टकर्मा दत्य और दानवो के सहार के लिए तो प्रसिद्ध थी ही, यह धारणा भी प्रचलित थी कि वह नर सहार से भी तुष्ट होती है।

श्रीकृष्ण --

वीरकाव्य म कृष्ण के लाक रक्षक रूप से सम्बद्ध उद्धरणा की प्रचुरता है, जिनम उनको दुष्टा के विनाशक और जनरक्षक समभने की धारणाए प्रकाशित होती है। पथ्वीराज रासा म जन मतावलम्बी भोला भीम के आक्रमण का समाचार पाकर जन परमार स कहता है कि कोई डर नही जिस गाकुलेश्वर ने (अश्वत्थामा से) गर्भस्थ परीक्षित की रक्षा की थी दुष्टकर्मा कस का वध, कालीनाग का मदन और गोवधन पवत का उठाकर ब्रजजना का परित्राण किया था वही श्रीकृष्ण हमारी रक्षा करेंग।[1] उसम महाराज पथ्वीराज युद्ध म जान से पूव श्रीकृष्ण का स्मरण करत[2] तथा विप्रगण श्रीकृष्ण के नाम की माला जपत[3] चित्रित किये गए है। कवि चन्द न यह धारणा भी व्यक्त की है कि वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण का नाम स्मरण करने स पाप पज कपूर की तरह विलीन हो जाते हैं।[4] कवि केशव ने श्रीकृष्ण की चतुभुज के रूप म पूजा किय जाने का प्रचलन दिखाया है।[5] कवि मान ने भी श्रीकृष्ण की चतुभु ज मूर्ति की पूजा किय जान का प्रचलन दिखाया है और महाराज राजसिंह उनके दशन क लिए रूप नारायण क मदिर की यात्रा करते चित्रित किए हैं।[6] कवि मान क अनुसार उस मन्दिर म चतुभु ज के दशन और पूजा करके, अपनी मनोवाछाओ की पूर्ति करान की कामना से दव मुनि और मानव आत रहत थ[7] तथा श्रीकृष्ण के प्रभाव स उस तीथ स्थला म देव और दानव मग और शेर तथा अहि और मयूर सप्रेम निवास करत थ।[8] मान न श्रीकृष्ण के नामा की जो वहत तालिका दी है उसम उनके लोकेश्वर और जनरक्षक रूप का प्रकट करन वाल विशेषणो का ही प्राधा य है। उसने उनके लिए जगन्नाथ जगत रक्षक जग जीवन, जग हितकर जग जनक दत्य निकदन केशव गापाल, गदाधर, श्रीपति मदनमोहन, मधुसूदन, माधव मुरारि गिरिधर मुकुद गाविन्द शम्भधर, चक्र पाणि चतुभु ज, वासुदव, विष्णु बावन (वामनावतार), वशीधर, विश्वम्भर वनमाली, वसुपाल, वाराहावतार पुरुषोत्तम, पुराण पुरुष, परमश्वर, पद्मनाभ अति शयन, राघावल्लभ और अच्युत आदि सनाओ का प्रयाग किया है।[9]

सुजान चरित म समस्त ब्रज मण्डल की रक्षा का भार श्रीकृष्ण क अर्पित बतात हुए धारणा व्यक्त की गई है कि चौरासी कोस म फले ब्रज मण्डल क किलेदार स्वय

---

१ स ६—दे० 'प० रा०', का०, ४५५।४४ वही ४०५।११०, वही १६६५।६६, वही २२३।३३६ वी० च०, १६।२३ 'रा० वि०', ८।१ ४, वही ८।२ वही ८।३, ८।५३ ५६

प्रामुख्य युग ही है। उसमें महाराज सूरजमल के इष्ट व श्रीकृष्ण प्रदर्शित किए गए हैं तथा युद्ध में विजय मिलना भी उन्हीं की कृपा पर आधृत बताया गया है।[1] छत्रप्रकाश में भी महाराज शिवाजी छत्रसालजी को परामर्श देते हैं कि आप श्रीकृष्ण का इष्ट धरके शाह औरंगजेब के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण कीजिए, वे अवश्य ही आपकी सहायता करेंगे।[2]

वीर काव्य में श्रीकृष्ण के लोकरंजक रूप की भी यत्र-तत्र अभिव्यक्ति मिलती है। पृथ्वीराज रासो में दशावतार का वर्णन करते हुए 'कृष्णावतार' का भी वर्णन किया गया है जिसका आधार भागवत बताया गया है।[3] इस वर्णन में उनकी दधि माखन चोरी और चीर हरण आदि लीलाओं की प्रधानता है।[4] सुजान चरित में इन लीलाओं का तो विवरण नहीं दिया गया किन्तु महाराज सूरजमल के पुरोहित ब्रज प्रदेश पर आक्रमण के लिए सन्नद्ध आप्पा मल्हार को ब्रज माहात्म्य सुनाते हुए कहते हैं, कि श्याम की ख्याति स्वरूपा राधा की जन्मस्थली बरसाने की वीथिकाओं को इस समय भी ईश और पुरन्दर बुहारा करते हैं। राधा और कृष्ण की लीलाओं के मान-स्थल 'मान मोरि' तथा संकेत-स्थली को देखकर ऐसा कौन है जो आनन्द विभोर होकर प्रेमाश्रु बहाना आरम्भ न कर देता हो।[5] सम्भवतः उद्धरण में आप्पा मल्हार को इसी पवित्र स्थली पर आक्रमण करने से विरत करने की चेष्टा तो मूल कारण है ही, इससे ब्रज मण्डल के लोगों की कृष्ण भक्ति सम्बन्धी धारणाओं पर भी प्रकाश पड़ता है। छत्रप्रकाश में कवि गोरेलाल ने बाल गोविन्द की पूजा चित्रित की है[6] तथा अपने भक्त छत्रसालजी के प्रेम के वशीभूत होकर उनकी मूर्ति नृत्य करते प्रदर्शित की है जिसे नृत्य लीन देखकर पंडे-पुजारी विस्मय में पड़ जाते हैं।[7]

श्रीकृष्ण के मन्दिरों के विषय में इस तथ्य का उल्लेख करना आवश्यक है कि कवि केशव[8] और मान[9] ने उनमें स्त्रियों के नृत्य गान करने का चित्रण किया है। यह नृत्य गान मन्दिरों में होने वाली रास लीलाओं का अंग नहीं प्रतीत होते, क्योंकि इन कवियों ने 'रास' का उल्लेख ही नहीं किया है तथा उसमें प्रायः लड़के ही स्त्री-वेश

---

१ से ७—८०, 'सु० च०' ७।२।६ छ० प्र०, ११।६, पृ० रा० का०, २५२।५६१, वही, २१८।३०२ से २५२।५६४ 'सु० च०, ७।१।५६ छ० प्र०' ४।५ वही ४।८ ६

८ देखि जाय चतुर्भुज देव। जिनकी करत जगत सब सेव।
चंदन चर्चित एक प्रवीन। सोभत तहाँ बजावत बीन।
गाय बजावत नाचत एक। जनु किंनर गंधर्व अनेक।
—वी० च०' १६।२२ २६

९ दीप धूप फल फूल श्रिय, परसति सुरति समीर।
गीत नृत्य वादित्र धुनि, गरजत गगन गभीर॥ —रा० वि०', ८।४८

में रास किया करते हैं। केशव[1] और मान[2] ने नृत्य के लिए वारांगनाओं के सज धजकर आने का स्पष्ट निर्देश किया है तथा मान ने महाराज राजसिंह को अन्य सरदारों के साथ मंदिर प्रांगण में नृत्य प्रेक्षण करते चित्रित किया है।[3] मन्दिरों में नृत्य करने वाली स्त्रियाँ कदाचित् वारांगनाएँ रही होंगी। बारहवीं सदी में भारत आए गज़नवी ने उल्लेख किया है कि यद्यपि ब्राह्मण पुजारियों की इच्छा नहीं है कि मन्दिरों में देवदासियाँ (जो उनकी दृष्टि में उच्चकोटि की वारांगनाएँ थीं), रखी जाएँ तथापि नरेशगण उन्हें मन्दिरों में इस दृष्टि से नियुक्त रखते हैं जिससे उनके रूप-लोभी दर्शक अधिक संख्या में आएँ और राज्य को अधिक आय हो।[4] औरंगजेब-काल में भारत आने वाले बर्नियर नामक यात्री ने भी उस समय मंदिरों में वारांगनाओं से नृत्य कराने की प्रथा का उल्लेख किया है।[5]

संक्षेप में श्रीकृष्ण, महाराज परमार पृथ्वीराज सूरजमल और छत्रसाल आदि राज्य-नायकों के इष्टदेव थे और वे आश्वस्त रहते थे कि इनकी कृपा से युद्ध में अवश्य ही विजय प्राप्त होगी। उनकी प्रायः विष्णु की चतुर्भुज मूर्ति के रूप में पूजा की जाती थी। उनकी प्रतिमा का गंगाजल आदि से अभिषेक किया जाता था और पूजन में मेवा और मिष्टान्नों का भोग लगाने का माहात्म्य समझा जाता था। शिव के सदृश वे नाना प्रकार के वरदान देने के लिए तो विख्यात नहीं थे, तथापि भक्तों के प्रेम के वशीभूत होकर वे नृत्य किया करते हैं ऐसी लोकधारणा व्याप्त थी। श्रीकृष्ण मन्दिरों में नृत्य-गान की भी आयोजना हुआ करती थी। यह एक ऐसी विशेषता है जिसका वीरकाव्य में शिव शक्ति या भगवान राम के मन्दिरों में प्रचलन नहीं दिखाया गया।

श्रीराम —

पृथ्वीराज रासो में महाराज पृथ्वीराज दशानन के भंजक रघुनाथ की गाथा सुनते तथा प्रत्येक युद्ध में राम का नाम जपते तो चित्रित किए गए हैं किन्तु उसमें उनकी पूजा का विवरण नहीं मिलता।[6] भगवान राम की पूजा किए जाने पर प्रकाश डालने वाले निर्देश परमाल रासो, वीरचरित्र और छत्रप्रकाश में मिलते हैं। परमाल रासो में महाराज चन्द्रब्रह्म, चित्रकोट (चित्रकूट) में राम के मन्दिर की प्रदक्षिणा लगाकर उनकी मूर्ति के चरणारविन्दों में गिरकर प्रार्थना करते हैं, जिससे प्रसन्न होकर रघुपति उन्हें दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं।[7] उसमें महाराज राहिलब्रह्म भी राम के

---

१ निरि ग्रगन अगना अपार, भूपन पट पूरन सिंगार। — वी० च०' १६।२७
२ "सजि सिंगार बहु सुंदरी नव-नव नृत्य नचंत।" — रा० वि० ८।६४
३ से ६—दे० 'रा० वि०, ८।६२-६५, 'अल्बरूनीज इंडिया, भाग २ पृ० १५७ 'ट्रैवल्स इन मुगल एम्पायर, पृ० ३०६, 'पृ० रा०' का०, १६६५।७१
७ 'ता गढ थानी राख नृप। चित्रकोट कह जाय।" — पर० रा०, ३।२ ३

भी दिखाये गये हैं[1] तथा गजपुर (गजपुरा) के मन्दिर में भी राम लक्ष्मण और सीताजी की महाराजा परमार द्वारा पूजा किए जाने का चित्रण किया गया है।[2] वीरचरित्र में बन्धन में, क्षत्रियों की दुष्टात्मा बुद्धियों द्वारा राम का स्मरण किए जाने[3] तथा उनका कीर्तन करने का प्रसंग दिखाया है।[4] उन्होंने महाराज भुवनपाल का भी सीताराम के चरणों में दृढ़ आस्था प्रदर्शित की है। वे कहते हैं कि सीताराम की कृपा रहते मेरा रोममात्र भी अनिष्ट नहीं हो सकता, यद्यपि ये प्रत्येक क्षण और प्रत्येक दिशा में मेरी रक्षार्थ तत्पर रहते हैं।[5] छत्रप्रकाश में मुन्दन के मन्दिर में भगवान राम, सीता और लक्ष्मण की ऐसी सुन्दर मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित चित्रित की गई हैं जिन्हें देखकर प्रतीत होता था कि ये बात और इशारा कर रही हैं।[6] [illegible] ने आकर वृद्ध नर-नारी उनके दर्शन करते प्रदर्शित किये हैं[7] तथा महाराज छत्रसाल के पिता चम्पतिराय भी राम के भक्त दिखाये हैं।[8] पद्माकर और छत्रसालजी के रासो से उन्होंने इस धारणा का भी अभिधान किया है कि भगवान राम त्रिभुवन-पति समझे जाते थे।[9]

भगवान राम सम्बन्धी उपर्युक्त विवरण पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि उनकी पूजा का प्रचलन संख्या में अल्प तथा अपेक्षाकृत अर्वाचीन ग्रन्थों में दिखाया गया है। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि राम की पूजा का शिव शक्ति अथवा कृष्ण की पूजा की भाँति व्यापक प्रचलन नहीं था। [illegible] से भी ज्ञात होता है कि उनकी पूजा शिव और शक्ति की तो कहना ही क्या कृष्ण पूजा से भी बाद में आरम्भ हुई है।[10]

हनुमान —

पृथ्वीराज रासो में दिल्लीश्वर के कुछ सैनिकों के इष्ट देव हनुमान प्रदर्शित किये गये हैं।[11] रासोकार ने ये बड़े ही विकराल रूप वाले तथा भूत प्रेतादि के साथी चित्रित किये हैं।[12] कदाचित रासोकार के अन्तस में वर्णन में प्रदर्शित यह धारणा कायम रन

---

१ से १०—द० पर० रा०' २।८७ वही ३०।२५ २६ वी० च० १८।५ वही १८।२ वही १३।२२ छ० प्र० ४।४ ५ छ० प्र० ४।५ वही ८।५ वही ४।६ प० रा० का० १३०६।१८४

११ एक साटठचव रचित एक पचास उभय रत।
एक हनू हिय ध्यान एक भरव घोरत मह। — प० रा० मो० ४।६००।७६

१२ चलि अग्ग चहुआन एक जाजन ता अग्गिय।
घटा रूप घन सज्जि निजरि ता ताहि न लग्गिय।
जीह बीज विकराल धजा घन वद्दल रगिय।
हथ्थ गदा सोभत भूत प्रतह ता सगिय।
सामत राज पिक्खिय सलख, हनुमान कहिय॥" —वही ४।६२३।१३५

रही है, जिसके अनुसार रुद्र के पुत्र मरुत बड़े भयंकर और बलवान समझे जाते थे।[1] अन स्व पिता के अनुरूप हनुमान का भी विकराल आकार होने की धारणा प्रचलित रही होगी उनकी मूर्ति बनाकर पूजा किए जाने का प्रचलन परमाल रासो और छत्रप्रकाश में दिखाया गया है। परमाल रासो में वे अपने भक्त महाराज चन्द्रब्रह्म[2] को दर्शन देकर उनकी चत्रमास में पूजा करने का आदेश देते हैं। चन्द्रब्रह्म उनकी प्रतिमा प्रतिष्ठित कराते है, जिसकी अनेक प्रजाजन पूजा करते हैं और अभीष्ट सिद्धि का वरदान प्राप्त करते हैं।[3] उसमें मलिखान के भी इष्टदेव हनुमान प्रदर्शित किये गये हैं।[4] छत्रप्रकाश में महाराज छत्रसाल हनूटूक के मंदिर में हनुमानजी के दर्शन करते चित्रित किए गए हैं।[5] हनुमानजी की पूजा-सम्बन्धी निर्देशों की अल्पता सिद्ध करती है कि उनकी पूजा का अधिक प्रचलन नहीं था।[6]

मनिया देवता —

मनिया देवता महोबे के चन्देल और बनाफर वंशों के कुल देवता चित्रित किये गये हैं। परमाल रासो में कवि जगनिक उनसे आराधना करते हैं कि आप आल्हा ऊदल को कन्नौज से महोबा प्रत्यागमन के लिए प्रेरित कीजिए।[7] मनिया देव उन्हें दर्शन देते हैं और कहते हैं कि तुम्हारे कन्नौज जाने पर वे तुरन्त महोबे आ जायेंगे।[8] भुजरिया का खुटन करवाने में सहायता देने के लिए महारानी मल्हना मनिया देव के चरणों में गिरकर प्रार्थना करती है कि वे आल्हा को, महोबा लौटने का स्वप्न दें।[9] मनिया देव उन्हें कृतार्थ करते चित्रित किए गए है।[10] विवाह के उपरान्त स्वपुत्र और पुत्रवधू द्वारा रानी मल्हना उनकी पूजा करवाते भी चित्रित की गई हैं।[11] आल्हखण्ड में ऊदल[12] और मलिखान[13] युद्धस्थल में मनिया का स्मरण करते प्रदर्शित किए गए है। मनिया देवता के विषय में यह उल्लेख अप्रामाणिक न होगा कि आल्हखण्ड के उल्लेखों से ऐसा प्रतिभासित होता है, मानो मनिया देवता न होकर बनाफर और चन्देलों की कुलदेवी का नाम था। भुजरिया के खुटन के लिए परमाल रासो में मनिया-देवता द्वारा स्वप्न दिए जाने के स्थान पर आल्हखण्ड में देवी स्वप्न देते प्रदर्शित की गई है।[14] श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य ने भी मनियागढ़ में मनिया के मंदिर का उल्लेख करते हुए उसके लिए देवी और देवता दोनों शब्दों का प्रयोग किया है।[15]

---

१ दे० 'हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता', डा० बेनीप्रसाद, पृ० ६३

२ से १४—दे० 'पर० रा० २।१०, वही २।१२ वही, २।१३ १४, छ० प्र०, १२।८, वही १२।८, वही ७।७८, वही, ७।७९, वही १०।४०० ४०१ वही, १०।४०३, वही, १४।२२५ आ० ७६।१७ वही, ६०।१३, 'आ०, ४४३।१६ १८

१५ हिन्दू भारत का उत्कर्ष', पृ० २०६

गणेश की पूजा के विषय में वीरकाव्य में अधिक उल्लेख नहीं मिलते। गाना में ये युद्ध मंदिरों के दरवाजे स्थापित रहते हैं[1] जबकि कवि जान के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि उदयपुर में उनकी पूजा भी की जाती थी।[2] गणेश की पूजा के विषय में कम उल्लेख मिलने का मूल कारण कदाचित् यह है कि उनकी मूर्ति शिव मंदिर में ही प्रतिष्ठित रहती होगी जहाँ कि सामान्य प्रवेश है।

(ग ७) पवित्र नदियों में स्नान

वीरकाव्य में उपलब्ध निर्देशों से स्पष्ट होता है कि आलोच्यकाल में गंगा, यमुना, नर्मदा, चम्बल और गोमती पवित्र-पावनी नदियों के रूप में सम्मानित थीं। उनके जल से आचमन तथा उनमें स्नान करने से पापों के प्रक्षालन तथा पुण्य-समृद्धि के अभिवृद्ध होने की धारणाएँ प्रचलित थीं। शक्ति के विविध रूपों पर प्रकाश डालते हुए पीछे भी दिखाया जा चुका है कि ये नदियाँ शक्ति के ही विविध रूप समझी जाती थीं।

गंगा —

गंगा नदी के लिए सुरसरि, भागीरथी और जाह्नवी संज्ञाओं का प्रयोग किया जाता था। उनका उद्गम ब्रह्मा के कमण्डलु[3] और हरि के चरणों[4] से मानते हुए विश्वास किया जाता था कि वे शिव की जटाओं में विहार करती हैं।[5] उन्हें त्रिपथगामिनी—स्वर्गलोक, मृत्युलोक और पाताललोक में प्रवाहित समझते हुए यह धारणा प्रचलित थी कि वे तीनों लोकों के वासियों का उद्धार करती हैं।[6] उनके जल से आचमन तथा उसमें स्नान करने का तो कहना ही क्या, विश्वास किया जाता था कि उनके नाम स्मरण और दर्शन मात्र से ही मोक्ष प्राप्त हो जाती है।[7] गंगा-तट पर पहुँचकर नरेशों के लिए भी उसके किनारे भूशयन करना धार्मिक दृष्टि से आवश्यक समझा जाता था।[8] केशवदासजी ने स्नानार्थ गंगा में प्रवेश करने से पूर्व महाराज वीरसिंह देव को कूप के जल से अपने पैर पखारते चित्रित किए हैं।[9] इस आचरण के मूल में कदाचित् यही भावना रहती होगी कि गंदे पैरों से गंगाजल को दूषित करना अच्छा नहीं है

---

१ से ७—दे०, प० रा० मो० ४।६००।७६ रा० वि०' २।१०४ प० रा० का० १६२५।३१५, वही, १६२६।३१६, वही १६२७।३२६ प० रा० का०, ३६।१६२ १६२६।३२८ छ० प्र० ३१४ पर० रा० ६।१५५ प० रा० का० १६२५।३१४ वही १६२८।३३४ वही ३७।१६६ पर० रा० ६।१६६

८ (क) भूमि सेज सुख सयन गंग मंडल वर धारय।

—'प० रा०' मो० ४।६२६।१४८

(ख) ऊन वस्त्र नृप अल्ह ल, भूतल दयौ बिछाय। —'पर० रा०', ६।१५८

९ वीर० च०', ५।२६ ३०

तथा उसमें स्नान करने से पूर्व उसके सम्मानार्थ गंगाजल का पान करना आवश्यक है। कवि केशव ने गंगानदी को नारियल और स्वर्ण आदि पदार्थों की भेंट देकर पूजा करने की भी प्रथा दिखाई है।[1] उनमें प्रार्थना की जाती थी कि माता मेरी पाप-पंक में लिप्त काया को अंतिम समय में तेरी ही गोद में स्थान मिले।[2] आत्महत्या करने वालों के लिए (जिन्हें धार्मिक दृष्टि से अतीव जघन्यकर्मा बताकर सद्गति न मिलने का विश्वास किया जाता था) भी मोक्ष प्राप्त करने की दृष्टि से गंगा एक अनन्य शरणस्थली के रूप में समादृत थी।[3] कदाचित् इसी धारणा के वशीभूत होकर महाराज जयचन्द सपरिवार गंगा में समाते चित्रित किये गये हैं।[4] रात्रिकाल में हुए सम्भावित पापों के प्रक्षालन के लिए, प्रातःकाल गंगाजल से प्रायश्चित्त करने का भी प्रचलन दिखाया गया है।[5] प्रातःकाल गंगाजल का आचमन करना भी पुण्यकर समझा जाता था।[6]

दशहरा आदि विशेष पर्वों पर गंगा स्नान का माहात्म्य अधिक होता था, अतः तदर्थ विशाल जनसमुदाय स्नानार्थ उमड़ पड़ता था।[7] ऐसे अवसरों पर विश्वास किया जाता था कि स्नानार्थी के तदर्थ जाने में बाधा डालने वाले को पाप लगता है।[8] वीरकाव्य में उल्लिखित नरेशों में, अन्य नदियों के समीपस्थ नगरों में रहते हुए भी गंगाजल से ही नित्य स्नान करने की प्रवृत्ति मिलती है।[9] इसका मूल कारण गंगाजल में स्नान की धार्मिक दृष्टि से अत्यन्त महत्ता समझना ही हो सकता है। विदेशी यात्रियों के विवरण तथा आईन ए अकबरी से ज्ञात होता है कि मुस्लिम बादशाह भी गंगाजल के प्रयोग की दृष्टि से हिन्दुओं से पीछे नहीं थे और उनके स्नान और पीने के लिए गंगाजल का प्रबन्ध किया जाता था।[10] देवोपूजन में भी गंगाजल का ही सर्वोपरि महत्त्व था। राजविलास में महाराज राजसिंह गंगा से अति दूरवर्ती उदयपुर के समीप स्थित रूपनारायण के मन्दिर में चतुर्भुज की मूर्ति का गंगाजल के एक सौ आठ कलशों से अभिषेक करते चित्रित किए गए हैं।[11] पृथ्वीराज रासो में यह धारणा भी व्यक्त की गई है कि गंगा माता की रज शरीर पर लगाने से पाप तो विनष्ट होते ही हैं, मृत्यु-दूत भी उस व्यक्ति का उस समय तक बाल भी बांका नहीं कर सकते, जब तक उसकी रज शरीर से लगी रहती है।[12]

---

१ से ७—दे० 'वी० च०' ४।३०-३१ पर० रा०, ६।१५६, पृ० रा० का० ३६।१५६ वही ५७।१६७ वी० च० २२।६, पृ० रा० का० ३०।१७६ पर० रा०', ५।८, 'आ० २३।१५

८ 'गंगा हुलवे की का रुजे का बुड्ढी का लय अमराप।" —'आ०' २५।१०

९ पृ० रा०', का० ३१।६।१२६ ४२।१६ आ०', ६८।१७

१० इण्डियन टेवल्स आफ थवेनाट एण्ड करी, पृ० ९६ ट्रेवल्स इन मुगल एम्पायर, बर्नियर—पृ० ३८६, आइन ए अकबरी भा० ३ पृ०, ४७

११ से १२—दे० पृ० रा०, का०, ३६।१६८, रा० वि०', ८।४४

यमुना —

यमुना यम की स्वसा[1] अथवा रवि की तनया[2] समझी जाती थी। गंगा को विष्णु की तथा सरस्वती को ब्रह्मा की मूर्ति स्वीकार करने की भांति यमुना ईश की मूर्ति समझी जाती थी।[3] विश्वास किया जाता था कि अश्वमेध सरीखा यज्ञ करने वाले व्यक्तियों को तो पुनर्जन्म का कष्ट भोगना पड़ता है जबकि यमुना माता का नाम स्मरण करने वाले जन्म मरण के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।[4] यह अधकूप स्थी निरुद्ध की गौरव ख्याति और स्थिर भौतिक एवं आधिदैविक मातृ की विभागवर्ती के रूप में समादृत था[5] तथा लोगों की आस्था थी कि यह पतन भरता का जघन्यतम पापों से परित्राण दिलाकर उनका उद्धार कर सकती है।[6] गंगाजल की भांति यमुना जल में भी पापों के प्रक्षालन की क्षमता मानी जाती थी।[7] परमाल रासो में देवा की यह स्तुति सुलक्ष्य कि माता हम महान के दर्शन पुनः करने का सौभाग्य प्रदान कीजिए यमुना देवी के रूप में प्रकट होकर इच्छापूर्ति का वरदान देते चित्रित की गई है।[8]

नर्वदा —

वीरचरित्र में केशवदास द्वारा किए वर्णन से स्पष्ट होता है कि नर्वदा शिव की पुत्री समझी जाती थी।[9] इसमें पतितों का उद्धार करने की क्षमता मानते हुए विश्वास किया जाता था कि उसके दर्शन मात्र से ही समस्त दुःख विनष्ट हो जाते हैं।[10] उसके विषय में ये धारणाएं भी प्रचलित थीं कि उसके तटों पर 'हरि निवास करते हैं'[11] तथा दीन जनों का तो वह मातृवत उपकार करती ही है सुर और असुर भी उसकी वन्दना किया करते हैं।[12]

गोमती —

कवि चन्द ने गोमती को शक्ति का रूप बताकर उसके दिव्यत्व पर प्रकाश

---

१ से २— पर० रा० १७।५३ पृ० रा०' का० ११२५।३८

३ गंगा मूरति विसन ब्रह्म मूरति सरसत्तिय।
जमुना मूरति ईस। दिव्य देवन पुनि थप्पिय।
— पृ० रा०, का० ११२६।४६

४ कियो अश्वमेध पुनर्जन्म आव। नही जन्म मातंग तो ध्यान पाव।
—वही ११२६।४४

५ से ८—द० पृ० रा० का० ११२५।३८, वही ११२६।४० वही ६०३।५
पर० रा० ६।१५१ ५२

९ दे० वी० च०' १।१०

१० जद्यपि निपट कुटलगति आप। देति सुद्ध गति हनि अति पाप।' —वही, १।६

११ जद्यपि सुरासुर-वंदित पाइ। तद्यपि दीनजन कसी माइ।' —वही १।८

१२ पदपद हरिवासा जगमग। स्वच्छ पक्ष—पक्षी सी लग।' —वही, १।७

डाला है।[1] उसी गंगा के समान गोमती में भी स्नान करने को अपूज्य समझने वाले जनियों की निन्दा की है, जिससे उसकी दृष्टि में गोमती का गंगा के समान ही महत्त्व, अभिद्योतित होता है।[2] सुजान चरित में भी गोमती का सृष्टि, कृष्ण के आदेश पर विश्वकर्मा द्वारा प्रदर्शित करके, उसके दिव्यत्व का प्रकटन किया गया है।[3]

बेतवा —

बेतवा को केशवदासजी ने कलियुग में गंगा का अवतार समझने की धारणा प्रदर्शित की है।[4] उन्होंने बेतवा को पूज्य दिखाते हुए, वह पाखंड और पापों की विनष्टक तथा सद्गति प्रदाता दिखाई है।[5] उन्होंने इस धारणा का भी प्रकाशन किया है कि, उसमें स्नान करने से ब्रह्महत्या और सुरापान जैसे पातकों का भी कल्मष धुल जाता है और स्नान करने वाले स्वर्ग जाते हैं।[6]

पवित्र नदियों के सम्बन्ध में दिए गए उपर्युक्त विवरण पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि आलोच्यकाल में वे देवियों के रूप में समादृत थीं। उनके जल का आचमन, उसमें स्नान करने के सदृश ही उनका दर्शन और नाम-स्मरण भी पापों का प्रक्षालित करके सद्गति प्रदाता समझा जाता था। उनकी रज का भी शरीर से लगाना तथा उनके तट पर मृत्यु होने का बड़ा माहात्म्य माना जाता था। वे देवियों के रूप में प्रकट होकर वरदान दे सकती हैं इस प्रकार की लोक धारणा भी व्याप्त थी।

(ख ३)—दान देना

आलोच्यकाल में तीर्थाटन की भाँति दान देना भी मोक्ष प्राप्ति का साधन समझा जाता था। महाराज सोमेश्वर के मत में—सतयुग, त्रेता और द्वापर में नृपतिगण यज्ञ करके सद्गति प्राप्त करते थे, किन्तु कलियुग के कठिन काल में यज्ञ न हो सकने के कारण उसके स्थान पर षोडश दान के माध्यम से आत्म उद्धार किया जा सकता है।[7] रासो में अन्यत्र कहा गया है कि सतयुग में मंत्र, त्रेता में सत्याचरण तथा द्वापर में पूजा की प्रधानता रहती थी जबकि कलियुग में दान देना प्रधान धर्म है।[8] केशवदासजी ने भी इसी से मिलता जुलता मत व्यक्त किया है कि कृतयुग, त्रेता और द्वापर के मुख्य धर्म क्रमशः तप, ज्ञान और यज्ञ करना थे जबकि कलियुग का प्रधान धर्म दान देने में निहित है।[9] उन्होंने दान देने से रोगों के परिशमन, संपत्ति

---

१ से ६—दे०, 'पृ० रा०, का० २३१०।२५, वही ११७२।४६, 'सु० च०' ७२।७०, वही, १५।२३, वही १५।२४-२५, वही १५।२६

७ पृ० रा० मो०, ३।११।२५-२६

८ जुग सु आदि हुअ मंत्र गुर त्रेता जुग हुअ सत्तु।
द्वापर जुग पूजा प्रसिध कलि जुग वीर दत्त।
—'पृ० रा०' का० ७४२।४१४

९ 'वी० च०', २८।३२

की अभिवृद्धि तथा सुयश के प्रसरित होते जाने का गुणगान किया है[१] तथा दान के अभाव में जप और तप को व्यर्थ बताकर,[२] दान की महिमा सर्वोपरि होने के तथ्य का प्रतिपादन किया है। भूषण ने भी महाराज शिवाजी के उत्कर्ष का मूल मंत्र दान को बताकर[३] दान की अप्रतिम महत्ता पर प्रकाश डाला है।

दान के प्रकार —

पृथ्वीराज रासो तथा वीरचरित्र में दान के उत्तम, मध्यम और अधम—तीन प्रकार बताए गए हैं।[४] ब्राह्मणों के घर जाकर दान देना उत्तम, उन्हें अपने यहाँ बुलाकर दान देना मध्यम और उनके माँगने पर दान देना अधम समझा जाता था, जबकि किसी सेवा के प्रतिदानस्वरूप दिए गए दान को निष्फल माना जाता था।[५] परमाल रासो में महादान का ग्रहण करना भारस्वरूप बताया गया है और अभिमत व्यक्त किया है कि महादान का ग्रहण करने वाला जन्म भर तक उसके भार से मुक्त नहीं हो पाता। महाराज परमाल अपने पुरोहित को पारसमणि दान कर देते हैं।[६] उसके पूछने पर[७] जब वे उसको पारसमणि की लोहे को स्वर्ण में परिवर्तित कर देने की विशेषता बताते हैं[८] तो पुरोहित पूर्वोक्त भाव व्यक्त करते हुए मणि को लौटा देता है।[९]

नित्यक्रिया तथा पर्व विशेषों पर भी दान में अनेक प्रकार की सामग्री प्रदान करने का प्रचलन था। महाराज पृथ्वीराज अपने दैनिक नियम में भोजन करने से पूर्व ब्राह्मणों को सौ ऐसी गायें दान देते थे जिनके सींग स्वर्ण से तथा खुर रजत से मढ़े रहते थे। वे सौ विप्र कन्याओं को पहिरावनी और सहस्र विप्रों को भोज भी दिया करते थे।[१०] महाराज हम्मीरदेव की ओर से भी प्रतिदिन अनेक विप्रों को भोज प्रदान किया जाता था।[११] महाराज वीरसिंह देव ने नित्यप्रति सहस्र स्वर्ण शृंग मढ़ी गायें तथा सहस्र मास की दाहिनिया सनाढ्य ब्राह्मणों को दान करके भोजन करने का प्रन ले रखा था।[१२] अन्यत्र गंगा स्नान के उपरान्त धेनु, अश्व, भूषण, वसन, भोज्य सामग्री, गजराज, पुष्पित फलित बाग तथा ग्राम दान में देते चित्रित किए गये हैं।[१३] कवि चन्द ने भी रावल समरविक्रम मकर संक्रान्ति के अवसर पर गुरुराम पुरोहित को लाखों की आय वाला गाँव दान करते दिखाये हैं।[१४]

ग्रहण आदि पर्वों पर दिए जाने वाले दान को माहात्म्य साधारण दशा में दिये गए दान की अपेक्षा सहस्र गुणे पुण्य और लाभ का निमित्त समझा जाता था।[१५]

---

७ से १५—क्र० 'वी० च०, १।२६ वही, १।४६, वही १।५२, 'शि० भू०', छं० २३१, प० रा०, मा० ३।१२।२७ 'वी० च० २८।२६ पर० रा०', २।१६५ वही २।१६६ वही २।१६७ २।१६८ पृ० रा०, का० १६६५, ह० रा० ७० वी० च० २२।१५, वी० च०', ५।३२,३३,४२, 'प० रा०, का० २११६।६३ प० रा० मा० ३।११।२८

महाराज सामेश्वर चन्द्र ग्रहण के अवसर पर षोडश प्रकार का दान देते हैं जिसमे उनके लिए मोक्ष का द्वार खुल जाने का मत व्यक्त किया गया है।[1] रासो मे अग्र निर्दिष्ट अठारह वस्तुएँ महादान मे परिगणित की गई हैं—१ कनक तुला २ हिरण्यगर्भ (हेम गर्भ अर्थात ब्रह्मा की स्वर्ण निर्मित मूर्ति), ३ स्वर्ण-ब्रह्माण्ड ४ स्वर्ण-कल्पतरु ५ गो सहस्र, ६ स्वर्ण कामधेनु ७ अश्व ८ कनक अश्वरथ, ९ स्वर्ण-गज १० स्वर्ण हल, ११ सरसहित कनक धरा १२ स्वर्ण विश्वचक्र १३ हिरण्य लता १४ सर (सप्तसागर), १५ रत्न धेनु और १६ महाभूत घट।[2] अग्निपुराण[3] और आईन ए अकबरी[4] मे भी षोडश महादानो की यही नामावली दी गई है। उनसे इस तथ्य पर और प्रकाश पडता है कि गो सहस्र, रत्नधेनु और कनक तुलादान के अतिरिक्त दान के अन्य सभी उपादान स्वर्ण से निर्मित होते थे और उनका वजन प्राय साठ तोले मे लेकर छ हजार छ सौ छ तोले आठ मासे तक होता था। हेम हस्तिरथ मे स्वर्ण के चार गज जुते रहते थे, जबकि महाभूत घटदान मे गणेश की आकृति प्रदान की जाती थी। कनक-तुला के लिए दानकर्ता के भार के बराबर स्वर्ण की आवश्यकता पडती थी तो गोसहस्र दान मे भी उनके सीग और खुर सोने या रजत से मढकर दिए जाते थे। इन गायो के साथ एक सॉड भी प्रदान किया जाता था। रत्नधेनु दान मे गाय और बछडे की आकृतियॉ रत्नो की बनाकर दी जाती थी।[5]

परमाल रासो मे वापी कूप और तडागो के निर्माण तथा सर्वजन हिताय लगाये गये बागो का भी धार्मिक दृष्टि से बडा माहात्म्य समझने के तथ्य का निदर्शन किया गया है।[6] महाराज वालब्रह्म इसी दृष्टिकोण से पॉच सौ कूप पाच सौ बापियॉ तथा सौ तालाबो का निर्माण एव सात सहस्र बाग लगवाते चित्रित किए गये हैं। बृहत्पाराशर स्मृति मे भी इन कार्यो को दान की श्रेणी मे परिगणित किया गया है और सर्वजन हिताय ऐसे निर्माण कार्य कराने वाले अनन्तकाल तक स्वर्ग विहारो के उपभोग के अधिकारी बताये गये हैं।[6]

दान सम्बन्धी उपर्युक्त तथ्यो से स्पष्ट होता है कि आलोच्यकालीन सामाजिको की दृष्टि मे दान देना मोक्ष प्राप्ति का सुकर माध्यम समझा जाता था। षोडश प्रकार के महादान प्रदान करने से तो मुक्ति का द्वार निश्चय ही खुल जाने मे विश्वास किया जाता था। दान भावना से प्रेरित होकर धानढ्य व्यक्ति सार्वजनिक सुविधा के बाग लगवाकर अथवा वापी कूप एव तडागो का निर्माण कराकर परलोक सुधारने की चेष्टा करते थे।

---

१ स ६—८०, पृ० रा०, मा० ३।१६।३४ वही, ३।१६।३१ अग्निपुराणम, २१०।१४ पृ० ३६७ आईन ए अकबरी, भा० १ प० ३०६ ३०७, प२० रा०, २०।१७५, वृ० पा० स्म०, १०।३७१, १०।३८२

(ख ४)—तपस्या

तपस्या करने से अनेक सदफलो की प्राप्ति का विश्वास किया जाता था। पृथ्वीराज रासो मे कहा गया है कि तपस्या किए बिना राज्य तथा सुत-दारा आदि की प्राप्ति नही हो सकती।[1] तपस्या द्वारा परलोक सुधारने मे विश्वास करते हुए महाराज अनगपाल, बद्रीनाथ मे जाकर तप करते हैं।[2] महाराज सोमेश्वर के यहाँ पृथ्वीराज जैसे पराक्रमी पुत्र के जन्म को उनकी तपस्या का फल कहा गया है।[3] ढुंढा नामक राक्षस तप के प्रभाव से अपनी राक्षस योनि से मुक्ति प्राप्त करता है।[4] ढुंढी नामक राक्षसी भी अपनी कठिन तपश्चर्या के बल पर उमा से वर प्राप्त करते प्रदर्शित की गई है।[5] छत्रप्रकाश मे नन्द और वसुदेव की तपस्या से तुष्ट होकर विष्णु उनके यहाँ पुत्र रूप मे अवतरित होने का वरदान देते चित्रित किए गए है।[6] विधवाएँ—जिनके वैधव्य को उनके पूर्व पापो का दुष्परिणाम समझा जाता था कठिन तपश्चर्या के माध्यम से ही, अपने पापो को प्रक्षालित करते मिलती हैं।[7]

ऋषि मुनियो का जीवन तपःप्रधान होता था। उनकी तपश्चर्या से देवेन्द्र को इस दुश्चिन्ता मे ग्रस्त दिखाया गया है कि वे मुझे अपदस्थ करके स्वर्गलोक के अधिपति न बन बैठें। पृथ्वीराज रासो मे अड़सठ तीर्थों की यात्रा करने के उपरान्त बद्रीनाथ मे तप करता हुआ सुमन्त ऋषि अपनी जठराग्नि को शान्त करके क्षुधा एवं निद्राग्नि पर संयम पा लेता है और मात्र धूम्रपान पर निर्वाह करता हुआ सौ वर्ष तक शीर्षासनस्थ (हाथों के अंगुष्ठों पर शरीर का भार डालता हुआ) होकर हरिस्मरण करता है। ग्रीष्म ऋतु मे वह पंचाग्नि तप करता है, हेमन्त मे बर्फ मे खड़ा होकर तथा वर्षाऋतु मे खुले स्थान मे रहकर वर्षाघातों को सहन करता है। उसकी इस कठिन तपस्या से इन्द्र भयभीत हो जाते है कि कहीं सुमन्त मुझे अपदस्थ करके सुरलोकाधिपति न बन बैठे। अन्त मे वे अपनी रम्भादि अप्सराओं को भेजकर उसका तप खण्डित करा देते हैं।[8] हम्मीर रासो मे सुमन्त ऋषि के समान ही पद्मऋषि की तपश्चर्या का वर्णन किया गया है। जोधराज ने ऋषि का नाममात्र बदल दिया है शेष घटनाक्रम पृथ्वीराज रासो जैसा चलता है।[9] तपश्चर्या मे शाप और वरदान प्रदान करने की शक्ति तथा अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त हो जाने मे भी विश्वास किया जाता था। सुमन्त ऋषि का तप भंग करने वाली रम्भा को उनके ऋषि पिता द्वारा मानुषी योनि भोगने का शाप दिया जाता है।[10] महाराज पृथ्वीराज बाघाम्बर ओढ़कर गुफा मे तप कर रहे ऋषि को सिंह समझकर गुफा मे धुआँ करा देते हैं जिससे ऋषि के नेत्रों का [illegible]

---

१ म १०-८० 'पृ० रा०' का० ५६४।७८ वही ५८६।२ वही, १४८।६८६, वही ११७।५६७ 'पृ० रा०' का० ६७२।६ छ० प्र० २४।३ वही ६८।४६० 'पृ० रा०', का० १२७।६७-७१ हं० रा० ६६ 'पृ० रा०', का० १२४६।१५८

पीड़ा होती है और वे क्रुद्ध होते हुए बाहर निकल आते हैं। रासाकार ने उनमें समस्त सृष्टि को ही अपने शाप से भस्म कर देने की शक्ति प्रदर्शित की है किंतु अनुनय-विनय पर वे निरपराध सृष्टि को तो भस्म नहीं करते मात्र महाराज पृथ्वीराज को, उनके नेत्र निकाल लेने का शाप देते हैं।[1] राजविलास में बाप्पा रावल को एक सिद्ध पुरुष से राज्य प्राप्ति का वरदान मिलता है।[2] गोरा बादल की कथा में योगी का मंत्रबल से मृगछाला को आकाश में उड़ान तथा उस पर सवारी करने की क्षमता युक्त दिखाया गया है।[3] ऋषि और योगियों के दर्शन को महाभाग्य बताना,[4] उनके गृहागमन से गृह का पवित्र हो जाना,[5] उनके दर्शन मात्र से पापों का विनष्ट हो जाना स्वीकार करने में भी[6] आलोच्यकालीन सामाजिकों की ऋषि मुनियों के विषय में उच्च आस्था अभिव्यक्त हो रही है।

संक्षेप में तपस्या के प्रभाव से असम्भव घटनाएँ भी सम्भव बन जाने में विश्वास किया जाता था। उसके माध्यम से उत्तम संतति की प्राप्ति, स्वर्ग लोक तथा धरा का सुख प्राप्त करना, भगवान को भी वश में करके उनसे अभीप्सित इच्छा की पूर्ति करा लेना, पापों का प्रक्षालित हो जाना तथा शाप और वरदान देने की दिव्य शक्तियाँ आ जाने में विश्वास किया जाता था। ऋषि और योगियों का दर्शन शुभ समझे हुए, उनसे दर्शकों के पाप-नष्ट हो जाने की धारणा प्रचलित थी।

(ख ५)—धर्म ग्रन्थों का पठन और श्रवण

धार्मिक ग्रन्थों के पठन एवं श्रवण से पुण्य लाभ होने के सदृश पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो के पढ़ने से भी मोक्ष प्राप्ति तथा अन्यान्य लाभों का विधान किया गया है। पृथ्वीराज रासो के अन्त में कहा गया है कि इस ग्रन्थ के सुनने से धर्म अर्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है तथा श्रोताओं के मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं।[7] इसके श्रवण से अश्वमेध यज्ञ और तुलादान करने तथा बद्रीनाथ, जगन्नाथ, रामेश्वरम, काशी, मथुरा, उज्जैन, द्वारिका और अयोध्या में तीर्थाटन करने के समान पुण्य लाभ होता है। इसी भाँति हरसिद्धि, काँगड़ा, हिंगलाज और ज्वालामुखी देवियों एवं प्रतिपदा को चन्द्र और सुरभि के दर्शन होने वाले पुण्यार्जन का रासो का पाठक सहज ही अधिकारी बन जाता है।[8] रासो श्रवण के माहात्म्य को और भी बढ़ा चढ़ा-

१ म ६—८०, पृ० रा०, का० २००७।१५७ १६१ रा० नि०' १।१५६ गो० बा०', १८, 'प० रा०' का० ३०२।२३, गा० क० २४ 'रा० वि०', १।४६

७ पावहि सुअरथ अरू ध्रम्म काम। निरमान मोष पावहि सुधाम।
श्रावरत च्यारि जो सुनहि राज। पावहि सुचिन बद्धहि सुकाज।
—'पृ० रा०', का० २५०४।२३२

८ वही, २५०४।२३३ ३६

पर प्रदर्शित करते हुए कहा गया है कि देवेन्द्र भी इसका श्रवण करते हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश इसे सुनकर प्रमुदित होते हैं। इसके पढ़ने सुनने से महत्क्रियाओं का ज्ञान, शत्रु दमन की क्षमता, सम्पूर्ण रसों का आस्वाद, समस्त विद्याओं का परिचय तथा मन्त्र तन्त्र का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। रामायण, महाभारत और पुराणों के श्रवण की भाँति रासो का श्रवण भी ऋद्धि सिद्धि प्रदान करता है। आगे कहा गया है कि अड़सठ तीर्थों में स्नान, गोविंद का गुणगान तथा नित्यप्रति गंगा-स्नान करने वाले पुरुषों की भाँति रासो लिखने और पढ़ने वाले पुण्याधिकारी बनते हैं। उनके रोग शोक विनष्ट हो जाते हैं तथा डाकिनी, भूत और वेताल उन पर कोई भी दुष्प्रभाव नहीं डालने पाते।[१]

परमाल रासो में विविध समयों को सुनने के पृथक् पृथक् लाभ प्रदर्शित किए गए हैं। चन्द ब्रह्म की उत्पत्ति और उनका वंश-वर्णन सुनने वालों को भगवान ने श्री-सम्पत्ति प्रदान किए जाने, उनकी काया के निरोग रहने, युद्ध में विजयी होने तथा सकलत्रसंतति सुखोपभोग करते हुए अपार द्रव्य मिलने का प्रलोभन दिया गया है।[२] बना परिणयन समय के श्रोताओं को पाँच यज्ञों के फल का अधिकारी घोषित किया गया है।[३] ग्रन्थ की समाप्ति—क्षत्रियों के धर्म से परिचय, नवरसों के आस्वादन तथा पुण्य पुंज के अभिलाषियों को परमाल रासो के पठन का परामर्श देकर की गई है।[४]

पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो के पठन और श्रवण से मुक्ति मिले अथवा नहीं, किन्तु उपर्युक्त विवरण से इस तथ्य पर अवश्य प्रकाश पड़ता है कि ग्रन्थ-विशेषों के पठन और श्रवण को भी धार्मिक दृष्टि से पुण्यकर और मुक्ति प्रदाता समझा जाता था। रामायण तथा हनुमान चालीसा आदि में पाठकों को ऋद्धि सिद्धि प्राप्त होने के जो प्रलोभन दिए गए हैं उपर्युक्त निर्देश भी उसी परम्परा की कड़ी हैं। इनका मुख्य उद्देश्य इन ग्रन्थों के अधिकाधिक संख्या में पाठक प्रस्तुत करना रहा है।

(ग १) स्रष्टा और सृष्टि-सम्बन्धी विश्वास

कवि चन्द ने ईश्वर को आदिकर्ता अभिहित करते हुए उसे रूप रेख और गुणरहित तथा गुणात्मक भी कहा है।[५] उस आदिकर्ता ने स्वर्ग, भू पाताल, यम, इन्द्र और लोकपालादि की सृष्टि की है। पवन अग्नि जलधर सरित, समुद्र, तीर्थ और पर्वतों में उसका अंश विद्यमान है।[६] चौरासी लाख प्रकार के जड़ जंगम जीव और सूर्य चन्द्रादि सभी उसकी इच्छानुसार सुख दुःखों का सहन और उसकी आज्ञा का पालन करते हैं।[७] उसकी आज्ञा से सूर्य नित्य प्रति प्रातःकाल उदित होता है

---

१ स ७—८०, प० रा०, का० २५०।२४१ ४२, पर० रा० ३।१६३, वही, १४।२३, वही ३७।१९७ प० रा०, का० १५।१८ २०

ततपश्चात् कैलाश पर्वत की यात्रा पर चले गए।[1] उनकी नाभि से एक कमल प्रकट हुआ जिससे चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुए।[2] ब्रह्मा ने ... मन से ... हि, क्षिति अग्नि, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु नामक पुत्र उत्पन्न किए ... के द्वारा ... की ... जगत है ... सृष्टि उत्पन्न हुई है।[3]

हमीर रासो में भी सृष्टयुत्पत्ति के विषय में ... ब्रह्मा ... धारणा से साम्य रखने वाली धारणा प्रकट की गई है। इसके अनुसार ... आदि में शून्य ... था। आकाश और दक्षअगुष्ठ का पर ... भी न था। ... निराकार ब्रह्म ... ने ... प्रकाशित ... लिंग माया और ईश्वर द्वारा अभिधान से पुकारा जाता है ... किया जिससे ... प्रकट किए।[4] प्रजापति ब्रह्मा की नाभि से ... कमल का भी ... हुआ जिससे ... आदि से ब्रह्मा का उद्भव हुआ।[5] ... ब्रह्मा ... लिए चिन्ता की है और जिस प्रकार ... लिए हैं, उस ... में ... पूर्ण रहे किन्तु ... उसका पार न पा सके।[6] ... स्वयंभू ... और ... का आश्रय लिया जिससे ... आभासित हुआ कि मुझे सृष्टि रचना करनी चाहिए। उन्होंने प्रचण्ड तपस्या के कारण प्रजापति की सिद्धि प्राप्त की[7,8] और ... आकाश, वायु, भूमि और जल नामक पाँच तत्त्वों तथा ... के रूप में अपनी मानस शक्ति का साकारत्व प्रदान किया।[9] उन्होंने सनकादि चार पुत्रों को भी उत्पन्न किया किन्तु वे चारों तापसी वृत्ति के होने के कारण सृष्टि विकास न कर सके। जिससे उन्होंने पुनः विविध शरीरांगों से पुनः कुछ मानव उत्पन्न किए जिसमें उनके मन से मरीचि, श्रवण से पुलस्त्य, नाभि से पुलह, कर से क्रतु, त्वचा से भृगु, प्राण (वायु से) वसिष्ठ, अंगुष्ठ से दक्ष, उत्संग से नारद, छाया से कर्दम, पीठ से अधर्म, हृदय से कामा (काम), भौंह से धर्म, ओष्ठ से लोभ, पद से निऋत और मेढ़ से शिशु उत्पन्न हुए और संसार का मानववर्ग इन्हीं की सन्तान है।[10]

ईश्वर और सृष्टि सम्बन्धी स्फुट विचारों में कवि चन्द का कथन है कि यह संसार स्वप्न तुल्य है और स्वप्न में दीखने वाली वस्तुओं की भाँति रम्य प्रतीत होता है, यह दृश्यमान जगत शीघ्र ही नष्ट हो जायगा। काल के आगे मनुष्य की दशा सटीक के आगे वध हेतु बाँध हुए बकरे के समान है जिसका ईश्वर की दया से ही उद्धार हो सकता है। समस्त सांसारिक वस्तुएँ असत्य हैं और ईश्वर के प्रति भावना को ही सच्चा तत्त्व समझना चाहिए।[11] सूदन के मत में जगदीश की इच्छानुरूप ही अणु लाख मनों में और लाखों मन अणु में परिवर्तित हो जाते हैं।[12] चन्द्रशेखर ने जगत को

---

१ स १२—द० छं० प्र० २४।१ २ वही २४।१ २ वही, २४।२ ह० रा०, छं० १४ १५ वही, १५ १६, वही १६ १७ वही १७ १८ वही १८ १९ वही १९ २०, ह० रा०, छं० २० २१ पृ० रा०, का० १२२७।२०२, सु० च० ७।२।२०२

इन्द्रजाल के मन के समान बताते हुए ईश्वर को रूप से उपमित किया है। वह निमिष मात्र में युद्ध कर युद्ध कर दिखाता है तथा सर्वत्र विद्यमान होते हुए भी दिखाई नहीं देता।[1] केशवदासजी ने समस्त प्राणियों को ईश्वर का रूप बताते हुए कहा है कि प्रपंचमय जगत में न कोई किसी को कुछ देता है और न लेता है।[2] इसी भाँति स्वर्ग या नरक में भी कोई नहीं जाता। ईश्वर ही सर्वत्र घट घट में विराजमान है और सम्पूर्ण जगत में उसका ही रूप लक्षित होता है।

(ग २)—अवतार

परमानन्द सागर[3] और छत्रप्रकाश[4] में इस पारंपरिक धारणा में आस्था प्रकट की गई है कि धर्म का क्षय और अधर्म की अभिवृद्धि होने पर धरा धेनु के रूप में विष्णु से उसका भार उतारने का निवेदन करती है और विष्णु अवतार लेकर उसे कृतार्थ करते हैं। पृथ्वीराज रासो[5] और शिवराज भूषण[6] में विष्णु के—१ कच्छप २ मत्स्य ३ वाराह ४ नृसिंह ५ वामन ६ परशुराम ७ राम ८ हलधर (बलराम), ९ बुद्ध और कलंक या कल्कि के रूप में अवतरित होकर भू भार हरण करते चित्रित किये गये हैं। इन सूचियों में कृष्ण का परिगणन नहीं किया और उनके स्थान पर बलराम अवतार माने गये हैं। रासो के पतालीसवें समय में दशावतार की सूची पुनः दी गई है किन्तु उसमें भी श्रीकृष्ण का नाम नहीं है।[7]

दशावतार में श्रीकृष्ण का नामोल्लेख न करने के लिए हम रासोकार और भूषण को दोष नहीं दे सकते। डॉ० वासुदेव उपाध्याय ने विविध ग्रन्थों के प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि श्रीकृष्ण के नाम का दसवीं शताब्दी के पश्चात् के ग्रन्थों में उल्लेख नहीं मिलता जबकि बुद्ध का ईसा की नवीं शताब्दी से पूर्व की सूचियों में उल्लेख नहीं मिलता है।[8]

कवि सूरत ने दस के स्थान पर चौबीस अवतारों की नामावली दी है। इसमें उन्होंने अग्रलिखित अवतार परिगणित किए हैं—१ मत्स्य, २ कच्छप, ३ वाराह ४ नृसिंह, ५ कपिल ६ हरि ७ मन्वतर (मनु) ८ वामन, ९ द्विजराम, १० राम ११ बलराम १२ धन्वंतरि, १३ सनकादिक १४ ऋषभदेव, १५ हंस, १६ मोहिनी १७ ध्रुव १८ व्यास, १९ यज्ञ, २० दत्तात्रेय २१ बुद्ध २२ नारद

---

१ से ७—दे० 'ह० ह० च० छं० २९४ 'नी० च० २।१६२०, पर० ना० १।६५,६८ छं० प्र०' २४।२, 'पृ० रा०', का० १८।१२ 'शि० भू० छं० १४२ 'पृ० रा' का० १२४७।१४६

८ दे० 'सोशल लाईफ इन नादर्न इण्डिया', पृ० २१८

के लिए उन्होंने जैसे ही पीछे की ओर दृष्टिपात किया कि वह रजतखण्ड पिघलकर लवणमय सर में परिवर्तित हो गया।[1]

परमाल रासो में गुरु गोरखनाथ आल्हा की सेवा से प्रसन्न होकर उसे मोहन और सागन नामक दिव्यास्त्र प्रदान करते हैं तथा अमर रहने का भी वरदान देते हैं।[2] छत्रप्रकाश में स्वामी प्राणनाथ महाराज छत्रसाल को युद्ध में सदैव विजयी होने और अखण्डित राज-परम्परा चलने का वरदान देते हैं।[3]

कवि मान ने बाप्पा रावल हारीत नामक सिद्ध-पुरुष से नृप होने का वरदान प्राप्त करते चित्रित किए हैं। उनकी सेवा से प्रसन्न हो हारीत, बाप्पा रावलजी को दूसरे प्रातःकाल वरदान लेने के लिए कहते हैं।[4] निर्धारित समय पर बाप्पा रावल जब उनके समीप पहुँचते हैं तो हारीत योग विद्या से आकाश की ओर ऊर्ध्व गमन प्रारम्भ करते हैं।[5] आकाश में से वह रावलजी को स्व मुख खोलने का आदेश देते हैं और उनके वैसा करने पर उनके मुख में अपने मुख से निकाला हुआ ताम्बूल गिराने की चेष्टा करते हैं।[6] बाप्पा रावल उस पान को कदाचित झूठा समझकर थूक देते हैं।[7] जिसे देखकर दुःखित हुए सिद्ध पुरुष कहते हैं कि यदि तुम इस ताम्बूल को खा लेते तो अमर हो जाते और तुम्हारे वंश का राज्य भी अचल हो जाता। अब तुम अमर तो नहीं हो सकते, किन्तु मैं तुम्हें भूपति होने का वरदान प्रदान करता हूँ।[8]

कवि सूदन ने उस पारम्परिक विश्वास की अभिव्यक्ति प्रदान की है जिसमें देवों की सहायता करने वाले भूप मुचकुन्द को उनसे यह दो वरदान मिले थे कि उनकी देव चरणों में सदैव अनुरक्ति रहेगी और उनकी नींद में व्याघात डालने पर जिस पर भी उनकी दृष्टि पड़ेगी वह भस्म हो जायगा।[9]

शाप —

तुष्ट देव और सिद्ध पुरुषों से जहाँ अनेक प्रकार के वरदान मिलने का विश्वास किया जाता था, वहीं उनका रुष्ट होना अनिष्टकर शापों का कारण माना जाता था। शाप देने की शक्ति सती-नारियों तथा भ्रान्त प्रजाजनों में भी स्वीकार की जाती थी।

पृथ्वीराज रासो में चित्ररेखा नामक अप्सरा को इन्द्रशाप के कारण[10] तथा मंजुघोषा को ऋषि शाप के कारण,[11] क्रमशः शशिव्रता और संयोगिता के रूप में मानव योनि भोगनी पड़ती है। मंजुघोषा को संयोगिता के रूप में पति और प्रतिकूल

---

१ से ११—क्र०, 'पृ० रा०', का० १४६१।२१३ 'पर० रा०', ३१।१८६ छ० प्र० २४।२, 'रा० वि०', १।५२ वही, १।१५३, वही १।१५४-५५, वही १।१५५, वही, १।१५५-५६, 'सु० च०' ७।२।५५, 'पृ० रा०', का० ७७।१।७२, वही १२४६।१६२

के निधान तथा पति वियोग में दुःख भोगने का भी शाप मिलता है। आखेटार्थ गत महाराज पृथ्वीराज ने व्याघ्राम्बरधारी ऋषि को सिंह समझकर उस गुफा में निकालने के लिए धुआँ करा देते हैं। धुएँ से पीड़ित होकर ऋषि बाहर निकल आते हैं तथा क्रोधित हो जन और पुत्र सबको शाप देते हैं कि जिस प्रकार मेरा प्राणों को कष्ट पहुँचाया है उस दोष के कारण अपनी दोनों आँखें निकाले जाने का कष्ट भोगना पड़ेगा।[1] महाराज पृथ्वीराज के पूर्व-पुरुष बीसलदेवजी को तपस्या में रत विधवा वणिक पुत्री गौरी का सतीत्व भंग करने के अपराध में उससे राक्षस होने का शाप मिलता है।[2] पृथ्वीराज रासो में ऋषि-पीड़क धान्य नामक नृपति को भी ऋषियों के शाप से राक्षस योनि हो जाती है।[3] दिवातट समय में गगनविहारी गज-राजा को एक मुनि के शाप से भूतल पर अवतरित होकर मानवों की सवारी के काम में आने का दण्ड भोगना पड़ता है।[4] चन्द ने दुःखी प्रजा की आहों में भी देवों एवं सिद्ध पुरुषों की भाँति शाप देने की क्षमता प्रदर्शित की है। वीरयाह नामक राजा के अत्याचारों से पिसती हुई प्रजा शाप देती है — तू निर्वंश मरेगा जिससे यमदूतों के साथ साथ तुझे सुगति भी नहीं मिल सकेगी।[5] यह निर्देश करना आवश्यक है कि उपर्युक्त सभी शाप फलित होते चित्रित किए गए हैं।

रतनबावनी में महाराज रतनसेन को भगवान राम का पार्षद दिखाया गया है, जो नारद मुनि का उपहास करने के दण्ड में उनके शाप से भूतल पर पतित होते चित्रित किए गए हैं।[6] भूषण ने मुगलों के उन प्रासादों का जहाँ कभी कलावतों की मधुर स्वर लहरी से वातावरण निनादित रहता था भूत प्रेतों का डेरा बन जाने के मूल में शाप का प्रभाव बताकर शापों में आस्था प्रकट की है।[7]

आल्हाखण्ड में वैरागियों के शाप से राज्य पाट भंग हो जाने में विश्वास प्रदर्शित करते हुए उन्हें रुष्ट करने से बचने का परामर्श दिया गया है।[8] आल्हखण्ड में सतियों के शाप और वरदान देने सम्बन्धी जनविश्वास को गजमोतिन और बेला के माध्यम से प्रकटन किया गया है। दोनों ही रानियाँ सती होते समय दिल्ली और महोबा का विनाश होने का शाप देते चित्रित की गई हैं।[9]

वरदान और शापों सम्बन्धी उपर्युक्त विवेचन के अन्त में हम इतना निवेदन अवश्य करेंगे कि आजकल ऐसी बातों में विश्वास करना अंधविश्वास की श्रेणी में रखा जाता है। वीरकाव्य में वर्णित घटनाओं पर भी दृष्टिपात करने से ऐसा प्रतीत होता है, मानो कवियों ने जिनकी आँखों के समक्ष सम्पूर्ण घटना चक्र था—अपने आश्रयदाताओं के सुख दुःख के मूल में वरदान और शाप की योजना करके, उनके

---

१ से ९ —द्र० पृ० रा०, का० २००८।१६२ वही ६७।४६१ वही ७४३।४१७, 'पृ० रा० का० ८८४।५ वही ६८३।१० ११, र० बा० छ० २६, शि० भू०' छ० २४३ वही, ४६।११ १४, 'आ० ५५७।१४ ४३८।२०-२५

नियमन को किसी परोक्ष शक्ति के हाथों में प्रदर्शित करने की चेष्टा की है। जो हो इतना निश्चित है कि आलोच्यकालीन जन-जीवन में ऐसे विश्वास आजकल से अधिक घर किए हुए थे।

(ग-४)—ज्योतिष

ब्राह्मणों का विवेचन करते हुए ज्योतिषी और गणकों द्वारा यात्रारम्भ करने, गड़ा धन निकालने, किले की नींव जमाने, कूपियाँ भिराने तथा नाना सम्कारों के सम्पन्न करते समय उनसे शुभ-लग्न पूछने का पीछे उल्लेख किया जा चुका है। इससे ज्ञात होता है कि आलोच्यकाल में जीवन के छोटे-बड़े सभी कार्यों के समय ज्योतिषियों की शरण लेना आवश्यक समझा जाता था। पारिवारिक जीवन की भाँति राजनीतिक जीवन भी ज्योतिष से आक्रान्त था। युद्ध अभियानों से पूर्व तदर्थ शुभ मुहूर्त का शोधन कराया जाता था। महाराज पृथ्वीराज महोबे पर आक्रमण का मुहूर्त पूछते हैं और एक वर्ष तक उसका शुभ मुहूर्त न होने का कथन सुनकर एक वर्ष पर्यन्त आक्रमण को स्थगित कर देते हैं।[1] वीरकाव्य में अन्य नरेश भी शुभ मुहूर्त में ही युद्ध प्रयाण करते मिलते हैं।[2] मुसलमान बादशाह भी अपने काजी से शुभ साइत पूछकर, आक्रमण करते मिलते हैं।[3] औरंगजेब काल में भारत आने वाले बर्नियर नामक फ्रेंच यात्री ने भी भारतीयों की ज्योतिष में प्रगाढ़ आस्था पर प्रकाश डालते हुए वीरकाव्य में चित्रित धारणाओं का अनुमोदन किया है। उसके अनुसार युद्धस्थल में शत्रु सेनाओं के एकत्र होकर, सामरिक दृष्टि से पूर्णतया सन्नद्ध हो जाने पर भी, तोपों का तब तक चलना नहीं दिखाई जाती, जब तक काजी या ज्योतिषी द्वारा बताई हुई शुभ साइत नहीं आ जाती। कभी कभी यह साइत आने की प्रतीक्षा भयानक विपत्ति का निमित्त बन जाती है क्योंकि उस समय तक शत्रु इस असावधानी का लाभ उठा चुका होता है।[4] बर्नियर ने पाखण्डी ज्योतिषियों की हास्यास्पद घटनाओं का उल्लेख करते हुए—एक ऐसे पुर्तगाली ठग के समीप बहुत भीड़ रहने का उल्लेख किया है जो अक्षर ज्ञान से भी शून्य था और जलमार्ग के सूचक नक्शे को अपनी ज्योतिष की पुस्तक बताकर, भारतीयों को ठगा करता था।[5]

भविष्य-कथन के लाभ चाहे जो कुछ रहे हों, एक प्रत्यक्ष हानि यह दिखाई देती है कि युद्ध में जाने से पूर्व ही ज्योतिषियों द्वारा पराजित होने का भविष्य-कथन सैनिकों को हतोत्साहित करके निष्प्राण कर देता था और पराजय अवश्यम्भावी बन जाती थी। पृथ्वीराज रासो में ज्योतिषियों का जिस भाँति निडर होकर महाराज

१ से ३—दे० 'पृ० रा०', ४।५-६ सु० च० २।१।६, 'प० रा०', रा० ९८।७।४
रा० वि०, ६।१६८ ६६, 'शि० भू०', २६३, 'सु० च०', १।२।२५
४ से ५—दे० ट्रैवल्स इन मुगल एम्पायर, पृ० १६१, २४४

अनगपाल के बद्रीनाथ[1] जाने के समय तथा प्रियाकुवरि की विदा के अवसर[2] पर ही भारत ... आदि की भविष्यवाणी करते प्रदर्शित किया गया है यदि वह वस्तुत सत्याधन हो तो इन भविष्योल्लेखों के विशाक्त प्रभाव की सहज कल्पना की जा सकती है। रासो में महाराज पृथ्वीराज और उनके सैनिक शाह गोरी से होने वाले अंतिम युद्ध में बड़े हीन मनोबल से युद्धार्थ जाते दिखाए भी गए हैं[3] क्योंकि उन्हें ज्योतिषियों से इस बार पराजित होने की सूचना मिल चुकी थी।[4] तात्पर्य यह कि ज्योतिष में आलोच्यकालीन जनसमुदाय की प्रगाढ़ आस्था थी और जन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ज्योतिषियों के भविष्य कथन को बड़ा महत्त्व प्रदान किया जाता था।

(ग ५)—शकुन अपशकुन

आलोच्यकाल में शकुन और अपशकुनों के विषय में भी जन विश्वास बहुत बढ़ा चढ़ा था। शुभ शकुन विजयश्री के अधिकरण कार्यों में साफल्य तथा रिद्धि सिद्धि की प्राप्ति में सहायक माने जाते थे[5] जबकि अपशकुनों के कारण पराजय होने अभीष्ट कार्यों में व्याघात पड़ने तथा मृत्यु तक हो जाने का विश्वास किया जाता था।[6] अपशकुनों का प्रतिकार करने के लिए कुछ क्षण तक ठहर जाने[7] अथवा अपशकुन करने वाले पशु पक्षी को मार डालने का प्रचलन था[8] जबकि शकुन के समय अंचल में गाठ लगाने की प्रथा थी।[9] इस प्रथा के मूल में कदाचित यही धारणा रही होगी कि अंचल में गाठ लगाकर उस शुभ शकुन के सभी सदफलों को अपने वश में कर लिया गया है। इन शकुन अथवा अपशकुनों के निर्धारण में विभिन्न प्रकार के पशु पक्षियों विचित्र प्रकार की प्राकृतिक घटनाओं विशेष प्रकार के वेश पहने हुए मानवों तथा अपने शरीरांगों की विकृतियों को स्थान दिया जाता था।

पशु-पक्षियों से सम्बद्ध शकुन —

पक्षियों में देवी या श्यामा[10] नामक चिड़िया की बहुत महिमा समझी जाती थी। कवि चन्द के अनुसार—समतल स्थान पर दाहिनी या बाई किसी भी ओर बैठी हुई देवी शुभ होती है।[11] उसके दर्शन से यात्रा का मनोरथ सहज ही सिद्ध हो जाता है

---

१ से ८—द० प० रा० मो० १।८६।२२ वही १।३६२।४६ ४७ वही ...०१।५८७ प० रा० मो० २२०१।५६७ ५७४ वही १६०१।१६० सु० च ...।१७ प० रा० मो० ४।६१०।१०६ वही, ४।५६४।६६ प० रा० ४।६८

१० देवी एक चिड़िया का नाम है। आजकल इस चिड़िया को शामा या श्यामा कहते हैं। यह सर पर से लिंककुन कानी होती है। उसकी पूछ लम्बी और चोंच कानी होती है। शिकारी और डाकू लोग अब भी इस चिड़िया की बोली से बड़े मतलब निकालते हैं। प० रा० का० रासासार, पृ० २५७ पर पाद टिप्पणी।

११ प० रा० का० १६००।१६०

और उसे रिद्धि सिद्धि की प्राप्ति होती है।[1] यदि वह मंडल बाँधकर उड़ती हो और रास्ता काटकर बाई ओर से दाहिनी ओर को जाय तो शुभ होती है। इस समय वह जितनी बार बोले, कार्यसिद्धि में उसी के अनुरूप अधिक सफलता मिलती है।[2] सर्प के फण पर नृत्य करती हुई श्यामा इस शकुन की परिचायक समझी जाती थी कि देखने वाले को शीघ्र ही सम्पत्ति और सुख प्राप्त होने वाले हैं।[3] रासो के सम्पादकों के अनुसार आजकल भी डाकू और शिकारी लोग इस चिड़िया की बोली से बहुत से मतलब निकालते हैं। चन्द के अनुसार अधोलिखित पशु-पक्षियों का मिलना और बोलना भी शुभ समझा जाता था।

तीतर, खर नाहर जंबुक सारस चील चातक, भारद्वाज पक्षी, उलूक तोता बन्दर बकरा और नवला का बाएँ ओर मिलना।[4] दाहिनी ओर दहाड़ते हुए सिंह का शुभ शकुन माना जाता था किन्तु सफलता में भय की आशंका रहती थी।[5] यदि तीन पाँच या सात मृगी मृग के साथ चरती मिलें तो वे शुभ होती थी।[6] शृगाली का बाई ओर रुदन करना नगर प्रवेश के समय शुभ माना जाता था।[7] नरहरि ने भी मृग, चील, शृगाल, उलूक, श्यामा, तीतर, मकरी, मुर्गा और मयूर का मार्ग में बाई ओर पड़ना शुभ समझने की धारणा व्यक्त की है।[8]

कवि चन्द के अनुसार अग्रलिखित बातें भी शुभ शकुन की परिचायक समझी जाती थी। कवि चन्द ने इन शकुनों में आक्रमण करने वाले नारेन नामक सामंत को काँगड़ा दुर्ग पर विजय प्राप्त करते दिखाया है—मृग का मार्ग के दाहिनी ओर पड़ना, सामने से सर्प का आना, सिंह का बाई ओर दहाड़ना किन्तु नगर प्रवेश के समय दाहिनी ओर पड़ना तथा उल्लू का बाई ओर से शब्द करना,[9] परमाल रासो में मोर का कूकना, उत्तर की ओर वाराह दम्पती का मिलना, साँड का बाई ओर दहाड़ना बगुले का दाहिनी टाँग उठाकर बैठा मिलना और खंजा-युगल का दिखाई देना शुभ समझने का विश्वास प्रकट किया है।[10] केशवदासजी ने घोड़े के ऊपर पाखर डालते समय उसका ऊँचा मुख करके हिनहिनाना तथा टापों से भू को खोदना विजय का प्रतीक बताया है।[11]

अपशकुन —

श्यामा चिड़िया का दाहिनी ओर तीन बार बोलना इस तथ्य का अभिसूचक समझा जाता था कि यह यात्रा स्थगित करने का संकेत कर रही है।[12] उसका दाहिनी

---

१ से ११—द्र० 'पृ० रा०', का० १६०।१६०, वही, १६०।१६१-६२, 'पृ० रा० मो०' १।२०२।२३-२५, 'पृ० रा०' का० १६०२।१६७-६८, वही १६०२।१६९-७०, वही, १६०२।१७०, १६०२।१७०१, 'प्रक० हिन्दी', ३२६।८८, 'पृ० रा०' का० १०५१।२८-२९, 'प० रा०', ४।९६-९८, 'वी० च०', १७।७२, 'पृ० रा०' का० १६००।१६०

ग्रार स बाइ ग्रोर का माग काटता भी अपशकुन माना जाना था तथा निराम किया जाना था कि ऐसी दशा म उसका दो वार शब्द करना गन्तुक के वश हान का सूचक है, जबकि तीन बार बोलना उसके जीवन के ही सकट प्रस्त हान का परिचय दे रहा है।[1] श्यामा का किसी कटील या गुरु वश पर अगार भस्म अथवा उपला पर बठा मिलना तथा एक बार चहचहाना भी बहुत अशुभ समझा जाता था।[2]

सूर्यास्त के समय कृष्ण मग का मिलना साक्षात यमराज का स्वरूप माना जाता था।[3] वन बिलाव उल्लू परेवा ग्रोर पडुकी का दक्षिण की ग्रोर बोलना भी अशुभ समझा जाता था।[4] पशु-पक्षियों सम्बन्धी अपशकुनो म अधोलिखित तथ्य भी परिगणित किय जाते थे—

१ शृगाल का रुदन, २ सारस युग्म के स्थान पर एक ही सारस का मिलना ३ दिवस म भी चकवा चकवी का विछोह ४ हाथी ग्रोर अश्वा की गतिभग हाना तथा उनकी आखो स अश्रुपात हाना ५ श्वानो का रुदन ६ सामने म वाराह का आना, ७ कौवो का सामने या बाइ ग्रार काँव काँव करना ८ गन्तव्य दिशा की ग्रार उल्लू का उडकर जाना ९ सेना की ध्वजाओ पर उलूक या गृद्धो का बठना १० सामने की ग्रार स गधो का बोलना, ११ लडत बिलावो का सामने पडना, १२ कुत्त का कान फटकारना, १३ सिर के ऊपर मडराती चीलो का चीत्कार करना, १४ खर का दाहिनी ग्रार मिलना १५ बिल्ली का बाइ ग्रार स दाहिनी ग्रार को माग काटना, १६ उल्लुओ का दिन म बोलना १७ साँप का माग काटना १८ बिना दाँत वाले हाथी का मिलना।[5]

प्राकृतिक घटनाओ स सम्बद्ध शकुन

कार्यारम्भ के समय आकाश का स्वच्छ होना तथा सूय का उदित होना शीतल मद सुगध पवन का चलना, सामने के किसी गाँव म आग लगी मिलना शुभ समझे जाते थ।[6]

अपशकुन —

१ सूय का तेजहीन दिखाई दना १(क)—सूय म कमल चिह्न दिखाई दन २ उल्कापात ३ देव प्रतिमाओ का हसना। ४ आकाश म रुधिर वर्षा ५ दावाग्नि लगना ६ तारे टूटना, ७ चद्र का निष्कलक दिखाइ दना ८ वक्षो स पुष्पो के स्थान पर अग्नि वर्षा होना ८(क)—वक्ष की शाखाओ का टूटना। ९ आकाश का

---

१ स ६—दे० प० रा०' का० १६०१ स १७६ ५ ६ पर० रा० १६।२६ ३१ सु० च०' ३।३।७ प० रा० का० २०५१।१६१ २२१२।६५५ वी० च० १७।१२ जगनाभा प० ७४५ ५३ पर० रा० ४।८६ वी० च०' ११।२१ ग्रक० द० हिन्दी क०' ३२८।६०, प० रा०', का० ७२२।२६६

मूलोन्मूलन होना। १० कबन्धों का नृत्य करना, ११ आकाश में मायावी आकृतियों का उत्पन्न करना। १२ सेना के निशान और नरेश के छत्र का स्वतः ही खंडित हो जाना, १३ महावत के हाथ से अंकुश का गिरना। १४ दिशाएँ दग्ध दिखाई देना। १५ बिना ऋतु के ही वृक्षों का पुष्पित होना। १६ प्रासाद की दीवारों का धँसना। १६ देव प्रतिमाएं चलती हुई प्रतीत होना। १७ घोड़े पर जीन कसते हुए नारी का टूटना।[1]

मानव व्यापारों से सम्बद्ध शकुन

छत्रधारी पुरुष अर्थात नरेश अथवा दूल्हा, ब्राह्मण, गोद में पुत्र लिए युवती, धुले वस्त्र लेकर आने वाला रजक, शृंगार की हुई वेश्या, फल, अच्छत, दधि, पुष्प अथवा पूर्ण घट लेकर आने वाले मनुष्यों का सामने पड़ना, बाँधे हुए पशु, प्रज्वलित अग्नि, स्वर्ण अथवा मणि को देने की आकांक्षा करने वाले व्यक्तियों का मिलना शुभ समझा जाता था। इसी भाँति, वेश्या, मद्य पान किए हुए कलार, अर्थी, पूर्ण कलश, सेना, श्वेत परिधान वाले स्त्री-पुरुष, दीपक, निर्धूम अग्नि, पल्लव और पुष्प लेकर आने वाली मालिन का आगे पड़ना भी शुभ शकुनों में परिगणित किया जाता था।[2]

अपशकुन —

बिना धुले वस्त्र लिए रजक अथवा दो गधे और सिर पर बोझा लिए कुलाल का सामने या बाईं दिशा से आना लड़ाई कराने का निमित्त समझा जाता था। इसी भाँति जटा खोले हुए, विभूतिहीन योगी, श्यामवर्ण के अथवा तिलक हीन ब्राह्मण, रुदन करती हुई विधवा तथा श्वेत घट पर काला घड़ा रखकर लाने वाली स्त्री का सामने पड़ना आपत्तियों का मूल माना जाता था।[3]

मानव शरीरांगों से सम्बद्ध शकुन

स्त्रियों के वाम[4] तथा पुरुषों के दाहिने[5] अंगों का फड़कना शुभ समझा

---

१ म २—दे० पर० रा०', १६।७६-८३, 'जग०व०' ७४४-४६, 'प० रा०' का० २१६६।५५८-६०, वही २२१२।६५१, 'अक० हि० क०', ३२८।८६-६०

३ रासभ उभय कुलाल करि सिर बधन लिस मारि।
वाम दिसा सम्मुख मिलइ, अवसि होइ प्रभु रारि।
अतिलक ब्राह्मन स्याम अरु जोगी हीन विभुत्त।
सम्मुह राज परम्मिय, गमन वरज्ज नित।
—प० रा०, मा० ६।६०६।६१०

और भी दे०, 'सु० च०, ७।२।४६ प० रा०', का० २२१२।६५८

४ हमराज की सुना वह मसुन भय अधिकाय।
वायाँ नग फरकन अति, आइ गय निगिराय। —पर० रा०', १।१२६

५ फरक्यो चपनि राइ को दक्षिन भुज अनुकूल।
करी फौज उमडी सुनी भई जुद्ध की फूल। —छ० प्र०, ६।३

जाता था।

अपशकुन —

कंठ गदगद होना, आँखों में अकारण ही अश्रुपात होने लगना, मुखकान्ति का म्लान होना, पुरुषों के वाम नेत्र फड़कना, शरीर में कम्प का प्रादुर्भाव होना अशुभ समझे जाते थे।[1] कार्यों के आरम्भ में किसी का छींक देना भी उन कार्यों में विघ्न समुपस्थित करने का कारण माना जाता था।[2]

शकुन अपशकुन सम्बन्धी विश्वास के विषय में यह निवेदन करना आवश्यक है कि इसके मूल में सामाजिकों की सहस्राब्दियों तक अनुभूत धारणाएं प्रतीत होती हैं। विविध पशु पक्षियों, प्राकृतिक घटनाओं तथा शरीरांगों के स्फुरण के समय आरम्भ किए गए कार्यों के शुभ अशुभ परिणाम निकलने के आधार पर ये नियम बनाए गए होंगे। आजकल का शिक्षित समुदाय ऐसे विश्वासों को अंध विश्वासों में परिगणित करता है, तथापि ज्ञात नहीं प्रकृति के किस विधान से अशुभ शकुनों में उल्लिखित तथ्यों का प्राय अशुभ परिणाम ही निकलता है। भारत के प्राचीन साहित्य में रामायण व महाभारत आदि ग्रंथों में तो इनका विवरण मिलता ही है शकुन विचार के नाम से पुराण आदि ग्रंथों में भी इनका विवेचन किया गया है। कुछ भी हो हमारे आलोच्य काल में शकुन अपशकुन के सम्बन्ध में जन मानस में दृढ़ आस्था थी।

(ग ६)—स्वप्न फल

वीरकाव्य में स्वप्नों के अन्तर्गत अनागत सुख दुखात्मक घटनाओं का पूर्वाभास मिलने के साथ साथ घटित घटनाओं की भी दूरस्थ व्यक्तियों को सूचना मिलती चित्रित की गई है। इसी भाँति अशरीरी पात्र भी विविध वेशों में दिखाई देकर स्व मनोव्यथा अथवा हृद्य का प्रकटन करते मिलते हैं जबकि उनकी व्याख्या के लिए पुरोहित व्यास और भाटों के बुलाए जाने का भी निर्देश किया गया है।[3] इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि आलोच्यकालीन जन समुदाय की स्वप्न में देखी हुई घटनाएँ घटित होने तथा उनके सद असद फल मानने के सम्बन्ध में पर्याप्त आस्था थी।

वीरकाव्य में अर्धरात्रि के पश्चात देखे हुए स्वप्न पूर्णत सत्य निकलते चित्रित किए गए हैं[4] जिनसे प्रतीत होता है कि अर्धरात्रि के पश्चात देखे गए स्वप्न सत्य समझे जाते थे। दुस्वप्नों के देखने पर जगते हुए हरि स्मरण करने और पानी पीने की प्रथा थी।[5] उनके अनिष्ट फलों के निवारण के लिए बलि प्रदान करने का भी प्रचलन था।[6]

---

१ स ६—२० मु० च० ७१२।४६ आ०', ४६६।१३ १४, वही ४२७।१२, 'पर० रा० १०।२८ 'प० रा०' का० २५।११ वही, ५६२।१६, वही २१४५।२५४

पृथ्वीराज रासो मे महाराज पृथ्वीराज को बाल्यावस्था म ही अपन दिल्लीपति होन का पूर्वाभास मिल जाता है जब वे स्वप्न म एक योगिनी को उनका राज्यतिलक करके वहाँ का नरेश बनाने का स्वप्न देखते हैं।[1] महाराज अनगपाल अपने कुटुम्बियो को दक्षिण प्रदेश की ओर जाते देखने[2] तथा यमुना पार से इस ओर आए हुए एक सिंह को दूसरे सिंह के साथ प्रेमपूर्वक मिलने के स्वप्न देखते हैं,[3] जिसकी व्याख्या उनके व्यास द्वारा इस रूप म की जाती है कि शीघ्र ही पृथ्वीराज दिल्ली के अधिपति बनने वाले हैं।[4] धीर पुण्डीर कद होकर गजनी ले आये जाने से पूर्व ही यह स्वप्न देख चुका था कि उसे पकडने के लिए शाह गोरी ने आठ सहस्र गुप्तचरो को गुप्त वेश म भेजा है।[5]

बालुकाराय की पत्नी अपने पति की आसन्न मृत्यु के विषय म दुश्चिन्ताग्रस्त हो जाती है क्योकि वह एक ऐसा स्वप्न देखती है जिसम उसकी कटि जंघाओं की भांति स्थूल, तथा जंघाएं कटि की भांति क्षीण हो जाती हैं। उनके नेत्रो म अनायास ही अश्रुपात होने लगता है तथा केश पाश म सर्प लोटने लगते हैं।[6] महाराज पृथ्वीराज भी गोरी से पराजित होने से पूर्व एक दुःस्वप्न म अपनी रानियो को कलह करते तथा एक दानव द्वारा अपहृत होते देखते हैं। प्रयत्न करने पर भी वे उनकी उस राक्षस से रक्षा नही कर पाते।[7] उनकी कीर्ति या राज्य श्री ने भी उनके वैभव के दिनो म स्त्रीवेश म आकर उनसे अटूट प्रेम सम्बन्ध होने का स्वप्न दिया था,[8] उनके पराभूत होने से कुछ काल पूर्व उन्हें विलास छोडकर सचेत हो जाने का स्वप्न देती है और कहती है कि माणिकराय चौहान के वंशजो द्वारा रक्षा की हुई पृथ्वी को तू भूल गया है उसकी रक्षा के लिए स नद्ध हो जा।[9] वह उनके बहनोई रावल समर विक्रम को भी स्वप्न म दिखाई देकर चेतावनी करती है कि अब शीघ्र ही शाह गोरी मेरे शरीर का स्पर्श करने वाला है।[10]

पृथ्वीराज रासो के स्वप्न सम्बन्धी अन्य वृत्तातो म महाराज पृथ्वीराज को खट्टूवन म अपार द्रव्य गडा होने का समाचार पृथ्वी द्वारा दिए गए स्वप्न से ज्ञात होता है।[11] उन्हें हासी म अपने सामन्तो की पराजय का पता भी—हासी दुर्ग द्वारा उज्ज्वल तन पर धवल वस्त्र धारण करके दिए हुए इस स्वप्न से ज्ञात होता है कि देवराय खीची का वध करके तुर्कों ने मुझ पर आधिपत्य कर लिया है।[12] कवि चन्द को भोलाभीम द्वारा कमास को स्त्री-पाश म आबद्ध करके युद्ध विमुख कर देने[13] तथा महाराज पृथ्वीराज द्वारा उसका वध करने का रहस्य भी[14] स्वप्न म ही ज्ञात होने

१ स १४—द० 'पृ० रा०', का० २५।३, वही, ५९२।१५, वही ५९२।१७, वही, ५९२।१९ वही २०२६।१७४ 'पृ० रा०' का० १२२७।२५४, वही, २१४४।२५२ वही, १००७।८३, ८८, वही २१२०।१००, वही, २१०५।२, वही ५८७।७७, 'पृ० रा०', मो० ३।३३८।२७ 'पृ० रा०' का० ४६०।२७२, वही १४८१।१०८ ०९

सात्वाहन की माता को उनके द्वारा स्वप्न में यह आश्वासन दिलवाया है कि, मैं शीघ्र ही तुम्हारी कुक्षी से पुनः जन्म लूंगा। माता पिता को इस स्वप्न से ढाँढस बंधता है और शीघ्र ही उनके यहां पुत्र-जन्म होना भी है।[1]

आल्हखण्ड में रानी मल्हना की प्रार्थना पर देवी कन्नौज गए हुए ऊदल को स्वप्न में यह सूचित करती है कि महोबे पर दिल्लीपति ने आक्रमण कर रखा है, जिसके कारण चन्द्रावली को भुजरियों का सागर पर सिराने के लिए ले जाने का किसी में साहस नहीं है।[2]

स्वप्नों सम्बन्धी उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि आलोच्यकालीन सामाजिकों का उनमें प्रगाढ़ विश्वास था। उनके विविध प्रकार के अनागत सुख दुःखों का पूर्वाभास हो जाने के साथ साथ घटित घटनाओं का दूरस्थ व्यक्तियों को पता चल जाने का भी विश्वास किया जाता था। आजकल स्वप्नों में ऐसी घटनाओं का परिचय मिल जाने में चाहे, विश्वास न किया जाय, किन्तु मनोविश्लेषण में इन स्वप्नों का महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। जहाँ तक प्राचीनकाल का सम्बन्ध है—रामायण आदि ग्रंथों में तो स्वप्न में घटनाओं का पूर्वाभास मिलने के विवरण मिलते ही हैं, मिस्र के सम्राटों ने तो इसे लेख खुदवा रखे हैं कि, हमने बहुत से कार्य स्वप्नों में प्रेरणा पाकर सम्पन्न किए हैं।[3]

(ग-७)—जन्त्र मन्त्र

आलोच्यकालीन जन समुदाय की जन्त्र मंत्रों द्वारा विविध प्रकार के कृत्य कर दिखाने के सम्बन्ध में प्रभूत आस्था परिलक्षित होती है। विश्वास किया जाता था कि मन्त्रबल से असम्भव कृत्य सम्पन्न किये जा सकते हैं मनुष्य की काया को अभिमन्त्रित करके शस्त्राघातों से सुरक्षित बनाया जा सकता है तथा दिव्यास्त्रों के प्रयोग से विपक्षी विमूढ़ और हतोत्साहित किये जा सकते हैं। पृथ्वीराज रासो में कवि दुर्गा केदार और चन्द वरदाई महाराज पृथ्वीराज और उनके सामंतों की उपस्थिति में जन्त्र मन्त्र के बल से अधोलिखित आश्चर्यजनक कारनामे दिखाते हैं—

दुर्गा केदार के मन्त्रबल से एक शत छिद्र वाले घट के प्रत्येक छिद्र में से अग्नि स्फुलिंग तथा कण्ठ के पतंगों के मन्त्र निःसृत होने लगते हैं।[4] इसके प्रत्युत्तर में चन्द द्वारा अभिमन्त्रित घड़े में से महाराज पृथ्वीराज के प्रशस्तिपरक छन्द, चौदह विद्याओं से सम्बन्धित मन्त्रों की ध्वनि तथा उसके छिद्रों में से अग्नि ज्वालाओं के साथ साथ पानी की बौछारें भी निकलने लगती हैं।[5] दुर्गा केदार स्वयं में छः माह के बच्चे द्वारा बातचीत करा देने की सामर्थ्य बताता है, जबकि चन्द कहता है कि मैं एक दिवस के

---

१ से २—दे० 'प्र० प्र०', ३।११, 'आ०', ४३।२१ २३

३ दे० मध्य० हि० गा० का लोका० अध्य०', डा० सत्येन्द्र, पृ० २४

४ से ५—पृ० प० रा०, का० १२२४।८२ ८८, वही, १२२४।८८ ८६

बच्चे से ही पट भाषायें बुलवा सकता हूँ।[१] दुर्गा केदार मंत्र पढ़कर एक अश्व पर अच्छत फेंकता है, जो अपनी आंगिक चेष्टाओं द्वारा महाराज पृथ्वीराज को आशीर्वाद प्रदान करता है।[२] इसके प्रत्युत्तर में चंद उस अश्व के शीश पर एक अभिमंत्रित पुष्प रख देता है, जिसके प्रभाव से वह अश्व बोलने लगता है और एक गाथा पढ़कर भगवान श्रीकृष्ण से महाराज पृथ्वीराज की रक्षा करने की प्रार्थना करता है।[3] दुर्गा केदार के मंत्र बल से एक शिलाखण्ड गतिशील होकर सचरण करने लगता है। चंद अपने मंत्रों से उस शिलाखण्ड में अपनी अंगूठी प्रविष्ट कर देता है। मंत्रबल से वह अंगूठी को निकालने की भी चेष्टा करता है, किन्तु दुर्गा केदार द्वारा उसके मंत्र की काट कर देने से इस कृत्य में असफल रहता है। खीझा हुआ कवि चंद अपने मंत्रों के प्रभाव से उस शिलाखण्ड को गलाकर पानी में परिवर्तित कर देता है।[४]

दुर्गा केदार चंद से भी बढ़कर अद्भुत कार्य कर दिखाता है। वह एक लड़के का शीश काट देता है। लड़के का कटा हुआ शीश तो छंद पाठ करने लगता है, जबकि उसका धड़ इतस्ततः दौड़ने लगता है। इसे देखकर महाराज पृथ्वीराज के समस्त-सभासद विस्मय विमुग्ध हो उठते हैं।[५] चन्द भी हतप्रभ होकर देवी की आराधना करने लगता है जो उसे आश्वस्त करती हुई उसका पूरा साथ देने का वचन देती है।[६]

इसके पश्चात् दुर्गा केदार मंत्र बल से वर्षा कर दिखाने का कौशल प्रदर्शित करता है। उसके मंत्र पढ़ते ही प्रबल वात्याचक्र के साथ बादल गरजने लगते हैं। देखते ही देखते चारों ओर अंधकार छा जाता है। बिजली चमकने लगती है तथा तड़ित गर्जन से आपूरित वातावरण में मयूर कुहुकने लगते हैं। जब रिमझिम बूँदें भी पड़ने लगती हैं तो महाराज पृथ्वीराज और उनके सामंतों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता। चन्द अपनी बारी आने पर इस मायाजाल का अनावरण करके, वर्षाऋतु के स्थान पर वसंत ऋतु की उद्भावना कर देता है। उसके मंत्रों के बल से उठी हुई आंधी बादलों को उड़ाकर आकाश को निरभ्र कर देती है। आम्रवृक्षों पर मौर आ जाता है तथा पलाशादि वृक्ष भी पुष्पित हो उठते हैं। पक्षियों के कलरव, भ्रमरों के गुंजार तथा कोयलों की कूक से दिशाएं निनादित होने लगती हैं और चारों ओर वसंतऋतु छा जाती है।[७]

कवि चंद द्वारा दुर्गा केदार की बहुत सी विद्याओं की काट कर दी जाती है। दुर्गा केदार भी चन्द की विद्याओं की काट करने की चेष्टा करता है किन्तु सफल नहीं हो पाता। कवि चंद स्व मंत्र बल से एक पाषाण शिला को गलाकर पारे की भाँति द्रवीभूत करके उसमें अपनी अंगूठी प्रविष्ट कर देता है और दुर्गा केदार से उसे वापस लौटाने के लिए कहता है। दुर्गा केदार लाख प्रयत्न करने पर

१ स ७—दे० प० रा० का० १८२४।९० से १८२५।९२ वही १८२५।९२ से १८२६।१०२ वही, १८२६।१०३ से १८३०।१३५

भी इसमे कृतकृत्य नहीं होता जबकि चन्द इस अदभुत कार्य को कर दिखाता है। अन्त में अपनी पराजय स्वीकार करता हुआ दुर्गा केदार चन्द के चरणों में गिर जाता है और कहता है कि आपके समान मन्त्रविद् त्रिभुवन में नहीं है।[1]

जनमतावलम्बी अमर सेवरा और पंडितों में इस विषय पर विवाद उठ खड़ा होता है कि आज अमावस्या है अथवा द्वितीया ? अमर सेवरा उस दिन द्वितीया बताता है जबकि पण्डितगण अमावस्या। निदान उनमें यह शर्त निश्चित हो जाती है कि जिसका मत असत्य निकलेगा उसका सिर मुण्डा दिया जायगा। अमर सेवरा अपनी सिद्धि के बल पर द्वादश कोश पयन भूखण्ड में चन्द्रदर्शन करा देता है जिससे पण्डितों को अपने शीश मुडाने पड़ते हैं।[2]

अमर सेवरा उज्जैन पर आक्रमणार्थ गए हुए कमास को मायाजाल में फंसा कर कर्त्तव्यच्युत कर देता है। कवि चन्द जब उसे सचेत करने जाता है तो दोनों में तन्त्र मन्त्र का युद्ध होता है। इस मन्त्र युद्ध में दुर्गा केदार और कवि चन्द के मध्य होने वाले कृत्यों की ही पुनरावृत्ति प्रदर्शित की गई है[3] अतः पिष्टपेषण से बचने के लिए उसका इंगितमात्र पर्याप्त है।

गोरा बादल की कथा में राघव चेतन को अदृष्ट-दर्शन की सिद्धि प्राप्त दिखाई गई है। वह महाराज रतनसेन की प्रतिज्ञा के निर्वाह के लिए जिसमें उन्होंने अपनी रानी पदमावती का मुख देखकर ही जलपान ग्रहण करने का संकल्प कर रखा था।[4] जंगल में महारानी पदमावती की मिट्टी की अनुकृति बनाता है। उसकी अदृश्य तथ्यों को भी जान लेने की सिद्धि अभिशाप बन जाती है जब वह उस मिट्टी की मूर्ति की जंघा पर तिल भी बना देता है तब महाराज रतनसेन को भ्रम हो जाता है कि उसका पद्मावती से अवैध सम्बन्ध है अतः उसे स्वदेश से निष्कासित कर देते हैं।[5]

आल्हखण्ड में जादू के बल से मनुष्य को तोता या भेड़ा बना देना इच्छा होने पर उसे पुनः मनुष्य बना लेना तथा किसी की जिह्वा बन्द करके उसे बोलने और नजर बन्द करके देखने में अक्षम कर देना चित्रित किया गया है। किसी पर मोहित हुई नारियों द्वारा जादू की इन विधियों से अभीष्ट प्रेमी बलात प्राप्त कर लिए जाते थे।[6] जादू को छिपा रखने का स्थान जादूगरनियों की चोटियां समझी जाती थी, जिन्हें काट लेने पर उनके अभिचारिक कृत्यों के सर्वथा निष्फल हो जाने का विश्वास किया जाता था।[7]

गोराबादल की कथा में प्रदर्शित मृगछाला और उड़न खटोली पर बैठकर

---

१ स ७—द० प० रा०, का० १५३११।१३८४३ 'प० रा०' मा० २।४६१।७८ 'पृ० रा० का० ४८१।७७६ से ४६७।३०८ गो० क०, छ०२६, वही, छ० ३१, आ०', ३११।१-५, ३५५।४-८, वही, २७२।७

आकाश मार्ग से यात्रा करना तथा परमाल रासो में वर्णित उड़ने वाले अश्व भी इसी प्रकार के विश्वास के निदर्शक हैं। प्रथम ग्रंथ में सिद्ध और महाराज रतनसेन मगछाला पर बैठकर सिद्ध के मंत्र प्रभाव से सिंहल द्वीप जाते हैं[१] तथा वहाँ से परिणीता महारानी पद्मावती और दहेज में मिले राघव चेतन के साथ उक्त खटोली पर बैठकर चितौड़ लौटते हैं।[२]

परमाल रासो में महाराज परमाल ऊदल से उसका अश्व मांगकर उस पर थोड़ी देर तक सवारी करना चाहते हैं। भूल में वे अश्व के दो बार चाबुक मार देते हैं जिससे क्रुद्ध होकर, वह उन्हें सूर्यलोक की ओर लेकर उड़ना प्रारम्भ कर देता है। वह अर्द्ध योजन ऊंचा उड़ जाता है, तो भयग्रस्त महाराज परमाल अपने नेत्र बन्द कर लेते हैं तथा राम नाम रटते हुए अपने मरण की प्रतीक्षा करते हुए उसकी ग्रीवा से चिपट जाते हैं।[३] अश्व का आकाश की ओर उड़ना देखकर सेना में हाहाकार मच जाता है, तथा उनकी रक्षा के लिए आल्हा दूसरा अश्व उड़ाकर उनके समीप पहुँचता है।[४] अश्व से क्रुद्ध होने का कारण पूछने पर, वह प्रत्युत्तर देता है कि प्रथम तो मुझ पर मनुष्य सवार ही क्यों हुआ था? और यदि सवार हो भी गया था तो उसने मुझे चाबुक क्यों मारे थे।[५] उस अश्व को अन्तत आल्हा की यह धमकी भू पर उतारने के लिए विवश करती है कि मेरे हाथ से तुम किसी भी नार में न बच पाओगे।[६] बनाफरों के इन अश्वों के नाम पक्षिराज, मगराज, पवनवेग और मनवेग थे।[७] जो कदाचित उनकी द्रुतगति के कारण ही रखे गए होंगे।

पृथ्वीराज रासो और छत्रप्रकाश में मंत्रों के बल से सर्प को वशीभूत करने का उल्लेख मिलता है। विषधर को मंत्रों से निश्चेष्ट कर देना आजकल सांप कीलना कहलाता है। पृथ्वीराज ।म। म ८८ ने से गड़ा हुआ धन निकालते समय उस पर एक विषधर बैठा मिलता है। उसे देखकर सम्पूर्ण खनिक आदि व्यक्ति दूर पलायन कर जाते हैं तथा कवि चन्द द्वारा उसे मंत्रों में बाँध देने पर ही धन निकाल पाते हैं।[८] छत्रप्रकाश में राजकुमार अंगद को स्व पिता चंपतिराय जी की मृत्यु की सूचना मिलने पर गारेनाल ने उनको मंत्रों से बाँधे हुए सर्प की भांति विवश दिखाया है[९]—शायद न की कृपा के कारण न तो वह शत्रु से प्रतिशोध लेने में समर्थ थे जबकि शत्रुओं से पितृ वैर शोधन न करना उन्हें क्षत्रिय मर्यादा के विरुद्ध प्रतीत होता था। सर्प विष उतारने के लिए ग्रामीण समाज में जो क्रिया प्रचलित है, उसे थाली बजाना अथवा सर्प खिलाने की संज्ञा दी जाती है। इसके विषय में दो बातें कही जाती हैं—इसमें सर्प आकर काटे हुए स्थान पर अपना मुँह लगाकर विष को चूस लेता है और रोगी स्वस्थ हो जाता है। द्वितीय किंवदंती के अनुसार दंशित

१ से ९—द० गा० क०' छ० १८ वही छ० २७ पर० रा० १७।११२ १६, वही १७।११८ २१ वही १७।१२५, वही १७।१२६, वही १८।१०, वही, ७३६।३८८ छ० प्र०' ६।७

व्यक्ति के शरीर में सर्प प्रविष्ट होकर, उस कारण को बताता है जिससे रुष्ट होकर उसने उस व्यक्ति को काटा था। सर्प की (जो प्रायः उस वंश का ही कोई अऊत अर्थात् निपूता अथवा अविवाहित व्यक्ति होता है) माँगें पूरी करने का वचन देने पर काटे हुए व्यक्ति के मुँह से फुंकारों के माध्यम से विष उतारा जाता है। पृथ्वीराज रासो में शस्त्राघातों से पूर्णतया जर्जरित काय किन्तु फिर भी रणोन्माद में झूमते वीरों की पन्नग मन्त्र के प्रभाव से झूमते व्यक्तियों से उपमित करके[1] कदाचित् थाली बजाने की प्रथा का प्रचलन दिखाया गया है। रासो में विष उतारने के मन्त्र को पन्नगमन्त्र के साथ-साथ गारुड मन्त्र भी कहा गया है।[2]

उपर्युक्त श्रेणी में ही मन्त्रों के बल से किसी को बुद्धिभ्रष्ट कर देने[3], आकर्षण और मोहन मन्त्रों के प्रभाव से अभीष्ट व्यक्ति को अपने अधीन कर लेने[4] तथा पुरुष को नपुंसक बना देने[5] और ढोलक आदि वाद्य यन्त्रों एवं गाने वालों का स्वर बाँधकर उनकी ध्वनि को क्षीण कर देने[6] सम्बन्धी धारणाएँ रखी जा सकती हैं। मन्त्रों की सिद्धि के लिए पृथ्वीराज रासो में चन्द्र ग्रहणकाल को अधिक उपयुक्त अवसर प्रदर्शित किया है।[7]

वीरकाव्य में वर्णित इन मन्त्र कवचों, गुटकों, ताबीजों, दिव्यास्त्रों और जादू के घोड़े आदि के विषय में हमारा मत है कि ताबीजों का प्रयोग तो आजकल भी अनिष्ट निवारण के लिए किया जाता है। दुर्गा भागवत और गीता के गुटके पहनने का कवि पद्माकर ने जो उल्लेख किया है वह अलवर के अजायबघर में रखे हुए, इन ग्रन्थों के गुटकों से अनुमोदित हो जाता है। दिव्यास्त्रों के प्रयोग के सम्बन्ध में प्रयोगकर्ताओं को महाभारत के योद्धाओं के अवतार बताते हुए उनमें कलयुग में भी त्रिपुरा देवी, भगवान शिव और गोरखनाथ की कृपा से उनके प्रयोग की क्षमता दिखाई गई है। आजकल के वैज्ञानिक ज्ञान के आलोक में लोग रामायण और महाभारत आदि ग्रन्थों में उल्लिखित इन दिव्यास्त्रों को कवियों की कपोल कल्पित सृष्टि समझते हैं। किन्तु जिस प्रकार रामायण और महाभारतकाल में इनका प्रचुर

---

१ से ४—दे० पृ० रा० का ११४३।६४ वही १२७२।१०८ वही ४८२।२ ७
१३ वही ४५४।३८

५ मगाय अग्गिनि तत्र किया होम। धर स्थान भोम प्रति वास धाम।
उच्चारयो मन्त्र आराधि इष्ट। तत्काल भयो काम तं नष्ट। वही ८८

६ 'जो स्वर बाँधे मग्गि ढोलक को, बाँधे नाद मनीरन बयार।
कंठ गवैया को जो बाँधे, ताको राय कालिका माय।' आ० ६।२।२

७ 'मन्त्र सिद्ध इह काज, साहि अद्धन एकतह।
जह ■ जीव नर होय अपु त्रिभय सेक्नह।
ससि और राह छाया भई खलक स्नान नरिगयकरण।'
—'पृ० रा०', मो० ३।२७

प्रयोग मिलता है, उसी प्रकार हमारे आलोच्यकाल में भी इनके परंपरित प्रयोग को स्वीकार किया जा सकता है। भले ही वे बीच चाहे वस्तुतः शत्रुओं को रोग रोग में असमर्थ रहते हों किन्तु उनकी मनोवैज्ञानिक उपयोगिता में सन्देह नहीं किया जा सकता।

(ग ८)—भूत प्रेतादि

इनका निवास निर्जन स्थानों में माना जाता था। भूषण ने महाराज शिवाजी के शत्रुओं के भयग्रस्त होकर भाग जाने से उनके जनाकीर्ण स्थानों का उनके भय से सूना हो वास स्थान बनना चित्रित किया है।[1] बरगद आदि के पेड़ों तथा कुछ महलों में भी भूत प्रेत और चुड़ैलों का निवास स्वीकार किया जाता था। आल्हखण्ड में बरगद के नीचे गड़े कोल्हू[2] और जम्बे नरेश के महल में भूत और चुड़ैल का वास दिखाया गया है।[3] विश्वास किया जाता था कि भूतों की मार से भूत ग्रस्त व्यक्ति दुबला और पीला पड़ जाता है। ऊदन स्वयं को भूत ग्रस्त प्रदर्शित करने के लिए शरीर पर हल्दी मलकर पीला पड़ने का ढोंग रचकर इस तथ्य का अभिद्योतन करता है।[4] भूत और चुड़ैलों के दुष्प्रभाव को दूर करने के लिए आल्हखण्ड में सौने बुलाए जाते हैं।[5] इस समय भी लोक में उस प्रकार के व्यक्तियों को सयाना कहा जाता है जो विविध प्रकार के झाड़ फूँक करते रहते हैं।

भूत ग्रस्त व्यक्तियों विषयक उल्लेख मात्र आल्हखण्ड में ही मिलते हैं। वीरकाव्य धारा के अन्य ग्रन्थों में भूत प्रेत, सखिनी, डाकिनी, योगिनी, पिशाच, बैताल, खवीस, भैरव और काली को रुद्र के दल के रूप में चित्रित किया गया है जो युद्धावसरों पर मदोन्मत्त होकर मुण्डमालाएँ धारण करके नृत्य करते हुए रक्त पान करते हैं।

वरुण-दूत—इनका कार्य रात्रिकाल में वरुणदेव का स्मरण किये बिना तालाब, बावड़ी और नदियों में स्नान करने वाले पुरुषों को दण्डित करना होता था। इस व्यक्तियों के धर्म का क्षय होने तथा उनके कार्यों में व्याघात पड़ने की धारणा भी प्रचलित थी।[6] पृथ्वीराज रासो में महाराज सोमेश्वर और उनके सामन्त चन्द्र ग्रहण के अवसर पर दो प्रहर रात्रि व्यतीत होने के समय कालिन्दी में स्नान के निमित्त प्रवेश करते हैं जिनसे रुष्ट होकर जल दूत उन पर आक्रमण कर देते हैं। कवि चन्द ने उन्हें—उत्तुंग काय, वज्रतुल्य दृढ़ करों वाले, यमतुल्य शक्तिशाली, भीमकाय, रक्तवर्णी नयन और नखों वाले तथा ऊँचे उठे हुए दाँतों और केशों वाले समझने की धारणा व्यक्त की है। उनकी डरावनी किलकार घोंकनी के समान ज्वाल गिरते नयनों से इन जलदूतों की आकृति इतनी भयप्रद थी कि चन्द के शब्दों

---

१ म० ६—८० शि० भू० छं० २४३ आ० ५०।११ आ० , २५२।१७
वही २५२।६ १० २५२।१० पृ० रा० का० ११२८।५२ ५३

म उनसे साक्षात भय भी भयभीत रहता था।[1] वे विविध मायावी कृत्यों की क्षमता-युक्त होते थे। महाराज सोमेश्वर के सामने पर वे कभी कृत्रिम अग्नि वर्षा करते थे जबकि कभी चारों ओर धुंध फैला देते थे। इसी भाँति कभी वे कृत्रिम जल वर्षा करने लगते थे जबकि दूसरे ही क्षण पत्थरों की बौछारें गिरने लगती थी।[2] अपनी शक्ति के विषय में वरुण दूत कहते हैं कि हम दीर्घकार पर्वतों को कनिष्ठका पर उठा सकते हैं, माना समुद्रों के जल को हाथों मे निकाल कर पृथ्वी पर प्रवाहित कर सकते हैं, तथा विश्व के अन्य भी अस्पष्ट और अभूतपूर्व कृत्यों के करने की क्षमता रखते हैं।[3]

यह विश्वास प्रचलित था कि इन वरुण-दूतों का उन लोगों पर कम प्रभाव पड़ता है, जिनके इष्ट देव उनकी सहायता करते हैं तथा जिनके गुरु अथवा माता-पिता के धार्मिक कृत्यों का पुण्य उनकी रक्षा करता है। ऐसा ही अभिमत व्यक्त करते हुए महाराज सोमेश्वर के वीरों पर जल-दूतों का कम प्रभाव दिखाया है।[4] यह ध्यान में है कि महाराज सोमेश्वर और उनके सामन्त वरुण दूतों का दीर्घकाल तक सामना नहीं कर पाते और मूर्च्छित हो जाते हैं।[5] प्रातःकाल होने पर वरुण दूत अन्तर्धान हो जाते हैं और वहाँ आए महाराज पृथ्वीराज का शत्रुओं के दृष्टिगोचर न होते हुए भी स्व पिता और उनके सामन्तों को मूर्च्छित देखकर बड़ा विस्मय होता है।[6] वस्तुस्थिति ज्ञात होने पर वे यमुना की स्तुति करते हैं जिससे वरुण दूतों का दुष्प्रभाव नष्ट होकर वे सब सचेत हो जाते हैं।[7]

वीर

बावन वीर—पृथ्वीराज रासा के 'अनेटक वीर वरदान' नामक समय में कवि चन्द स्व साथियों से बिछुड़कर एक सिद्ध के समीप जा पहुँचता है, जो उसकी सेवा में प्रसन्न होकर एक ऐसा इष्ट मंत्र प्रदान करता है जिसकी सहायता से बावन वीरों को वश में किया जा सकता था।[8] मध्यकालीन जन जीवन में उनके विषय में क्या धारणाएं प्रचलित थीं, इस तथ्य की इस प्रसंग में सुन्दर अभिव्यंजना हुई है।

इन वीरों के नायक भैरव स्वीकार किये जाते थे। चन्द ने भैरव को उन वीरों का आदेश देते प्रदर्शित किया है।[9] कवि चन्द को आपदकाल में साथ देने का वचन भी भैरव ही देते हैं।[10] उनके लिए महापुरुष[11] और देव[12] संज्ञाएँ प्रयुक्त की जाती थीं तथा उन्हें असुरों के शत्रु और देवों के सहायक माना जाता था।[13] उनको सिद्ध करने के लिए हठयोग आदिक साधनाओं तथा श्मशान भूमि में रात्रि वास आदि अभिचारात्मक क्रियाओं का आश्रय लिया जाता था।[14] इन वीरों को अलौकिक

---

१ म १४—दे० पृ० रा० मा० ।२४।४३ स ३।३२।६०, वही, ३।१०८।१८ से ३।११४।३७

क्षमताओं से युक्त माना जाता था तथा विश्वास किया जाता था कि उन्हें वश में रखने वाला व्यक्ति उनसे अपने अनिष्टों का निराकरण कराकर, अभीष्ट सफलता को प्राप्त कर सकता है।[1] देव और दानव वीरों से शक्ति तथा किन्नर, यक्ष और गन्धर्व उनके भय से कांपते समझे जाते थे।[2]

इन वीरों की रूपाकृति भयानक और सौम्य दोनों प्रकार की मानी जाती थी। उनमें से कुछ सतोगुण प्रधान होते थे, जबकि अन्य रजोगुण अथवा तमोगुण प्रधान। वे अपने हाथों में ऋतु के प्रतिकूल पुष्प और फल तथा नाना प्रकार की दिव्य वस्तुएं लिए रहते थे। उनके शरीर मदमत्त हाथी, सिंह तथा विषधर, जैसे भयानक भी होते थे, जिनमें से अग्नि स्फुलिंग तथा रुधिर मांसादि की वर्षा होती थी तथा वे तपस्वी और नरेशों को नाति सौम्याकार भी होते थे।[3]

इन वीरों को बिना किसी पुष्ट कारण के स्मरण करना अनिष्टकर समझा जाता था।[4] महाराज पृथ्वीराज के सामंत कवि चन्द की वीरों की सिद्धि विषयक वार्ता को 'भट्ट भणत' कहकर उपहास करते हैं जिनकी प्रतीति के लिए चन्द उनका पुनः आराधना करता है। महाराज पृथ्वीराज और उनके सामन्तों की उपस्थिति में बावन-वीर पुनः प्रकट होते जाते हैं। उन्हें बुलाने का कवि चन्द अथवा महाराज पृथ्वीराज के पास कोई पुष्ट कारण तो था नहीं अतः सभी उनके कोप के भय से चिन्ताग्रस्त हो जाते हैं।[5] चन्द के परामर्श पर महाराज पृथ्वीराज उन्हें बावन बकरों की बलि एवं बावन घट वारुणी प्रदान करके तथा सिंदूर और तेल से उनकी अर्चना करके तुष्ट करने की युक्ति निकाल लेते हैं।[6] अन्ततः वे चन्द को यह आश्वासन देकर कि जब कभी संकटकाल में तुम हमें याद करोगे तभी हम तुम्हारी सहायता के लिए उपस्थित हो जायेंगे अन्तर्धान हो जाते हैं।[7]

भूत प्रेत बलदूत और वीरों की सत्ता स्वीकार करने विषयक धारणाओं का समापन करने से पूर्व यह उल्लेख करना आवश्यक है कि हम्मीर रासो में शाह अलाउद्दीन स्वयं को मक्के का पीर तथा अपने वश में चार वीर और चौरासी पीरों को बताते हुए कहते हैं कि इनके बल पर मैं हिन्दू और तुर्क सभी से इच्छानुरूप कार्य करा सकता हूँ।[8] जनश्रुत, बावन वीर और भूत प्रेतादि में विश्वास के सम्बन्ध में चित्रित घटनाएं पूर्णतः सत्याधृत नहीं प्रतीत होतीं। वीर काव्य प्रणेताओं में कदाचित् महाभारत आदि ग्रन्थों में वर्णित तद्वत् प्रसंगों और लोक प्रचलित कथाओं का आश्रय लेते हुए उनका ऐसा वर्णन किया है मानो वे वस्तुतः घटित हुई थीं। फिर भी मध्यकालीन युग आस्था और विश्वासों का युग था तथा उस समय इस प्रकार का

---

१ से ८—द० प० रा० मो० १।११५।२६, वही १।१११।२७ वही १।११२। २६-३४ 'प० रा० का० ३२३।१५३ वही, ३२३।१५०, वही, ३२६।६८ ६६, वही ३२७।१७३, ह० रा०', छ० ४०८

धारणाओं में आजकल से अधिक विश्वास किया जाता था, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता। वैज्ञानिक ज्ञान के शिखर पर पहुंचे, इंगलैण्ड के शेक्सपियर आदि मध्य युगीन कवियों ने भी ऐसी धारणाओं में विश्वास प्रकट किया है। यह तथ्य रहस्यमय ही है कि यदि जन्त्र मन्त्र और भूत प्रेतादि सम्बन्धी धारणाएँ अन्धविश्वास मात्र हैं तो इनका सार्वदेशिक प्रचार कम हो गया है।

निष्कर्ष—वैदिक मतावलम्बियों में शिव, शक्ति और विष्णु के प्रति समान श्रद्धा भावना थी। वे प्रायः तीनों के ही विविध रूपों की बिना किसी भेद भाव के अर्चना-वन्दना करते थे। भगवान बुद्ध को विष्णु का अवतार मान लेने से बौद्ध और वैदिक मत के अनुयायियों के बीच की दूरी समाप्त होती जा रही थी। इसके विपरीत हमारे आलोच्यकाल के आरम्भ में वैदिक और जैन मत के अनुयायियों के पारस्परिक सम्बन्धों में सौहार्द्य नहीं था। जैन मत के अनुयायी वैदिक मतावलम्बियों के पूज्य स्थलों में आग लगा देते थे और उनके वेद पठन, यज्ञ करने तथा पवित्र नदियों में स्नान करने आदि की साधना-पद्धतियों की निन्दा करते थे। जैनी सिद्ध अपनी तान्त्रिक सिद्धियों के माध्यम से भी वैदिक मतावलम्बियों के धर्म स्तम्भ ब्राह्मणों के कथनों को असत्य सिद्ध करके, स्व मत को श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास करते थे। वैदिक मतावलम्बी भी जैनों की साधना पद्धति और धार्मिक ग्रंथों की निन्दा करने में पीछे नहीं थे। वे उन्हें पाखण्डी अभद्र वेशी, मुंह तक न धोने वाले कुत्सित नुचितों के पथ के अनुयायी तथा सुधर्म के स्थान पर भ्रमजाल में ग्रस्त बताकर उपहास करते थे। उनके धर्म ग्रंथों की यह कहकर निन्दा की जाती थी कि उनसे बुद्धि और पौरुष क्षीण होते हैं तथा अज्ञान बढ़ता जाता है। कालान्तर में यह विरोध उपशमित अवश्य हो गया था और एक ही नगर में वे अपने आराध्य देवों की अर्चना करते हुए शान्तिपूर्वक सह निवास करने लगे थे।

हिन्दू और मुस्लिम धर्मावलम्बियों में एक दूसरे के धर्म के प्रति असहिष्णु एवं सहिष्णु दोनों प्रकार की धारणाएँ थीं। उनके पारस्परिक सम्बन्धों को विघटित करने में राजनीतिक स्वार्थों की प्रधानता रहती थी, जिसमें उन्हें विविध प्रकार के काल्पनिक दृष्टान्त सुनाकर उनकी अपने धर्म के प्रचार के लिए शहीद होने की भावनाएं उद्बुद्ध की जाती थीं। शंख की ध्वनि अथवा बांग का शब्द सुनने से दोजख अथवा नरक-गमन का भय दिखाकर उन्हें एक दूसरे के मन्दिर और मसजिदें गिराने का प्रोत्साहन दिया जाता था। पारस्परिक मनोमालिन्य का यह ज्वार औरंगजेबकाल में सर्वाधिक तीव्र था। शाह औरंगजेब ने मन्दिरों के देशव्यापी भूमिसात्करण का फरमान निकाल कर असंख्य मन्दिर गिरवा दिये थे, हिन्दुओं पर महँगे तीर्थ कर और जजिया लगाकर उन्हें परोक्ष रूप से हिन्दू धर्म छोड़ने के लिए विवश किया था तथा बहुत से हिन्दू बलात् मुस्लिम बना लिये थे। इसकी प्रतिक्रिया में कुछ हिन्दू नरेशों ने भी मसजिद नष्ट करने तथा काजी और कुरान को भ्रष्ट करने का बीड़ा उठा रखा था।

हि दू और मुस्लिम धर्मावलम्बियो के दूसरे वग का अयाय के प्रति दृष्टि कोण बड़ा ही सहिष्णु था। उनकी दृष्टि म ईश्वर या अल्लाह एक ही था और उसकी दृष्टि म हिदू और मुसलमान समान थे। जब स्वय करतार न ही हिदू और मुसलमानो की रचना करत समय उनके मास और रक्त म किसी भी प्रकार विभेद न रखा था तो मात्र साधना पद्धति भिन होने स ही उनका एक दूसरे से लडना भिडना इस वग को दृष्टि म अतीव गर्हित था। इस वग की यह भी धारणा थी कि जब दोना ही धर्मों का चरमाभिप्रेत समान है, तब व्यथ ही एक दूसरे के धम को अधम या सदगति न प्रदान करन वाला कहकर निंदा क्यो की जाती है? परिणामत हि दू और मुस्लिम एक दूसर क धार्मिक तत्त्वा का समादर करने लगे थे और एक दूसरे के देवी देवता या पीर पगम्बरा म भी उनकी श्रद्धा बढ़ने लगी थी। यह सहिष्णु दृष्टिकोण सम्राट अकबर और जहाँगीर के शासनकाल म पराकाष्ठा का पहुचा हुआ था जो मदिरो का नष्ट करान अथवा सत गो विप्रादि को कष्ट देन की तो कौन कहे, उनक सरक्षक थ। तात्पय यह कि हिन्दू और मुस्लिम धर्मावलम्बियो का अयाय के प्रति दृष्टिकोण अधिकाशत सहिष्णु ही था उसे राजनीतिक स्वार्थों स यदा कदा विषाक्त करन क प्रयास अवश्य किय जाते थे।

हिन्दुओ के पूज्य देवी देवताओ म शिव और शक्ति मूध य स्थान पर समासीन थ। शिव पूजन स मनोवाछित वर प्राप्त करन की धारणा इतनी बलवती थी कि अभीष्ट वर वधुओ की प्राप्ति युद्ध मे विजय लिंग का परिवतन कराना आदि सभी प्रकार क मनारथो की सिद्धि शिव पूजन स सम्भव मानी जाती थी। वर प्राप्त करने की दृष्टि स शक्ति का भी एसा ही माहात्म्य समझा जाता था। विश्वास किया जाता था कि विश्व कल्याण की कामना स शक्ति ही सरस्वती पावती चडी चामुडा और दुर्गा आदि क रूप धारण करके अशिव-तत्त्वा का विनाश करती है। उसकी परिव्याप्ति गगा गोदावरी आदि नदियो तक मानत हुए सूय चद्र आदि विश्व के नियामक तत्त्वा का परिचालन शक्ति द्वारा ही किय जान की धारणा प्रचलित थी। शिव क पूजन म बेल पत्र पुष्पा का प्राधान्य रहता था जबकि शक्ति की पूजा म बलि प्रदान करना आवश्यक समझा जाता था।

पूजा की व्यापकता की दृष्टि स श्रीकृष्ण का तीसरा स्थान प्राप्त था जिनकी अनुनज मूर्ति की पूजा की जाती थी। उनका स्मरण प्राय भू भार उतारन तथा असुर सहारक क रूप म किया जाता था। शिव की भाँति व भी कई क्षत्रिय नरेशा क इष्ट दव थ और उनका विश्वास रहता था कि युद्धस्थल म आपत्ति आन पर श्रीकृष्ण अवश्य सहायता करेंग। किंचित एस भी प्रसग हैं जिनम श्रीकृष्ण की बाल मूर्ति की पूजा दिखाई गई है। श्रीकृष्ण क मदिरा म नृत्य-गान की भी योजना होना एक एसी विशेषता थी जो मात्र श्रीकृष्ण क मदिरा तक ही परिसीमित दिखाई गई है।

भगवान राम की पूजा का प्रचलन श्रीकृष्ण की पूजा स भी कम था। उनकी

प्रतिमा के साथ साथ सीता और लक्ष्मण की प्रतिमाएँ भी प्रतिष्ठापित रहती थी, और तीनो ही प्रतिमाओं की अर्चना करने की प्रथा थी। हनुमान की भी पूजोपासना की जाती थी किन्तु इसका भी व्यापक प्रचलन नही था।

अभीष्ट मनोरथो की सिद्धि तथा परलोक सुधारने की दृष्टि से जिन अन्य धार्मिक साधनो का आश्रय लिया जाता था उनमे गगा यमुना और गोदावरी आदि नदियो मे स्नान करने का बड़ा माहात्म्य समझा जाता था। उनमे स्नान करने से ही नही अपितु उनका नाम स्मरण करने अथवा दर्शन कर लेने मात्र से ही पाप विनष्ट होकर मोक्ष प्राप्त हो जाने की धारणा प्रचलित थी। लोक मे व्यापकता की दृष्टि से दूसरा स्थान दान देने का था जिसके द्वारा 'मोक्ष-प्राप्ति' का द्वार सहज ही अनावृत हो जाने मे विश्वास किया जाता था। षोडश प्रकार के महादानो की तो अपरिसीम महत्ता समझी जाती थी। सार्वजनिक कल्याण के लिए बाग लगवाने अथवा कूप-तडाग और वापियो का निर्माण कराने से भी स्वर्ग के विहारो का उपभोग प्राप्त होने की धारणा प्रचलित थी। परलोक सुधारने के अन्य माध्यम तपस्या पवित्र ग्रन्थो का श्रवण और यज्ञ करना स्वीकार किए जाते थे। तप के प्रताप से अलौकिक सिद्धियां प्राप्त होने का विश्वास किया जाता था, जबकि धार्मिक ग्रन्थो के पठन और श्रवण की महत्ता देवी देवताओ के पूजन तथा पवित्र नदियो मे स्नान के समकक्ष पतित पावनी और उद्धारक समझी जाती थी। कलिकाल मे महद्यत्न करके परलोक सुधारना दुष्कर समझने की धारणा व्याप्त थी और यज्ञो के स्थान पर प्राय षोडश प्रकार के महादान प्रदान करने का ही आश्रय लिया जाता था।

पौराणिक आख्यानो से प्रभावित एव लोक धारणा से परम्परा से प्रचलित अनेक प्रकार के विश्वास और लोक मान्यताओ मे भी आलोच्यकालीन जन समुदाय की दृढ आस्था थी। उनका विश्वास था कि सृष्टि की उत्पत्ति का मूल स्रोत अक्षर अथवा आदि ब्रह्म है जिसने अपनी महत्तत्व माया या ईश्वर नामक शक्ति से पच तत्वो का आविर्भाव कराया है तथा अपनी नाभि से उत्पन्न ब्रह्मा को जड जगम सृष्टि की रचना करने की प्रेरणा देकर सृष्टयुत्पत्ति कराई है। समस्त विश्व चक्र उसके नियमन मे रहकर स्व स्वकार्यों मे प्रवृत्त रहता है तथा उसके दृष्टि निक्षेप मात्र से अनेक ब्रह्माण्डो का उद्भव और विनाश हो जाता है। यह धारणा भी व्याप्त थी कि धरा पर अधर्म की अभिवृद्धि होने पर धर्म की पुनर्स्थापना के लिए विष्णु ने समय-समय पर दस या चौबीस अवतार धारण किए हैं और कलियुग मे पातक भार बढ जाने पर उनका कल्कि नामक अवतार पुन धरा से अधर्म को विनष्ट करेगा।

वरदान और शाप से विविध कार्यों मे साफल्य या अनिष्ट की धारणाएँ जन मानस मे इतनी गहरी पैठी हुई थी, कि देवी देवताओ के साथ साथ सिद्ध पुरुष ऋषि तथा सती होने वाली नारियो मे भी वरदान और शाप देने की शक्ति समझी जाती थी। यही नही आर्त प्रजा की आहो मे भी दुराचारी नरेशो को अपने शाप से विनष्ट

र देने की क्षमता का विश्वास किया जाता था। अपने कथन की प्रतीति कराने के लिए हिन्दुओं में ईश्वर का साक्षी करने, ईश्वर, गंगा तथा गऊ आदि की शपथ लेने का प्रचलन था। मुसलमान खुदा और कुरान की कसम खाकर अपने कथन की सत्यता का विश्वास दिलाते थे। किसी कार्य को करने कराने के लिए इन्हीं कसमों को खिलाने के साथ साथ हिन्दुओं का गोमांस भक्षण तथा मुस्लिमों का सुअर-मांस भक्षण करने की आन दी जाती थी। राजनीतिक छल प्रपंचों में इन शपथों का विशेषतः धूर्तता के ही रूप में प्रयोग किया जाता था।

आलोच्यकालीन जन समुदाय की ज्योतिष, स्वप्न फल और शकुन अपशकुन के सम्बन्ध में भी गहन आस्था थी। जीवन के छोटे बड़े सभी प्रकार के कार्यों का आरम्भ शुभ मुहूर्त का शोधन कराकर ही किया जाता था। ज्योतिष में अगाध विश्वास होने के कारण ही ज्योतिषियों की समाज में बड़ी पूछ थी और वे नरेशों तक को मूढमति कहने और उनकी आसन्न पराजय का समाचार देने में संकोच नहीं करते थे। यही दशा स्वप्न फल के सम्बन्ध में थी। स्वप्नों की व्याख्या के लिए भी प्रायः ज्योतिषी ही बुलाये जाते थे जो स्वप्न में देखी हुई प्रतीकात्मक घटनाओं के आधार पर उनका फल सुनाते थे। स्वप्नों में स्वप्न द्रष्टा को अपने भावी सुख दुःखों का पूर्वाभास हो जाने के साथ साथ दूरस्थ प्रदेश में घटित घटनाओं की सूचना मिल जाने का भी विश्वास किया जाता था। यात्रारम्भ करते हुए विविध पशु-पक्षियों, विभिन्न जाति और वेश वाले पुरुषों के सामने से आने, मार्ग को काटने, पक्षियों के सिर के ऊपर से आगे या पीछे की ओर उड़कर जाने आदि तथ्यों के भिन्न भिन्न अर्थ ग्रहण किये जाते थे और वे अभीष्ट कार्य में सिद्धि या व्याघात के प्रतीक माने जाते थे। प्राकृतिक तत्त्वों में अकस्मात् आए हुए परिवर्तन, अदृष्टपूर्व घटनाओं के घटित होने, शरीरांगों के स्फुरण करने तथा छींक आदि तथ्यों से भी विविध अर्थ ग्रहण करते हुए शकुन अथवा अपशकुन के निमित्त समझे जाते थे।

जन्त्र मन्त्र और भूत प्रेतादि सम्बन्धी विश्वासों से भी जन जीवन आक्रान्त था। विश्वास किया जाता था कि रात्रि के समय नदी, वापी, कूप और तड़ागों की सुरक्षा के लिए उन पर वरुण दूत नियुक्त रहते हैं। जो लोग वरुण देव का स्मरण किये बिना जल में प्रवेश करते थे उन्हें इन वरुण दूतों द्वारा अनेक प्रकार की यातनाएँ दी जाती थीं। वरुण दूतों की भाँति बावन वीर भी बहुत प्रसिद्ध थे। वीरों के मन्त्र सिद्ध समझे जाते थे और उनमें अदृष्ट एवं अश्रुतपूर्व कार्य कर दिखाने की क्षमता मानी जाती थी। विश्वास किया जाता था कि मन्त्र बल से वीरों को सिद्ध करके उनसे इच्छित कार्य सम्पन्न कराये जा सकते हैं। इस मन्त्र पर जन्त्र मन्त्र की रचना करके उन्हें अभेद्य बनाने की धारणा प्रचलित थी। मन्त्र लिखे गुटके और ताबीज बाँधने तथा मन्त्रों से कीलित कवच पहन लेने पर विश्वास किया जाता था कि शरीर पर शस्त्रों का आघात लगता ही नहीं और यदि लगता भी तो शस्त्रों की मार तथा

की मार की तरह निष्प्रभ होगी। मन्त्रों के बल से चट्टान को पानी कर देने, सद्य जात शिशु से पट भाषाएँ बुलवा देने घट के छिद्रों में से अग्नि स्फुलिंग और जल की फुहारें निकलवा देने सूर्य को कील देने मानव की बुद्धि भ्रष्ट कर देने तथा उसे ताना या मटा बना देने आदि का भी विश्वास किया जाता था।

इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक वैज्ञानिक युग की अपेक्षा मध्यकालीन युग विश्वासों और आस्थाओं का युग था। विज्ञान के प्रसार से पूर्व भारत में अन्ध विश्वासों का जो कुहरा मानव ज्ञान के ऊपर छाया हुआ था उसका वीर काव्य में विशद और स्पष्ट चित्रण मिलता है। भले ही इनमें सत्य का अंश बहुत कम हो किन्तु इनसे उस काल विशेष के जन समुदाय की मनोवृत्ति के समझने में निर्विवाद रूप से सहायता मिलती है। भारतीय ग्रामों में इस समय भी इन विश्वासों और मान्यताओं के अवशेष किसी न किसी रूप में देखे जा सकते हैं।

पंचम अध्याय

आर्थिक स्थिति

आलोच्यकाल में सामाजिक प्रतिष्ठा का मानदण्ड यद्यपि जातिगत श्रेष्ठता मानी जाती थी तथापि वित्त का भी महत्त्व पर्याप्त था। केशवदास जी ने तत्कालीन उस लोक प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला है जिसमें मूर्ख होने पर भी धनवान पुरुषों को लोग पण्डितों की सभा देने लगते थे धनहीन उच्च श्रेणी के व्यक्ति भी निम्न श्रेणी में परिगणित किए जाने लगते थे।[1]

कवि चंद,[2] विद्यापति,[3] केशव,[4] मान[5] और जोधराज[6] ने विविध राज्यों के प्रजाजनों की आर्थिक अवस्था की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि लोग धन धान्य से पूर्ण हैं तथा सुख समृद्धि के उपभोक्ता हैं। इससे स्पष्ट होता है कि आर्थिक दृष्टि से विवेच्ययुगीन सामाजिकों की दशा पर्याप्त समृद्ध थी। केशवदास जी ने वित्तार्जन के प्रमुख साधनों का भी उल्लेख किया है जिनसे ज्ञात होता है कि कृषि, लेन देन, व्यापार और मणि मुक्तादि की खानों के ठेके लेना वित्तार्जन के प्रमुख साधन समझे जाते थे,[7] जबकि विविध कलाओं, सेवावृत्ति और भिक्षाटन आदि से भी उदर पूर्ति के माध्यम जुटाने का प्रयास किया जाता था।[8] कहना न होगा कि इन माध्यमों की उपलब्धियों पर दृष्टिपात करने से ही किसी समाज की आर्थिक दृष्टि से सम्पन्नता या विपन्नता पर प्रकाश पड़ता है। राजकीय अर्थ व्यवस्था का भी समाज की आर्थिक अवस्था के स्वरूप निर्माण में प्रमुख योगदान होता है अतः राजकीय आय के प्रमुख स्रोतों पर भी हमने इसी अध्याय में प्रकाश डालना उचित समझा है।

---

1 मार्ई पण्डित माई साधु। जाके घर में वित्त अगाध।
ऊंच नीच मन जानें होइ। ऊंच नीच बखानत लोइ।
— वी० च०' १।६१ ४२

2 न ८—८० प० रा० का० ५६।१२४ वा ०प० ९८ वी० च० १६।२१
रा० वि० २।८७ ह० रा०', १० 'वी० च० १।४८ वही, ११।८

(क) कृषि

कृषि उत्पादन का मूलाधार समय पर वर्षा हो जाना होता था, जिसके अभाव में प्राय दुर्भिक्ष पड जाते थे।[1] वर्षा के अतिरिक्त सिंचाई के साधनों में पृथ्वीराज रासो में रहँट और पुर या पैर चलाने[2] का तथा परमाल रासो में रहट चरसा और ढेंकली के प्रयोग सम्बन्धी[3] निर्देश मिलते हैं। वीरकाव्य प्रणेताओं में से कवि मान ने उदयपुर के समीपस्थ प्रदेश की मुख्य उपजें धान, गेहूँ, चना, जौ और ज्वार दिखाई हैं[4] जबकि सूदन ने उक्त फसलों के साथ मटर और मक्की का भी उल्लेख किया है।[5] कवि जाचराज ने रणथम्भौर दुर्ग में दस लाख करोड मन अनाज का भण्डार सुरक्षित दिखाया है,[6] जिससे अनाज की बहुत पैदावार का अनुमान किया जा सकता है।

दालें—दालों में कवि मान ने मोठ, मसूर माष (उडद) और मुदग (मूंग) की दालों की उपज दिखाई[7] है, जबकि सूदन ने उडद, मूंग, मोठ तुवर (अरहर) चौरा (लोबिया) और कुलथी (उन्द के आकार का एक अन्न जिसे बहुधा पशुओं को खिलाते हैं, किन्तु गरीब लोग इसकी दाल भी बनाकर खाते हैं) की दालों का उत्पादन दिखाया है।[8]

तिलहन—तिलहनों में कवि मान ने सर्षप या सरसों की उपज पर प्रकाश डाला है।[9] सूदन ने सरसों के साथ माष तिलों का भी नामोल्लेख किया है।[10] जाचराज ने रणथम्भौर दुर्ग में तेल का अपार भण्डार सुरक्षित दिखाकर तिलहनों की अच्छी उपज होने का अभिद्योतन किया है।[11]

ईख—कवि मान ने सलडी या ईख की पैदावार दिखाते हुए[12] उसके पेलन का भी उल्लेख किया है।[13] कवि चन्द ने शक्कर और खांड[14] का तथा सूदन ने गुड का उल्लेख करके[15] ईख के रस से गुड, शक्कर और खांड बनाने के उद्योग पर प्रकाश डाला है। ईख की खेती भारत में प्राचीन काल से ही प्रचलित रही है। डा० वासुदेव-शरण अग्रवाल ने प्राचीनकाल में ईख की फसल उगाने के साथ साथ उसके वन होने का भी उल्लेख किया है।[16]

(ख) व्यापार

व्यापार के केन्द्र मुख्यत नगर होते हैं। वीरकाव्य प्रणेताओं में से कवि

---

१ स १६—८० रा० वि०, ८।११४ 'पृ० रा०' का० १६६४।५८३, प०रा०, १६।१०२ 'रा० वि०' ११६७, सु० च० ६।२।४७ ह० रा०, ३४२ रा० वि० ११६८ सु० च०', ६।२।४६ 'रा० वि०, ११६७, सु० च०, ६।२।४६ ह० रा०, ३४८ 'रा० वि०', ११६७ वही, १८।२०, 'पृ० रा०' का० १९४६।१६, 'सु० च०', ६।२।४६ 'पाणिनिकालीन भारत', पृ० २०८

चन्द ने कन्नौज और दिल्ली, विद्यापति ने जौनपुर, गणपति ने माण्डू तथा रतिभान ने उदयपुर के भवनों, गलियों, बाजारों तथा उनमें बिकने वाली वस्तुओं के चित्र दिए हैं। पृथ्वीराज रासो में यह धारणा व्यक्त की गई है कि सतयुग में काशी, त्रेतायुग में अयोध्या नगरी सबसे अधिक प्रसिद्ध थी, द्वापर में हस्तिनापुर का सर्वाधिक महत्त्व स्वीकार किया जाता था, जबकि कलियुग में भारत का सर्वोत्कृष्ट नगर कन्नौज है।[1] कवि चन्द ने कन्नौज का चित्र भी अति भव्य प्रस्तुत किया है। उसके अनुसार कन्नौज के अधिकांश आवास सतखण्डे थे जिन पर ध्वजाएं फहराती थीं।[2] नगर के चतुर्दिक अनेक प्रकार के फल फूलों के बाग बगीचे लगे हुए थे। उसके दक्षिणी भाग की ओर से प्रवेश करने पर आरम्भ में द्यूत गृह बने हुए थे,[3] जिनके समीप ही नगर नायिकाओं के आवास थे।[4] यहाँ की हाटों में इतनी भीड़ रहती थी, कि निकलना कठिन हो जाता था। इसके आगे तम्बोलियों की दुकानें थीं, जिनसे आगे मालिनें अनेक प्रकार के पुष्प गजरे बनाकर बेचा करती थीं। वहां पर कथाकार लोगों को कथाएं सुनाया करते[5] थे। आगे बढ़ने पर बजाजों की दुकानें मिलती थीं जिन पर ऐसे महान रेशमी वस्त्रों का विक्रय होता था कि उनके तारों को छूने पर ही मैले हो जाते थे।[6] इसी क्रम से उससे आगे जड़ियों की दुकानें थीं, वहां स्वर्णकार स्वर्ण के तार खींचते थे[7] और वहां पर मणि मुक्ता और हीरा प्रवालादि का क्रय विक्रय करने वालों की दुकानें थीं।[8]

कवि चन्द ने दिल्ली में महाराज पृथ्वीराज के महल को सात मंजिला दिखाया है[9] जबकि नगर सेठों के आवासों को उन्नत धवल ध्वजाओं वाले तथा उच्च भौमों की संख्या देकर उनके स्वर्ण रंग तथा कई मंजिलों के होने पर प्रकाश डाला है।[10] दिल्ली भी चारों ओर से बागों से घिरी हुई थी। दिल्ली की हाटों में भी बड़ा भीड़ाधिक्य रहता था और मुख्यतः मणि लाल और रत्नों का क्रय विक्रय चलता था।[11] कवि चन्द ने दिल्ली के बहुत से नगर सेठों की बाजार में लाख कोटि तक की पूंजी लगी प्रदर्शित की है।

विद्यापति के अनुसार जौनपुर नगर देखने में बड़ा सुन्दर प्रतीत होता था, और सम्पत्ति का निचय था। उसके मकान और फर्श पत्थरों के बने हुए थे तथा

---

१ से ५—दे०, पृ० रा० का०, १२३५।५२ वही, १६३०।३५४ वही, १५४०।४२४ वही १६४०।४३२ वही १६४१।४३५।४३८

६ 'विवेक बजाज सु बेचहि सारी छुअत मवासर सूझहि तार।'
—पृ० रा०' का० १६४१।४३८

७ से ११—दे० पृ०रा० का १६४१।४४१ वही १६४२।४४४ वही, १५५५।२६, वही, २१२६।१६१ वही, १५५६।३०, वही, २१२६।१५६

नगर के पानी को बाहर निकालने के लिए ढँके हुए मार्ग (नालियाँ) बने हुए थे। उसमें इतस्ततः भाँति भाँति के बाग बगीचे थे।[1] नगर गृहों पर स्वर्ण कलश एवं ध्वजाएं सुशोभित रहती थीं।[2] उसके बाजारों में मुख्यतः कपूर, केसर, गन्ध, चामर और काजल आदि वस्तुएँ बेची जाती थीं, जिनके क्रेताओं में मुसलमानों की अधिकता रहती थी।[3] मध्याह्न के समय तो बाजार में लोगों की ऐसी भीड़-भाड़ हो जाती थी कि, निकलने का मार्ग ही नहीं मिल पाता था, औरतों की चूड़ियाँ टूट जाती थीं और भीड़ में फंसे लोगों वेश्याओं से तथा ब्राह्मण चाण्डालों से छू जाने के लिए विवश हो जाते थे।[4] घोड़े और हाथियों की झपट में आकर बहुत से व्यक्ति तो पिस ही जाते थे। वहाँ बनजारे सामान बेचने आते और क्षण मात्र में अपनी वस्तुएं बेच कर लौट जाते थे।[5] बहुत सी बनियाँ भी वहाँ पसरहट्टा फैलाए रहती थीं, जिनसे लोग अपनी वस्तुएं बेचते और खरीद करते थे।[6]

इस हाट (बाजार) से सटे हुए ही वेश्याओं के अत्यन्त सुन्दर आवास थे।[7] उनके आगे की बाजारों (विद्यापति ने बजारी शब्द ही प्रयुक्त किया है) में लाखों घोड़े और हजारों हाथी थे।[8] कहीं बूज और तबेला का जमाव था और कहीं पर तीर कमान की दुकानें थीं।[9] कहीं मांस के उभयतः सराफे की दुकानें थीं तथा कहीं पर प्याज लहसुन आदि बेचे जा रहे थे।[10] कहीं पर नटिनों और तुरकिनियों के नृत्य हो रहे थे।[11] विद्यापति के अनुसार जौनपुर का प्रत्येक हाट ऐसा कौतुकमय था कि उनके कौतूहलों को देखने के लिए आगन्तुक एक हाट से दूसरे हाट में भ्रमण करने के लिए लालायित रहते थे।[12]

कवि केशव ने बेतवा नदी के तट पर स्थित ओड़छा नगर के भवनों पर आकाशचुम्बी पताकाएँ फहराती दिखाई हैं[13] जिससे उसमें कई मंजिलों के मकानों की स्थिति अभिव्यंजित होती है। उसके चारों ओर कोट प्राचीर बनी हुई थी, जिसमें आठ उत्तुंग दरवाजे थे।[14] आठों दिशाओं के निवासी स्व स्व ओर की दिशाओं के दरवाजों से नगर में प्रवेश करते थे जिससे उन द्वार विशेषों पर प्रत्येक दिशा के मानवों के शील गुण भाषा और वेशभूषा के दर्शन किए जा सकते थे।[15] नगर प्रवेश-द्वारों पर आठ सेनाओं की टुकड़ियाँ प्रत्येक समय पहरा भी लगाती रहती थीं।[16] नगर के बाजारों में धातु, अन्न, रुई, रेशम, चमड़े, फर और सन के बने उपकरण बेचे जाते होंगे, क्योंकि केशव ने उसे इन्हीं वस्तुओं की निधि प्रदर्शित किया है।[17]

कवि मान ने उदयपुर को चारों ओर से पर्वत शृंखलाओं का आकार से

---

१ से १६—द०, प० रा०', का० २१२६।१२६, 'कीर्ति०', प०, २६ २७, वही, प० २८, ३०, ३० ३०, ३२, ३८, ३८, ३८, ४२, ४६, 'वी० च०', १६।३, १६।८, १६।१० १६।१३, १६।१८

१७ धातु धयमम मन धर्माम। रोम चममय पाट विताम।
निधिमय तुनुरर की धरा। चिन्तामनि बनी वन्रा। —वही, १७।३

सुरक्षित बताते हुए सुदरता म इन्द्रपुरी जसा चित्रित किया है। उसके आवासो को प्रबल ऊचे दिखाते हुए, उनम गवाक्ष और जालियाँ दिखाई हैं तथा उन पर स्थापित कलशो को गगनचुम्बी बताकर उनके कई मंजिला के होने का प्रकाशन किया है।[1] उसम अनेक बाजार तथा धान मडी, लोहा मडी, रुई मडी आदि मडियाँ दिखाते हुए,[2] वहा के बाजारो को बडा भीडाकुल चित्रित किया है।[3]

इन नगरो के आस पास छोटे छोटे पुरवे' बसे रहते थे। कवि सूदन ने दिल्ली के समीप कई पुर' बसे होने का उल्लेख किया है।[4] आल्हाखण्ड म महाराज परमाल महोबे से आध कोस की दूरी पर बनाफना के लिए दस पुरवा बसाते चित्रित किय हैं।[5] बला का दिल्ली स गौना कराके लाते समय महोबे के समीप ऊचे ऊँचे महल दिखाई देते है जि हे देखकर वह पूछती है कि—क्या यही महोबा है ?[6] आल्हा उसे बताता है कि यह तो बरहनि (बारिया) का पुरवा है।[7] इसी भाँति आगे एक और पुरवा' दिखाई देता है जिसे आल्हा मालिना का पुरवा बताता है।[8] इसस स्पष्ट होता है कि नगरो के समीप किसी जाति विशेष के छोटे छोटे ग्राम बस रहते थ। ऐतिहासिक साक्ष्यो से भी दिल्ली और आगरे के समीप छोटे छोटे कई पुरवे' बसे होने का उल्लेख मिलता है।[9] कुम्हार या बढई आदि कमकर जातियो के भी पथक-पथक ग्राम बसे होने की भी प्रथा मिलती है[1] जसी कि आल्हाखण्ड म बारिया और मालियो के पुरवे दिखाए गए है।

व्यापार मे प्रयुक्त सिक्के

हुन या हून—सोने के इस सिक्के का पथ्वीराज रासो राजविलास और शिवराज भूषण म उल्लेख मिलता है। रासो म शाह 'गोरी की बगम मक्का यात्रा को जाते हुए अपने साथ आठ लाख हूनें ले जाते हुए दिखाई गई हैं[11] जिन्हे महाराज पथ्वीराज के चामुडराय आदि साम त लूट लते हैं। राजविलास म शाह औरगजेब द्वारा प्रतिवष एक लाख हुनें वसूल करने के कृत्य को प्रेत याधि से उपमित किया है।[12] भूषण न हुनो का रग पीला दिखाकर, उनके स्वण निर्मित होने का प्रकाशन किया है।[13]

दीनार—कवि मान ने महाराज राजसिंह के राज्य म मुख्यतया दीनार' नामक स्वण सिक्के का ही प्रचलन दिखाया है। उन्हे कमधज्जो की ओर से दस हजार दीनारें भेंट की जाती हैं।[14] राज सर का निर्माण कराते हुए वे प्रतिदिन सहस्र दीनारें

---

१ स १४—दे० रा० वि० २।६२ स २।६६, २।१४४, वही, २।१४३, 'सु० च० ६।२।३ आ० २८।६ १०, वही, ५७।१४, वही, ५७।१५ वही, ५७।१६ द० मुगल एम्पायर' डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव प० ५१७, भारतीय सस्कृति और उसका इतिहास, प० १८२ प० रा०' का० १३५१।२६ 'शि० भू०, १७५ रा० वि० ६।१९, वही, ६।२०३, वही, ८।१४२

व्यय करते चित्रित किए गये है।[१] उदयपुर की सर्राफो की दूकानो पर भी मान न दीनार और रुपयो की ढेरिया लगी दिखाई हैं[२] जबकि उसने शाह औरंगजेब को भी यह मनस्ताप प्रकट करते चित्रित किया है कि, महाराज राजसिंह द्वारा तीर्थकर का विरोध करके उसे अदकरादन के कारण मुझ प्रतिवर्ष दो सहस्र दीनारों की क्षति उठानी पड रही है।[३] डा० राधाकुमुद मुकर्जी के अनुसार—'स्वर्ण दीनार सर्वप्रथम रोम म २०७ ई० पूर्व बनाए गए थे। रोम देशीय डिनेरियश सिक्के के बराबर तोल की मुद्राए भारत म सर्वप्रथम कुषाण राजाओ ने बनवाई थी। दीनार को साधारणतया स्वर्ण भी कहा जाता था।'[४] पृथ्वीराज रासो[५] और परमाल रासो[६] क मुद्रा सम्ब धी प्रसगो मे 'हेम' शब्द का प्रयोग मिलता है[७] जो कदाचित इस दीनार का पर्याय है। आइन ए अकबरी म दीनार का स्वर्ण सिक्का दिखाते हुए उसका वजन एक मिस्कल अथवा १ ३/७ दहम बताया गया है तथा उसे और भी स्पष्ट करते हुए, दीनार का वजन छियानवे जो के दानो के बराबर बताया गया है।[८] श्री दुर्गाप्रसाद न दीनार की तौल आठ माशे होने का मत व्यक्त किया है।[९]

मोहर—इस स्वर्ण सिक्के का परमाल रासो[१०] हम्मीर हठ[११] और आल्हखण्ड[१२] म उल्लेख मिलता है। आईन ए अकबरी म गोल तथा चौकोर दो प्रकार की मोहरो का उल्लेख किया गया है। आफताबी न मक गोल मोहर का वजन एक तोला दो माशा पौन पाच सुर्ख होता था और उसकी कीमत बारह रुपय होती थी। इलाही नामक गोल मोहर तथा जलाली नामक वर्गाकार मोहर बारह माशे पौन दो सुर्ख वजन की होती थी तथा उनकी कीमत दस रुपये होती थी। य मोहरें ज्यो ज्यो घिसती जाती थी, उनकी कीमत भी घटती जाती थी। बाजार मे गोल मोहर का प्रचलन अधिक था, जिसम चार सौ दाम होत थे। जब वह छ स लकर नौ चावलो के भार के बराबर घिस जाती थी तो उसका मूल्य तीन सौ पचास दाम ही रह जाता था। इसमे और अधिक घिस जाने पर वह सिक्के के स्थान पर स्वर्ण मात्र समझी जाती थी।[१३]

---

१ स ७—दे०, 'रा० वि०', २।१०६, वही, १०।१६ 'हि दू सभ्यता', पृ० १७४, 'प० रा०' का० ५६०।१२५ पर० रा०', २४।८७

८ द० आईन ए अकबरी', भा० १, पृ० ३७

९ "सलवा चित्र महाराज चद्रगुप्त के सोने की मुद्रा है। × × × यह सुवर्णमुद्रा भी दीनार कहलाती थी। गुप्त राजाओ ने कुषाणो को जब परास्त किया तो उनके प्रचलित सोने के दीनार की तौल का अपना सिक्का भी बनाकर चलाया। तभी म मस्कृत म यह आठ माशे का सिक्का दीनार कहलाने लगा।"

—'ना० प्रचा० पत्रिका, स० १९९७ वि० पृ० ६

१० स १३—दे० 'पर० रा०', १८।२६, ह० ह०, ग्वा, ४२ आ०', २३८।१६, आईन ए अकबरी, भा० १, प० ३० ३४

टका—कवि विद्यापति ने लोदी काल में सोने के टका का प्रयोग दिखाया है।[१] जबकि व्रजभाषा सूरकोश में टका चादी का सिक्का बताया गया है।[२] 'एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया' में टका की क्रय क्षमता अंग्रेजी राज्यकाल के रुपये से बारह गुनी बताई गई है।[३]

रुपया—चादी के रुपया का राजविलास[४] सुजानचरित[५] शिवराज भूषण,[६] हम्मीर हठ[७] और आल्हखण्ड[८] में प्रचलन दिखाया गया है। अकबर काल में मोहरों की भांति चाँदी के रुपये भी गोल तथा चौकोर दो प्रकार के होते थे। चौकोर रुपये में जिसे जलाल कहते थे—चालीस दाम होते थे, जबकि गोल रुपया उनतालीस दाम का होता था।[९]

दाम—दाम का पृथ्वीराज रासो,[१०] सुजान चरित[११] और राजविलास[१२] में उल्लेख मिलता है। यह तांबे का सिक्का था तथा अकबरकाल से पूर्व इसके निए पैसा और बुहोली नाम प्रचलित थी। इसकी बाजार में तो क्रय क्षमता घटती बढ़ती रहती थी, किन्तु राजकीय व्यवहार में एक रुपये में चालीस संख्या निश्चित थी।[१३]

कौड़ी—पृथ्वीराज रासो कीर्तिलता और क्यामखाँ रासा में कौड़ियों से भी विनिमय का प्रचलन दिखाया गया है। महाराज वीसलदेव के राज्यकाल में ऐसी व्यवस्था कहती है कि कोई कौड़ी के मूल्य तक हाथी खरीदने को प्रस्तुत नहीं होता।[१४] विद्यापति ने वणिक शिविरों में बहुत सी कौड़ियाँ देने पर थोड़ा सा गेहूँ मिलने का चित्रण किया है।[१५] कवि जान ने भी कौड़ी की क्रय क्षमता दिखाई है।[१६]

यातायात के साधन—भार वहन के लिए पशुओं में से हाथी, ऊंट खच्चर गधा, बैल और महिषा का प्रयोग किया जाता था। कवि चन्द ने शिकार में मारे गये पशु हाथी और ऊंटों पर लादकर लाये जाते दिखाए हैं।[१७] विद्यापति ने सैन्य सामग्री के वहन में खच्चर, गदह बैल और महिषा के प्रयोग[१८] करने का प्रचलन दिखाया है। उन्होंने गाड़ियों का प्रयोग नहीं दिखाया है जिसका कारण कदाचित ऊबड़ खाबड़ और नदियों से युक्त प्रदेश की यात्रा रही है। कवि मान ने राजसमुद्र के निर्माण-स्थाय में

१ पान का लए सोनाक टका पाऊन क मून इन्धन बिका। 'कीर्ति० पृ० ६८
२ व्रजभाषा सूरकोश, भा० ४ पृ० ६७२
३ 'सन १६५१ में प्रकाशित एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया' में टका की क्रय-क्षमता रुपये से बारह गुनी प्रदर्शित की गई है—दे० भा० २ पृ० ३६८
४ से १२—दे० रा० वि०, २।१०६ सु० च० १।३।३६ शि० भू० १८५, ह० ह० ग्रा० ४२ ग्रा० ७८।११, 'पृ० रा' का० २०६१।२१२ 'सू० रत्ना०', पृ० ११०, रा० वि० १४।३
१३ से १८—दे०, आइने ए अकबरी भा० १, पृ० ३२ 'पृ० रा', का० ४८।२६४ कीर्ति० पृ० ६८ 'क्या० रा०', छ० ४६५ 'पृ० रा', का० ३१८।१०५ कीर्ति०, पृ० ६४

सामान ढोने के लिए वृषभ, महिष और करभ (हाथी या ऊँट का बच्चा) प्रयोग करने का चित्रण किया है।[1] बोझा ढोने के लिए गाड़ियाँ या शकट भी प्रयुक्त किए जाते थे, कवि चन्द ने गाडी और मान ने शकट का उल्लेख किया है। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि इन यानों सामग्री के वहन के लिए जिन यानों (गाड़ियों) का प्रयोग किया जाता था, उनमें कवि मान ने अश्व और वृषभों के अतिरिक्त साभर और रोझ (नीलगाय) जोतने का भी प्रचलन दिखाया है।[2] प्रतीत होता है कि इन्हें वनों से पकड़कर इस कार्य के उपयुक्त शिक्षित कर लिया जाता होगा। जोधराज ने भार-वहन के लिए ऊँटों का प्रयोग दिखाया है।[3] कवि चन्द ने बंजारों द्वारा बाखरों में भी बोझा ढोने का प्रचलन दिखाया है।[4]

आयात-निर्यात

वीर-काव्य में उपलब्ध निर्देशों के आधार पर आयात के मुख्य उपादान अश्व और शस्त्रास्त्र सिद्ध होते हैं। विभिन्न नरेशों की सेनाओं में अरबी, तुर्की, तातारी, खिरासानी, कच्छी और सिन्धी आदि जातियों के अश्वों के उल्लेख से अश्वों का आयात परिलक्षित होता है। पृथ्वीराज रासो, क्यामखाँ रासो और आल्हखण्ड में उनके आयात के स्पष्ट कथन भी मिलते हैं। रासो में अजमेर-पति अरब से आये सौदागरों से सवा लाख दामों के मूल्य के अश्व क्रय करते दिखाए गए हैं।[6] उसमें धीर पुण्डीर ईराक से आये सौदागरों से पाँच सौ एराकी अश्व पन्द्रह लाख दामों में खरीदते चित्रित किया गया है।[7] रासोकार ने अन्यत्र भी धीर पुण्डीर को सौदागरों से दास-सदृश अश्व क्रय करते दिखाया है।[8]

क्यामखाँ रासो में शाह बहलोल लोदी ईराक से अश्व मँगवाते चित्रित किये गये हैं।[9] आल्हखण्ड में अश्वों के क्रय हेतु विदेशों में जाने की प्रथा दिखाई गई है। उसमें महाराज परमाल काबुल से अश्व क्रय करने के लिए चौदह खच्चरों पर मोहरें लादकर ऊदल को भेजते हैं।[10] अश्वों के आयात के संदर्भ में यह तथ्य भी उल्लेख्य है कि क्यामखाँ रासो में महाराज पृथ्वीराज काबुल से दूब का भी आयात करते चित्रित किये गये हैं।[11] अश्वों की भाँति तलवारों के क्रय हेतु विदेश में जाने अथवा विदेशी व्यापारियों को उनके विक्रय हेतु भारत आने का तो चित्रण नहीं मिलता, किन्तु वीर-

---

१ से ४—दे० रा० वि०', ८३।१४२, 'रा० वि०', १०।४५, 'हु० रा०', ३७६, 'पृ० रा०' बा० ३१४।१०५

५ 'कार्वारि वणवहार, विविध स्थाननि मुख सुदिटय।' पृ० रा', बा० ३१४।१०५

६ "मुह मंगि दाम करे बोल बोन। निहे पत्र स हैवर हरि माल।
जमा जारि मड सवा लष्प दाम। लिये वागद कायथ अव ताम।"
'पृ० रा०' बा० २०५३।१७५

७ से ११—दे० पृ० रा०', बा० २०६१।२१२ वही, २०६६।४१६, 'क्या० रा०' ११८, 'आ०' २३५।१५ १६, 'क्या० रा०, ६५

का य म विलायती छुरा का प्रयोग दिखाया है।[1] इससे प्रतीत होता है कि इनका भी आयात होना रहा होगा। वीरकाव्य में चेंणी या चीणी' नामक जिस कपड का उल्लेख मिलता है,[2] वह चीन से आयातित रेशमी कपडा होता था।[3] इससे रेशमी वस्त्रों के आयात पर प्रकाश पडता है।

निर्यात के विषय में, वीरकाव्य में अधिक निर्देश नहीं मिलते। कवि मान ने वस्त्रों के समुद्री व्यापार अर्थात निर्यात पर मुसलमान सौदागरों का आधिपत्य अवश्य प्रदर्शित किया है।[4] अनुमानतः निर्यात में ऐसे वस्त्रों की प्रधानता रहती होगी जिनके सम्बन्ध में कवि चन्द ने दिवा प्रकाश में भी तारे न दिखाई देने का उल्लेख किया है।[5] ऐतिहासिक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि शुंग सातवाहन काल में भी इस वस्त्रों की रोम में बड़ी माग थी। वहा के एक लेखक ने उल्लेख किया है कि रोमन स्त्रियाँ हवा की जाली की भांति बारीक बुनी हुई भारतीय मलमल को पहन कर अपना सौन्दर्य प्रदर्शित करती हैं।[6]

वस्तुओं के मूल्य—वीरकाव्यधारा के किसी ग्रन्थ में सामान्य स्थिति में तो वस्तुओं के भावों का उल्लेख नहीं मिलता किन्तु युद्धावसरों पर वस्तुएँ किस सीमा तक महँगी मिलने लगती थी इस विषय में निर्देश मिलते हैं। कवि विद्यापति के अनुसार शाह इब्राहीम लोदी के सैनिकों को पान खरीदने के लिए स्वर्ण टका देना

---

१ (क) जमधर छुरा सु बिलाइती जिनको बिलोकत जम भरै।

— हि० वं० वि० ११६

(ख) 'चल जुनब्बी औ गुजराती छुरा चन बिलायत क्यार। आ०, १६।१२

२ (क) 'तनासुख सूफ पटोर दरयाइ खीरोदक पितांबर चैनी पितांबर लहाइ।

— रा० वि० २।११२

(ख) 'मदुगुल मसघर बिबिम रग। मिस्र दुमास चीनी मु चग। वही, १५।१७

३ (क) डॉ० भरतप्रसाद मजूमदार ने बारहवीं शताब्दी में चीनांशुक का प्रयोग प्रदर्शित करते हुए उसे चीनी रेशम का बताया है, दे० 'द सोश्यो इका-नामिक हिस्ट्री आफ नार्थ इण्डिया' पृ० १६४

(ख) 'एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया' में मुगलकाल के अन्तर्गत चीन से चीनी मिट्टी के बर्तन तथा कच्ची रेशम आयात करने का प्रचलन दिखाया गया है (दे० भा० २ पृ० ५७५)। अत या तो चीन से रेशमी कपडा वहीं आयात किया जाता होगा अथवा चीनी रेशम से भारत में बुने गये कपड़े को चैंणी या चीनी कहने का प्रचलन रहा होगा। —शोधक

४ 'जित तहँ बोहर आसुर वन्द, करं बहु वस्त्र व्यापार समुद।' 'रा० वि०, २।१५२

५ 'विवर बजाज सु बचहि सार। छुअत नवाम्बर सूझहि तार।

— पृ० रा०, भा० १६४।१४८

६ भार० म० और उसका इति०', पृ० ७७६ पर उद्धृत।

पड़ता था।[1] इस स्वर्ण टके की कीमत सन १९५१ में रुपये से बारह गुनी स्वीकार की जाती थी।[2] विद्यापति ने अन्य वस्तुओं के मूल्य पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि बहुत सी कौड़ियाँ देने पर थोड़े से गेहूँ मिल पाते हैं। घी के लिए घोड़ा बेचना पड़ता है जबकि शरीर में लगाने के लिए कच्चे तेल के लिए बाँदी या दास से हाथ धोना पड़ते हैं।[3] सूदन के अनुसार रसद न आ पाने की दशा में दाना और घास बहुत महँगे हो जाते थे तथा आटा रुपये सेर मिलने लगता था।[4] आल्हकार ने भी युद्धस्थल में एक एक मुहर के प्रतिदान में एक कटोरा पानी मिल पाने का उल्लेख किया है।[5]

वस्तुओं के उपर्युक्त मूल्य युद्धावस्थाओं की अति साधारण दशाओं के हैं। विद्यापति द्वारा प्रदर्शित कैसा भी ऐसे मुगल घमण्ड थे, जिनका व्यवसाय उन्होंने लूट-पाट करना तथा शत्रु रमणियों को बाजारों में बेच देना दिखाया है।[6] अतः ऐसे व्यक्ति वस्तुओं की अत्यधिक ऊँची कीमतें चुकाने में न हिचकते हों तो क्या आश्चर्य! वैसे ऐतिहासिक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि दुर्भिक्ष आदि के समय तो वस्तुओं के मूल्य अवश्य चढ़ जाते थे, किन्तु साधारणतया वे बहुत सस्ती रहती थीं।[7]

अन्य वस्तुओं में से उत्तम कोटि के घोड़े अत्यधिक मूल्यवान होते थे। पृथ्वीराज रासो में पाँच सौ ऐराकी अश्वों का मूल्य पंद्रह लाख दाम प्रदर्शित किया गया है[8] जिससे एक अश्व का मूल्य तीन हजार दाम सिद्ध होता है। रासो में प्रदर्शित मूल्य आईन ए अकबरी में उल्लिखित मूल्य के निष्कर्ष पर खरा उतरता है। उसमें शाही अस्तबल के घोड़ों का मूल्य दस और बीस मोहरों से अधिक दिखाया गया है।[9]

१ 'पान क लए सोनाक टका चानन का मूल इन्धन बिका।' —कीर्ति० पृ० ६८

२ सन १९५१ ई० में प्रकाशित एन एडवान्स्ड हिस्ट्री ऑव इण्डिया भा० २ पृ० ३९८ पर टके की क्रय क्षमता रुपये से बारह गुनी प्रदर्शित की गई है।

३ 'बहुल कौड़ि कनिक थोड़, घीवक बेचा दीअ घोड़।
करुआ क तेल आग लाअअ बाँदी बड़ सस्सओ छाड़अ।' —'कीर्ति', पृ० ६८

४ 'अस तुम कहत फौज की आवन सो आवन नहिं पाव।
दाना घास घीव आटा जब रुपय सेर बिकाव।' —सु० च०' १।३।१९

५ मुहर कटोरा पानी हुइगो बूँदें जल मिलिबे को नाहिं।' —'आ०' १२७।१७

६ 'अरु धांगड़ कटकहि लटक बड़ जे दिस धाड़ें जाथि।
ते दिस केरी राए घर तरुणी हठट बिकाथि।' —कीर्ति० पृ० ६०

७ दे० एन एडवान्स्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' भा० २ पृ० ३९८ ९९

८ ऐराक तुरिय सं पंच स। सौदागर इसप कहै।
दिय दाम दस लप्प। पंच लप्पह रहि बाकिय।'
—'पृ० रा०', का २०६१।२१२

९ दे० आइन ए अकबरी भाग १, पृ० १४२। इसे इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि घोड़ा का मूल्य लगभग तीन सौ से लेकर सात सौ मन गेहूँओं के मूल्य के बराबर होता था। —शोधक

(एक मोहर में तीन सौ पचास से लेकर चार सौ तक दाम होते थे) जो चार हजार दाम से लेकर आठ हजार दाम से भी अधिक सिद्ध होता है। अकबर काल से पूर्व कदाचित वस्तुएँ और भी सस्ती रही होंगी। अन्य वीरकाव्य प्रणेताओं में से कवि विद्यापति ने एक लाख अश्वों का मूल्य सुमेरु पर्वत के भार के बराबर स्वर्ण बताया है।[1] कवि मान ने भी अश्वों का मूल्य उनके भार के बराबर स्वर्ण प्रदर्शित किया है।[2] इन उल्लेखों का अभिप्राय यही है कि अश्वों का मूल्य अत्यधिक होता था। इस तथ्य का निवेदन भी अप्रासंगिक न होगा कि बौद्धकाल में भी एक घोड़े की कीमत एक हजार से लेकर छः हजार कार्षापण तक होती थी जबकि बहुत से दास और दासियों का मूल्य सौ कार्षापण मात्र ही होता था।[3]

यदि कवि मान ने मजदूरों की मजदूरी और उनकी संख्या निर्दिष्ट करने में औचित्य का निर्वाह किया है, तो उस समय एक सहस्र दीनारों से प्रतिदिन एक लाख शिल्पकार दो लाख बेलदार और चार लाख मजदूरों का वर्तन दिया जा सकता था।[4] कवि मान का उल्लेख अकाल पीड़ित लोगों को राज्य की ओर से काम प्रदान करने से सम्बद्ध है अतः यह भी सम्भव है कि सात लाख मनुष्यों तथा उनके साथ काम पर लगे हाथी और महिष आदि पशुओं के भरण पोषण पर महाराज एक सहस्र दीनार व्यय करते हों। आठ माशे की एक दीनार की क्रय क्षमता लगभग दो सौ साठ दाम के बराबर रही होगी यदि वह उतने ही विशुद्ध स्वर्ण की होती थी जितने की कि मोहर होती थी।[5] आल्हखण्ड में सैनिकों का वेतन दस रुपये बताया गया है[6] जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि हमारे आलोच्यकाल के अंतिम भाग में दस रुपये में एक साधारण गृहस्थ का भरण पोषण हो जाता होगा। इस संदर्भ में यह निवेदन अप्रासंगिक न होगा कि अकबरकाल में एक रुपये के लगभग साढ़े तीन मन गेहूँ खरीदे जा सकते थे।[7]

(क) मणि-मुक्ताओं की खानें

आलोच्यकाल में खानों के ठेके लेने का व्यवसाय भी अति महत्त्वपूर्ण रहा होगा। ऐतिहासिक विवरणों से ज्ञात होता है कि राज्यों द्वारा खानें बहुधा ठेकों पर उठा दी

१ स २—द० कीर्ति०, पृ० ८४, 'रा० वि०', ७।६० ६१

३ द० 'भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास' पृ० १८७ ८९

४ 'रा० वि०' ११।४१ ४२

५ आईन-ए अकबरी में बारह माशे पौने दो सुर्ख वजन की मोहर की कीमत चार सौ दाम दी गई है—दे० भा० १ पृ० ३३

६ दस दस रुपिया के नौकर हैं नाहिंन टरिहों मुड़ कटाय। — आ०, ७८।११

७ आईन ए अकबरी में गेहूँओं का मूल्य लगभग बारह दाम प्रतिमन होने का उल्लेख किया गया है जबकि रुपये में चालीस दाम होते थे—द० भा०', १, पृ० ६५

जाती थीं।[१] इन खानों व ठेकों से मणि मुक्तादि की खाना से टेकों का विशेष महत्त्व रहा होगा। वीरकाव्य में मणि मुक्ताओं का उन्मुक्त उपभोग चित्रित करते हुए, राजकीय परिवारों में कहीं दरवाजा पर मुक्ताओं की झालरें दिखाई गई हैं[२] और कहीं मणि-जटित सरोवर सोपान।[३] महलों में जटित नीलमणियों की आभा से दिवस में भी रात्रि की भ्रान्ति और लालों की आभा से रात्रि-अन्धकार में भी दिवस में परिणति हो जाना,[४] हीराओं की किरणों से आकाश में श्वेत वितान तना हुआ दिखाई देना[५] तथा आँगन में प्रवाल जाल जटित होना के[६] विवरणों से भी मणि मुक्ताओं के उन्मुक्त प्रयोग पर प्रकाश पड़ता है। इसके साथ ही कवि चन्द ने कन्नौज[७] और दिल्ली[८] में तथा मान ने उदयपुर में[९] जौहरी माणिक्य मुक्ता लाल प्रवाल, पन्ना, पुखराज, नग और हीरों की ढेरियाँ बेचते प्रदर्शित किए हैं। भूषण ने तो औरंगजेब के सूरत नगर से ही महाराज शिवाजी द्वारा मणि माणिक्य की लाखों पालकियाँ लूटना चित्रित किए हैं।[१०] भूषण का यह उल्लेख निरा काल्पनिक नहीं है। कारण यह है कि आलोच्यकाल में पाश्चात्य यात्री प्रायः मणि मुक्ताओं का ही क्रय विक्रय करने भारत आते थे। उनमें से बर्नियर और टवर्नियर ने भारतीयों की इस दुष्प्रवृत्ति का उल्लेख किया है कि वे इस अन्धविश्वास से मणि मुक्ताओं को जमीन में गाड़ दिया करते हैं कि वे इन्हें पुनर्जन्म में काम देंगे।[११] बर्नियर ने मत व्यक्त किया है कि बहुमूल्य जवाहरातों को जमीन में गाड़ने की प्रथा के कारण ही भारतीय बाजारों में उनका एक काल्पनिक अभाव दिखाई देता है, जबकि वस्तुतः उनकी कमी नहीं है।[१२] टवर्नियर ने उक्त अन्धविश्वास से प्रेरित होकर भारतीयों द्वारा (विशेषतः असम प्रदेश के निवासियों द्वारा) अपार स्वर्ण, रजत और मणि मुक्ताओं को जमीन में गाड़ने की पद्धति का उपहास करते हुए कहा है कि, वस्तुतः वे भारतीय निर्धन ही

---

१ सब खानें राजकीय सम्पत्ति समझी जाती थीं। कुछ तो सरकार स्वयं खुदवाती थी, और कुछ ठेके पर दे दी जाती थीं। —'प्रा० भा०, शा० प्र०', पृ० २०४

२ से १०—द्र० 'वी० च०' २०१६, 'शि० भू०', १६, वही ३३६, वही, १७, वही, २० 'पृ० रा०', का० १६४२।४४४, वही १५५६।३०, 'रा० वि०', २।१०७, 'भू० ग्र०' स्फु० ५५

११ " artisans and merchants whether Mahometans or Gentils but especially among the latter who posses almost exclusively the trade and wealth of the country and believe that the money concealed during life will prove beneficial to them after death '
— Travels in Mughal Empire Bervier pp 225 26

१२ ' I have no doubt that the habit of secretly burying the precious metals and thus withdrawing them from circulation is the principal, cause of their apparent scarcity in Hindoas .. '
— " 226

समझे जाते हैं जिनका द्रव्य जमीन में नहीं गड़ा होता।[1] टवर्नियर ने महाराज शिवाजी द्वारा बीजापुर राज्य के मन्दिरों अथवा नामक नगर में भूमि में गड़ी अपार सम्पत्ति लूटने का भी उल्लेख किया है।[2] इस दक्षिणी भाग का प्रान्त की खानों में निकलते तथा मसालों के प्रमुख व्यापार केन्द्र[3] सूरत नगर में महाराज शिवाजी का सोना चाँदी लूटकर ले जाना सर्वथा सम्भव है। कथन का तात्पर्य यह है कि मध्यकाल में भारत मणि माणिक्य के खानों और क्रय विक्रय का व्यवसाय अति समुन्नत था, तथा देश में इसका अपार भण्डार था।

(ख) स्वर्ण की खानें

सोने की खुदाई और साफ करने आदि का व्यवसाय भी मध्यकाल में अति समुन्नत था। परमाल रासो[4] और आल्हखण्ड में तो महोबे के चन्देल राजाओं के पास 'पारसमणि' होने का उल्लेख किया गया है और उसकी सहायता से वे आयस के ढेर के ढेरों को स्वर्ण में परिवर्तित करते चित्रित किए गए हैं। परमाल रासो में मणि आकाश में उड़कर जाते दिखाई गई है[5] जबकि रानी मल्हना पारसमणि को अनन्त सागर में गिराते प्रदर्शित की गई है।[6] इस चित्रण को अतिशयोक्तिपूर्ण मानने पर भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि चन्देलों के पास अपार परिमाण में स्वर्ण विद्यमान होने की दशा में ही उनके पास पारसमणि होने की किंवदती प्रचलित हुई होगी। महाराज पृथ्वीराज के पास स्वर्ण की भारी मात्रा होने का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि वे करनाटी नामक वेश्या को प्रशिक्षित करने वाले व्यक्ति को ही बीस सेर स्वर्ण प्रदान करते चित्रित किए गए हैं।[7] सलखराज स्व पुत्री के दायज में पच्चीस मन वजन के शुद्ध स्वर्ण के भाण्ड देते दिखाए गए हैं।[8] आज रक्षा कोष के लिए स्वर्ण संग्रह करते हुए किसी प्रान्त के समस्त सेठ साहूकारों और नागरिकों द्वारा किसी नेता की स्वर्ण तुला का कठिनता से प्रबन्ध हो पाता है, जबकि महाराज सोमेश्वर का एक बार[9] महाराज जगतसिंह[10] तथा महाराज राजसिंह को हम कई बार[11] अपनी स्वर्ण तुला करके उस स्वर्ण को दीनों में वितरित करते पाते हैं। इन उद्धरणों से स्वीकार करना पड़ेगा कि अंग्रेजों

---

१ 'This is the reason why so much gold and silver and so many precious stones are buried in India and an idolater must be poor indeed if he has no money buried in the earth '
— Travels in India, by J B Tavernier p 159

२ See, Ibid P 160

३ See An Advanced History of India, Vol II p 575

४ से १२—दे० पर० रा०' २।१६४ आ० ८०।२०, पर० रा० २।१७० 'आ० ६२३।१२ १०, 'पृ० रा० रा० ६६६।५६, वही ५६०।१२, २४ वही ३२६।५ 'रा० वि०, २।५३ वही ८।६० २।१५७

के शासन चक्र से पूर्व देश में स्वर्ण का अतुल भण्डार था। मुगलकाल में आए विदेशी यात्रियों ने भी इस विषय में ईर्ष्यामिश्रित भाव व्यक्त किए हैं कि विश्व के समस्त देशों का स्वर्ण भारत की ओर खिंचा चला आता है, जबकि उसके निष्क्रमण का कोई मार्ग नहीं है।[1]

स्वर्ण का आभूषणों में प्रयोग करने के लिए तो भारत विश्व में विख्यात या कुख्यात है ही, आलोच्यकाल में उसका सर्वाधिक उपयोग सोने के तार खींचने में किया जाता था, जिन्हें जरबाफी वस्त्रों और पगड़ी के पल्लों आदि में बुनने का प्रचलन था। कवि चन्द[2] और मान[3] ने स्वर्णकारों के कार्य में आभूषण बनाने के स्थान पर, उनके तार खींचने के कृत्य को प्रमुखता दी है। बर्नियर ने भी जिसने भारत के स्वर्ण भण्डार की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है, इस दृष्टि से दुःख प्रकट किया है कि स्वर्ण का एक बहुत भाग उसको पगड़ियों और वस्त्रादि में प्रयुक्त करके, व्यर्थ कर दिया जाता है।[4] इस सन्दर्भ में यह तथ्य विशेष उल्लेखनीय है कि मणि मुक्तादि और स्वर्णतारों से निर्मित वस्त्रों तथा आभूषणों का चाहे हिन्दू नरेशों में अत्यधिक प्रचलन रहा हो, अथवा मुगल सम्राटों ने उनका प्रयोग और संचय किया हो, भारत की अर्थ-व्यवस्था का यह एक शुभ लक्षण ही था कि देश की ये बहुमूल्य निधियाँ भारत में ही रहीं, अंग्रेजों के शासनकाल के सदृश उनका प्रवाह विदेशों की ओर उन्मुख नहीं हुआ।

मणि मुक्तादि और स्वर्ण की खानों के सदृश, कदाचित नमक के बनाने का भी ठेका दिया जाता था। पृथ्वीराज रासो में साँभरि झील के पानी के प्रयोग पर कर लेने का उल्लेख किया गया है[5] जो तभी सम्भव हो सकता है जबकि उसके पानी से नमक बनाने का किसी एक अथवा बहुत से व्यक्तियों को ठेका दिया गया हो। कवि जान ने भी साँभरि झील से निकाले गये नमक का सम्पूर्ण भारत में प्रयोग दिखलाया है।[6] ऐतिहासिक साक्ष्यों से नमक बनाने पर कर लिए जाने की प्रथा का पता चलता है।[7]

(ग) उद्योग धन्धे और व्यवसाय

आलोच्यकाल में यन्त्र चालित कल-कारखानों का विकास नहीं हो पाया था,

१ द०, ट्रेवल्स इन मुगल एम्पायर, बर्नियर, पृ० २०४

२ कमिकसि हेम सु काढन तार। उगत कि हेमह अन्न प्रकार।

—'पृ० रा०', का० १६४।१४४१

३ कित तह कुंदन रूप सुनार, सु गारत यन्त्रनि कट्टत तार।

—'रा० वि०', २।८१०

४ द०, ट्रेवल्स इन मुगल इण्डिया बर्नियर, पृ०२२४

५ से ६—द०, 'पृ० रा०' का ६६२।१९६, क्यामखाँ रा०', ५०

७ द० प्राचीन भारतीय शासन-पद्धति', पृ० २०१६

जिसमें गृह अथवा कुटीर उद्योगों का ही बहु प्रचलन था। इन उद्योगों की भी भारत में अन्य देशों की तुलना में यह विशेषता रही है, कि इन उद्योगों पर जाति विशेषों का प्रभुत्व रहा है और प्रायः वे ही उनके उत्पादन और विक्रय दोनों कार्यों को सँभालती रही हैं जिससे वे उद्योग के स्थान पर जातिगत व्यवसाय प्रतीत होने लगते हैं। भारत की इस अनूठी परम्परा के क्या हानि लाभ रहे हैं इस विवाद में न पड़ते हुए भी हम यह निवेदन करना चाहेंगे कि वीरकाव्य में उपलब्ध निर्देशों से मुख्यतया हाथों से बनाए गए पदार्थ मशीनों से भी उच्च कोटि के सिद्ध होते हैं। आलोच्यकालीन उद्योगों में सर्वाधिक समुन्नत वस्त्र उद्योग दिखाया गया है जिसमें भिन्न भिन्न प्रकार के उत्तमोत्तम वस्त्रों की लगभग अस्सी किस्मों का उल्लेख मिलता है। शस्त्रास्त्र और अंगत्राणों के निर्माण का उद्योग भी पर्याप्त उन्नत रहा होगा क्योंकि उनकी बहुत लम्बी नामावली मिलती है। असंख्य सेना का विवरण बहुसंख्यक शस्त्रास्त्रों को ध्वनित करता ही है। इसी प्रकार हाथी दाँत की वस्तुएं बनाने, इत्र और सुगंधित तेल बनाने आभूषण बनाने, स्वर्ण के तार खींचने काँच की चूड़ियाँ और हार बनाने से सम्बद्ध उद्योग और व्यवसाय भी सामाजिकों के वर्ग विशेषों के वित्तोपार्जन के साधन थे।

वस्त्र वयन—आलोच्यकाल में वस्त्र व्यवसाय बहुत समुन्नत था। पृथ्वीराज रासो में कवि चन्द ने इच्छिनी ऐसे वस्त्रों का प्रयोग करते[1] तथा कन्नौज के बाजार में ऐसे वस्त्रों का विक्रय प्रदर्शित किया है,[2] जिनके तारों की प्रतीति दिवा प्रकाश में भी छूने पर ही होती थी। कवि मान ने उदयपुर[3] गुजरात के ईडर, दुर्ग[4] तथा मालवा के नगरों

---

१ पाटंबर अंबर बसन। दिवस न सुझ्झहि तार।

—'पृ० रा०', छं० ५५०।४६

२ विवेक बजाज सु बेचहि सार। छुअंत नवासर सुझ्झहि तार।

—वही, १६४१।४३८

३ कित बहु मोलिक बस्त्र बजाज मह जरबाफ मुखमल साज।
मसज्जर नारिय कुमर मिश्रु सुम सिक्लात दुमास सहस्र।
मनोसुख सूफ पटोर स्यमाइ, खीरोदक चँनी पितावर ल्हाइ।
मनोसुख पामरी साहिवी पाट, हीरागर सेनिय हीर सगाढ।
भरच्छिय भैरव मारु सभार सुमी महमुदी सु सिर्दलि सार।
सुना टुकरी श्री माप अटान सला पचतारिय खास सुजान।
मलमल माहि चौतार दुतार उप दस्तार सु पोन अपार।
सु सारिय चौरस रग रगील दिखावहि आघ दलाल अमील।

— रा० वि०, २।१११ १४

वही १५।१७-२०

में[1] बजाज अनेक प्रकार के वस्त्र बेचते प्रदर्शित किये हैं। तीनों सूचियों में कवि मान ने प्राय: एक जैसे ही वस्त्रों की निम्नलिखित नामावली दी है—जरबाफ, मलमल ममज्जर, नारिय या नारी, कुंजर मिस्रू (आल्हकार ने 'मिसरू' का पाजामा बनाने का उल्लेख किया है)[2] सिकलात, दुमास, तनोसुख, सूफ पटार, दरयाइ, खीरोदक (यह जायसी के 'समुद लहर' नामक वस्त्र का[3] अपर नाम प्रतीत होता है) चेंनी या चीणी, पितांबर, लहाइ, मनोसुख, पामरी, सहिबी पाट, हीरागर सेंनिथ, हीर पाट या 'हीर मगाड', भरुच्छिय, भरव, मारू, महमूनी, मिर्दाल, सार, भूना टुकरी श्री साप, अटान, सना, पंचतोडिया, सामा मलमल, चानार, दुतार, इकतार, बानिया, चौंसे या साडियाँ, अतलस बुलबुल, बसमा पाट, सालू, साही दुमामा (आल्हकार ने दुमामे का जामा बनाने का उल्लेख किया है), दुलाचा चन्द्र पट उत्तर पट और भीन पाट।

कवि मान के सदृश सूदन ने भी दिल्ली की लूट का वर्णन करते हुए, वस्त्रों के विविध रूपों पर प्रकाश डाला—रुमाल, दुशाला, पटटू चूनी (यह कवि मान के चेंनी या चीणी का अपर नाम प्रतीत होता है) जाली, मलमल बनात सिकलात छींट पटवर, पश्मीना के कवल, जरदोजी, मुकेसी दाना करी, मसरू (यह कवि मान के मिस्रू या मिश्रु का अपर नाम प्रतीत होता है) बादला दरयाइ नौरंग साही जरकस, ताफ्ता, कलदर, बाफ्त-बदर, मुसज्जर श्री सकर (यह मान के सीसाप का अपर नाम प्रतीत होता है) विलदी, मानिक-चन्दी, चौखान, कीमखाब, सालू और खादी।[4]

वस्त्रों के उपर्युक्त विवरण से आलोच्यकाल में वस्त्र उद्योग की अतीव उन्नत दशा का बोध होता है। बहिरस्मात्मा में बवनाट नामक यात्री ने बंगाल में ऐसी महीन

१ 'रा० वि० १७।३८३५

२ पघि पजामा मिसरू वारो जामा पैंघि दुमामी क्यारु। — आ० ८६।२१

३ तीवइ कवल सुगध सरीम, समुद लहरि साहै तन चीरु।
— पद्मावत, सपा० डा० मनमोहन गौतम, पृ० ११७

४ रुमाल दुसाला पटटू नाना चूनी जाला सोभ घनी।
मलमल व नातें अरु सकलातें भानिनु भातें छींट घनी।
बर रग पटवर पसमी कवर धवल सुभ्रवर कौन गन।
जरदोज मुकेसी दाना कैसी मसरू वसी लत बन।
बादला दरयाइ नौरंग साइ जरकस काइ झिलमिल है।
ताफ्ता कलदर बाफ्त बदर मुमजर सुंदर गिलमिल है।
श्रीसक्कर बिलन्दी दूरि धरदी मानिक चन्दी चौखान।
किमखाब सुसालू खादी मालू चाल चालू जगजान।
— सु० च०, ६।२।३८ ३६

मलमल बुन जाने का उल्लेख किया है कि उसके लगभग चालीस गज के थान का भार चार ग्रौंस मात्र ही होता था।[1] ग्राईन ए ग्रकबरी में भी तत्कालीन विभिन्न प्रकार के वस्त्रों की नामावली दी गई है। उसका उद्धृत करना तो ग्रनपेक्षित है किन्तु उससे यह तथ्य ग्रवश्य प्रकाश में ग्राता है कि चीरा, दुपट्टा, कीमखाब, तापता दाराइ लाह (ल्हाइ) मिसरी (मिस्रू) ग्रौर सार, सुनहरी तथा रेशमी कपड़े होते थे, जबकि खासा, चौतार, मलमल, तनसुख, सिरीसाफ, भूना, ग्रटान, महमूदी, पचतोलिया, सालू, डारिया सला, दुपट्टा ग्रौर छोट सूती कपड़े होते थे।[2]

युद्धोपकरणों का निर्माण—वीरकाव्य में शस्त्रास्त्रों ग्रौर ग्रंग त्राणों के जितने भेदोपभेद दिखाए गए हैं तथा सेनाग्रों की जिस रूप में वृहत संख्यायें प्रदर्शित की गई हैं उनसे इसमें सन्देह नहीं रहता कि इनके निर्माण द्वारा सामाजिकों का एक वृहत वर्ग जीविकार्जन करता होगा। इनका निर्माण कदाचित राज्य ग्राश्रय में कराया जाता था, यही कारण है कि विविध बाजारों का वर्णन करते हुए वीरकाव्य प्रणेताग्रों ने शस्त्रास्त्र ग्रौर ग्रंग त्राणों का विक्रय करने वाली दुकानें नहीं प्रदर्शित की हैं। हाँ कवि विद्यापति ने जौनपुर में तीर कमान विक्रताग्रों की दुकान प्रदर्शित की हैं।[3] ग्राल्हखण्ड में ढालों के निर्माता ग्रौर विक्रताग्रों का डबगरों की संज्ञा दी गई है, तथा इस तथ्य पर प्रकाश डाला है कि जयपुर की ढालें विशेष प्रसिद्ध थीं।[4] तलवार ग्रौर छुरी ग्रादि पर धार रखने तथा सफाई करने वाले सिकलीगर कहलाते थे, जिनकी कवि मान ने उदयपुर में ग्रनेक दुकानें प्रदर्शित की हैं।[5] कवि मान ने सुघोषों की दुकानें भी दिखाई हैं[6] जो तलवार विक्रताग्रों की दुकान रही होगी।

सुगंधित तेल ग्रौर इत्र बनाना शृंगार प्रसाधनों पर प्रकाश डालते हुए सुगंधित द्रव्यों के बहु प्रचलन का पीछे उल्लेख किया जा चुका है। कवि मान ने उदयपुर में

---

१ and the rich have them (turban) of so fine a cloth that five and twenty or thirty elles of it which are put into a turban, will not weight four ounces These lovely clothes are made about Bengala — Indian travells of Thevenot and Careri p 527

२ ग्राईन ए ग्रकबरी भा० ३ पृ० ६८ १०१

३ तहीं तथ्य कूजा तवल्ला पसारा कहीं तीर कम्माण दोक्काण दारा।'

—कीर्ति० पृ० ३८

४ बहुधा डारिनय ढालन के ग्रौर डबगर को भेष बनाय।

× × ×

हमें न मरिग्रो हमें न मरिग्रा हम डबगर हैं जयपुर क्यार।

— ग्रा०' ५६४।१६ २२ ग्रौर भी द०—१०।१५-१६

५ मुजी भरभूज कमार ठठार घरैं सिकलीगर सस्त्र सुधारि।'

—'रा० वि०', २।१३५

६ जिन मध नीक मनोहर मच सुघोष कलीनि करानि पच। —वही २।६६

जूही, करनी, मुगरल, चपा, केतकी, केवडा, कूदरू, गुलाब और मालती के तेल और इत्रों का विक्रय प्रदर्शित किया है[1] जिससे स्पष्ट होता है कि इत्र उद्योग निश्चय ही समुन्नत रहा होगा।

हाथी दांत की वस्तुएँ बनाना—हाथी दाँत की प्राचीनकाल में रत्नों में परिगणना की जाती थी,[2] तथा उससे अनेक प्रकार की वस्तुएं निर्मित की जाती थी। कवि मान ने उदयपुर में हाथी दाँतों को खराद पर चढ़ाकर भाँति भाँति के सुन्दर उपकरण करने का उद्योग प्रचलित दिखाया है।[3] मान ने हाथी दाँत की बिंदुलियाँ बनाने पर भी प्रकाश डाला है।[4]

काच की चूड़िया आदि बनाना—कवि मान ने उदयपुर के बाजार में ऐसी दुकान प्रदर्शित की हैं, जिन पर काच के कगन, मुदरिया और हारों का विक्रय होता था।[5] इससे स्पष्ट होता है कि काच की विभिन्न प्रकार की वस्तुएं बनाने का उद्योग भी समुन्नत था।

मूर्तियां बनाना—विवेच्यकाल में प्रस्तर प्रतिमाएं बनाने की कला भी बड़ी समुन्नत थी। गोरेलाल ने महेवा के मन्दिर में सीता और राम की ऐसी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित दिखाई हैं, जो देखने पर ऐसी प्रतीत होती थी मानो आपस में बातें कर रही है।[6] श्रीकृष्ण की प्रतिमा भी सचमुच ही मक्खन खाती प्रतीत होती थी।[7] केशवदासजी ने महाराज वीरसिंह देव के दरबार द्वार पर ऐसी सिंह आकृतियां खड़ी दिखाई है, जिन्हे देखकर हाथियों को वहा जीवित सिंह खड़े होने का भ्रम हो जाता था और वे चिंघाडते हुए पलायन कर जाते थे।[8]

वाद्य यन्त्रों का बनाना—प्राचीनकाल में वाद्य यन्त्रों के बनाने वाले 'तालापचारा' कहलाते थे।[9] रीतिकाल में उनके लिए किसी संज्ञा विशेष का तो प्रयोग नहीं मिलता किन्तु विभिन्न जीवनावसरों पर अनेक प्रकार के वाद्य यन्त्रों का प्रयोग दिखाने के साथ साथ बाजारों में उनकी विक्रय करने वाली दूकानें प्रदर्शित की हैं। कवि सूदन ने दिल्ली की इसी प्रकार की दूकानों से—दुंदुभि, पटह मदग, ढोलक डफला, डामरू, मँदरा तबल सुमेरु खजरी, तबला धामक, जलतरंग कानून, अमृत कुंडली वीणा सारंगी रवाब सितार, महुअरि शहनाई, भेरी तुरही दरक, बंशी, गोमुख, बाँकिया अलगोजा, ताल, कठताल, झालर, झाझ मदन भेरी, घूघुर घंटा और मुहचग नामक छत्तीस वाद्यों की लूट प्रदर्शित की है।[1] निश्चय ही इनका निर्माण समाज के एक अंग के वित्तार्जन का माध्यम रहता होगा। अन्य व्यवसायों में से आभूषण बनाने (सुनार) उनमें नग जड़ने (मणिगर), आभूषण गूथने (पटवा), वस्त्र रंगने (रंगरेज) शराब बनाने (कुलाल) बर्तन ढालने (कसेरे और भरा), सिलाई करने (चेजगर) पत्थरों को तराशने (सिलावट या सगतराश), लग और

१ स १०—द० रा० वि०, २।१३०, रा० वि०', २।१३१, वही, २।१३७, वही, २।१३७, 'छ० प्र०', ४।४५, वही, ४।४५ वी० च०', १७।५, 'भा० स० की उ० इ०', डा० स० वि०, पृ० २४८, सु० च०' ६।२।३३-३४

बिना लगे पान बेचने (बीटक और तमोली), मिष्टान्न बनाकर बेचने (कादविक) चमड़े की वस्तुएँ बनाकर बेचने (मोची चमार) आदि के उल्लेख मिलते हैं।

(घ) लेन-देन

इस सम्बन्ध में वीरकाव्य में अधिक निर्देश नहीं मिलते। पृथ्वीराज रासो में कहा गया है कि पहले 'मूल' ले लीजिए ब्याज की बाद में देखी जायगी।[1] इससे स्पष्ट होता है कि ब्याज पर धन उठाने का प्रचलन अवश्य था। सुजान चरित्र में माल गिरवी रखकर ऋण लेने की प्रथा पर संकेत मिलता है। धामहर दुर्ग के अधीश्वर से जब [illegible] की माँग की जाती है तो वह प्रत्युत्तर देता है कि मेरे पास इतना धन नहीं और यहाँ कोई ऋण देने वाला भी प्रस्तुत नहीं होगा। हाँ मैं दिल्ली में अपना सामान गिरवी रखकर उसके बदले में आपको [illegible] की [illegible] दिलवा सकता हूँ।[2] इससे स्पष्ट है कि उस काल में सूद पर रुपये दिये जाते थे और सामान गिरवी रखकर भी द्रव्य दिलाने की प्रथा प्रचलित थी।

(ङ) कलाओं के माध्यम से जीविकार्जन

(क) काव्य कला—प्राचीनकाल में काव्य कला वस्तुतः उत्तम जीविकार्जन का भी माध्यम थी। [illegible] गुणग्राही आश्रयदाताओं की छाया में कवि गण [illegible] करते थे [illegible] महाराज जयचन्द द्वारा [illegible] किये गए [illegible] जाता है।[3] [illegible] की इच्छा से पृथ्वीराज रासो में [illegible] दान [illegible] किया गया है।[4] [illegible] महाराज पृथ्वीराज और उनके सामन्तों से [illegible] पुरस्कार में प्राप्त करते होंगे।[5] रासो में कवियों का प्रचुर मात्रा में पुरस्कार प्राप्त करने की एक प्रकार की प्रतिद्वन्द्विता [illegible] कवि-वर्ग की [illegible]। कवि चन्द की पृथ्वीराज रासो में जो प्रचुर आर्थिक स्थिति चित्रित की गई है उससे तत्कालीन कवियों की स्थिति का [illegible] जा सकता है। [illegible] कि इन कवियों के पास व्यक्तिगत [illegible] हुआ करता था।[6] उनकी [illegible] के समय उनके साथ [illegible] और [illegible] सम्मिलित रहता था [illegible] में [illegible] जाते थे। [illegible] द्वारा [illegible] में [illegible] हाथी घोड़े और [illegible] द्रव्य की संख्या भी [illegible] से [illegible] होता था।[8]

कवि भूषण ने भी [illegible] के गुणी भाषा का महाराज शिवाजी के दरबार

१—प्रथम मूल लिज्जिय। ब्याज पाछे जु लीज्ज। —पृ० रा०, का० १३३।१६

२ से ८—[illegible] सु० च०, २।३।२७-२८ पृ० रा०, का० १६८।१८६, वही १२।३१८३, वही १२३।२२३, वही [illegible], पृ० रा०, का० [illegible] वही [illegible] ८२-८३

में याचना के लिए आना चित्रित किया है।[१] उनको महाराज शिवाजी से पुरस्कार-रूप में अपार वित्त और गजराजि मिलना, तथा महाराज छत्रसाल द्वारा उनकी पालकी को कंधा देने का तथ्य तो विश्रुत है ही, कवि पद्माकर के राजसी वैभव को सूचित करने वाला भी एक पद उपलब्ध है। एक बार जब वे जयपुर से बूँदी जा रहे थे तो उनके लाव-लश्कर को देखकर बूँदी वालों ने समझा कि किसी आक्रामक नरेश का दल आ रहा है और उनके विभ्रम को दूर करने के लिए पद्माकर को यह कवित्त सुनाना पड़ा कि भाइयो। डरो मत मैं कोई बादशाह, नरेश या उमराव नहीं हूँ अपितु महाराज प्रतापसिंह का कविराज मात्र हूँ।[२]

भाट चारण और दसोंधी आदि जातियाँ जिन्होंने प्रशस्ति गान को आजीविकोपार्जन के रूप में ग्रहण कर लिया था इसी कोटि में रखी जा सकती हैं।

(ख) नृत्य गान—नर्तकी-नर्तक और नट नृत्य और गान से जीविकोपार्जन करते थे। वारवधुओं की आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में यह निर्देश पर्याप्त होगा कि कवि चन्द ने उनके आवास अति उत्तुंग और साज-सज्जायुक्त चित्रित किए हैं तथा उनकी आय प्रतिदिन लाखों में बताई है।[३] विद्यापति ने भी उनके आवास विश्वकर्मा रचित प्रदर्शित करके, उनकी समृद्धि का अभिद्योतन किया है।[४] नट आदि कलाकारों की स्थिति कदाचित अधिक समृद्ध नहीं थी।

(ग) सेवा वृत्ति—इस कोटि में यद्यपि सामंत और उमरावों तक को रखा जा सकता है, क्योंकि वे भी केन्द्रीय शासक की एक प्रकार से सेवा करते थे तथापि उसके संकुचित अर्थ में दास दासियों का परिगणन ही समीचीन है। ग्रामीण जीवन में नाई, बढ़ई, लुहार, धोबी, भंगी और कुम्हार आदि जातियाँ भी अपनी सेवा या टहल के प्रतिदान में निश्चित परिमाण में प्रति छमाही अनाज, तथा पारिवारिक संस्कारों के अवसर पर नेग प्राप्त करती हैं, निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि आलोच्यकाल में इन सेवावृत्ति वाली जातियों या नेगियों की क्या व्यवस्था थी। कवि मान ने उदयपुर में लुहार, कुम्हार, नाइयों की अनेक दुकानें प्रदर्शित की हैं,[५] जो कदाचित आजकल की भाँति ही धन के बदले में सेवाकार्य करते होंगे। इसी तरह आलोच्यकाल में दास और दासियाँ रखने का प्रचलन तो अवश्य था, किन्तु वीरकाव्य प्रणेताओं ने जिन अनेक दासी और बाँदियों को दहेज में देने का प्रचलन दिखाया है वे कहाँ उपलब्ध की जाती थीं, इस विषय में कोई निर्देश नहीं मिलता। सम्भावना यही है, कि प्राचीनकाल से ही चली आने वाली दास प्रथा आंशिक रूप में इस समय भी प्रचलित थी और दास-दासियों की संतानें राजमहलों में आनुवंशिक रूप से सेवा-कार्य करती थीं।

भिक्षाटन

भिक्षाटन द्वारा जीविकार्जन करना सामाजिकों के एक वर्ग की विपन्नता और

१ से ५—दे०, 'शि० भू०', २५, 'पद्मा० ग्र०', प्रकी० ३, 'पृ० रा०', का० १६४०।४३२, 'कीर्ति०', पृ० ३२, 'रा० वि०', २।६४ ६५

परिस्थिति से बचने की प्रवृत्ति लोगों का प्रदर्शन करता है। जैन कवियों की साहित्य काल में भी कमी नहीं थी। कवि ने [illegible] अनुसार [illegible] का बाहुल्य [illegible] निरूपित किया है जिनको भोजन प्राप्ति द्वारा करना था [illegible] की संख्या रहती थी।[2] कवि [illegible] का मात्र एक भाग [illegible] का निरूपित किया है जो उनको भिक्षा के लिए प्रार्थना करते और [illegible] से भोजन प्राप्त करते थे।[3] [illegible] भी भिक्षुक [illegible] और [illegible] स्वीकार किया जा सकता। [illegible] और [illegible] भी परिलक्षित करते हैं [illegible] प्रगट की है।[3] डा० गायत्री विद्यालंकार ने भी मुगलकाल के मुगलराजाओं की [illegible] और विलास-प्रियता का भी वर्णन किया है कि उस समय स्थान-स्थान पर [illegible] रहते थे जिनमें से अधिक संख्या [illegible] द्वारा [illegible] मुगल [illegible] बाद निर्धारित जीवन [illegible] होता था [illegible] थे। महाराज [illegible] द्वारा [illegible] थे जिनमें अंधे पंगु और बधिर लोग भोजन प्राप्त करते थे।[4] [illegible] द्वारा उक्त वृत्ति की प्रवृत्ति का विद्यापति[5] और भूषण[6] ने भी उल्लेख किया है।

(घ) दुर्भिक्ष—जैसा कि पहले कहा जा चुका है भारतीय कृषि-व्यवस्था की कमजोरी यह थी कि किसानों के लिए वर्षा पर निर्भर रहना पड़ता था। इसमें भी खरीफ की फसल के लिए वर्षा अत्यावश्यक रहती थी जिसके अभाव में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ जाते थे। कवि [illegible] इसी प्रकार के [illegible] संवत् [illegible] में पड़े [illegible] का मर्मांतक विवरण दिया है— आषाढ़ मास में कृषकों की निगाह आकाश की ओर लगी रही किन्तु एक बूँद तक न गिरी। जब श्रावण और भाद्र मास भी इसी प्रकार बिना वर्षा के निकल गये तो प्रजा में खलबली मच गई।[8] अन्न की कमी के कारण व्याकुल लोग अभक्ष्य भक्षण करने लगे। पति पत्नी को और पत्नियाँ स्व पतियों का साथ त्यागने लगीं[9] तथा अन्न की कमी से माता पिता निष्ठुर होकर अपनी सन्तानों तक को बेचने लगे।[10] जिस दिशा में देखो उधर नर-कंकाल ही दिखाई देते थे।[11] जल और अन्न के अभाव में पशु पक्षी भी कैसे जीवित रहते अतः वे भी इधर उधर पलायन कर गये।[12] ज्यों ज्यों इस दुष्काल की अवधि बढ़ती रही उसी के अनुरूप प्रजाजनों का भी कष्ट बढ़ता गया और अन्ततः धनवान लोग भी अपना धैर्य खो बैठे।[13]

---

१ से २—दे० 'रा० वि०, १८।१०७ हु० रा० ३७८

३ It is estimated that there are in India 800 000 Muslim Fakirs and 1 200 000 among the idolaters, which is an enormous number — Travels in India by J B Tavernier, Vol II, p 139

४ से ६—दे० 'हु० रा०, ३४७ ४८, कीर्ति०', प० ७०, 'शि० भू०', छ० २७

७ से १३—दे० रा वि० ८।११३ से ८।१२१

अनाज या तो किसी भी भाव पर न मिलता था और यदि मिलता भी था, तो रत्न के समान मूल्य पर।[१] प्रजा से आचार विचार और शुचि, सत्य, संतोष आदि मानव गुण तिरोहित हो गये।[२] नर नारी किसी का झूठा ग्रास तक प्राप्त करने के लिए लालायित रहते थे और चाहे जिसको माई-बाप कहकर उससे भोजन की याचना करते फिरने लगे।[३] पेड़ पौधों के पत्ते और फल फूल का तो कहना ही क्या लोगों ने उनकी छालें और जड़ों तक को नहीं छोड़ा।[४] दशा यहां तक बिगड़ी कि यदि बच्चों का कोई खरीदने वाला नहीं मिलता था, तो निष्ठुर मां-बाप उन्हें क्रन्दन करते छोड़ जाते थे।[५] चारों दिशाओं में मृत व्यक्तियों के शवों की बदबू से सांस लेना कठिन हो गया,[६] और कुछ दशाओं में तो मानव स्वजाति के मानवों का ही भक्षण करते हुए रौरव नरक का दृश्य उपस्थित करने लगे।[७] अन्ततः प्रजा रक्षण की कामना से महाराज राजसिंह ने राजसर नामक वृहदाकार तालाब का निर्माण कार्य आरम्भ कराया, जिससे प्रजा जनों को जीविकार्जन का माध्यम मिल सका।

दुर्भिक्ष का कवि मान प्रदत्त विवरण रंचमात्र भी अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं है। प्रत्यक्षदर्शी यात्रियों के विवरण से इसका चित्र कुछ कम ही भयावह है। अब्दुल हामिद लाहौरी ने सन १६३० ३२ ई० में गुजरात में पड़े दुर्भिक्ष के विषय में लिखा है कि—लोग दूसरे मनुष्यों का ही नहीं, अपनी संतान तक का मांस खाने लगे थे।[८] सन १५५६ ५७ में आगरा के समीपस्थ प्रदेश में पड़े दुर्भिक्ष का बदायूनी ने भी ऐसा ही चित्रण किया है।[९]

राजकीय आय के प्रमुख स्रोत

व्रजभाषा में वीरकाव्य से राजकीय आय के छः प्रकार के स्रोतों का अववोधन होता है—

(क) अन्य नरेशों से भेंट या पेशकश मिलना।
(ख) संधिवार्ता के समय दण्ड रूप में लिया गया द्रव्य।
(ग) शत्रु नगरों और सैनिक शिविरों की लूट पाट से अधिगत हुआ द्रव्य।
(घ) शत्रु देशों से चौथ वसूल करना।
(ङ) भूमिकर और जगाति (चुंगी) आदि।

१ से ७—दे० रा० वि०' ८।१२० से ८।१२१, 'ए० वि०', ८।१२५ से ८।१३।

८ Destitution at length reached such a pitch that men began to devour each other and the flesh of a son was preferred to his love — An Advanced History of India, Vol II p 472

९ × × × and Badauni with his own eyes witnessed the fact that men ate their own kind and the appearance of the famished sufferers was so hideous that one could scarcely look upon them —Ibid, p 571

(च) विधर्मियों पर राज्य की ओर से लगाये गए विशेष कर।

(क) करद नरेशों से मिली भेंट या पेशकश—प्रस्तुत माध्यम शक्तिशाली राज्यों की आय का साधन था जिन्हें उनके अधीनस्थ नरेश भेंट या पेशकश चुकाते थे। इसके चुकाने में आनाकानी करने वाले नरेशों से यह राशि बलात वसूल कर ली जाती थी। यदा कदा दिग्विजयार्थ या किसी सैनिक अभियान पर निकले नरेश वार्षिक भेंट या पेशकश भी वसूल करते जाते थे।[1] पृथ्वीराज रासो में महाराज विजयपाल अपनी दिग्विजय-यात्रा के समय बहुत से नरेशों से भेंट प्राप्त करते चित्रित किए गये हैं।[2] इसी भाँति महाराज वीसलदेव की भी दिग्विजय यात्रा के समय उन्हें अनेक नरेश भेंट अथवा पेशकश प्रदान करते हैं।[3] क्यामखाँ रासा में कवि जान ने अनेक भूमियों (जमींदारों) को पेशकश चुकाकर अपनी जमींदारियों की रक्षा करते प्रदर्शित किया है।[4] उसने ताजखाँ चौहान द्वारा कछवाहे निरबान तोमर और पवार शासकों से पेशकश लेने के तथ्य को भी लोक विश्रुत बताया है।[5] कवि सूदन ने अहमदशाह को बख्शी महाराज सूरजमल से दो करोड़ की राशि माँगते दिखाया है[6] जो वार्षिक कर ही रहा होगा। कवि मान ने महाराज राजसिंह को उनके अधीनस्थ अनेक छोटे शासकों से भेंट मिलने का चित्रण किया है।[7] कवि मान और चन्द्रशेखर ने भेंट या पेशकश के ही अर्थ में दण्ड शब्द का प्रयोग किया है। मान ने शाह औरंगजेब को अनेक नरेश दण्ड भरते प्रदर्शित किए हैं[8] जबकि चन्द्रशेखर के अनुसार, शाह अलाउद्दीन द्वारा लाख प्रयत्न करने पर भी, महाराज हम्मीर देव उसे दण्ड देने प्रस्तुत नहीं हुए थे।[9] आल्हखण्ड में अधीनस्थ नरेशों द्वारा प्रदान की जाने वाली भेंट को महाराज जयचन्द कुछ नरेशों से बलात् वसूल करते चित्रित किए गए हैं,[10] जबकि माड़ौ नरेश उन्हें वार्षिक भेंट न चुकाने के कारण उनसे भय त्रस्त प्रदर्शित किया गया है।[11]

(ख) सन्धिवार्ता के समय लिया गया द्रव्य—युद्ध में बन्दी बनाए गए नरेशों को मुक्त करते समय, अथवा सैन्यबल क्षीण नरेशों पर आक्रमण करके, उनसे दण्ड के रूप में अपार द्रव्य और युद्धोपकरणों की माँग रखकर भी राज्यकोष अभिवृद्ध किया जाता था।

पृथ्वीराज रासो में दिल्लीश्वर, शाह गोरी को बन्धनमुक्त करते समय उनसे कोटि हेममुद्राएँ, सात हजार अश्व और साठ हाथी दण्ड के रूप में प्राप्त करते हैं।[12] उसके अन्य प्रसंगों में भी शाह गोरी से लगभग इसी परिमाण में दण्ड वसूल किया

१ स १२—द०, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति' पृ० २२५, पृ० रा०', क्रा० १२५७।२११ १२५७।२१३, ८७।४२२, ८७।४२३, क्या० रा०, २२२, क्या० रा०', ५७० सु० च०, ३।११७, रा० वि०, ८।३६, वही १०।२७, 'हं० ह०, च० ५१, 'आ०' ४१७।२०, वही २४।४५, पृ० रा० क्रा० १११८।१३४

जाता है।[१] परमाल रासो म महाराज पथ्वीराज महोबे पर आक्रमण के समय महा० परमाल से 'पचास करोड' की माँग प्रस्तुत करते चित्रित किए गये है।[२]

सुजानचरित म भरतपुर राज्य पर आक्रमणार्थ आए आपामल्हार द्वारा, 'दो करोड' रुपये की माँग प्रस्तुत की जाती है।[३] उसम माग के अनेक शासक मल्हार राव को 'दाम' चुका कर अपन राज्यो की रक्षा करते प्रदर्शित किए गए हैं।[४] महाराज सूरजमल भी पराजय की सीमा को पहुँचे घासहरे दुग के अधीक्षक को दण्ड के रूप मे दस लाख रुपये तथा तोप और रहक्ला आदि युद्ध सामग्री देने के लिए विवश करते हैं।[५]

(ग) शत्रु नगरों और सनिक शिविरों की लूटपाट से अधिगत हुआ द्रव्य—शत्रु नगरों की लूट कराकर वहाँ से अनेक प्रकार के धन धान्य और सम्पत्ति उपलब्ध कर ली जाती थी। इसके साथ ही पराजित शत्रु के शिविरो की लूट मे भी खजाना, हाथी घोडे और शस्त्रास्त्र प्राप्त हो जाते थे। इससे राज्यकोष मे तो अभिवृद्धि होती ही थी, सना के लिए शस्त्रास्त्र और हाथी घोडे आदि की समस्या भी सुलभ जाती होगी। उसका कुछ अश सनिकों म वितरित करके, उनम और भी अधिक स्वामिभक्ति का विकास करने की भी चेष्टा की जाती थी।

महाराज पथ्वीराज क चामुडराय आदि सामन्त शाह गोरी की बेगमा के साथ जा रहे खजाने का लूट लते हैं।[६] महाराज का इसम अवश्य ही कुछ अश प्रदान किया गया होगा।[७] पराजित शाह गोरी के सामान की लूट तो कई प्रसगो म प्रदर्शित की गई है।[८]

राजविलास म शत्रु नगरो की लूट क लिए, सेना के साथ कुछ एसे विशेषज्ञ भी ल जाने की प्रथा दिखाई गइ जो भूमि को सूघकर इस रहस्य का उदघाटन कर देते थे कि, जमीन म धन कहाँ पर गडा हुआ है।[९] एस ही व्यक्तियो की सहायता से महाराज राजसिह की सेना ईडर दुग से अपार मात्रा म सोना, चादी और सिक्के

---

१ स ५—दे०, 'प० रा०, का० ६१२।१५०, ६३६।१४४, १५५।१२६६ १६७४।६४६ 'पर० रा०' २३।४६, 'सूदन रत्नावली', पृ० १११ 'सु० च०, ७।२।६, वही, ५।३।११

६ गहि बेगम मव सत्थ, लुट्टि लिय खास खजीना।

—पृ० रा०', मो० ३।३०४।१३

७ मुगल शासक युद्धो की लूट का १।५ भाग लिया करते थे, जिसे खम्स की सज्ञा दी जाती थी। — दे० एन एडवास्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग २, पृ० ३८३, ऐसी ही कुछ प्रथा हिन्दू नरेशो म व्याप्त रही होगी। वीरकाव्य मे व युद्ध म लूटी सामग्री म से उपयोगी उपादानो का चयन करते दिखाए गए हैं।

—शोधक

८ से ९—दे०, प० रा०' का० १६७४।६४५, १५५०।६५, 'रा० वि०', १५।२५,

लूटकर लाते हैं।[1] शत्रुविनाश में कई प्रसंगों में युद्ध शिविरों से मसाले, रत्नादि तथा गज, अश्व, ऊँट और खच्चर आदि की भी लूट दिखाई गई है।[2] उसमें इस तथ्य पर भी प्रकाश डाला गया है कि, लूट की सामग्री सैनिकों द्वारा महाराज के सम्मुख प्रस्तुत की जाती थी[3] जिसमें से वे उत्तम गज और अश्व आदि को अपने लिए पसन्द कर लेते थे। शेष सामग्री सैनिकों में वितरित कर दी जाती थी।

भूषण ने महाराज शिवाजी द्वारा सूरत नगर से हीरा मणि और माणिक्यों की लाखों पालकियाँ लूटकर ले जाने का उल्लेख किया है[4] जिससे लूट के मूल्य का अनुमान किया जा सकता है। उन्होंने महाराज द्वारा करनाटक से हुई लूटों का भी उल्लेख किया है[5] जिसका इतिहास कल्पित योग से ही सार है। कवि भूषण ने स्त्रियों की लूट का अति विस्तृत वर्णन किया है जिसमें अनेक प्रकार के आभूषण लूटकर ले जाए जाते हैं।[6] श्रीधर ने भी फर्रुखसियर की सेना का युद्ध की लूट में हाथी, घोड़े, ऊँट, रथ बहुमूल्य वस्त्र, तम्बू, सुतुरनाल और निशान आदि सामग्रियों मिलने का चित्रण किया है।[7] दास ने हाथी घोड़े, ऊँट और नगाड़ों को राजा के अपने लिए रख लेने [illegible] जबकि शेष सामग्री सैनिकों में वितरित कर दी है।[8]

(घ) शत्रु देशों से चौथ वसूल करना—कवि भूषण ने महाराज शिवाजी का मुगलों से चौथ लेने[9] तथा शत्रु प्रदेशों से हासिल उगाहना चित्रित किया है।[10] चौथ में शत्रु प्रदेश की भूमिकर की आय का चतुर्थांश प्राप्त किया जाता था।[11] हासिल उगाहना से भूषण का इंगित कदाचित् सरदेशमुखी नामक कर वसूल करने की ओर रहा है। महाराज शिवाजी महाराष्ट्र के मुख्य उन प्रदेशों से जो मुगलों के अधीन थे यह कर प्राप्त किया करते। यह इनमें चौथ के अतिरिक्त भूमिकर का दस प्रतिशत अंश और प्राप्त किया जाता था।[12]

छत्रप्रकाश में महाराज छत्रसाल के ये कथन कि जो उमराव हमें चौथ नहीं देंगे, उनकी जागीरों में छप्पर तक नहीं रहने दिया जायगा जिससे ऊजड़ देशों में उमराव अमल (भूमिकर) क्या वसूल करेंगे[13] प्रमाणित करते हैं कि चौथ लेना राज्य कोष अभिवृद्ध करने की एक ऐसी विधा थी—जिसमें हानिवश शत्रु से उसके भूमि कर का चतुर्थांश प्राप्त करके उसकी प्रजा की लूट-पाट नहीं की जाती थी। महाराज छत्रसाल की कर प्रणाली भी ऐसी ही प्रदर्शित की गई है—चौथ न देने वाले उमराव प्रदेशों पर वे आक्रमण करके लूट पाट करते हैं और उसमें आग लगा देते

१ से ५—'रा० वि०' १६।२७, वही, १८।६६ वही ११।१४ वही १८।६६ भू० ग्र० स्फु०' छं० ५५ 'शि० भू० २४ २५

६ से ११—द०, सु० च० ६।२।३५।४२, जग०' पृ० ६३६ ४०, वही पृ० ६४५ ४६ भू० ग्र०' स्फु० ७, शि० भू० ३४

१२ एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया, भा० २ पृ० ५१६

१३ छ० प्र०, १८।४

हैं।[1] गौलतखां द्वारा स्वयं को, महाराज छत्रसाल के पिता का मित्र बताने पर भी, वे उसकी जागीर के लूटे हुए सामान को तभी लौटाते हैं, जब चौथ चुकाने का वचन ले लेते हैं।[2] छत्रप्रकाश में शाह औरंगजेब को इस दृष्टि से बड़ा दुश्चिंता ग्रस्त दिखाया है कि महाराज चंपतिराय का सामना न करके, उनके उमराव उनको चौथ चुकाने की दुष्प्रवृत्ति का आश्रय लेते हैं।[3]

(ङ) भूमिकर और जगाति (चुंगी) आदि तथा निवश व्यक्तियों की सम्पत्ति—भूमिकर और चुंगी आदि भी राजकीय आय के प्रमुख स्रोतों में से एक थे। पृथ्वीराज रासो में भूमिकर की मात्रा तो निर्दिष्ट नहीं की गई है, किन्तु यह भाव व्यक्त किया गया है कि जैसे माली वृक्ष की डाल को न काटकर, उसके पुष्प और फलों का संचयन करता है उसी रीति से नरेशों को स्वप्रजा से कृषि कर लेना चाहिए।[4] इससे स्पष्ट होता है कि महाराज पृथ्वीराज आदि नरेश स्व प्रजा से अल्प मात्रा में ही कर वसूल करते होंगे। वह कदाचित् स्मृतियों के इस निर्देश के अनुकूल रहा होगा कि भूमिकर उत्पादन का छठा भाग होना चाहिए।[5] विद्यापति ने असलान नामक शासक को तिरहुत में भूमिकर उगाहते चित्रित किया है।[6] गोरेलाल ने भी उजड़ी हुई प्रजा से अमल वसूल न हो पाने का उल्लेख किया है।[7]

केशवदास जी ने टोडरमल के निधन पर सार जग के सुखी होने का उल्लेख करके[8] प्रकारान्तर से अकबर काल में भूमिकर की मात्रा अधिक होने के तथ्य पर प्रकाश डाला है। ऐतिहासिक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि अकबर-काल में भूमिकर उत्पादन की मात्रा का एक तिहाई भाग था[9] और भूमिकर की व्यवस्था में टोडरमल का प्रधान हाथ था।[10] अर्थात् अन्य करों में से पृथ्वीराज रासो में साँभरि-झील के

---

१ से ४—दे० क्रम छ० प्र०' १७।४६ वही, २२।६, वही ५।४, पृ० रा०', का०, २२६६।६६५

५ से ७—द० 'प्राचीन भारतीय शासन पद्धति', पृ० १६६, कीर्ति० पृ० ५८, छ० प्र० १८।४ १२।७

८ टोडरमल तुव मित्त मरे सबही सुख सायो। —वी० च०' ३१।६४

९ 'The demand of the State was fixed at one third of the actual produce which the ryots could pay either in cash or in kind'
— An Advanced History of India Vol II, p 561

१० टोडरमल की भूमि व्यवस्था की यद्यपि प्रशंसा की जाती है किन्तु शाह अकबर ने एक 'करोरी' नामक योजना चालू की थी जिससे किसानों को कष्ट हुआ था—But the Kroris soon grew corrupt and their tyranny reduced the peasants to great misery —वही, पृ० ५६१
अतः केशव का निर्देश इस दृष्टि से उचित प्रतीत होता है कि जनता ने शाह अकबर के स्थान पर टोडरमल को ही अपने दुःखों का मूल कारण समझा होगा। —शोधक

पानी के प्रयोग पर लिये जाने वाले कर, तथा गुजरात के बन्दरगाहों पर लगाये गये कर से पर्याप्त आमदनी होने का उल्लेख किया गया है। प्रथम कर के वसूल करने का अधिकार दिल्लीश्वर द्वारा रावल समर विक्रम को सौंपा जाता है।[1] महाराज भोलाभीम बदरगाह से प्राप्त किए जाने वाले कर का अधिकार कयमास को प्रदान करने का प्रलोभन देकर उसे स्वपक्ष में मिलाने की चेष्टा करते हैं।[2] राजविलास में नगर-प्रवेश के समय ली जाने वाली जगाति की उदयपुर में बड़ी सतर्क व्यवस्था दिखाई गई है। जगाती रात्रि दिवस चौकन्ने रहते थे और छिपकर जाने की चेष्टा करने वालों को पकड़कर उनसे बलात दान या जगाति लेकर ही छोड़ते थे।[3] डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने अन्न और नमक पर लगाई जाने वाली चुंगी को नागरिकों से वसूल किये जाने वाले करों में प्रमुख स्थान होने का मत व्यक्त किया है।[4]

निवंश व्यक्तियों की सम्पत्ति पर भी राज्य का अधिकार माना जाता था। इस तथ्य पर कवि केशव ने प्रकाश डाला है।[5] महाराज पृथ्वीराज द्वारा खट्टूवन से किसी पूर्वकालीन नरेश का निकलवाया गया धन भी इसी श्रेणी में आता है। इसमें निकले द्रव्य के मूल्य का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि उसे ग्यारह हाथियों पर लादकर लाया जाता है।[6] कवि चन्द ने कन्नौज में जिन द्यूत-ग्रह और वेश्यालयों की तथा विद्यापति ने जौनपुर में वेश्यालयों की स्थिति दिखाई है, उनसे भी राज्य का कर प्राप्त होता होगा।[7]

(ख) जजिया और तीर्थ-कर—राजकीय आय के सन्दर्भ में जजिया और तीर्थ कर का भी उल्लेख है, जो मुस्लिम शासक हिन्दुओं के प्रति अनुदार नीति पर आधृत थे। उदारचेता सम्राट अकबर और जहाँगीर ने तो हिन्दुओं को इनसे मुक्त

---

१ 'नितम फिरत भावरी। दयौ समरि उदक्कर। — पृ० रा०, का० ६६२।१५६

२ 'मध्य पहर जमद्धि, द्रव्य आव बहु बदर।
सो अप्पौं चालुक्क, कार कयमास इन्द्रधर॥
— पृ० रा०, मा० २।४६३।८४

३ से ५—दे० रा० वि०' २।१३४ द मुगल एम्पायर, पृ० ५१७, वी० च०' १।६३

६ पृ० रा०, का० ७५६।४८३

७ (क) प्रोफेसर अलतेकर ने प्राचीनकाल में जुआरियों और वेश्याओं को दिए गए अनुमति पत्रों से राज्य को अच्छी आय होने का उल्लेख किया है।'
— प्रा० भा० शा० प० पृ० २१०

(ख) डा० सत्यकेतु विद्यालंकार के अनुसार वेश्या एक दिन की आमदनी का दुगुना तथा जुआरी जीत धन का पाँच प्रतिशत राज्य को कर के रूप में प्रदान करते थे। —प्रा०, भा० स० और उसका इति०, पृ० २२७

कर दिया था, किन्तु कुछ काल के लिए शाहजहाँ तथा बाद में शाह औरंगजेब ने उन्हें पुनः लागू कर दिया था।[1] गोरेलाल ने शाह औरंगजेब द्वारा हिन्दुओं पर ऊँची दर का जजिया और तीर्थ कर लगाकर, उन्हें व्यथित करने का चित्रण किया है।[2] राजविलास में शाह औरंगजेब को, महाराज राजसिंह के प्रति इस दृष्टि से रुष्ट दिखाया गया है, कि उन्होंने 'देवल-कर' बंद करवाकर, उसे प्रतिवर्ष दो सहस्र दीनार का घाटा पहुँचाया है।[3] डा० ईश्वरीप्रसाद ने प्रयाग आदि तीर्थों में जाने वाले हिन्दुओं से औरंगजेब काल में छः रुपये वसूल करने की प्रथा का उल्लेख किया है।[4] फ्रेंच यात्री बर्नियर ने सूर्य ग्रहण आदि अवसरों पर मेला के आयोजन की शाह औरंगजेब द्वारा सभी अनुज्ञा प्रदान करने का उल्लेख किया है, जब उन्हें एक लाख रुपया (बर्नियर ने ये रुपये पचास हजार क्राउन्स के बराबर बताये हैं) की थैली भेंट कर दी जाती थी। इससे अनुमान किया जा सकता है कि धर्म प्रवण भारतीयों में तीर्थ-कर और जजिया के रूप में मुगल शासकों को निश्चय ही पर्याप्त आय होती होगी।

निष्कर्ष

सामाजिक प्रतिष्ठा के निर्धारण में वित्त भी एक महत्त्वपूर्ण कारण स्वीकार किया जाता था। अर्थोपार्जन के स्रोत कृषि, उद्योग धन्धे और व्यवसाय, व्यापार, खानों के ठेके लेना, सूद पर धन देना, कलाओं के माध्यम से सामाजिकों का मनोरंजन करना तथा भिक्षाटन थे। आलोच्यकाल में अर्थोपार्जन कृषि-कार्य सबसे प्रमुख साधन था। कृषि की दशा समुन्नत थी। फलादि के लिए नाना प्रकार के फलों के वृक्षों वाले बाग लगाने का बहु प्रचलन था। उद्योगों में से वस्त्र वयन, शस्त्रास्त्र का निर्माण, इत्र-व्यवसाय विशेष समुन्नत थे। मणि मुक्तादि की खानों के ठेके लेना तथा स्वर्ण का शुद्ध करने का व्यवसाय भी पर्याप्त उन्नत था और देश एक प्रकार से नवनिधियों का आकार था। कलाओं के माध्यम से जीविकार्जन करने वालों में से वेश्याओं और कवियों की स्थिति समृद्ध थी। नगरों से भोजन प्राप्त करने अथवा भिक्षाटन से निर्वाह करने वालों की भी बहुसंख्या थी।

व्यापार की दृष्टि से उस समय के नगरों की दशा संतोषप्रद मिलती है। बाजारों में क्रेता और विक्रेताओं की बड़ी भीड़ भाड़ रहती थी। वस्तु विनिमय के

---

१ दे०, 'द मुगल एम्पायर', डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पृ० ५३३ ३८

२ महंगे कर तीरथनि लगाय। बढ़ देवलि निदर ढहाय।
घर घर बांधि जजिया लीन। अपने मन भाये सब कीन।
—'छ० प्र०' ११।३

३ दई दैत देवलयों, नालि अधन सु निरंतर।
दोइ सहस दीनार, इन सलल उर अंतर। —'रा० वि०', १०।१९

४ दे० 'मुगलकालीन भारत का संक्षिप्त इति०' पृ० ४१४

हेतु हून, दीनार, मोहर या अशर्फी, रुपया, दाम और कौड़ी के अतिरिक्त गुलाम-दासियों के बदले भी वस्तुएँ क्रय करने का प्रचलन था। आयात की प्रमुख सामग्री अश्व तथा शस्त्रास्त्र होते थे जबकि निर्यात में वस्त्रों की बहुलता रहती थी। युद्धादि के समय तो वस्तुएँ काफी महँगी हो जाती थीं, जबकि साधारणतया वे सस्ती रहती थीं। समय पर वर्षा न होने की दशा में ऐसे भयंकर दुर्भिक्ष पड़ जाते थे कि गर्भिणि बच्चों तथा वृक्षों की छाल आदि ही नहीं अपितु मानव माँस भक्षण तक की स्थिति पैदा हो जाती थी।

राजकीय आय के साधन स्थूलतः पाँच प्रकार के थे। केन्द्रीय शासन को करद नरेशों से वार्षिक रूप में भेंट या पेशकश मिलती थी। आय-वृद्धि की कामना से शत्रु-नगरों की लूट करा ली जाती थी तथा सैनिक शिविरों की लूट द्वारा भी अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र और अन्य सामग्री प्राप्त करने का प्रयास किया जाता था। पराजित शत्रु से दण्ड रूप में अथवा आक्रमण का भय दिखाकर भी अपार सम्पत्ति और युद्धोपयोगी उपकरण उपलब्ध किये जाते थे। भूमि-कर वस्तुओं पर लगाई गई जगाति और निर्वंश मृत व्यक्तियों की सम्पत्ति से भी राज्यों को पर्याप्त आमदनी हो जाती थी। मुगल शासक हिन्दुओं पर जजिया और तीर्थ कर लगाकर भी धन संचय किया करते थे।

सारांश यह है कि आलोच्यकाल में राजा और प्रजा दोनों ही आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न थे। आकस्मिक दुर्भिक्ष को छोड़कर साधारणतया जन जीवन सुख समृद्धि से परिपूर्ण था। कृषि और उद्योग धन्धों से इतना उत्पादन होता था कि युद्धकाल में भी जन जीवन में किसी प्रकार की विशृंखलता नहीं देखी जाती। युद्धकाल में सेना के समक्ष कभी-कभी ऐसी विपन्नता तो आ जाती थी कि उन्हें मोहरें देकर सामान्य वस्तुएँ क्रय करनी पड़ती थीं किन्तु जन सामान्य में युद्धों का कोई कुपरिणाम दृष्टिगत नहीं होता। कोई भी नरेश आर्थिक विपन्नता की स्थिति में नहीं दिखाया गया है। शत्रु के आक्रमण या युद्धों की विषम-परिस्थितियों में राजकोष रिक्त होता तो उसका कोई उल्लेख आलोच्य साहित्य में अवश्य मिलता किन्तु ऐसे संकेत कहीं नहीं मिलते। इससे प्रतीत होता है कि आलोच्यकाल में राजा और प्रजा दोनों ही आर्थिक विपन्नताओं से परे थे। समग्र समाज धन धान्य के वैभव से भरपूर था।

❑

षष्ठ अध्याय

राजनीतिक स्थिति

ब्रजभाषा के वीरकाव्य में समाज के राजनीतिक पक्ष से सम्बद्ध निर्देश प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। विवेचन सौकर्य की दृष्टि से ये चार उपवर्गों में रखे जा सकते हैं—(क) शासक और शासित का अन्योन्य के प्रति दृष्टिकोण, (ख) शासन संचालन में सहायक मंत्री और अधिकारी गण, (ग) सैन्य व्यवस्था, (घ) युद्धों के कारण तथा दंड-व्यवस्था आदि अन्य उल्लेख्य तथ्य।

(क) शासक और शासित का अन्योन्य के प्रति दृष्टिकोण—आलोच्यकाल के अधिकांश शासकों का अपनी प्रजा के प्रति पिता के समान हितकर दृष्टिकोण था। वे उसके सुख दुःखों के प्रति प्रायः पूर्ण जागरूक रहते थे और आततायियों से स्व प्रजा की रक्षा करना अपना धर्म समझते थे। प्रजाजन शासकों में ईश्वर का अंश विद्यमान समझते थे तथा उनके मुख दर्शन और नामस्मरण को पुण्यकर समझते थे। राजनीतिक उथल पुथल और अत्याचारी नरेशों के प्रति प्रजा का दृष्टिकोण उदासीनता का नहीं था।

(१) नरेशों द्वारा प्रजा की हित चिन्ता—पृथ्वीराज रासो में महाराज बीसलदेव बालुकाराइ के ग्राम और नगरों को लूट लेते हैं तथा प्रजाजनों को बन्दी बना लेते हैं[1] जिसकी भर्त्सना करते हुए बालुकाराय उनके इस कृत्य को हिन्दू नरेशों की मर्यादा के विरुद्ध बताते हैं और उन पर प्रत्याक्रमण कर देते हैं।[2] भोराभीम द्वारा स्वप्रजा के उत्पीड़न का वृत्तान्त पाकर जैतराव अपने पिता से कहते हैं कि हमारी प्रजा के इस भाँति दर दर भटकने से हमारा बड़ा अपयश फैलेगा अतः हम क्षुधा तृषा तथा अन्य दुःखों की चिन्ता करते हुए उसकी रक्षा करनी चाहिए।[3] इन्द्रावती के पिता भीमदेव से युद्ध के इच्छुक महाराज पृथ्वीराज के सामन्त उनके ग्रामों में आग लगाना और लूट पाट करना आरम्भ कर देते हैं जिनकी रक्षा के लिए वे तुरन्त ही युद्धारम्भ कर देते हैं।[4] महाराज पृथ्वीराज और परमर्दिदेव के मध्य वैमनस्य का कारण भी एक प्रान्-

१ सं ४—२० २ पृ० रा० का० ८६।४३८ ३ वही ६०।४४४ ४ पृ० रा० मो० २।४२७।१५ वही, १०२०।२५

मालिन की पुकार थी। दिल्लीपति के सनिक महोबे में माली को मार डालते हैं। मालिन जब इसकी फरियाद महाराज परमाल के पास ले जाती है तो उनके आदेश से वे सब सनिक मार गिराये जाते हैं।[१] इन सनिकों के साथ महाराज पृथ्वीराज की गुनमजरी नामक दासी भी मारी जाती है। दिल्लीश्वर सनिकों के साथ निरपराध गुनमजरी की भी हत्या किए जाने का वृत्तान्त पाकर दिल्लीश्वर के क्रोध का पारावार नहीं रहता और वे प्रतिशोध के लिए महोबे पर आक्रमण कर देते हैं।[२] युद्धाग्र माता कानी करने वाले महाराज परमाल भी जब स्व प्रजा पर चामुडराय द्वारा अत्याचार करने का समाचार सुनते हैं तो तुरन्त ही आल्हा ऊदल को उसका सामना करने भेज देते हैं।[३]

क्यामखाँ रासा में जममाल पवार और नाहरखाँ के मध्य होने वाला युद्ध प्रजा के उत्पीडन पर आधृत दिखाया गया है।[४] हम्मीर रासो में महाराज हम्मीरदेव की सर्वाधिक चिन्ता इसी तथ्य की दिखाई गई है कि शाह अलाउद्दीन के हाथों मेरी प्रजा का किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचने पाये।[५] छत्रप्रकाश में महाराज चपतिराय सुजान सिंह से बुन्देलखण्ड की दीन हीन प्रजा को शाहजहाँ के अत्याचारों से बचाने के लिए मत्रणा करते प्रदर्शित किए गये हैं।[६] सुजानचरित में महा० सूरजमल नवाब सलावतखाँ के पास निवेदन पहुचाते हैं कि आप मुझसे चाहे जसी सेवा लीजिए किन्तु मेरी प्रजा को मत सताइये।[७] आल्हखण्ड में ऊदल द्वारा अपमानित बाँदी जब माहिल से यह फरियाद करती है कि आपके राज्य में प्रजा की इज्जत भी सुरक्षित नहीं है तो वे बनाफलों के प्राण-पण से विद्वेषी बन जाते हैं और उनके विनाश के लिए अनेक प्रकार के षडयत्र रचते हैं।[८] आल्हखण्ड में अन्यत्र भी इस तथ्य पर प्रकाश डाला गया है कि राजा या रानी द्वारा प्रजा को किसी भी प्रकार का कष्ट पहुँचाने पर उनका जगत में उपहास होता है।[९]

राजविलास में सवत सत्तरह सौ सत्तरह में पडे भयकर दुर्भिक्ष का चित्रण मिलता है। इसमें प्रजा की दशा इतनी बिगड जाती है कि पति पत्नी एक दूसरे का तथा माता पिता सन्तति का साथ छोड देते हैं। वृक्षों की छाल आदि भी खाने को शेष न बचने पर चारों दिशाओं में नर ककालों का जाल बिछ जाता है। महाराज राजसिंह से स्व प्रजा का कष्ट सहन नहीं होता। वे राजकोष से प्रतिदिन एक सहस्र दीनार व्यय करते हुए सात लाख व्यक्तियों को रोजगार प्रदान कर उनके भरण पोषण का प्रबन्ध करते हैं। कृतज्ञ प्रजाजनों द्वारा उनके चिरजीवी होने की कामना की जाती है।[१] प्रजा का सम्यक सरक्षण और प्रतिपालन आदर्श नरेशों के आवश्यक चारित्रिक गुणों के रूप में समादृत थे। इन गुणों से युक्त नरेशों को ध्यान में रखकर वीरकाव्य प्रणेताओं

१ स १०—दे० प०रा० का० २५०६।१४ वही, २४४५।२६५, वही २५५३।१६०, क्या० रा० ६०३ ६०४ ह० रा० छ० ६६०, छ० प्र०' ५।१ सु० च०', ३।१।५, 'आ०' ३४।१६ वही, ५७१।१८ १६ 'रा० वि०' ८।१३७

न जन धारणा को ही मुखरित किया है।[१]

(२) प्रजा द्वारा शासकों में दवी ग्रंश मानने की धारणा—पृथ्वीराज रासो म वेदों का साक्ष्य देते हुए नृप म ईश्वर का ग्रंश स्वीकार किया गया है[२] तथा महाराज पृथ्वीराज बारंबार वे ग्रवतार बताये गय हैं।[३] रतनबावनी म महाराज रतनसेन भगवान राम के पायद[४] तथा वीरचरित्र म महाराज वीरसिंह देव काशीश्वर[५] ग्रौर ईश ग्रंशावतार की मनाग्रों म ग्रभिहित किय गए हैं।[६] राजविलास म महाराज जगतसिंह एकलिंग क ग्रवतार बताए गए हैं,[७] जबकि राजसिंहजी को कहीं एकलिंग क ग्रवतार[८] ग्रौर कहीं राम, शंकर, ब्रह्मा, कृष्ण ग्रौर यमराज ग्रादि के विशेषणों म विभूषित किया गया है।[९] भूषण ने महाराज शिवाजी राम,[१०] ग्रौर कृष्ण[११] के ग्रवतार बताए हैं ग्रौर कहा है कि वे धराधाम से म्लेच्छों का उन्मूलन करन क लिए ग्रवतरित हुए हैं।[१२]

हिन्दू नरेशों की भाँति मुस्लिम बादशाहों म भी ईश्वर या खुदा का ग्रंश विद्यमान समझने की धारणा पर प्रकाश डालने वाले उल्लेख मिलते हैं। कवि जान न दौलतखाँ में जगत-स्रष्टा की ज्योति ग्रंतर्निहित बताई है।[१३] हम्मीर रासो म शाह ग्रलाउद्दीन को दुनिया का दूसरा खुदा बताते हुए[१४] वे इसी दृष्टि स ग्रवध्य घोषित किय गय हैं।[१५]

नरेश ग्रौर बादशाहों को ईश्वर का ग्रवतार मानने के साथ-साथ उनके मुख-दर्शन ग्रौर नाम स्मरण को भी ग्रतीव कल्याण प्रद समझा जाता था ग्रतः प्रातःकाल नृप मुख दर्शन करने ग्रौर उनका नाम जाप करने की परिपाटी प्रचलित थी। पृथ्वीराज रासो म महाराज सोमेश्वर उषा काल म स्वप्रजा को झरोखे स दर्शन देते चित्रित किये गये हैं।[१६] वीरचरित्र म महाराज वीरसिंह देव के मुख दर्शन के लिए उनके सुत, सोदर, पत्नियाँ, मंत्री, रावत ग्रौर सामंत व्यग्र दिखाय गय हैं।[१७] राजविलास म महाराज जगतसिंह के मुखदर्शन से नव निधियों के प्राप्त होने,[१८] तथा महाराज राजसिंह के नाम-जाप से दारिद्र्य ग्रौर दुःखों का विनाश होकर सुख समृद्धि की प्राप्ति होने म विश्वास प्रकट किया गया है।[१९] मान न ग्रन्यत्र उनके मुख-दर्शन से विविध देवी देवताग्रों के दर्शन तथा तीर्थाटन स मनोवांछाग्रों की ग्रभिपूर्ति होने के सदृश सत्फल प्राप्ति की धारणा व्यक्त की है।[२०]

---

१ से २०—द०, रा० वि०', ८।१३८, 'प्र० वि', ११६-१७, सु० च०, १।२।१२, 'ग्रा०' २४४।१२, पृ० रा०', वा० २०६४।४०७, वही १३३।६७, 'वी० च०', २१।३१, वी० च०, १।३, 'रा० वि०' २।३८, वही, १।६०, वही, २।१७३, वही, ५।२३-२५, 'शि० भू०', १६६, वही, ७५, वही, ३४८, 'क्या० रा०, छ० ४६८, 'ह० रा०', छ० ६४२, 'ह० रा०', वाचनीव, प० १८२, 'प० रा०', मो० ३।१०।२१, वी० च०', २१।३२, ३३, 'रा० वि०', २।३८, वही, १।६१, वही, ५।२१

कवि गंग का शाह अकबर के विषय में कथन है, कि आज मैं आगरा नगर के सरगृह से *निकला था जिससे मेरी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो गई हैं।*[१] कवि तानसेन के शब्दों में शाह अकबर अनाथों के नाथ और कल्पवृक्ष हैं जिनके नाम-जाप से अष्टसिद्धि और नवनिधियों की प्राप्ति होती है।[२] तानसेन ने प्रातःकाल उनका मुख दर्शन करने से अलौकिक आनन्द की प्राप्ति,[३] इच्छाओं की शान्ति पापों के विनाश तथा जीवन के सफल हो जाने में विश्वास प्रकट किया है।[४]

कवि जान ने आलिफ खाँ दीवान की दरगाह के दर्शन करने से मनोवांछाओं की पूर्ति दुःखों के विनाश वित्त सन्तति और बुद्धि वृत्ति आदि सम्पदा के मिलन का उल्लेख किया है[५] तथा उनके नाम जाप से असाध्य व्याधियों के साध्य होने तथा दुश्चिन्ता और पापों का प्रक्षालन हो जाने में विश्वास प्रकट किया है।[६]

वीरकाव्य ग्रन्थों में उपर्युक्त विवरण को आश्रयदाता संकीर्तन का अतिरंजित चित्रण नहीं कहा जा सकता। नरेशों को ईश्वरावतार या उनमें ईश्वर का अंश मानने की धारणा अति प्राचीनकाल से और प्रायः विश्वव्यापक रही है। डा० राधाकुमुद मुकर्जी ने वर्णित मनुस्मृति में राजा के दैवी अधिकार की कल्पना न होते हुए भी उनमें मंत्रों द्वारा दैवी गुणों का अध्यारोप करने का प्रचलन दिखाया है।[७] मिस्र के फराओहों तथा बबीलोनिया और रोम के सम्राटों की तो मंदिरों में मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित करके पूजा किये जाने का उल्लेख उपलब्ध होते हैं।[८] डा० ब्रजनारायण शर्मा ने १२वीं शताब्दी से पूर्व की उत्तरभारतीय सामाजिक दशा पर प्रकाश डालते हुए नागभट्ट प्रथम और द्वितीय को विष्णु के अवतार तथा भोज प्रथम को आदिवाराह का अवतार मानने की धारणाओं का उल्लेख किया है।[९] अबुल फजल ने आईन ए अकबरी में सम्राट अकबर के मुख दर्शन को पवित्र मानकर दर्शनार्थ आने वाली भीड़ का उल्लेख किया है जबकि डा० सत्यकेतु विद्यालंकार ने तो अकबर काल में एक ऐसे दर्शनी सम्प्रदाय की विद्यमानता प्रदर्शित की है जिसमें दीक्षित व्यक्ति शाह अकबर का मुख दर्शन न कर लेने तक अन्न जल ही ग्रहण नहीं करते थे।[१०]

नरेशों के सम्बन्ध में व्याप्त उपर्युक्त दैवी भावना के विषय में यह तथ्य उल्लेख्य है कि उनके दैवी अधिकारों की मान्यता तभी तक थी जब तक उनका चरित्र उदात्त होता था और वे स्व प्रजा के कल्याण कार्यों में प्रवृत्त रहते थे।

इन गुणों से रहित तथा प्रजा संपीडक नरेशों को भी ईश्वरावतार मानकर

---

१ से ८—द० ग० क० २६६ अक० द० हि० का० ४१०।१३४, वही, ४१०।१३६ वही ४१२।१४५, क्या० रा०, ६.४ ६३६, वही ६३७, हिंदू संस्कृति, पृ० १०३ 'प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ० ६० ६१

९ मोगल लाइफ इन नादर्न इण्डिया, टंकित प्रति, पृ० ४

१० भार० सं० और उसका इति०', पृ० ४६०

उनके द्वारा दिए जाने वाले कष्टों को चुपचाप सहन करने का रासोकाव्य में चित्रण नहीं मिलता। प्रजा पर संकट का आना उसे सताकर (अधिक कर लेकर) राजा द्वारा अपने राजकोष की अभिवृद्धि करना, चरित्र के अध पतन के कारण प्रजा वर्ग की नारियों के साथ दुराचरण करना—ऐसे तथ्य थे जिनके लिए प्रजा विभिन्न माध्यमों में अपना रोष व्यक्त करती थी। पृथ्वीराज रासो में अन्याय से धन सचय करने वाले नरेशों को प्रजा का निवंश[1] मरने का शाप देना तथा चरित्र भ्रष्ट नरेश की राजधानी को छोड़कर अन्यत्र चले जाने की धमकी देना[2] प्रदर्शित करते हैं कि नरेशों के दबदबे के पीछे उनके दुराचारों को भी दबी मानकर सहन करने की धारणा व्याप्त नहीं थी। इस विषय में डा० अनन्तकर का यह कथन उपयुक्त प्रतीत होता है कि व्यक्ति के स्थान पर राजा के पद को दैवी समझा जाता था।[3]

(३) प्रजा की राज्य कार्यों के प्रति चेतना—पृथ्वीराज द्वारा राज्य के वीर और बुद्धिमान मंत्री कैमास का वध किए जाने का समाचार ज्ञात होता है, तो वे नगर की दुकानों को तीन दिवस तक बन्द रखकर अपना रोषाभिव्यक्त करते हैं।[4] इसके विपरीत जब उन्हें सम्राट पृथ्वीराज द्वारा प्रमुख वीर चामुंडराय की बेड़ियाँ उतारने का पता चलता है, तो वे उनके इस कार्य का अनुमोदन घर घर में उत्सव मनाकर और उनको धन्य धन्य कहकर प्रशंसा करके करते हैं।[5] सन्यास लेकर बद्रीनाथ गए हुए महाराज अनंगपाल को उनके प्रजाजन नवाभिषिक्त पृथ्वीराजजी के अत्याचारों की कहानी सुनाते हुए दिल्ली का राज्य पुनः हस्तगत करने के लिए विवश कर देते हैं।[6] महाराज वीसलदेव की चरित्र भ्रष्टता को उनके प्रजा जन निष्क्रिय रहकर सहन नहीं करते अपितु राज्य के प्रधान के माध्यम से उन्हें सूचित करते हैं कि यदि यही दशा रही तो हम यह राज्य छोड़कर अन्यत्र चले जायेंगे।[7] शाह गोरी के अंतिम आक्रमण के समय विलासमग्न महाराज पृथ्वीराज को युद्धार्थ सन्नद्ध करने का कार्य उनके प्रजा जनों की जागरूकता के कारण ही सम्पन्न होता है। वे एकत्र होकर राजगुरु के घर पहुंच जाते हैं[8] और आशीर्वादगर्भित निवेदन करते हैं कि या तो आप हमारी रक्षा के लिए महाराज को प्रबुद्ध करिए अन्यथा मृगछाला और कमंडल लेकर बद्रीनाथ का रास्ता

---

१ समार सकल तिन दुष्प पाइ। सब श्राप दीन इह अगनि आह।
बिन वंस हम इह तज देह। इय प्रजा सकल कहि अप्प ग्रेह।
—'पृ० रा०', का० ६८३।१० ११

२ दीरघ जन मिलि नयर के गए द्वार परधान।
वढि अचन नर नारि सब, नहीं रहै रजथान।
—वही, ८४।४१४

३ इस प्रकार हिंदू ग्रंथकारों ने राजपद को दैवी बताया है न कि किसी राजव्यक्ति को।
—'प्रा० भा० शा० प०, प० ८६

४ स ८—क्र०, 'पृ० रा०', का० १४६६।२५५ 'पृ० रा०', मा० ४।६६४।१७६, वही, २।८०६।२७, पृ० रा०, का० ८४।४१४, वही २१३१।१७४

लीजिए ।[१] शाह गोरी की पराजय के अवसर पर नागरिकों द्वारा विविध प्रकार से खुशियाँ मनाना[२] और महाराज पृथ्वीराज की पराजय के पश्चात उनका गौन मलीन विपन्नावस्था में अश्रुपूरित नेत्र और भरे कंठ से इतस्ततः भटकना और प्रश्न करने पर भी मुंह से कोई बात न निकालना भी[३] सिद्ध करते हैं कि, महाराज पृथ्वीराज के प्रजाजनों की अपने शासन के उत्थान-पतन में पर्याप्त अभिरुचि थी ।

सुजान चरित में महाराज सूरजमल द्वारा घासहर का दुर्ग घेर लेने पर वहाँ की प्रजा दुर्ग के अधिपति राव बहादुरसिंह के समीप जाती है और अपने कष्टों का कथन करके उन्हें संधि करने के लिए विवश कर देती है ।[४] इससे आगे संधि का भंग कर देने वाले राव बहादुरसिंह का साथ छोड़ते हुए उनकी प्रजा अपने शासक की निन्दा करती है और आक्रान्ता महाराज सूरजमल की दुहाई देकर, उनसे स्व रक्षा की प्रार्थना करती है ।[५] अन्यत्र दिल्ली के नागरिक अपने शासक महमदशाह को जो उनकी रक्षा न कर पाया था, धिक्कारते मिलते हैं ।[६] छत्रप्रकाश में महाराज चम्पतिराय की विजय के अवसर पर उनके प्रजा जन उन्हें बधाई देते हैं तथा आह्लाद मनाते हैं ।[७] राजविलास में विजेता बाप्पा रावल के स्वागत में उनकी प्रजा तोरणोत्सव मनाते दिखाई गई है ।[८] इसके विपरीत महाराज परमाल द्वारा आल्हा ऊदल को महोबे से निष्कासित करने पर महोबे की प्रजा अपनी भावी विपत्ति को दृष्टिगत करती हुई अश्रुपात करती है ।[९]

शासक और शासित सम्बन्धी उपयुक्त विवरण पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि शासक स्व प्रजा की रक्षा करना अपना एक आवश्यक कर्तव्य समझते थे। उन्हें प्राप्त प्रजा की रक्षा न करने पर लोक में उपहास होने का भय रहता था, अतः बहुत से प्रसंगों में किसी साधारण प्रजा जन के ही अपमान का बदला चुकाने की घटना दो राज्यों के मध्य एक पारम्परिक शत्रुता में परिणत हो जाती थी। प्रजा का शासकों के प्रति दृष्टिकोण मुख्यतया उन्हें ईश्वर के अवतार समझने का होता था। उनके मुख का दर्शन करने को पुण्यकर समझने की धारणा बहु प्रचार प्राप्त थी, जबकि कुछ सामाजिक उनके नाम स्मरण को भी भगवत स्मरण की तरह शुभफल प्रदाता समझते थे। हाँ शासकों के प्रति इतनी पूज्य धारणाएँ तभी तक व्याप्त रहती थीं, जब तक उनका चरित्र उदात्त होता था और वे विविध प्रकार की सामाजिक मान्यताओं के संरक्षक होते थे। इनके अभाव में प्रजा जन अनेक माध्यमों से अपना रोष व्यक्त करते थे। प्रजा राजनीतिक घटनाओं के प्रति उदासीन नहीं थी और विशेषतः चौहान नरेशों के शासन काल में तो पर्याप्त जागरूकता मिलती है।

---

१ से ६—दे० 'पृ० रा०', का० २१३३।१८३ वही, ६३०।१७६, वही २३८६।१५, 'सु० च० ५।३।१२-१३, ५।४।१६, ६।२।३१, 'छ० प्र०', ५।८, 'रा० वि०', १।२३३, 'आ०' ३७४

(ख) शासन-सचालन मे सहायक मत्री और अधिकारी गण

ब्रजभाषा म वीरकाव्य म उपलब्ध निर्देशो से शासन सचालन म निम्नलिखित मन्त्री और अधिकारियो के योगदान पर प्रकाश पडता है—

(क) रानियाँ—प्राचीनकाल की शासन व्यवस्था म रानियो की गणना मत्रि-परिषद् के रत्नियो म की जाती थी।[1] वीरकाव्य म किसी रानी के लिए 'रत्नी' शब्द का प्रयोग तो नही मिलता। किन्तु शासन सचालन मे उनका पर्याप्त योगदान दिखाया गया है, जिससे प्रतीत होता है कि राजमहिषी एक प्रकार से मत्री ही हुआ करती थी। महाराज पृथ्वीराज द्वारा महोबे पर आक्रमण करने के समय, महारानी मल्हना स्वपति को उनसे दो मास तक युद्ध स्थगित रखने का प्रस्ताव भेजने का परामर्श देती है[2] जो कार्य रूप म परिणत किया जाता है।[3] रूठे हुए आल्हा ऊदल को कनौज से वापस बुलाने का भार भी वे स्वय वहन करने चिन्तित की गई हैं।[4] सयोगिता विवाह के उपरान्त दिल्ली राज्य की सचालिका महारानी सयोगिता ही बन जाती है। महाराज पृथ्वीराज छ माह तक दरबार नही करते हैं[5] और वे अपनी दासियो का ऐसा कडा पहरा बठा देती हैं कि दिल्लीश्वर का स्वराज्य की किसी भी प्रकार की हल चल का समाचार नही मिल पाता।[6] उन्हे यह भी ज्ञात नही हो पाता कि शाह गोरी के आक्रमण का समाचार पाकर सहायता करने की कामना से उनके बहनोई रावल समर विक्रम बीस दिवस से दिल्ली के निकट आकर ठहरे हुए हैं[7] क्योकि सयोगिता ने अपना प्रधान भेजकर उनका निगमबोध पर ही पडाव डलवा दिया था।[8] अपनी रक्षा की प्रार्थना लेकर राज द्वार पर एकत्र हुए प्रजाजनो को भी उनकी दासियाँ छडियो की मार की वर्षा करके भगा देती हैं,[9] महारानी इच्छिनी की कुशल दासी के माध्यम से ही महाराज को गुरुराम पुरोहित और कवि चन्द का यह पत्र मिल जाता है कि आप गोरी म अनुरक्त हैं, जबकि आपकी धरा म अनुरक्त शाह 'गोरी' आपकी राज्य सीमा म आ पहुँचा है।[10] रासाकार का यह विवरण कदाचित् अक्षरश सत्य न हो, फिर भी इससे इतना तो अवश्य प्रतिभासित होता है कि शासन-व्यवस्था म सयोगिता सक्रिय भाग लेने लगी थी।

---

१ 'इससे यह लक्षित होता है कि वदिककाल म रानी की हैसियत केवल राजा की पत्नी ही की नही थी वरन शासन व्यवस्था म भी उसका एक स्थान था।"
—'प्रा० भा० शा० प०, पृ० ११०

२ से ५—दे० 'पर० रा०', ७।५६, वही, ७।८४ और ४८।१३ १२, 'पृ० रा०', का० २१।३१।१७० ७१

६ से ६—दे०, पृ० रा० का० २१३४।१६२ वही, २११२।४५ ४६, वही, २१४८।२७४, वही २१४ ।२२५ २६

१० "कगर अप्पह राज कर। नृप जपह इह बत्त।
गोरी रत्ता तुम्र धरनि। तू गोरी रस रत्त। —वही, २१४२।२३७

छत्रप्रकाश मे महाराज चम्पतिराय की रानी अपने आपदग्रस्त पति की रक्षा के लिए पडे पुजारियो को धन देकर महाराज को शत्रु सैनिको से छिपाने का प्रयत्न करती हैं।[१] महाराज छत्रसाल को शाह औरंगजेब से मनसब प्राप्त करने का परामर्श उनकी माता द्वारा दिया जाता है।[२] 'हम्मीर रासो' मे महाराज हम्मीरदेव अपनी पत्नी से युद्ध के विषय मे मन्त्रणा करते हैं जो उन्हें युद्धार्थ प्रोत्साहित करते हुई कहती हैं कि किसी भी मूल्य तक शरण मे आए महिमा शाह को शाह अलाउद्दीन को सौंपना उचित नही है।[३] गोरा बादल की कथा मे महाराज रतनसेन के मन्त्री महारानी पद्मावती को शाह अलाउद्दीन को सौंपकर, महाराज को बधन मुक्त कराने का निर्णय कर लेते हैं।[४] महारानी पद्मावती अपनी अपूर्व सूझ बूझ का परिचय देती हुई गोरा और बादल की सहायता से अपने सतीत्व की ही रक्षा नहीं करती, वरन् महाराज रतनसेन को भी बन्धन मुक्त करा लेती हैं।[५] 'वीरचरित्र' मे महाराज रामसाहि की रानियाँ उनके राज्याभिषेक मे सहयोग नही देती,[६] तथा अपने पति की इच्छा का उल्लंघन करती हुई रानी कल्यान दे उनकी महाराज वीरसिंह देव से हुई संधि वार्ता को भंग कर देती हैं।[७] राजबाला रूपकुवरि का दृष्टांत भी इसी कोटि मे आता है, जिसने शाह औरंगजेब के प्रलोभन मे फँसकर उसका विवाह औरंगजेब से कर देने का निश्चय करने वाले भाई का विरोध करते हुए[८] अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त किया था और महाराज राजसिंह को विवाहार्थ पत्र भेजकर[९] अपना इष्ट साधन किया था।

संक्षेप मे आलोच्यकालीन रानियो मे से कुछ पति के स्थान पर स्वयं शासन-संचालिका थीं, कुछ उसमे महत्त्वपूर्ण योगदान करती थी, जबकि अन्य अपने पतियो की उचित अनुचित आज्ञाओं को शिरोधार्य न करके अपने कर्त्तव्य पथ का स्वयं चुनाव करती थी। ऐतिहासिक साक्ष्यो से भी इन तथ्यो की पुष्टि होती है। श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य और[१०] डॉ० दशरथ शर्मा[११] ने चौहान कुल की रानी सोमला देवी द्वारा तो अपने नाम के सिक्के चलवाने का उल्लेख किया है।

(ख) राज पुरोहित—पृथ्वीराज रासो, वीरचरित्र, सुजानचरित और राजविलास मे राज-पुरोहितो का राज्य कार्यों मे पर्याप्त योगदान प्रदर्शित किया गया है। इन ग्रन्थों मे उपलब्ध से स्पष्ट होता है कि नरेश उन्हे दौत्यकर्म के लिए प्रेषित करते थे, युद्ध प्रक्रिया के विषय मे वे उनसे परामर्श लेते और प्राय तदनुकूल ही आचरण करते थे। प्रजा राज पुरोहितो को अपने दुःख दर्द नरेशो तक पहुचाने का अप्रतिम माध्यम समझते थे। वे अभिचार क्रियाओ द्वारा नरेशो की काया को अभिमन्त्रित करने के

१ २—द० 'छ० प्र० ८।१० वही, ४।१३

३ से ११—द० 'ह० रा०' ६७२, 'गो० क०', ६२, वही, छ० ६२ १३८, 'वी० च० १०।३ ८, वही, १०।६८ 'रा० वि०, ७।२४, वही, ७।३५, 'हिंदू भारत का अन्त, पृ० २२४, अर्ली चौहान डाइनेस्टीज, पृ० १९६

साथ साथ युद्ध स्थल म शत्रु सना पर भी म त्रा का प्रयोग करके उस हतोत्साहित करने का प्रयास करते थे, जिससे नरेशो की दृष्टि म उनका महत्त्व और भी अधिक रहता था। हाँ, वीरकाव्य म किसी पुरोहित के लिए मन्त्री सना का प्रयोग अवश्य नही किया गया है।

महाराज पृथ्वीराज चालुक्यराइ के आक्रमण किये जान पर उनसे युद्ध करने किसे भेजा जाय—इस विषय म अपने पुराहित गुरुराम से परामश लेत हैं।[1] महाराज परमाल भी अपने पुरोहित से मन्त्रणा करते चित्रित किए गये हैं।[2] शाह गारी के अंतिम आक्रमण से पूव विनाश मग्न दिल्लीश्वर को चेतन करने के लिए प्रजा को मात्र गुरुराम ही आशाकिरण दिखाई देते हैं।[3] प्रजा-जन चाटुकार सामन्ता और कवि चन्द आदि को वित्त लोलुप कहकर नि दा करते हैं और उन्ह ही राज्य के सच्चे और निर्लिप्त हितैषी बताकर, महाराज का युद्धाथ प्रबुद्ध कराने का उत्तर दायित्व सौंपते हैं।[4] पुरोहित द्वारा यजमान काया का अभिमन्त्रित करने स सम्बन्धित विश्वास का भी पथ्वीराज रासो म ही अभिव्यजन हुआ है। शाह गोरी स होन वाले प्रथम युद्ध से पूव गुरुराम, महाराज पथ्वीराज का स्तोत्र पढकर विष्णु पजर प्रदान करते हैं। इस अभिचार क्रिया म उनके विविध शरीराङ्गा की रक्षा का भार, विभिन्न देवों को सौंपा जाता है।[5] शाह गारी म होने वाल अन्तिम युद्ध स पूव भी व महाराज को जालपा मन्त्र, पढ़कर उनकी काया अभ द्य बनात चित्रित किए गय हैं।[6] रासा म विश्वास प्रकट किया गया है कि इन मन्त्र कवचा के कारण शस्त्र घात ही न लग पायगा।[7] रासोकार ने गुरुराम पुराहित का अभिमन्त्रित विभूति क्षिप्त करके, शाह गोरी की सेना को निश्चेष्ट करते भी प्रदर्शित किया है।

सुजानचरित म महाराज सूरजमल के कुल-पुराहित, आक्रमणाथ आए मल्हार राव से सधि करने का प्रस्ताव लेकर जात हैं। स्व-यजमान की हिताकाक्षा से ये अपनी चार लाख की राशि भी मल्हार राव को देने के लिए प्रस्तुत हा जाते हैं।[8] वीरचरित्र म महाराज रामसाह स्वभ्राता वीरसिंह दव स स धि करने हेतु अपने कुल पुरोहित केशव मिश्र को भेजत हैं, जा ऊँच-नीच की बहुत सी बातें समझाकर, दोनो भाइया म स धि करा देते हैं।[9] राजविलास म महाराज राजसिंह शाह औरंगजेब के आक्रमण का सामना करने के लिए अपन पुराहित के परामश के अनुकूल ही पहाड़ियो की शरण लेकर युद्ध करने की याजना बनाते हैं।[1]

पृथ्वीराज रासा म वर्णित राज-पुराहित के कृत्य, उनके प्राचीनकाल म

१ से ४—दे 'पृ० रा०, मो० ३।७०।२, 'प० रा०, का० २५७५।१३७, वही, २१३३ १८५, 'प० रा०', मो० ४।६५७।१६ १८

५ स १०—दे०, प० रा०', मो० २।६६५।२७।, वही ४।११२३।२४३, वही, २।६६८।२२५, सू० रत्ना०', प० ११० ११, वी० च०, १०।३३ ५६, रा० वि०' १०।७१ ७६

स्वीकृत वक्तव्यों से साम्य रखते हैं। डॉ० अल्तेकर के अनुसार— पुरोहित का वैदिक काल से राजनीति में प्रमुख स्थान था और कई शताब्दियों तक उसका स्थान मन्त्रि परिषद् में कायम रहा। वह राजा का गुरु था। उसका काम शत्रु के प्रतिकारार्थ अनुष्ठानों का आविष्कार करना और अथर्वशास्त्र में वर्णित पुरोहित कर्म द्वारा राष्ट्र का अभ्युदय करना था। वह राजसभा के हाथी और घोड़ों को भी अनुकूल करता था और वैदिक काल में राजा के साथ युद्ध क्षेत्र में जाकर मन्त्रों और स्तुतियों द्वारा देवताओं को प्रसन्न करके विजयश्री प्राप्त करने का प्रयत्न करता था।[1]

(ग) प्रधान—प्रधान अथवा परधान का उल्लेख हमारे आलोच्यकाल के प्रारम्भिक काल में रचित ग्रन्थों में मिलता है जिनमें उसे मन्त्रीश[2] और 'मन्त्रिय प्रधान'[3] अर्थात् प्रधान मन्त्री कहा गया है। डा० अल्तेकर ने भी 'प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था' पर प्रकाश डालते हुए प्रधान शब्द को प्रधान मन्त्री का वाचक बताया है।[4] प्रधान मन्त्री का सर्वाधिक उल्लेख पृथ्वीराज रासो में हुआ है, जिसमें महाराज बीसलदेव,[5] सारंगदेव,[6] भीमदेव,[7] जयचन्द,[8] पृथ्वीराज,[9] भोलाभीम[10] तथा कांगड़ा नरेश[11] के राज्यों में प्रधानों का विविध प्रकार के कार्य सम्पादित करना चित्रित किया गया है। प्रधान पद की महत्ता के कारण कवि चन्द ने उसके निर्धारण में नरेशों को अतीव सावधानी रखते हुए किसी ब्राह्मण को यह पद सौंपने का परामर्श दिया है। उसके मत में 'क्षत्रिय को प्रधान बनाने पर यह आशंका रहती है कि वह राज्य द्रव्य को खायेगा और रोके जाने पर राजा को आँखें दिखायेगा। वैश्य राज्यकोष को शनैः शनैः अपने घर में भर लेगा और लोभवश राजा को भी शत्रु के हाथों बेच सकता है। यही समस्या कायस्थ को प्रधान पद सौंपने पर समुपस्थित होती है क्योंकि वह निशिदिन राज्य कोष का स्वार्थ चिंतन में अपव्यय करता रहता है।'[12] इस संदर्भ में

१ दे० 'प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था', पृ० ११६-१७
२ (क) "राजकाज दाहिम्म। रहै दरबार अप्प वर। आखेटक दिल्लिय नरेस पेल कमध डर। दस भार मन्त्रीस राव उद्धर सुधार। न को सीम चंपव। हद्द तप्प गु करार।" — पृ० रा०, का० १४७१।३८
(ख) "पग वचन मन्त्रीस डर मन मिटट्यो न प्रमान।" पृ० रा०', का० १२६७।३२
३ 'तब सुमन्त्र मन्त्रिय प्रधान। उच्चरिय राजवर।' – वही, १४२१।२४
४ दे०, प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था' पृ० ११८
५ 'बुल्लाय लए मन्त्रीप्रधान। सर रचो इहाँ पुहकर समान।" —'पृ० रा०', का० ७३।३१४
६ से ११—दे० 'पृ० रा०' का० ७१।३५३, वही १०१६।१८, वही, १२६७।३०, वही, १४३६।१२३ वही ४५०।१७, वही १०४८।१३
१२ "खत्रि होय परधान खाय पट्टो दिखलाव। साह होय परधान भर घर राज घमाव। कायथ होय परधान अहो निस रहै पियतो। बभन होय प्रधान सत्त रप्पव अचित्यो।" —'पृ० रा०', का० २४६०।५२०

यह निष्कर्ष अप्रासंगिक न होगा कि व्यवहार में इस नियम का पूर्णतया प्रचलन नहीं मिलता। यद्यपि कुछ प्रधानों की जाति के विषय में निर्देश नहीं मिलता, तथापि महाराज पृथ्वीराज का प्रधान कैमास, उनका मामा और जाति का क्षत्रिय था। इसी भाँति महाराज सारंगदेव का प्रधान किरपाल नामक कायस्थ[1] तथा बीसलदेव का पाँवासुर नामक तोमर[2] प्रदर्शित किया गया है। रासो में महाराज भोलाभीम[3] तथा वीरचरित्र में महाराज वीरसिंह देव[4] के प्रधान अवश्य ब्राह्मण थे। कयामखाँ रासा में नरेश को प्रधान से सतर्क रहने का परामर्श देते हुए मत व्यक्त किया गया है कि नरेश और उसके प्रधान के समतुल्य बना होने पर जो पहले राजनीतिक घात करता है उसी की जीत होती है। यदि नरेश इसमें असावधानी कर दे तो बाद में कुछ नहीं हो सकता।[5]

वीरकाव्य में प्रधानों के अधिकार में विभिन्न प्रकार के राजकीय विभाग दिखाये गये हैं। उन्हें हम कोषाध्यक्ष, संधि विग्रह के नियामक, गुप्तचर, भेजकर शत्रु-राज्यों की दशा का ज्ञान प्राप्त करने वाले, राजदूत के रूप में शत्रु-दरबार में जाकर साम-दाम, दण्ड और भेद नीति के प्रयोग से उन्हें वश में करने वाले तथा नरेश की अनुपस्थिति में राज्य कार्य का संचालनकर्ता पाते हैं।

पृथ्वीराज रासो में महाराज बीसलदेव किरपाल नामक प्रधान को राज्य-कोष लेकर बीसल सरोवर पर पड़ाव डालने का आदेश देते हैं।[6] कयामखाँ रासा में प्रधान को कोषाध्यक्ष दिखाया गया है[7] जबकि वीरचरित्र में उसके अधीन वित्त और शस्त्रास्त्रों के विभाग चित्रित किए गए हैं।[8] हम्मीर हठ में शाह अलाउद्दीन को अपने प्रधान से महाराज हम्मीरदेव के दुर्ग की दीवार को उठाने का रहस्य पूछते दिखाया गया है,[9] जिससे प्रतीत होता है कि यह उनका सेनाध्यक्ष रहा होगा।

महाराज बीसलदेव और बालुकाराइ के मध्य हुई संधिवार्ता में उनके प्रधान मन्त्रियों का प्रमुख हाथ मिलता है। रक्तपात को बचाने के लिए महाराज बालुकाराइ के मन्त्री उनको महाराज बीसलदेव की ओर से संध्यर्थ एक जाली पत्र दिखाकर राजधानी भेज देते हैं[10] और भाईचारे का आग्रह करते हुए महाराज बीसलदेव के प्रधान को संधि के लिए विवश करते हैं।[11] महाराज बीसलदेव भी संधि की सभी शर्तों को अपने प्रधान पर छोड़ते हुए मात्र इतना कहते हैं कि यहाँ पर मेरे लिए एक महल अवश्य बनवा देना।[12] इसी भाँति महाराज पृथ्वीराज से युद्धार्थ आने वाले शाहगोरी[13] तथा महाराज पृथ्वीराज को महाराज अनंगपाल द्वारा दिल्ली राज्य सौंपने

---

१ से ५—दे०, 'पृ० रा०', का० ७१।३५३, वही, ६२।४६४, वही, ४५२।२८, 'वी० च०', २२।१२ 'कया० रा०', २६६

६ से १३—दे०, 'पृ० रा०', का० ८६।४११ 'कया० रा०', छं० ३९४, 'वी० च०' २२।१२, 'ह० ह०', च०, छं० २३३ ३४, 'पृ० रा०' का०, ६२।४६२ ६३, वही, ६२।४६४, वही, ६३।४६६ ६७, वही, ११०४।८२

के लिए लिखा गया पत्र उनके प्रधानमन्त्री कमास को दिया जाता है।[1] महाराज जयचन्द का उनका प्रधान सुमन्त युद्ध-परामर्श देता है कि राजसूय यज्ञसम्पन्न करने से पूर्व रावल समर विक्रम को अपनी ओर मिलाना उचित रहेगा।[2] इस दृष्टान्त में सामनाथ महाराज जयचन्द अपने प्रधान को ही रावल समर विक्रम के समीप भेजने चित्रित किए गए हैं।[3]

प्रजा के दुःखों को भी प्रधान राजा तक पहुँचाता था। महाराज वीसलदेव की प्रजा महाराज के दुराचरण से मुक्ति पाने का निवेदन लेकर उनके प्रधान के समीप जाती है,[4] जो प्रजा के पंचजनों के साथ महाराज को प्रजा के भावों से अवगत करता है और उन्हें परामर्श देता है कि आप विद्रोही भूमियों के दमन के लिए अजमेर से बाहर चलिए।[5] शाह गोरी के अन्तिम आक्रमण के समय (इस समय तक कमास का वध हो चुका था) दिल्लीवासी तत्कालीन प्रधान मधुशाह को अपशब्द कहते मिलते हैं कि वह राजदरबार में ही दिखाई नहीं देता,[6] जिससे वह महाराज को हमारे कष्टों को सुना सके।

महाराज पृथ्वीराज के प्रधान कमास को हम उनकी अनुपस्थिति में राज्य-कार्य का संचालन करते पाते हैं।[7] राज्य-कार्य की देखरेख के साथ-साथ वह आक्रामकों को महाराज की अनुपस्थिति में मुँहतोड़ उत्तर भी देता है।[8] इसके अतिरिक्त कमास को शाह गोरी की गति विधियों से अवगत होने के लिए, कुछ गुप्तचरों को भेजते चित्रित किया गया है[9] जिससे प्रधानमन्त्री का अधिकार-क्षेत्र प्रायः सभी प्रकार के राज्य-कार्यों की देखरेख करना प्रतिध्वनित होता है।

रासो में गण्यमान्य अतिथियों का स्वागत करना और राज दरबारों में राजदूत के रूप में जाना प्रधानों के अन्य कर्त्तव्य दिखाए गए हैं। महाराज जयचन्द द्वारा अपने प्रधान को रावल समर विक्रम के पास सन्देश भेजने का उल्लेख किया जा चुका है। वे महाराज पृथ्वीराज को दिल्ली राज्य का अर्धभाग बाँट देने और दरबान के रूप में, राजसूय यज्ञ में आने के लिए तैयार करने का भार भी अपने प्रधान की ही बुद्धि पर छोड़ते हैं।[10] महाराज भोलाभीम इच्छिनी के पिता महाराज सलख जैतराव के समीप अपने प्रधान के माध्यम से विवाह का सन्देश भेजते मिलते हैं,[11] जबकि रावल समर विक्रम अपने प्रधान को महाराज पृथ्वीराज के पास भोलाभीम के आक्रमण का समाचार देने भेजते हैं।[12] दिल्ली आने वाले रावल समर विक्रम का स्वागत महाराज पृथ्वीराज की ओर से उनके प्रधान द्वारा किया जाता है।[13]

---

१ से ८—दे०, पृ० रा०, का० ५८८।१, वही, १४२१।२४, वही, १४२२।२६, वही, ८४।४१४, 'पृ० रा०', का० ८५।४१५, वही, २१३०।१६७, वही, १४३६।१२३, वही १४३७।१२५ से १४४७।१६५

६ से १३—दे० पृ० रा० का० ११८५।४६ ५०, वही, १४३१।८७, वही, ४५०।१७, वही, १०००।४०, वही, २१४८।२७४

विविध राज म त्रणाओं म प्रधान से अनिवार्यत परामर्श लिया जाता था। हाँ उसे स्वीकार अथवा अस्वीकार करना नरेशो की इच्छा पर निर्भर रहता था। कमास के जीवित रहने तक, महाराज पृथ्वीराज अपनी सभी प्रकार की योजनाओं म उसकी म त्रणा लेते[1] और प्राय तदनुकूल ही आचरण करते मिलते हैं।[2] महाराज जयचन्द अपने प्रधान से बार बार परामर्श करते मिलते है। उसकी इस म त्रणा को स्वीकार नही करते कि 'राजसूय यज्ञ' करना अनुपयुक्त है[3] और इस प्रकार का परामर्श देने के लिए इसकी भर्त्सना करते हैं।[4] कांगडा-नरेश अपने प्रधान से महाराज पृथ्वीराज के आक्रमण का प्रतिकार करने का उपाय पूछते दिखाये गये है।[5] महाराज भीमदेव अपने प्रधान से महाराज पृथ्वीराज के खड्ग के साथ स्वपुत्री की भाँवरें डालने अथवा न डालने के विषय म म त्रणा तो करते हैं,[6] किन्तु जब वह विवाह के पक्ष म मत देता है तो उसके मत की अवहेलना करते हुए युद्ध मार्ग अपनाते हैं।[7]

निष्कर्षत: प्रधान की म त्रियो म सर्वोच्च स्थिति थी। नरेश की अनुपस्थिति म राज्यकार्य का भार प्राय उसीको सौंपा जाता था। राज्यकोष और आयुध विभाग प्रधान के ही अधिकार म रहते थे। स धि विग्रह विषयक वार्ताओं तथा अन्य राजकीय म त्रणाओं म प्रधान से परामर्श तो अवश्य लिया जाता था, कि तु उसके मत का स्वीकार अथवा अस्वीकार करना, नरेशो की इच्छा पर निर्भर रहता था। प्रमुख राजनीतिक योजनाओं के कार्या वयन के लिए प्राय साधारण राजदूत के स्थान पर, प्रधान को ही भेजा जाता था। उससे प्रजा की दुर्दशा अथवा विक्षोभ म नरेशों को अवगत कराने की अपेक्षा की जाती थी। यह तथ्य भी ध्यातव्य है कि उसका मनोनीत अथवा अपदस्थ करना, राजा की इच्छा अनिच्छा पर निर्भर रहता था, अत उसे अपने पद की सुरक्षा हेतु नरेशो की असगत बातो का भी विरोध न करना पडता था। नरेशो को भी अपने प्रधानो से सतर्क रहना पडता था, क्योंकि कभी-कभी वे उनके विरुद्ध षडयन्त्र रचकर या तो स्वय राज्य पद प्राप्त कर लेते थे, अथवा किसी अन्य व्यक्ति को नरेश बना देते थे।

प्रधान के अधिकारो के विषय म उपर्युक्त तथ्यो की पुष्टि ऐतिहासिक साक्ष्यो से भी हो जाती है। डॉ० अलतेकर ने प्रधान को सर्वदर्शी—सम्पूर्ण राज्य कार्य पर नजर रखने वाला बताया है।[8] डा० राजबली पाण्डेय ने अश्व, गज, रथ और पदाति सेना की व्यवस्था भी प्रधान के ही अधिकार म दिखाई है।[9] डा० दशरथ शर्मा ने प्रधानामात्य को राजकीय सीलो और राज्यकर विभाग का अध्यक्ष प्रदर्शित किया

१ २—दे०, 'प० रा०', का० ७१६।२७३, वही, १३७६।६२ ६४

३ से ७—दे० 'पृ० रा०', का० १२६७।३० ३२, २६७।३२ ३३, वही, १०४८।१३, वही, १०१६।१८, वही, १०१६।१६

८ ६—दे०, प्राचीन भारतीय शासन-व्यवस्था', पृ० ११८, हि० सा० का वृ० इ०', भाग १, पृ० ५६

है।[1] प्रधान को संधि विग्रह का नियमन तथा राजदूत के रूप में काम करते दिखाया गया है। परराष्ट्र मंत्री और राजदूतों के कार्यों की सम्पन्नता को भी प्रधान के माध्यम से चित्रित करने का कारण कदाचित् यह रहा है कि परराष्ट्र मंत्री का तो समस्त वीरकाव्य में उल्लेख ही नहीं मिलता। दूतों का उल्लेख अवश्य मिलता है, किंतु इष्ट कार्य की गुरुता के अनुसार साधारण दूत की अपेक्षा नीति चतुष्टय में दक्ष प्रधान को भेजना ही अधिक प्रचलित रहा होगा। हिन्दू राज्यों के प्रधानों का युद्ध में भी भाग लेना एक अन्य उल्लेख्य विशेषता है, क्योंकि डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के अनुसार मुगलकाल में प्रधानमंत्री के स्थानापन्न वजीर को युद्ध का नेतृत्व शायद ही कभी सौंपा जाता था।[2] कमास के युद्ध का पीछे उल्लेख किया जा चुका है। महाराज जयचन्द का प्रधान सुमंत महाराज पृथ्वीराज को पकड़ने की प्रतिज्ञा[3] तथा युद्ध करते मिलता है।[4] कांगड़ा-नरेश का प्रधान भी उन्हें आश्वासन देता है कि जब तक मैं जीवित हूँ आपको महाराज पृथ्वीराज के आक्रमण से त्रस्त होने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं अभी युद्ध में उनका मानमर्दन किए देता हूँ।[5]

प्रधान शब्द के प्रयोग के विषय में यह निवेदन करना आवश्यक है कि वीरकाव्य में कुछ ऐसे राज्याधिकारियों के लिए भी प्रधान शब्द प्रयुक्त किया गया है जो वस्तुतः प्रधान मंत्री नहीं थे। पृथ्वीराज रासो में महारानी संयोगिता के प्रधान को भोज के उपरान्त में भोजकों के ऊपर पंखा झलते हुए यह निवेदन करते प्रदर्शित किया गया है कि - भोजन तैयार करने में जो त्रुटियाँ रह गई हैं उनके लिए क्षमा करें।"[1] महारानी संयोगिता का यह प्रधान निश्चय ही उनका प्रधान रसोइया प्रतीत होता है। इसी भाँति क्यामखाँ रासो में सुल्तान नसीरखाँ अपने गुलाम मल्लूखाँ को प्रधान-पद पर नियुक्त करते हैं[2] जो बादशाही के लोभ में उनकी हत्या का षड्यन्त्र रचता है। सुल्तान के निधन पर उनके कोई पुत्र न होने के कारण मल्लूखाँ स्वयं सुल्तान बनना चाहता है किन्तु दुर्ग की चाबियाँ किसी अन्य प्रधान के पास दिखाई गई हैं जो उन्हें क्यामखाँ को सौंपते हुए छत्र धारण करने का निवेदन करता है।[3] क्यामखाँ द्वारा बादशाह बनने की अनिच्छा प्रकट करने पर प्रधान (यहाँ कवि जान ने प्रधान का बहुवचन में प्रयोग किया है) मल्लूखाँ की बाँह पकड़कर उसे तख्त पर बिठाते चित्रित किए गए हैं।[4] कहना न होगा कि कवि जान ने प्रधान का मल्लूखाँ के संदर्भ में प्रधानमंत्री के अर्थ में प्रयोग करने के साथ साथ सामान्य मंत्रियों

१ दे०, अर्ली चौहान डाइनस्टीज पृ० १६६

२ 'He was primarily a civil officer and was very seldom given the command of an army' — The Mughal Empire', p 512

३ से ५—दे०, पृ० रा० का० १७१५।६२८ वही, १७२२।६८६, वही, १०४८।१४

६ से ६—दे० पृ० रा० का० २०००।१०८, क्या० रा०', १८५, वही, १९४ ९५, वही, २०४

के अर्थ भी प्रयोग किया है। उसने अन्यत्र भी प्रधान शब्द का बहुवचन में प्रयोग करते हुए उसका राजदूतों के लिए प्रयोग किया है।[1] महाराज शिवाजी की इतिहास प्रसिद्ध शासन-व्यवस्था जिसे अष्ट प्रधान कहा जाता है, प्रधान का मन्त्रियों के ही अर्थ में ग्रहण किया गया है, प्रधानमन्त्री के अर्थ में नहीं।

(घ) वजीर—मुस्लिम बादशाहों के दरबारों में प्रधानमन्त्री को वजीर कहते थे। वजीर का पृथ्वीराज रासो, हम्मीर रासो, हम्मीर हठ, सुजान चरित, वीरचरित्र और गद्य-कवियों में उल्लेख मिलता है। वजीर के भी वीरकाव्य में विविध प्रकार के वक्तव्य चित्रित किए गए हैं। पृथ्वीराज रासो में शाह गोरी का वजीर तत्तारखाँ उन्हें यह परामर्श देता है कि राजदूत के वध से आपको अपयश मिलेगा, क्योंकि हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही राजनीतियों में उसे अवध्य माना जाता है।[2] युद्ध-मन्त्रणाओं के समय भी हम शाह गोरी को तत्तारखाँ से परामर्श करते पाते हैं।[3] शाह गोरी को महाराज पृथ्वीराज की कैद से मुक्त कराने का प्रस्ताव भी उनके वजीर द्वारा ही भिजवाया जाता है।[4] कीर्तिलता में शाह इब्राहीम लोधी का वजीर उनसे दरबार लगाने का निवेदन करते प्रदर्शित किया गया है।[5]

हम्मीर रासो में शाह अलाउद्दीन अपने वजीर को महाराज हम्मीरदेव के लिए यह फरमान भेजने का आदेश देते हैं, कि वे पर अपराधी मीर महिमा को शरण प्रदान न करें।[6] महाराज हम्मीरदेव से नकारात्मक उत्तर आने पर शाह का वजीर क्रोधित शाह को शान्त करने का प्रयत्न करता है।[7] वह शाह को कलावन्त का एक नकली महिमाशाह बनाकर और उसे वध करके अपना कोप शान्त करने का परामर्श भी देता है[8] किन्तु शाह अलाउद्दीन उसकी अभिमन्त्रणा को स्वीकार नहीं करते। वह युद्धस्थल में भी युद्ध-नीति की मन्त्रणा देते दिखाया गया है।[9] हम्मीर हठ में वजीर (वजीर) का महाराज हम्मीरदेव से महिमाशाह को लौटाने के साथ-साथ दण्ड रूप में उनकी पुत्री का डोला भी लाने के लिए महाराज के दरबार में भेजा जाना चित्रित किया गया है।[10] सुजानचरित में अहमदशाह का वजीर मनसूर दिखाया गया है।[11] अहमदशाह उसे अपने मीर बख्शी की बातों में आकर, दिल्ली से निष्कासित कर देते हैं,[12] जिसके प्रतिरोध में वह कामबख्श के पौत्र अकबर को दिल्ली सल्तनत का उत्तराधिकारी निश्चित करता हुआ,[13] उनके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देता है।[14]

---

१ परधाननि को धरे द, बाढे काढी रार।
कह्यो वसीठ न मारिय, नातर डारत मार। —'बया० रा०', पृ० ५०६
२ से ७—दे०, 'पृ० रा०', का० ४६।११३४, वही, ३६८।६३, वही, ७२२।२६२,
'कीर्ति०', पृ० ४६, 'ह० रा०', छ० ३१६, वही, छं० ३२३
८ से १४—दे०, 'ह० रा०', छ० ३६७ ७०, वही, ५३८ ३६, 'ह० ह०', छ० ८५,
६५, 'सु० च०', ६।१।१५, वही, ६।१।१७, वही, ६।२।१ २, वही, ६।१।२०

अन्ततः आमेरपति माधोशाह वजीर मनसूर और अहमदशाह के मध्य संधि करा देते हैं।

वजीरों के सम्बन्ध में उपर्युक्त विवेचन से उनका अधिकार क्षेत्र प्रधान मन्त्रियों के समकक्ष सिद्ध होता है। राजकीय मन्त्रणाओं में वजीर से परामर्श लेना, शाह की अनुपस्थिति में राज्यकार्य की देखरेख, संधि वार्ता में योग, बलवन्त शत्रु को वश में करने के लिए उसके राज्य में दूतरूप में जाना तथा निर्बल बादशाहों को पदच्युत तक कर देने की क्षमता, ये सभी कार्य वजीरों की उच्चस्थिति के निदर्शक हैं। प्रधानों की भांति वे युद्धों में भी भाग लेते मिलते हैं। तत्तारखाँ को पृथ्वीराज रासो में वर्णित शाह गोरी के प्रायः सभी युद्धों में भाग लेते चित्रित किया गया है।[1] वजीर मनसूर तो अहमद शाह को नाकों चने चबा ही देता है, शाह अलाउद्दीन के वजीर को भी युद्ध करते दिखाया गया है।[2]

अन्त में यह उल्लेख करना आवश्यक है कि वीरकाव्य में 'प्रधान' शब्द की भांति 'वजीर' का भी प्रमुख मन्त्री से भिन्न अर्थ में प्रयोग मिलता है। कवि गंग ने टोडरमल को सम्राट अकबर का वजीर बताया है,[3] जबकि वे उनके दीवान या अर्थ-सचिव थे।[4] इसी भांति केशव ने वजीर को एक साधारण मन्त्री के अर्थ में प्रयुक्त किया है। उन्होंने महाराज वीरसिंहदेव के राज्य-कार्यों का वर्णन करते हुए उनके दरबार में गणक, चिकित्सक, प्रधान और सेनापति के पश्चात् वजीरों का आना चित्रित किया है।[5] पृथ्वीराज रासो[6] और क्यामखां रासा[7] में वजीर शब्द का बहुवचन में प्रयोग किया जाना भी उसके मन्त्री अर्थक प्रयोग का निदर्शक है। कवि गंग और केशव के ये प्रयोग ऐतिहासिक साक्ष्यों की कसौटी पर खरे उतरते हैं। डॉ० सरकार ने अभिमत व्यक्त किया है कि 'वजीर एक आदरास्पद उपाधि मात्र भी थी, जिससे किसी विभाग विशेष के अध्यक्ष का बोध न होकर उच्च मर्यादा मात्र ध्वनित होता था।[8] यह तथ्य भी ध्यातव्य है कि डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने कवि गंग और केशव के समसामयिक सम्राट अकबर, जहांगीर और शाहजहाँ के राज्यकालों में प्रधानमन्त्री के अर्थ में तो वकील शब्द का प्रयोग किया जाना प्रदर्शित किया है।[9] अतः कवि गंग द्वारा भी टोडरमल को शाह अकबर का वजीर बताने का अभिप्राय, उन्हें शाह अकबर का प्रधानमन्त्री दिखाने से नहीं है।

---

१ से ७—दे०, 'पृ० रा०' का० १२०२।१८ १६, 'हं० रा०' ४६४, 'गं० क०', छं० २६५, आ० स० और उ० इति० पृ० ४७६, 'वी० च०', १२।४२, 'पृ० रा०', का० ४७०।१३७, 'क्या० रा०', ५८२

८ "As a rule Wazir in later times was simply a title of the high officials —'Mughal Administration', F N on P 20

९ ' Under Akbar Jahangir and Shah Jahan the Prime Minister bore the title of Vokil or Vokil i Mutlagi Some times he was called Wazir or Wazir i Ala —'The Mughal Empire', P 512

दीवान—दीवान का कार्य राजकीय आय को प्राप्त करना व उसका हिसाब रखना होता था ।[1] दीवान सम्बन्धी उल्लेख परमाल रासा, जगनामा सुजानचरित वीरचरित, क्यामखां रासा, प्रताप रासो और राजविलास म मिलते हैं । परमाल रासो[2] और जगनामा[3] म दीवान के पद पर कायस्थो की नियुक्ति दिखाई गई है जिससे ध्वनित होता है कि वे वित्त के मामले से ही सम्बद्ध रहे होंगे, क्योंकि वित्त विभाग म कायस्थो को नियुक्त करने का विशेष प्रचलन था । प्रताप रासो म दीवान को राजकोष का अध्यक्ष दिखाया गया है ।[4] सुजानचरित म महाराज सूरजमल अपने दुर्ग-दीवान से गोला बारूद के विषय मे पूछताछ करते मिलते हैं[5] जिससे स्पष्ट होता है कि कुछ दीवान राजकीय बारूदखाने के भी अध्यक्ष होते थे । यह भी सम्भव है कि इस सन्दर्भ मे सूदन का दीवान से अभिप्राय मन्त्री मात्र से रहा हो और उसने मुगल शासनकाल के 'दरोगा ए तोपखाना' के लिए 'दुर्ग-दीवान' शब्द का प्रयोग किया है । कवि ग्वाल और चन्द्रशेखर ने दीवान के पद को प्रधानमन्त्री की कोटि का दिखाया है । ग्वाल ने महिमाशाह के महाराज हम्मीरदेव की शरण म आने पर महाराज अपने दीवान से ही मन्त्रणा करते चित्रित किए गये है ।[6] चन्द्रशेखर ने दीवान को महाराज के सामन्तो की बैठक बुलाते दिखाया है,[7] महाराज का प्रधानमन्त्री भी रहा होगा । डा० जदुनाथ सरकार ने अभिमत व्यक्त किया है, कि प्रधानमन्त्री ही दीवान के रूप म प्राय राजस्व विभाग भी सभालता था, किन्तु सभी दीवान वजीर नही होते थे ।[8] तात्पर्य यह कि दीवान राजस्व विभाग का अध्यक्ष होता था । विविध राज्यो म कभी तो पृथक् दीवान नियुक्त रहता था, जबकि प्राय स्वय प्रधानमन्त्री या वजीर ही दीवान का कार्य भी सभालता था ।

शेष ग्रन्थो मे दीवान का आदरसूचक विशेषण के रूप म प्रयोग किया गया है । महाराज वीरसिंहदेव अपने अग्रज राजा रामशाह को दीवान कहते है ।[9] कवि जान ने अपने पूर्वज क्यामखा के लिए दीवान शब्द प्रयुक्त किया[10] है, जो मात्र आदर सूचित करने के लिए ही है, क्योंकि ग्रन्थ म उन्हे दिल्ली का फौजदार बनाये जाने का तो उल्लेख मिलता है, किन्तु कही भी उन्हें दीवान पद सौंपने का चित्रण नही किया गया । इसी भाँति कवि मान ने महाराज राजसिंह को दीवान कहकर सम्बोधित किया है ।[11]

---

१ स ३—दे०, 'भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास', प० ४८६, परं० रा०', २।१६, जग०', पृ० ७०४

४ से ७—दे०, पू० रा०, ३६, 'सु० च०, ७।२।३०, ह० ह०', ग्वा०, ५८ ५६, 'ह० ह० च०, छ० १५१

८ दे०, मुगल एडमिनिस्ट्रेशन', प० २०

६ 'हमको दीज सीख दिमान सीख तुम्हारी सदा प्रमान । —'वी० च०' ४।१०

१०-११—दे०, 'क्या० रा०', छ०, १६४, 'रा० वि०', ८।१०७

भण्डारी या भांडागारिक तथा मोदी—परमाल रासो में भण्डारी का स्वर्ण भण्डार और हाथियों का उल्लेख किया गया है।[१] जिससे स्पष्ट होता है कि कोषाध्यक्ष को भांडारी कहा जाता था। डॉ० माथुर ने भी स्पष्ट किया है कि शिलालेखों पर उत्कीर्ण लेखों में भाण्डागारिक कोष और भण्डार के अधिकारी को कहा गया है। + + + साल भर में राजभण्डार में कितना आया और गया और अन्न में क्या बचा, इनका पता रखना इसका काम था।[२] डॉ० दशरथ शर्मा ने भांडागारिक की तुलना कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट सन्निधाता से की है तथा महाराज हम्मीरदेव के भांडागारिक के अधिकार में राजकोष तथा (अन्न आदि का) भंडार दोनों विभाग दिखाये हैं।[३] परमाल रासो में उल्लिखित भंडारी के अधिकार में अन्न आदि का भंडार दिखाया तो नहीं गया है किन्तु सम्भवित वह उसका भी अध्यक्ष रहा होगा। सुजान चरित्र में अन्न आदि खाद्य-सामग्री के प्रबंधकर्ता के लिए 'मोदी' शब्द प्रयोग की गई है। महाराज बदनसिंह मोदी से प्रश्न करते हैं कि दुर्ग में अन्न, घृत, नमक और तेल आदि कितनी मात्रा में सुरक्षित हैं।[४] मोदी प्रत्युत्तर देता है कि आप दो वर्ष तक निश्चिंत लड़ते रहिए मैं चार लाख मनुष्यों के भोजन का दो वर्ष तक प्रबन्ध करता रहूँगा।[५] इससे प्रतीत होता है कि भंडारी के अधिकार में सम्भवित राजकोष मात्र ही होता था, जबकि खाद्यान्न सामग्री का प्रबन्ध करने वाले अधिकारी को मोदी कहा जाता था। सूदन ने दुर्ग दीवान को गोला बारूद का अधीक्षक दिखाया है[६] अर्थात् दीवान के अधिकार में राजस्व विभाग नहीं दिखाया जिससे यह भी सम्भव है कि मोदी अन्न के भण्डार के साथ साथ राजकोष का भी अध्यक्ष रहा हो।

बख्शी—बख्शी नामक शस्त्राधिकारी का सुजान चरित राजविलास और हम्मीर रासो में उल्लेख मिलता है। इसका कार्य सैनिक व्यय का हिसाब रखना तथा शाही सेवा में नियुक्त मनसबदारों को वेतन प्रदान करना होता था।[७] विलियम इरविन के अनुसार विविध राज्याधिकारियों का ऊँचा अथवा नीचा मनसब निर्धारित किए जाने में भी बख्शी का प्रमुख हाथ रहता था क्योंकि प्रायः बख्शी की संस्तुति के अनुसार ही बादशाह मनसब निश्चित किया करते थे।[८] वस्तुतः मन्त्रियों में बख्शी की स्थिति मात्र प्रधानमन्त्री या वजीर से नीची होती थी और वजीर का स्थान रिक्त होने पर प्रायः बख्शी को वजीर बनाने में प्राथमिकता प्रदान की जाती थी। सुजान चरित में अहमदशाह का बख्शी गाजदीखान शाह को वजीर मनसूर के विरुद्ध

१ से ३—दे०, 'पर० रा० २।२० 'प्राचीन भारतीय शासन पद्धति', पृ० १२१, अर्ली चौहान डाइनेस्टीज', पृ० २००

४ 'सु० च०, ७।२।२६

५ ६—दे० सु० च० ७।२।२६ वही ७।२।३०

७ दे० एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया', पृ० ५५७

८ दे०, द आर्मी आफ दि इण्डियन मुगल्स, —विलियम इरविन, पृ० ३७

भड़का कर[1] स्वय वजीर का स्थान प्राप्त करते चित्रित भी किया गया है।[2] उसमे महाराज सूरजमल युद्धाभियान से पूर्व अपने बख्शी को स य य के लिए नकदी लेकर सनिक पडाव पर पहुँचने का आदेश देते है।[3] हम्मीर रासो म शाह अलाउद्दीन का बख्शी युद्ध म भाग लेता है।[4] इस सदभ मे यह उल्लेख करना आवश्यक है कि सेना को वेतन प्रदान करने, तथा विविध स्तर के सनिक अधिकारियो की नियुक्ति के समय उनका बादशाहो से साक्षात्कार कराने के कारण उसका सेनाधिपतियो से निकट सम्बन्ध और उन पर पर्याप्त प्रभाव अवश्य रहता था, तथापि उसे सेनाध्यक्ष नही कहा जा सकता। प्रमुख सेनापति स्वय बादशाह हुआ करते थे, जिनकी अनुपस्थिति मे यह पद वजीर के अधिकार क्षेत्र म आता था।[5]

सेनापति तथा अ य स य अधिकारी—आलोच्यकाल म आजकल के कमा डर-इन चीफ जस किसी अधिकारी को नियुक्त करने का प्रचलन नही मिलता, अपितु नरेश या बादशाह स्वय ही प्रधान सनापति होते थे। महाराज पथ्वीराज आदि हिन्दू नरेश विविध युद्धो के लिए पान का बीडा डालकर युद्ध विशषो के नायकत्व के लिए किसी सामत का तदथ भार सौंपने की प्रथा का आश्रय लेते अवश्य मिलते हैं। राजविलास म महाराज राजसिंह के दलपति गणपति, गजपति हयपति, रथपति, पयदलपति नामक स याधिकारियो का उल्लेख मिलता है।[6] कवि सूदन ने भी सेना नायक के लिए दलपति शब्द का प्रयोग किया है।[7] आल्हखण्ड मे तोपखाने, हाथियो तथा घोडो के दरोगा का उल्लेख मिलता है।[8] परमाल रासो म महाराज परमाल के बलाध्यक्ष का उल्लेख मिलता है,[9] जो डा० दशरथ शर्मा द्वारा उल्लिखित बलाधिप नामक सनाधिकारी से नाम साम्य रखता है। बलाधिप को उन्होने सेना के नगरो तथा बहिर्वर्ती थानो के सनिक पदाधिकारियो का नायक बताया है।[10] सुजानचरित म बहीर-कुनवाल का युद्धाभियान के लिए स य सामग्री लदवाते दिखाया गया है।[11]

दूत या वकील—विविध राजकीय सदेश लेकर जाने वाले राज्यकमचारियो

---

१ दे०, 'सु० च०' ६।११६ १७

२ से ४—दे०, 'सु० च०', ६।२।१०, वही १।३।२, 'ह० रा०', ५७५

५ "But the true Commander in Chief was the emperor himself replaced in his absence by the Wakil or the Wazir"
— The Army of the Indian Mughals', P 37

६ दलपति गनपति दलपति गजपति हयपति मार।
रथपति पयदलपति प्रगट है जिह अति अधिकार ॥ —'रा० वि०', २।७०

७ हुकुम पाइ कै श्रीसुजान को दलपति निज सिर नायौ।
बोलि नकीब कही सरदारन तुरत कूच करायौ ॥ —'सु० च०', १।३।३

८ से ११—दे० आ०', ५३७।१४ १५, ४०।२३ २४, ४१।१२ १३, 'पर० रा०', २७।१०, अर्ली चौहान डाइनस्टीज', पृ० १६०, 'सु० च०' ४।१।२५

के लिए वीरकाव्य में दूत, वकील, वसीठ, चर, एलची और अहूती अभिधान प्रयुक्त हुए हैं। इनके स्थान पर कभी कभी महत्त्वपूर्ण राज्य-कार्यों के संपादनार्थ प्रधान अथवा वजीर को भी भेजने की प्रणाली थी जिस पर पीछे प्रकाश डाला जा चुका है। पृथ्वीराज रासो में शाह गोरी को बन्धन मुक्त कराने का संधि प्रस्ताव लेकर तो शाह का वकील आते प्रदर्शित किया गया है,[१] किन्तु महाराज पृथ्वीराज एक अभिनव प्रणाली का आश्रय लेते मिलते हैं। वे दूत, वकील या प्रधान के स्थान पर अपने प्रतिष्ठित सामन्तों को प्रेषित करके अभीष्ट सिद्धि करते दिखाये गये हैं। रावल समर विक्रम को सहायतार्थ बुलाने के लिए वे एक बार कन्ह चौहान को प्रेषित करते हैं[२] जबकि दूसरी बार इसी उद्देश्य से चदपुडीर को भेजा जाता है।[३] यदा-कदा दूतकर्म भाटों को भी सौंपा जाता था। 'कनवज्ज समय' में महाराज जयचन्द के द्वारपाल द्वारा यह प्रश्न किए जाने पर कि तुम दिल्लीश्वर के दूत रूप में तो कन्नौज नहीं आये हो,[४] जयचन्द ने नकारात्मक उत्तर देते हुए यद्यपि यह कहा है कि भाट दूत कर्म नहीं किया करते,[५] तथापि महाराज भोलाभीम के दरबार में वह उन्हें दिल्लीपति का आधिपत्य स्वीकृत कराने के लिए दूत रूप में जाता है। आडंबर प्रियता को जयचन्द ने भाटों की प्रमुख चारित्रिक विशेषता कहा है[६] और उसकी यह उक्ति उसके राजदूत के विचित्र वेष पर सटीक उतरती है। वह अपनी ग्रीवा में एक जाल और नसेनी तथा हाथ में चोली त्रिशूल अकुश दीपक और कुदाल लेकर, महाराज भोलाभीम के दरबार में पदार्पण करता है और इस विचित्र वेश के विषय में प्रश्न करने पर प्रत्युत्तर देता है— महाराज पृथ्वीराज का संदेश है कि या तो आप इस चोली को पहन कर उनकी अधीनता स्वीकार कर लीजिए अन्यथा वे आपको आकाश पाताल या पर्वत कंदरा कहीं पर भी जीवित नहीं छोड़ेंगे। यदि आप आकाश में छिपोगे तो नसेनी का प्रयोग करके, सागर में छिपने पर जाल द्वारा तथा पर्वत गुहाओं में छिपने पर दीपक के प्रकाश से पकड़ लेंगे और इस अकुश से वश में करके त्रिशूल से प्राणांत कर देंगे।"[७]

गोरा बादल की कथा में शाह अलाउद्दीन[८] और महाराज रतनसेन[९] दोनों ही पक्षों से वकील संधि प्रस्ताव लेकर जाते हैं। सुजान चरित में राजकीय सन्देशों के आदान प्रदान में प्रयुक्त कर्मचारियों को दूत[१०] और वकील[११] दोनों अभिधानों से पुकारा गया है। हम्मीर रासो में उनके लिए दूत[१२] और एलची[१३] संज्ञाएँ प्रयोग की गई हैं। हम्मीर हठ में शाह अलाउद्दीन महाराज रतनसेन के यहाँ वकील भेजकर महिमा शाह को शरण में न रखने का संदेश भेजते हैं।[१४] छत्रप्रकाश में महाराज छत्रसाल शाह औरंगजेब से मनसब प्राप्त करने के लिए एक विज्ञ वकील प्रेषित करते हैं।[१५]

---

१ से ६—९० पृ० रा०, का० ७२३।३०३ पृ० रा०' का० १०५६।२१, ६८४।१६, वही १६४७।४७२, वही, १६४८।४७३, वही, १५२०।६३

७ से १५—१०, पृ० रा०, का० १२१३।१०३, वही, छं० १००, 'सु० च० ४।३।३२ वही ४।४।७ वही ३।५।१, 'ह० रा०', छं०, ३१७, वही छं० ३२०, 'ह० ह०, ग्वाल, छं०, ८६, 'छ० प्र०', ११।६

कयामखाँ रासा[1] और वीरचरित्र[2] म स ध्यथ जाने वालो के लिए वसीठ अभियान का प्रयोग किया गया है। वीरचरित्र म सम्राट अकबर की ओर से महाराज वीरसिंह देव के पास अहदियो के माध्यम से दरबार म उपस्थित होने का फरमान भेजा जाता है।[3]

इन दूत या वकीलो को कटुभाषी होने पर भी अवध्य समझा जाता था। उनके अवध्य समझे जाने की धारणा को पृथ्वीराज[4] रासो, कयामखाँ रासा[5] तथा चन्द्रशेखर[6] और ग्वाल कृत हम्मीर हठो[7] म अभिव्यक्ति मिली है।

अहदी—अहदी नामक अधिकारियों का वीरचरित्र म उल्लेख मिलता है जो महाराज वीरसिंह देव के पास शाह अकबर का फरमान लेकर आते हैं।[8] अहदियो की मुख्य विशेषता यह थी कि वे सम्राट के अतिरिक्त अन्य किसी भी अधिकारी के अधीन नही होते थे। वतन की दृष्टि से इनका पद महत्वपूर्ण न होकर सामान्य सनिको से कुछ ही अच्छा होता था।[9]

वाकिन—वाकिन या वाकिया नवीस छत्रप्रकाश मे शाह औरगजेब को उसके प्रातो म घटित घटनाओ से सूचित करते चित्रित किए गए हैं। वाकिनो द्वारा विजय की सूचना देने पर सूबेदारों का मनसब बढकर आते दिखाया गया है,[10] जबकि पराजय की सूचना देने पर उनकी जागीरी[11] होते या नालिश आते दिखाई गई है।[12] सूबेदार गुप्त रीति से महाराज छत्रसाल का चौथ न चुकाने का कारण भी यही देते दिखाये गये हैं कि जब इस तथ्य की वाकिन केन्द्रीय शासक को सूचना देंगे तो हमारी बडी निन्दा होगी।[13] अत स्पष्ट होता है कि वाकिना का काय सूबो की घटनाओ से केन्द्रीय शासक को अवगत कराना होता था। डॉ० जदुनाथ सरकार न भी ऐसा ही अभिमत व्यक्त किया है।[14] बर्नियर ने उल्लेख किया है कि वाकिया नवीसो के प्रातीय शासको

---

१ से ७—द० 'कया० रा०', छ० २६०,७०७, वी० च०', ३।५१, वही, ४।६, 'पृ० रा०', का० ४६६।१३४, 'कया० रा०' छ० ५०६, 'वी० च', ३३।२१, ह० ह०', चन्द्र० १०२

८ जब ही राजा कियो पयान। आइ गयो तब ही फरमान।
वीरसिंघ आग है लए। अति आदर अहदिनि को दए। —वी० च०', ४।८ ६

९ दे०, 'द आर्मी आफ दि इण्डियन मुगल्स', वि० इरविन पृ० ४३

१० से १३—दे०, 'छ० प्र०', १०।१०, वही २३।७, वही, १६।१, वही, १८।८

१४ डा० सरकार ने मुगलकाल मे प्रातो की गुप्त गतिविधियो की सूचना प्राप्त करने के लिए वाकिया नवीस, 'सवानिह निगार' और खुफिया नवीसो की नियुक्ति दिखाते हुए मत व्यक्त किया है कि बहुत से वाकिया नवीसो की प्रातीय अधिकारियो से मिल कर, वहाँ की सच्ची सूचनाएँ न देने की सभावना रहती थी, अत अन्तिम दो प्रकार के भी खुफिया विभाग के अधिकारी नियुक्त किये जाने लग थे। अतत हरकारा के माध्यम स भी इष्ट साधन किया जाने लगा था। —दे० मुगल एडमिनिस्ट्रेशन', पृ० ६१

से मिल जाने के कारण प्रजा पर उनके द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों की दिल्ली के शासकों को सूचना नहीं मिल पाती।[1]

सूबेदार या नाजिम—छत्रप्रकाश,[2] शिवराज भूषण[3] और भगवतराय खीची[4] के जगनामा में सूबेदार या 'नाजिम' नामक प्रान्तीय शासकों का उल्लेख मिलता है। डा० जदुनाथ सरकार के अनुसार वे केन्द्रीय शासकों की भाँति ही प्रान्तीय शासन के उत्तरदायी होते थे तथा अपने अधीन दीवान और फौजदार आदि सहायक अधिकारी रखते थे।[5]

कोतवाल—कोतवाल का कार्य नगर में शान्ति व्यवस्था रखना होता था। राजविलास में कोतवाल को उदयपुर में ऊँचे चबूतरे पर बैठकर नगर के समाचार सुनते तथा न्याय करते चित्रित किया गया है।[6] आजकल की कोतवालियों के स्थान पर सम्भवतः कोतवाल ऊँचे चबूतरों पर ही बैठ कर न्याय किया करते थे, क्योंकि कोतवाल के चबूतरे का डा० जादुनाथ सरकार ने भी उल्लेख किया है।[7]

फौजदार—क्यामखाँ रासा में दिल्ली[8] लाहौर[9] और अजमेर[10] के फौजदारों का उल्लेख मिलता है। कवि जान ने फौजदारों के पास पर्याप्त मात्रा में सेना दिखाई है[11] तथा दिल्ली के फौजदार क्यामखाँ को तो बादशाह की अनुपस्थिति में दिल्ली पर आक्रमण करने वाले मुगलों को पराजित करते भी चित्रित किया है। वीरचरित्र में महाराज वीरसिंह के राज्य में भी फौजदार नियुक्त दिखाया गया है।[12] भगवतराय खीची के जगनामा में उनके कोडा नामक जिले के फौजदार नियुक्त होने पर उनके नाम की परगना में दुहाई फिरते चित्रित की गई है। डॉ० श्रीवास्तव के अनुसार फौजदार सूबेदार के अधीन जिले का अधिकारी होता था जिसकी कार्यावली आजकल के कलक्टर से साम्य रखती थी। वह जिले की मालगुजारी वसूल करने के साथ साथ शान्ति और न्याय व्यवस्था भी बनाये रखता था। समीप के करद नरेशों और भूमिधरों से मालगुजारी का वसूल करना भी उसके कार्यों में सम्मिलित थे।[13]

---

१ दे०, ट्रेवल्स इन मुगल एम्पायर', पृ० २३१

२ से ४—दे० छ० प्र० ७।२, १८।२ शि० भू०' १६७ ३२०, श्री भग० खीची का जग० छ० ४,१२

५ दे० मुगल एडमिनिस्ट्रेशन पृ० ६२

६ लसै कोट्वालि सु चौतरे ऊंच, बठे कोतवाल करैं खलखंच।
निवेरहिं सत्य असत्य सु न्याउ, वहै घर वप्पनि सेवत पाउ॥
—'रा० वि०', २।१३३

७ दे० मुगल एडमिनिस्ट्रेशन पृ० ६२

८ से १०—दे० क्या० रा०, छ० १६३ २४६ ६१४

११ १२—दे० क्या० रा०, छ० १६५ ७५ 'वी० च० १४।६३

१३ दे० द मुगल एम्पायर', पृ० ५१६

फौजदार के विषय में यह निवेदन अप्रासंगिक न रहेगा कि आईन ए अकबरी में उसे एक भिन्न प्रकार का अधिकार दिखाते हुए उसका कार्य हाथियों को प्रशिक्षित करना बनाया गया है।[१]

शिकदार—शिकदार फौजदार के अधीन परगने का अधिकारी होता था। उसके पास भी सैनिक टुकड़ी होती थी, जिसकी सहायता से वह परगने में शांति व्यवस्था बनाये रखता था और परगने में मालगुजारी वसूल करता था।[२] वयामखा रासा में हासी का शिकदार युद्ध करते चित्रित किया गया है।[३] वीरचरित्र में महाराज वीरसिंहदेव के राज्य में फौजदार के साथ साथ शिकदार की भी नियुक्ति प्रदर्शित की गई है।[४] डॉ० यू० एन० डे ने तुकवान में हासी को शिक या परगना कहने के आधार पर अभिमत व्यक्त किया है कि तुकवान में शिक का अर्थ उपप्रांत होता था, जबकि मुगलकाल में शिक का अभिप्राय जिले का उपविभाग या परगना गृहीत किया जाता था।[५] ऐसी दशा में तुर्क और मुगलकाल के शिकदारों के अधिकारों में अंतर होना नैसर्गिक है। हाँ यह तथ्य अवश्य उल्लेखनीय है कि कवि जान ने अलिफखाँ की पैड़ी में शिकदार के साथ साथ फौजदार का भी उल्लेख परगने के ही सन्दर्भ में किया है।[६]

अन्य कर्मचारियों में से गोरेलाल ने महाराज छत्रसाल द्वारा 'करोरी' से दंड लेने का उल्लेख किया है[७] जो आजकल के तहसील की तरह का अधिकारी होता था।[८] सूदन ने पोतदार की सतर्कता में मिस्त्री रखने के लिए सामग्री का प्रेषित किया जाना चित्रित किया है।[९] पोतदार परगने का खजांची होता था।[१०] आमिल भूमिकर का निर्धारण करने वाला अधिकारी होता था।[११]

राज दरबारों से सम्बद्ध कर्मचारी तथा सभासद—राज-दरबारों की प्रतिष्ठा के लिए, उनमें मंत्री मित्र और सामंतों के अतिरिक्त जो राजकर्मचारी तथा अन्य सभासद उपस्थित रहते थे, उनकी कवि मान ने अधोलिखित नामावली दी है—

(क) गणिकाएं गल्हनर, मौष्टिक, वादित्रिक, पाथक नट, विट और गल्हनर जिनकी उपस्थिति मनोरंजनार्थ आवश्यक समझी जाती होगी।

---

१ २—दे०, आईन ए अकबरी भा० १, पृ० १३, 'द मुगल एम्पायर', पृ० ५१६
३ ४—दे० 'क्या० रा०, ४३६, 'वी० च०', १२।४३
५ दे०, 'एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम आफ दिल्ली सल्तनत', पृ० ८२
६ ७—दे०, 'आलि० पै०' ८, छ० प्र०', १७।२
८ "करोरी बादशाही में एक राज कर्मचारी के पद का नाम था, जो वर्तमान काल के तहसीलदार के समान होता था।" —'छत्रप्रकाश', पृ० ११५ की पा० टि०
९ से ११—दे० सु० च० ५।३।२८ 'द मुगल एम्पायर', पृ० ५१६ 'भू० प्र०', स्फु० ५८

(ख) मसुप, मुशरिफ, नाजिर और मुंशी—ये दरबार की व्यवस्थागत कार्यों से सम्बद्ध कर्मचारी प्रतीत होते हैं।

(ग) हुक्मबरदार, चोबदार तथा दुमालिया—इन कर्मचारियों द्वारा राजसभा में आगन्तुकों का नियमन करते हुए उन्हें उचित स्थान पर बिठाने तथा उन तक राजकीय आदेश पहुँचाने का कार्य सम्पन्न किया जाता होगा।

(घ) गणक और वैद्य—गणना या ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति बताने तथा नाड़ी परीक्षा के लिए राजदरबार में स्थान पाते होंगे।

(ङ) श्रीपति सेठ, सौदागर और सोनागर—राजकीय सभा में भरण-पोषण से सम्बद्ध साहूकारों को भी राजदरबार में स्थान मिलता होगा।[१]

अन्य कवियों ने राजदरबार से सम्बद्ध पदाधिकारी कर्मचारियों का उल्लेख किया है—

हेजम—पृथ्वीराज रासो में हेजम को प्रतिहारों का मुखिया प्रदर्शित करते हुए, उसका कार्य नवागन्तुकों की नरेश को सूचना देना[२] तथा उनकी आज्ञा मिलने पर उन्हें नरेशों के पास ले जाना चित्रित किया गया है।[३] उसमें महाराज जयचन्द के साथ साथ शाह गोरी के भी हेजम का उल्लेख मिलता है।[४] रणमल छन्द में हेजम के लिए ऐयार शब्द का भी प्रयोग किया गया है तथा यह दूत के रूप में परमार से जाते दिखाया गया है।[५]

प्रतिहार—पृथ्वीराज रासो में प्रतिहार बड़ी हृष्ट-पुष्ट और उत्तुंग काया वाले तथा अपने हाथों में स्वर्ण-मण्डित छड़ियाँ लिए प्रदर्शित किए गए हैं।[६] ये कदाचित हेजम के अधीन रहकर राजदरबार में आने वालों का नियमन करते थे।

नकीब—पृथ्वीराज रासो[७] परमाल रासो[८] और सुजानचरित[९] में नकीब महाराज के आदेशों को सामन्तों के निवास स्थानों पर पहुँचाते चित्रित किए गए हैं। पृथ्वीराज रासो के बृहत् संस्करण के सम्पादकों ने नकीबों की व्युत्पत्ति का जो विवरण दिया है, उससे नकीब भी प्रतिहारों की तरह हाथ में स्वर्ण मण्डित छड़ियाँ रखने वाले तथा राजदरबार में आगन्तुकों को यथास्थान बैठाने वाले सिद्ध होते हैं।[१०]

---

१ 'रा० वि' २।६७ ७४

२ से ९—दे० 'पृ० रा०' का० १६४८।४७६, वही १६६०।५६०, वही, २४०८। १७५, 'रण० छ०' २६ २७, 'प० रा०', का० १६४६।४६८, वही, १२०६। ५२, पर० रा०, २३।८, 'सु० च०', ४।३।२६, ३।२।१६

१० "जमीन से लेकर कान पर्यन्त ऊँची एक लकड़ी होती है जो कि चाँदी या सोने से मढ़ी होती है—यह छड़ी राजाओं के द्वारपालों का चिह्न अथवा राजाओं का दंड स्वरूप समझी जाती है। इस समय इस छड़ी को धारण करने वाले नकीब कहे जाते हैं। यही लोग दरबार के समय सब दरबारियों को यथास्थान बैठालने और सरदारों के अलख आदि बतलाने का कार्य सम्पादन करते हैं।"

— पृ० रा०, का० रासोसार, पृ० १७७७ पर पा० टि०

नकीबा का काय वीरो को कडखे आदि सुनाना भी होता था। पूर्वोक्त ग्रथो मे ता नकीबो के इस काय को अभिव्यक्ति नही मिली है किन्तु कवि पद्माकर ने नकीब युद्धस्थल म ओजात्मक गीत सुनाते भी चित्रित किए हैं।[१] प्रतिहार और नकीबा मे हम मुख्य अतर यही दिखाई देता है कि प्रतिहार कदाचित न तो कडखे सुनाते थे और न आदेशा का सामन्त या सनिको के निवास यहा तक पहुँचाते थे अपितु राज दरबार म आने वाले व्यक्तिया का नियमन ही उनका मुख्य काय होता था।

दसौंधी—पृथ्वीराज रासो मे महाराज जयचन्द के दरबार मे दसौंधी दिखाया गया है जिससे महाराज कवि-परीक्षा कराते चित्रित किए गए हैं।[२] आलोच्यकाल म कवियो के राजदरबारो म वित्ताथ घूमने फिरने के कारण ही कदाचित एसे किन दसौंधी रखे जाते थे जा कविया को नरशा स मिलन देने स पूव उनकी स्वय परीक्षा करते थे और उनके काव्य गुणो की परीक्षा करके नरेशा को यह सूचना देत थे कि, आगन्तुक कवि दरबार म आने के योग्य है अथवा नही। कवि चन्द को महाराज जयचन्द स साक्षात्कार की तभी आज्ञा मिलती है जब उनका दसौंधी उसकी परीक्षा करके उसे काव्य गुण सम्पन्न बताता है।[३] केशव ने भी महाराज वीरसिंहदेव के दरबार म दसौंधिया की उपस्थिति प्रदर्शित की है।[४]

गुजबरदार—कवि भूषण ने मुगल दरबार म कई सहस्र गुजबरदार दिखाए हैं।[५] हिन्दू दरबारो के प्रतिहार ही कदाचित मुगल दरबारा म गुजबरदार कहलाते थे। कवि चन्द ने प्रतिहारो की रूपाकृति का जो विवरण दिया है, वह बर्नियर द्वारा दिए गए गुजबरदारो की रूपाकृति के विवरण से पूण साम्य रखता है।[६] प्रतिहार और गुजबरदारो म यह अतर अवश्य था कि प्रतिहारो के पास स्वण या रजत स मण्डित छडी या लाठियाँ रहती थी जबकि गुजबरदारो के पास गदाकार उपकरण रहते थे। मनूची न य गदाए रजत की बताई हैं[७] जो कदाचित रजत स निर्मित होने के स्थान पर रजत स मण्डित होती हागी। इनका काय शाही आज्ञाओ को इच्छित व्यक्तिया तक पहुँचाना तथा दरबार म व्यवस्था रखना होता था।

---

१ दिसि दिसिन दादुर से अगिन सु नकीब दुदि मचावही। —'हि० ब० वि', ८१

२ ४—दे०, 'प० रा०', का० १६।२०।४८८ ८६, वही, १६५६।५५७, 'वीर च०', ३३।२३

५ कयक हजार जहा गुज बरदार ठाढे करिक हुस्यार नीति पकरि समाज की। 'शि० बा०' १४

६ "Among the Kours and the Mansabdars are mixed many Gourje berdars or mace bearers chosen for their tall and handsome persons and whose business it is to preserve order in assemblies and the carry the kings orders and execute his commands with utmost speed" ~ 'Travels in M Empire' p 267

७ दे०, 'मोगल इण्डिया', भा० १ पृ० ८६

खवास—यह प्रतिष्ठित पुरुषों का व्यक्तिगत सेवक और उनकी जीवन चर्या का अभिन्न सहचर होता था। पृथ्वीराज रासो में महाराज पृथ्वीराज कवि चन्द के पान धारी खवास के रूप में महाराज जयचन्द के दरबार में जाते हैं।[1] शाह गोरी के धीर पुण्डीर के बन्दीगृह में पड़े होने पर उसका खवास अन्न जल का परित्याग कर देता है।[2] अन्यत्र शाह गोरी को आपदग्रस्त छोड़कर पलायन करने वाले खवास का उसकी पत्नी धिक्कारती चित्रित की गई है।[3] इन निर्देशों से यही सिद्ध होता है कि स्वामी और खवास प्रायः एक प्राण दो शरीर की उक्ति को चरितार्थ करते थे।

अन्य राज-कर्मचारियों में छड़ीदार, तेग बरदार, पताबरदार, पान पीकदार और खोजाओं का उल्लेख मिलता है।[4]

छड़ीदार कदाचित् हिन्दू दरबारों के प्रतिहार और यष्टिधरा थे ही स्थानापन्न थे और दरबारियों तक शाहों आज्ञाओं को पहुँचाते थे। पान पीकदार की स्थिति शाह औरंगजेब के दरबार में दिखाई गई है जो प्राचीन हिन्दू नरेशों की ताम्बूलकरङ्क वाहिनी जैसा कर्मचारी माना जा सकता है। पताबरदार से भूषण का अभिप्राय कदाचित् मोरछल डालने वाले कर्मचारी से रहा है। यह तथ्य ध्यातव्य है कि हिन्दू नरेशों पर चँवर ढाले जाने के स्थान पर मुगल बादशाहों पर चँवर के साथ-साथ मोरछल ढालने का प्रचलन था।

राजमहलों में ऐसी दासियाँ नियुक्त की जाती थीं जो पुरुष संसर्ग से अछूती और रति-रहस्य से सर्वथा अनभिज्ञ बताई गई हैं।[5] महाराज पृथ्वीराज की रानियों की पानीपत की यात्रा के समय उनके इतस्ततः हाथों में लाठियाँ लिए खोजा जाते दिखाए गए हैं।[6] मुगल हरमों में प्रायः हिजड़े ही अधिक नियुक्त किए जाते थे।[7] ये सभी खोजा प्रकृत हिजड़े नहीं होते थे अपितु ईथोपिया आदि देशों से सुन्दर लड़कों को भी क्रय करके नपुंसक कर दिया जाता था। बर्नियर ने मुगल बादशाहों की इस प्रवृत्ति का उल्लेख किया है।[8] डॉ० गौ० ही० ओझा ने भी यह उल्लेख करके

१ 'पृ० रा०', का० १६८।४४६

२ ३—दे० पृ० रा०', का० २०३२।८८, वही २०८३।३५०

४ 'तेग बरदार स्याह पता बरदार स्याह निखिल नकीब स्याह बोलत बिराह को।
पान पीकदानी स्याह सेनापति मुख स्याह, जहाँ तहाँ ठाढे गिर्ने भूपन सिपाह को।'
—'भू० ग्र० स्फु०' २ 'शि० भू०', ३८, रा० वि०', ६।१६६, हैह०', पृ०, ३६

५ दे०, 'पृ० रा०', मो० ४।६८२।७८, 'पृ० रा०', का० १६६१।२७६

६ 'हू० रा०', २१२, 'हू० हू०' ४८

७ 'Besides these the Ethiopian king sent to the great Mogol twenty five choice slaves nine or ten of whom were of a tender age and in a state to be made EUNUCHS "
—'Travels in M India , P 135

कि 'महाभारत काल में क्रूरता के साथ पुरुषों का पुरुषत्व नष्ट कर अंतःपुर की रक्षा निमित्त उनको नपुंसक बनाने की पद्धति नहीं थी',[1] परवर्तीकाल में इस प्रथा में प्रचलन पर प्रकाश डाला है।

(ग) सैन्य-व्यवस्था

(१) राजकीय सेना में सामंत और उमरावों की सेना टुकड़ियों की बहुलता—वीरकाव्य में विविध प्रसंगों में सामंत और उमरावादि का बहुश: उल्लेख करते हुए आलोच्यकालीन सैन्य-व्यवस्था में उनका अप्रतिम महत्त्व प्रदर्शित किया गया है। नरेश और बादशाहों की निजी सेना तो अल्प होती थी, जबकि उसमें इन सामंत और उमराव कहे जाने वाले, छोटे शासकों की सैन्य टुकड़ियों का बाहुल्य होता था। यद्यपि इनकी नियुक्ति स्वयं नरेश और बादशाहों द्वारा ही की जाती थी, तथापि शनैः शनैः बल संचय करते हुए ये सामंत और उमराव केन्द्रीय शासकों के विरुद्ध हो जाते थे, अथवा शत्रु से मिल जाते थे, तो शासन को बड़े अनिष्टकर परिणाम भोगने पड़ते थे। विभिन्न आक्रमण-योजनाओं के क्रियान्वन का भार भी उनके ही स्कंधों पर होने के कारण, राजकीय मंत्रणाओं में उनसे प्राय: अवश्य ही परामर्श लिया जाता और उनके मत का पर्याप्त ध्यान रखना पड़ता था। वीरकाव्य प्रणेताओं द्वारा विविध नरेश और बादशाहों की सेनाओं को असंख्य तक प्रदर्शित करने का सर्वथा कपोल कल्पित समझने की धारणा का भी इस तथ्य के प्रकाश में अंशतः परिष्कार हो जाता है, कि इतनी संख्या में मात्र उनकी निजी संख्यायें नहीं होती थी, अपितु इनमें उनके अधीनस्थ सामंत राजाओं तथा उमरावों की सेनाओं का भी परिगणन कर दिया जाता था।

पृथ्वीराज रासो में महाराज पृथ्वीराज के अधीनस्थ सौ सामन्त राजा प्रदर्शित करते हुए एक एक सामंत को सहस्र वीरों के समान बताया गया है।[2] महाराज पृथ्वीराज अपने राज्य को स्व सामंतों के भुज बल पर ही आधृत बताते हैं।[3] तथा अपनी लज्जा को भी उन्हीं के हाथों में बताकर प्रशंसा करते हैं।[4] किसी भी प्रकार की राजकीय मंत्रणायें हों, उनमें वे अपने इन सामंतों का परामर्श अवश्य लेते दिखाए हैं।[5] उनके विभिन्न युद्ध प्रसंगों में इन सामंतों की सेनाएं ही सम्मिलित रहती थी।[6] पृथ्वीराज रासो में अन्यत्र भी सामन्तों की आवश्यक प्राणाहुति की निंदा करते हुए कहा गया है कि, सामंतों के अभाव में राज्य सुरक्षित नहीं रह सकता, अतः समझ-बूझकर ही कोई कदम उठाना चाहिए। कवि, ज्योतिषी और श्रेष्ठी आदि तो नृप रूपी गज पर मंडराने वाले भ्रमरों की भाँति होते हैं, जबकि उसकी वास्तविक शक्ति

१ दे०, 'राजपूताने का इतिहास', जिल्द ३, भा० १, पृ० ७७

२ से ६—दे० 'पृ० रा०', क्रा० १५६४।१०७, वही, १०६२।२२०, १६०८।२०३, वही, ६५४।४२, ११०५।५०, १४०२।८, वही, १३०७।११३, वही, १२०४।३७

अपने सामन्तों में ही सन्निहित रहती है।[1] महाराज पृथ्वीराज के सामन्त यद्यपि अतीव स्वामि भक्त कहे गए हैं, रासाकार ने उन्हें पत्नी के सदृश निरीह बताए हैं,[2] तथापि इन सामन्तों में स्वामि भक्ति से भी बढ़कर स्व कुल की प्रतिष्ठा स्थापन की धारणा व्याप्त मिलती है। अपने कुल की प्रतिष्ठा स्थापन तथा अन्य कुलों का गिरान के लिए ये विविध प्रकार के षडयन्त्र रचकर एक दूसरे को नीचा दिखाने की चेष्टा करते तथा महाराज को उनका अपमान करने के लिए प्रेरित करते मिलते हैं जिससे अन्ततः महाराज को पराजय का मुँह देखना पड़ता है।

शाह गोरी की सेना में उमराव मीर और खानों की सैन्य-टुकड़ियों की बहुलता दिखाई गई है जिन्हें वे आक्रमण से पूर्व फरमान भेजकर एकत्र करते और भारत पर आक्रमण की उनसे योजना बनाते चित्रित किए गए हैं।[3] इसी तरह राजविलास,[4] सुजान चरित[5] और हम्मीर रासो[6] आदि ग्रन्थों में भी राणा और बादशाह अपने सामन्त और उमरावों को युद्धार्थ बुलाते, उनसे मन्त्रणा करते तथा सैनिक अभियानों पर भेजते चित्रित किए गए हैं। कवि मान ने तो उमराव और सामन्त शब्दों का समानार्थक प्रयोग किया है। महाराणा राजसिंह के सामन्तों को कभी वे सामन्त अभिहित करते हैं और कभी उमराव। इन सामन्त और उमरावों को स्व सैन्य का व्यय भार वहन करने के लिए जागीरें प्रदान करने का बड़ा प्रचलन था जिस पर अन्यत्र प्रकाश डाला गया है।

(२) सेना के प्रमुख अंग—पृथ्वीराज रासो,[7] कीर्तिलता,[8] परमाल रासो,[9] वीरचरित्र,[10] सुजान चरित,[11] छत्रप्रकाश,[12] शिवराजभूषण[13] और राणा भगवन्तसिंह[14] में सेना के लिए चतुरंगिणी विशेषण प्रयुक्त किया गया है। आलोच्य सेनाओं के परम्परागत चार अंगों के निदर्शक होने के स्थान पर ये उल्लेख इस दृष्टि से संगत प्रतीत होते हैं कि, यद्यपि आलोच्यकालीन युद्धों में रथों में बैठकर युद्ध करने का प्रचलन उठ चुका था किन्तु उसके स्थान पर तोपखाना उसका चतुर्थ अंग बन गया था। कदाचित् इसी कारण से रतन बावनी,[15] गोरा बादल की कथा,[16] हम्मीर हठ,[17] सुजान चरित,[18] राजविलास[19] और रासा भगवतसिंह[20] में रथों का उल्लेख करते हुए

१ से ६—दे० 'पृ० रा०', मो० २।७६४।१६, 'प० रा०', का० ६७३।४८, 'पृ० रा०', का० ५२४।३८, ६४७।८, ११०२।२५, 'रा० वि०', १०।६६, 'सु० च०', ७।२।१७, 'ह० रा०' ३६५

७-१४—दे० 'प० रा०' मो० ३।१५०।६, ३।१५५।१८, ३।१५६।१६, ३।६६०।२६, 'कीर्ति०' पृ० ८२, 'पर० रा०' ५।१५२, 'वी० च०', ३।१७, ८।१०, १२।१४, १३।२१, 'सु० च०' ३।३।६, 'छ० प्र०' १५।१, 'शि० भू०', १२५, 'रा० भग०' १३

१५ से २०—दे० 'र० बा०' ३८, 'गो० क०', ७२, 'ह० ह०', च०, २।३, 'सु० च०', ५।१।१२, 'रा० वि०' ६।८६, 'रा० भग०', १६

भी, उनमें बढ़कर युद्ध करने का किसी भी कवि ने चित्रण नहीं किया है। कवि मान ने, जिन्होंने 'रथ पति' नामक अधिकारी का भी उल्लेख किया है,[1] अपने विविध सदर्भों में रथों का प्रयोग युद्ध सामग्री का और विशेषत तोपों को लादकर ले जाने वाली गाड़ियों के अर्थ में किया है[2] जिससे स्पष्ट हो जाता है कि, वीर काव्य-प्रणेताओं का रथों का प्राय युद्ध सामग्री के वहन के लिए प्रयुक्त की जाने वाली गाड़ियों के ही अर्थ में लिया है। इस प्रकार आलोच्य सेनाओं के—गजसेना, अश्वारोही दल, पदाति-दल और तोपखाना ये चार अंग सिद्ध होते हैं। 'केशव' ने महाराज वीरसिंह देव की चतुरंगिणी सेना के उक्त चार अंगों का ही चित्रण किया भी है।[3]

गज सेना—आलोच्यकालीन युद्धों में हाथियों का प्राचीनकालीन युद्धों की भाँति अप्रतिम स्थान तो न था[4] किन्तु युद्ध में उनकी कई दृष्टि में उपयोगिता होने के कारण नरेश गण पर्याप्त मात्रा में हाथी रखते थे। पृथ्वीराज रासा में महाराज पृथ्वीराज[5] और शाह गोरी[6] हाथियों पर से युद्ध करते तथा हाथियों को सेना के अग्रिम भाग में रखकर रक्षा पंक्ति बनाते दिखाए गए हैं।[7] कदी शाह गोरी के लिए जाने वाले दण्ड में हाथियों का भी लिया जाना दिखाकर,[8] रासोकार ने इस तथ्य पर प्रकाश डाला है कि सेना में गजों की संख्या अभिवृद्धि करने का प्रयास किया जाता था। नरेश-गण जंगलों से भी हाथी पकड़कर लाते थे। पृथ्वीराज रासो के रेवा-तट समय में महाराज पृथ्वीराज अरण्य में हाथी पकड़कर लाने की योजना बनाते दिखाए गए हैं। क्यामखाँ रासा[9] अलिफखाँ की पैड़ी[10] गोरा बादल की कथा,[11] राजविलास,[12] शिवराज भूषण[13] आल्हखण्ड[14] और हिम्मत बहादुर विरदावली[15] में

---

१ रथपति पयदलपति प्रगट हैं जि ह अनि अधिकार। —'रा० वि०', २।७०

२ (क) सुभर रथ बहु सज्ज, बत्रच बगतर कल हुकित।
लच्छर भरित सजाग, सहस इक डारि सु सोभत।
—'रा० वि०', ६।६०

(ख) रथ भरित ब घन बनक रु बहि धुय जिन जो ए धुरा।
गुरनारि गन्निन सारे गोरिय तोर तरक्स तोमरा। —वही, १८।४३

३ दे०, 'वी० च०', १२।१२ १४

४ आचार्य चाणक्य ने हस्ति सेना की महत्ता इन शब्दों में प्रकट की है—
"हस्तिप्रधानो हि विजयो राज्ञाम। परानीक व्यूह दुर्ग स्कन्धावार प्रमर्दना ह्यति प्रमाण शरीरा प्राणाहरण कर्माणो हस्तिन इति।' —'कौट० अर्थ०', १४।८२

५ से १५—दे०, 'पृ० रा०', का० १३६३।१५६, वही, १११७।१३०, वही, १३७०। १३, वही, १११८।१३४, 'क्या० रा०', छ० ६९१, 'आलि०', पृ० ७२, 'गो० क०', छ० ७०, 'रा० वि०', ८।७, 'शि० भू०', २६३, 'आ०', ५२०। २१-२२, 'हि० ब० वि०', ११३

भी हाथियो पर से युद्ध करने अथवा हाथिया के परस्पर भिडने का चित्रण मिलता है। इन गजो के मस्तक पर तेल और सिंदूर लगा रहता था।[१] कवि मान ने महाराज राजसिंह के दरबार म गजपति[२] और शाह औरगजेब के यहाँ दरोगा ए हाथी[३] नामक अधिकारियो की तथा आल्हखण्ड ने हाथी ए दरोगा[४] नियुक्ति भी दिखाई है।

गजो की युद्धा म उपयोगिता सम्ब धी कुछ अ य उल्लेख्य तथ्य यह है कि नरेश प्राय गजारूढ होकर ही युद्ध करते थे जिससे वे स्व सेना का भलीभाँति सचालन कर सकें तथा उनके सनिको को उनकी उपस्थिति का पता चल सके। वीरकाव्य नरेशो के दिखाई न देने की दशा म विजयावस्था के समीप पहुँची हुई सेनाए भी पलायन करते चित्रित की गई हैं अत इस दृष्टि स नरेशा के लिए हाथी अत्यधिक उपयोगी थे। इसके अतिरिक्त हाथियो की सूडो म लौह शृ खला बाँध दी जाती थी। वे इन शृ खलाओ से शत्रु-दल का सहार करते हुए उसम खलबली मचा देते थे।[५] मस्त हाथियो को और भी अधिक प्रभावशाली बनाने क लिए उन्ह भाग पिलाने की भी प्रथा थी।[६] उनका उपयोग राजकीय पताका और निशाना को युद्ध स्थल मे ले जाने के साथ साथ गजनाल नामक तोपो को भी युद्धस्थल म ले जाने के लिए किया जाता था।[७] तात्पय यह कि हमारे आलोच्यकाल म भी सनिक-दृष्टि से हाथियो का महत्त्व पर्याप्त था और उनका विविध प्रयोजनो के लिए उपयोग किया जाता था। हाथिया को युद्धाथ प्रशिक्षित करने के लिए एक पृथक अधिकारी नियुक्त रहता था। शत्रुओं से दण्ड रूप म हाथी लेकर तथा जगलो से नवीन हाथी पकड कर उनकी सख्या बढ़ाने का प्रयास किया जाता था।

अश्वारोही सेना—आलोच्यकालीन सना म सर्वाधिक सख्या अश्वारोही सनिको की ही होती थी।[८] पृथ्वीराज रासो की इस उक्ति म कि धरा का आधिपत्य अश्वो की टापो पर स्थित रहता है[९] अश्वो की युद्ध की दृष्टि स महत्ता अभिव्यजित हो रही है। पृथ्वीराज रासो और क्यामखाँ रासा म विदेशी सौदागरो का भारत म नरेशा का स्व अश्व विक्रय हतु आना प्रदर्शित किया गया है तथा आल्हखण्ड म तदथ बाबुल आदि देशा म नरेशा द्वारा स्व प्रतिनिधि भेजने की प्रथा दिखाई गई है। इन निर्देशा स स्पष्ट होता है कि, अच्छी जाति क घोड विदेशो स भी आयात किए जात थे। कवि जटमल,[१०] मान[११] सूदन[१२] आल्हखण्ड[१३] और पद्माकर[१४] ने युद्धा म—अरबी, ऐराकी, काबाजा, कच्छी कोकणी, काबिली सधारी खुरासानी तूरानी, विलायती,

---

१ स ६—८०, पृ० रा० का० २२२६।७०८ रा० वि०' २।८०, वही, १४।२७ २१ मा० ४१।१२ ? वही ८४।१७ १८, वही ५२०।१३ १५,३७६। १५ १६

७ स १४—८० हि० व० वि० ४४ 'गु० च० ४।३।५, प० रा०', का० ४६७। १२४, मा० क०' ७२ रा० वि०, ६।८ स ६।१२, सु० च०', १।२।४, 'मा०', ४०। १ स ४१।२१, प्र० वि०, ३२ ४१

रूमी, सिंधी और सिराजी जातियों के अश्वों का उपयोग प्रदर्शित किया है। इन निर्देशों से भी अश्वों की युद्धों में अत्यधिक उपयोगशीलता की दृष्टि से उनका अनेक प्रदेशों से आयात किये जाने के तथ्य पर प्रकाश पड़ता है। छत्रप्रकाश में मूर्च्छित हुए महाराज छत्रसाल की उनका अश्व रात्रि भर रखवाली करता है, तथा किसी मांसाहारी पशु का तो कहना ही क्या अपरिचित व्यक्ति को भी महाराज के पास नहीं फटकने देता।[1] प्रातः काल उसकी स्वामिभक्ति के पुरस्कार स्वरूप थाइजा करके कोतल अवस्था में[2] लाया जाता है, तथा सभी सनिक मुक्त-कंठ से उसकी स्वामिभक्ति की सराहना करते हैं।[3] अश्वों के इस स्वामिभक्तिपरक गुण के कारण भी कदाचित युद्धों में अश्वों के प्रयोग को प्राथमिकता दी जाती होगी। आल्हखण्ड में सेना के अश्वों को दगवाने की प्रथा का उल्लेख किया गया है।[4] इसमें केन्द्रीय शासक के चिह्न के साथ साथ सामन्त या उमराव का भी चिह्न विशेष घोड़े की जंघा पर दाग दिया जाता था। बर्नियर ने इस प्रथा का मूल कारण यह प्रदर्शित किया है कि अश्वों के दगे होने के कारण सामन्त और उमरावों को ही शाही निरीक्षण के समय एक-दूसरे से अश्व उधार लेने की संभावना नहीं रहती।[5] इस प्रथा से पूर्व बहुत से उमराव अश्वों के रखने का कल्पित हिसाब किताब दिखाकर केंद्रीय शासक से उनके भरण पोषण के लिए धनराशि प्राप्त कर लेने की धूर्तता करते थे जिससे शाही घोड़ों की किताबों में चढ़ी संख्या उनकी वास्तविक संख्या से बहुत अधिक होती थी। युद्ध के समय इसके भयंकर परिणाम की कल्पना की जा सकती है।

पदाति सेना—कुछ ग्रंथों में पदाति-सेना में भी अपार सैनिक होने का उल्लेख अवश्य किया गया है[6] तथापि युद्ध में हार-जीत की दृष्टि से सेना के इस अंग का विशेष महत्त्व नहीं प्रतीत होता क्योंकि किसी भी ग्रंथ में उसके विषय में अधिक निर्देश नहीं मिलते।

---

१ "कर तुरी ताकी रखवारी, ढिग न जान पाव मसहारी।
पूछ उठाइ चौर से ढार, जो ढिग आव ताहि बिडार।" —'छ० प्र०', १०।८

२ घोड़े को लगाम चढ़ाकर उसका दूसरा छोर अश्व की पूंछ की जड़ में बाँधना थाइजा करना कहलाता है। उसका कोतल चलना उस दशा को कहते हैं, जिसमें अश्व पर जीन तो कसी हो किंतु कोई सवार न हो और उसे धीरे धीरे चलाया जा रहा हो। —छत्रप्रकाश', पा० टि० पृ० ७६

३ ४—दे० 'छत्रप्रकाश', १०।६ १०, 'आ०', ५४८।१६

५ " they are branded on the thing with the kings mark and with the mark of the Omrah under whom the horseman [illegible] enlisted this is well contrived to prevent the loan of the same horses for different review days "
—Travels in Mughal Empire, p 243

६ दे०, सु० च०', ४।३।५, 'आ०', २६७।१०

तोपखाना

जैसा कि हम पीछे उल्लेख कर चुके हैं, वीरकाव्य में किसी भी नरेश को रथ में बैठकर युद्ध करते चित्रित नहीं किया गया है। आलोच्यकाल में उनका स्थान तोपखाने ने ले लिया था। व्रजभाषा की वीरकाव्यधारा के पृथ्वीराज रासो, परमाल रासो, हम्मीर रासो आदि ग्रन्थों में भी यत्र तत्र तोपों का प्रयोग दिखाया गया है। कुछ विद्वान् भारत में तोपों का सर्वप्रथम प्रयोग शाह बाबर द्वारा किया जाना मानते हैं। इस विषय में इतिहासकारों के मतों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि उनका एक बहुत बड़ा वर्ग भारत में बाबर से पूर्व ही तोप-जैसे यन्त्रों तथा बारूद का प्रयोग सिद्ध करता है।

डा० राधाकुमुद मुखर्जी ने लिच्छिवियों द्वारा महाराज अजातशत्रु के विरुद्ध 'महाशिला कण्टक' नामक यन्त्र का प्रयोग करने का उल्लेख किया है। इस यन्त्र से पत्थर के बड़े बड़े ढोके शत्रु सेना पर फेंके जाते थे।[1] डा० बेणी प्रसाद ने मुहम्मद बिनकासिम को सातवीं शताब्दी में देवलनगर के मंदिर के झण्डे को यन्त्रों से पत्थर बरसाकर भूसात करते प्रदर्शित किया है।[2] इन पत्थरों को फेंकने वाला यन्त्र तोप का ही पूर्व रूप था, क्योंकि आरम्भ में तोपों से प्रायः पत्थर के ही गोले चलाये जाते थे।[3] पत्थर के गोले छोड़ने का वीरकाव्यधारा के श्रीधरकृत जंगनामा में उल्लेख मिलता है।[4] डा० आर० सी० मजूमदार एच० सी० राय चौधरी और डॉ० कालिकिंकर के अभिमत में अग्निबाण (राकिटस), ज्वलनशील पदार्थ भरे गोले तथा बारूद से लोहे के गोले फेंकने वाली मशीन का—बाबर के आगमन से बहुत पूर्व (इल्तुतमिश के काल में) ही प्रयोग होने लगा था।[5] इस प्रकार स्पष्ट होता है कि शाह बाबर के आक्रमण से पूर्व ही बारूद के अस्त्रों का किसी न किसी रूप में प्रयोग होने लगा था। युद्धस्थल में तोपखाने ने पहले हाथियों द्वारा बनाई जाने वाली रक्षा पंक्ति का स्थान ग्रहण कर लिया था और प्रायः तोपें ही सेना के अग्रिम भाग में रखी जाती थीं।[6]

---

१ २—दे०, हिन्दू सभ्यता', पृ० १८६, 'हि० पु० स०', पृ० ५०२

३ "किन्तु सम्भवतः उस समय तक (बाबर काल) तोप से पत्थर के गोले दागे जाते थे। धातु के गोलों का उस समय तक प्रयोग प्रारम्भ नहीं हुआ था।'
—'तुगलककालीन भारत', पृ० ४३

४ "तह गोला पत्थर वित्थरिय सो भरि पत्थर पत्थरि थुरेउ।" जंग०', छ० १५६८

५ दे०, एन एडवान्स्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया भाग २ पृ० ३६४

६ 'सु आगे अयनारि अपार सजू। निन देपत काइर दूरि भजू।"
— प० रा०', का० ६४८।१६

(क) सब तोपखाना अगु कर जिहि की दिगतन लौ असर।—'हि०ब०वि०', ४३

(ख) आगें सब अरावौ कियौ। तिहि पाछे पदल दल दियौ।
— वी० च०', १२।१२

(ग) 'दारू गोली व घटे तीरन माची मार।
छूटे अथ तुनीर सब, परयो फौज को भार।" — छ० प्र०', ७।१३

दुर्गों के बुर्जों पर भी तोपें स्थापित रहती थी, जिनके प्रयोग से शत्रु-दल के दुर्ग में प्रवेश करने के प्रयत्न को असफल कर दिया जाता था।[1] दुर्गदीवार के कंगूरों के रध्रों पर भी सैनिक नियुक्त कर दिए जाते थे जो उन रध्रों में से गोलियां दागकर रिपुदल का संहार करते थे।[2] संक्षेप में अनेक प्रकार की तोपें और बन्दूकें, चद्दर तथा बान[3] आदि अग्न्यस्त्र परवर्तीकालीन युद्धों में विजय के मुख्य सम्बल बन गए थे।

सेनाओं की पताकाएँ

वीरकाव्य में सेना की पताकाओं के लिए निसान,[4] ध्वजा,[5] पताका,[6] बरख[7] और झंडा[8] शब्द व्यवहृत हुए हैं, जिनमें से निशान शब्द का सर्वाधिक प्रयोग किया गया है। मुगल सेना की पताकाएँ आलमताग कही गई हैं।[9] निशान सेना के एक आवश्यक अंग होते थे। युद्धस्थल में सैनिकों को अपनी जय पराजय का ज्ञान ऊंचे उठे हुए या झुके हुए निशानों को देखकर हो जाता था। विजेता का सर्वप्रथम कार्य शत्रु के नगाड़े और निशानों पर अधिकार करके निशानों को झुका देना होता था।[10] हम्मीर रासो और हम्मीर हठ में शत्रु के निशानों को असावधानी से ऊंचे करके लाना दुर्ग-नारियों के जौहर का कारण बन जाता है। घटनाक्रम के अनुसार महाराज हम्मीर देव स्व रानियों को आदेश दे गये थे कि यदि तुम्हें दुर्ग की ओर शाह के निशान आते दिखाई दें तो हमारी पराजय समझ लेना और शत्रु चंगुल से बचने के लिए जौहर कर लेना।[11] वे युद्ध में विजयी तो होते हैं किन्तु असावधानी से हम्मीर रासो में शाह अलाउद्दीन के निशानों को ऊँचे उठाए हुए तथा हम्मीर हठ में अपने निशानों को झुकाए हुए दुर्ग की ओर प्रत्यागमन करते हैं, जिसे उनकी पराजय की कल्पना करके दुर्ग नारियाँ आत्मदाह कर लेती हैं। इस घटना में चाहे महाराज हम्मीर देव की पराजय को छिपाने के लिए ही, शाह के निशानों को असावधानी से ऊँचा उठाये हुए लेकर आना प्रदर्शित किया गया हो, तथापि निशानों से जय या पराजय

---

१ 'बुज पुर्जों धरी तोप मोटी, एक मोटी तहाँ दाद छोटी।
जान जज्जाल के चोट द्वारों, बानवार रुपए हजारों।' सु० च०', ७।२।३७

२ "कागुरों कांगुरों मार मण्डी। रध्र रध्रां उन्हीं मुसण्डी।
ग्रद्ध की उद्ध की मारु बढी। दाहिन बाहिन चोट चढी।" वही

३ 'गुरदा चद्दर गज-गुबारे। लिए लगाई तीर कस मारे।
तोप दइ फेरि अनि भारी। मदरमरु दहाबन वारी।
तिरु तुपक जरजाल जमूर। ल भरि आर बान बल पूर।'

— ह०ह०', च०, १५८ ५६

४ 'सु० च०, २।१।६०, प्रता० रा०', छ० ८५ 'हि० व० वि०, छ०, ४८, ८२

५ दे०, 'प०रा०', का०, २३०३।११८२, 'पर०रा०', १७।४२, सु०च०, १।३।३२

६ से ११— दे०, 'सु० च०, ६।४।४, शि० भू०', ८१, 'छ० प्र०, १४।६, 'वी० च०', ५।८२, 'रा० वि०', १८।६६, 'ह० रा०', ६८५

का ज्ञान प्राप्त करना अवश्य अभिलषित होता है। वीरकाव्य में डंका और नगाड़ा दिया जाता पर अनुमान पत्रन दुनियाँ इतना कहा है कि, किस उद्देश्य गायन ... साहू अवसर के समय बजाये जा सकता है।[1]

वीरकाव्य से दूसरे इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि विभिन्न राजाओं तथा जातियों की रण ध्वजाओं के पृथक् पृथक् रंग होते थे। पृथ्वीराज रासो में पज्जूनराज और चाहर राय की सेनाओं के जो रंग की पताकाएँ दिखाई गई हैं[2] तथा मुसलमानों की सेना के निशानों का रंग हरा बताया है।[3] सुजान चरित्र में महाराज सूरजमल का कवि सेना की टुकड़ियों का परिचय देते हुए उनको पुष्पकर बताता है कि जहाँ श्याम पताकाएँ फहरा रही हैं, वह पन्ना का दल है, पीली और श्वेत ध्वजाओं वाले रुहेले हैं, अनेक रंग के निशानों वाली सेना दक्षिण भारत की है तथा रक्त और श्वेत वर्ण की ध्वजाओं वाली टुकड़ी बंगाली की है।[4] परमाल रासो में मलिखान की सेना में रक्त, श्याम, पीत, श्वेत और हरित वर्णों की ध्वजाओं वाली अन्य टुकड़ियाँ सम्मिलित दिखाई गई हैं।[5] सूदन ने एक ही वर्ण की पताकाओं को सेना की चारों दिशाओं में फहराते चित्रित करके, इस तथ्य का भी अभिद्योतन किया है कि निशानों से इस बात का ज्ञान होता रहता था कि कौन-सी सैन्य-टुकड़ी कहाँ तक फैली हुई है।[6] युद्ध पताकाओं के वर्ण के आधार पर, विभिन्न दलों के सैनिकों को युद्धस्थल में अपने दल में सम्मिलित रह कर युद्ध करने में भी निश्चय ही बड़ी सहायता मिलती होगी।

सेनाओं के प्रयाण के समय बजने वाले युद्ध वाद्य—रण-वाद्यों का मूलोद्देश्य वीरों में रणोन्माद का संचरण करना होता था। इसके साथ ही वीरों को युद्धार्थ सज्जित होने, युद्धारम्भ करने तथा विजय आदि के तथ्यों की सूचना देने के प्रयोजनों में भी इनका प्रयोग किया जाता था। राजकीय यात्राओं के समय भी नगाड़े आदि बजाते चलना उनकी मर्यादा का अभिद्योतक होता था।

आलोच्यकालीन रण-वाद्यों में निशान का सर्वाधिक उल्लेख मिलता है। निशान शब्द के विषय में यह उल्लेख करना आवश्यक है। फारसी में निशान शब्द के अर्थ—"सेना का झण्डा तथा बादशाह का आज्ञापत्र होते हैं।"[7] इन अर्थों में से निशान शब्द का सेना के झण्डे के अर्थ में प्रयोग पीछे दिया जा चुका है, हाँ वीरकाव्य में उसकी अपेक्षा निशान का डंके या धौंसा के अर्थ में अधिक प्रयोग किया गया है। डॉ० श्यामसुन्दर दास ने निशान के झण्डे के अर्थक प्रयोग का सम्बन्ध संस्कृत के विषण्ण शब्द से जोड़ा

---

१ से ५—दे०, वी० च०', ५।८२, 'प० रा०', मो० ११६०।५१, पृ० रा०', का० २३०२।११८२, सु० च०', ६।५।४, परि० रा०', १५।११२

६ "चार्‌यो निसान चारयो दिसान। फहरावति आवति घरि घवान।'

—'सु० च०', १।३।३२

७ 'सुजान चरित्र की भूमिका', पृ० ६

है।[1] पृथ्वीराज रासो,[2] क्यामखाँ-रासा,[3] परमाल रासो,[4] वीरचरित्र[5] छत्रप्रकाश,[6] सुजान चरित्र,[7] राजविलास,[8] मगन कवित्त,[9] प्रताप विरुदावली,[10] हम्मीर रासो[11] और हम्मीर हठ[12] में निशान बजाकर सैनिकों का युद्धार्थ सज्जित होना, शत्रु को स्व आगमन की सूचना देना, युद्धारम्भ करने तथा विजय की सूचना देने का चित्रण किया गया है। निसान से ही मिलते जुलते रण वाद्यों में उल्लेखों की दृष्टि से दुदुंभि द्वितीय स्थान प्राप्त करती है जिसका वीरचरित्र गोरा बादल की कथा सुजान चरित, हिम्मत बहादुर विरदावली' प्रतापसिंह विरुदावली, रासाभगवन्तसिंह और प्रताप रासा में उल्लेख मिलता है।[13] इसके अतिरिक्त बंब[14] नगाड़ा,[15] मारू,[16] धौंसा,[17] जंगी ढोल और दमामा[18] और तबला[19] भी निसान और दुदुभी की भांति युद्ध सज्जादि के समय बजते प्रदर्शित किये गये हैं।

कवि मान और मालह्कार ने निसान बजने पर वीरों के युद्धार्थ सज्जित होने का शब्द चित्र प्रस्तुत किया है। राजविलास में निसान के प्रथम बार बजने पर सैनिक अंगत्राण पहन कर शस्त्रों से सज्जित हो जाते हैं द्वितीय निर्घोष पर अपने अपने अश्व और गजों पर सवार होकर एकत्र हो जाते हैं तथा तीसरी ध्वनि पर कुमार जयसिंह भी अश्वारूढ़ होकर युद्ध के लिए प्रयाण आरम्भ कर देते हैं। मालह्कार के शब्दों में "नगाड़े की प्रथम चोट सुनकर वीरों ने जानें कस ली, दूसरी पर वे सवार

१ से ३—दे०, 'पृ० रा०', भा० २८३।१३, ६३३।७६, २२०८।२५, वही, २२०८।६२५ 'क्या० रा०', छ०, १६६ १६८, १७१, ४८७, ५३२, ५४४, ५६४, ६००, ६४४,६४७, ७५५, ७७८

४ से १२—दे०, 'पर० रा०', ७।२६, १०।१३८, १६।७६, २१।६७, १० २४४, १०।२८२, १०।३५८, १०।४६१, १०।६५०, १६।४८, 'वी० च०', १२।३६, छ० प्र०', १४।६, १७।१, 'सु० च०', ६।१।२१ २।२।१४, २।३।६ १।३।७, ४।१।१०, ५।२।३, ५।४।१३, 'रा० वि० , ८।६, १८।६८, म० क०' छ० ३०५, 'प्रता० वि० , छ०, ६८, ह० रा०', छ०, ३८१, ३८२, ३८८, ४१७, ४६८, 'ह० ह०', च० छ०, १२०

१३ 'सु० च०', ५।१।१४ 'प्रता० वि०', छ०, १०, हि० ब० वि०' छ०, २५, 'वी० च०', १६।३, 'प्रता० रा०', छ०, ११६

१४ 'पर० रा०', ४।७६, 'ह० ह०', चद्र० छ०, २६१, छ० प्र०', २१।३

१५ 'मा०', ४३।३१, 'छ० प्र०', १३।६, वही, १५।२

१६ 'वी० च०' ६।५१, 'छ० प्र०', १७।१०, मा०', १०३।२३, 'ह० ह०', च० छ०, ३०४

१७ 'छ० प्र०', १४।६, 'प्रता० रा०', छ० ८६, 'ह० ह०', चद्र० छ० १२१

१८ ढमके भहरी ढाल, सहेंणाई बाजे सरस,
घुर दमामा घार सीघूड़ो ढाढी श्रव। गारा० क०', छ० १२८

१९ 'क्या० रा०', ७७८, 'छ० प्र०', १८।१०, 'रा० वि०', १८।२८

हो गये तथा तीसरे निर्घोष पर समस्त सेना युद्धार्थ कूच आरम्भ कर दिया।"[1] छत्रप्रकाश में भागती हुई सेना का नक्कारा छोड़कर भागने चित्रित किया गया है।[2]

अन्य रण वाद्यों पर प्रकाश डालने से पूर्व निशान के विषय में कुछ अन्य तथ्यों का उल्लेख करना आवश्यक है। कवि जान ने निशान का सम्पूर्ण सेना से बढ़कर बताया है।[3] वीरकाव्यों से ज्ञात होता है कि किसी देश की सीमा में से निशान या नगाड़ा बजाते हुए निकलना उस देश की अवमानना का प्रतीक माना जाता था।[4] इसी भाँति पराजित शत्रु के निशानों को अनिवार्यतः लूट लिया जाता था। वीरचरित्र में अर्जुन फौजदार के नगाड़े और ध्वजाओं को महाराज वीरसिंह देव लूट लेते हैं जिस पर वे कहते हैं कि अब मैं शाह को मुँह कैसे दिखाऊँगा।[5] हम्मीर रासो में तो निशानों के लूट की घटना ताजखाँ और महमदखाँ चौहान भ्राताओं तथा शाह फीरोजखाँ के मध्य वैमनस्य का कारण बन जाती है। शाह फीरोजखाँ के नेजे और निशानों को राणा मोकलसी छीन ले गये थे।[6] ताजखाँ और मुहम्मदखाँ ने जब राणा को परास्त करके लूटे हुए नेजे और निशान शाह फीरोजखाँ को वापस किए[7] तो वह अपने अधीनस्थ लोगों के उस पराक्रम से बड़ा लज्जित हुआ[8] तथा उपकार मानने के स्थान पर उनके प्राणों का ग्राहक बन गया।[9]

अन्य वाद्ययन्त्रों में पृथ्वीराज रासो में—रणभेरी, झज्झर (झाँझ) और नफेरी से सिंधु राग बजाने का उल्लेख किया गया है।[10] उसमें योद्धा सहस्रों नाल भी बजाते दिखाए गये हैं।[11] कीर्तिलता में रणभेरी काहल ढोल तबला और रणतूर्य के वादन से सैनिकों में युद्धोन्माद जागृत किया जाता है।[12] परमाल रासो में जंगी ढोल मृदंग बाँसुरी शंख शहनाई रणतूर्य दुंदुभी घुरार करनाल तारतूमा चौतार, रबाब बीन मुहचंग, झाँझ और मंजीर बजने से पाताल में नाग और दिग्गज भी बधिर होते चित्रित किए गए हैं।[13] कवि मान ने युद्ध क्षेत्र में जंगी ढोल मृदंग शंख, बीन नफरी, शहनाई भेरी भरनारी दुक्कड़ी सारंगी करनाल और तूर्य का बजाया जाना प्रदर्शित किया है।[14] सूदन ने ढोल, डमरू, डफला, तबल शहनाई तुरही बाँकिया और रणभेरी नामक रण वाद्यों का उल्लेख किया है।[15] इसी भाँति जटमल ने शहनाई और तुरही[16] जोधराज तूर्य और भेरी[17] का आल्हखंडकार ने रण महुवर तुरही और करनाल का[18] 'सुदास' ने शहनाई

१ से ५—दे० 'ग्रा० ६७।७ ८', 'छ० प्र०' १८।१०, 'क्या० रा०', छं० ६३७, 'आल्हखण्ड' पृ० ३०८, वी० च० ५।८२ ८३

६ से १२—दे० 'ह० रा०' छं० ३४५ ३४६ ३५३ ३५६, 'पृ० रा०', का० २२०८।६२६, पृ० रा० मो० ३।४५१।२६, कीर्ति० पृ० १००

१३ से १८—दे० 'प० रा०' १०।२७६ ७७, १०।४८८, 'रा० वि० १८।३२, सु० च०, ५।१।१४, मारा० क०, छं० १२८, 'ह० रा०, छं० ५१६, 'आ०, २४।७, ७६।६

करनाल, तुरही और झांझों का[1] तथा सदानंद ने युद्धस्थल में शंख[2] बजाने का चित्रण किया है।

मदभगत रणवाद्यों से कुछ प्रसिद्ध ओजात्मक ध्वनियां या राग बजाए जाते थे। वीरकाव्य में तीन युद्ध रागों का उल्लेख मिलता है। कवि चंद[3] जटमल[4] पद्माकर[5] चंद्रशेखर[6] और जान[7] ने 'मारू राग' का उल्लेख किया है। वीर रस का दूसरा राग सिन्धु राग कहलाता था, जिसका कवि चंद,[8] जटमल[9] जान[10] और मान[11] ने उल्लेख किया है। पृथ्वीराज रासो में अधिकांशतया इसी राग का उल्लेख मिलता है।[12] कवि मान ने 'गौरी' नामक एक अन्य युद्ध राग का भी उल्लेख किया है।[13]

रण वाद्यों में इन रागों की रागिनियाँ बजाने के साथ साथ जगा, जागरे और ढाढिया द्वारा 'मारू' और 'सिंधु राग' के ओजात्मक कड़खे भी गाये जाते थे। जटमल ने ढाढियों का सिंधु राग का आलाप करते प्रदर्शित किया है।[14] पद्माकर के वर्णन से तो युद्धस्थल का स्वरूप ही मूर्तिमान हो उठता है—'जुझाऊ बाजे बजने लगे जिनसे वीरों के हृदय चौगुने उत्साह से उन्मत्त हो गये। जगा और जागरों के मारू राग को सुनकर कायरों के अंगों में तो कंपन हो गया, जबकि वीरों के भुजदंड, युद्धोन्माद से फड़क उठे। मंजीरों की झंकार रबाबों की मन्द्र गम्भीर ध्वनि, जागरे और ढाढियों के ओजात्मक कड़खे तथा नकीबों (चारण भाट) के वीररसात्मक छंदों के मिश्रित

---

१ २—दे०, 'प्रता० रा०', छं० ९० ९१, 'रा० भग०' छं० ७०

३ "बज राग सिंधू सु मारू प्रवग्गे।
गजे सूर सूर असूर सु भग्गे।" —'पृ० रा०', का० ६,४।११७

४ 'रण बज्ज रणतूर मारू गाव ममला।
उमगे तह चित सूर, कायर का चित खलभल्या।" —'गो० क०', छं० १२७

५ "जगे जागरे राग मारू अलाप।
सुने कातारा के तहा अंग कापैं।' —हि० व० वि०', १८

६ पढ़ विरद बदी बरजोर। मढयो राग मारू सब ठौर। —ह० ह०', च० २९९

७ करनायो घर रावदी थोपनातन बज सहनाद।
मारू सिंधू सुभट सुनि ना अंग सभाद। —अलि० की प०' छं० ३८

८ से ११—दे० 'पृ० रा० मो० २।८२६।६२, 'गो० बा० क०', छं० १२८, 'अलि० की प०', छं० ३८ 'रा० वि०', १८।३२

१२ दे०, 'पृ० रा०' का० १३०।६६७, २७६।२६ ३८८।९४ ४६७।७७, ५३६। १३८ ६२६।२१४ ६३४।११५, ११४३।६५ आदि।

१३ सिंधू गौरी बजत सुर, सुग्न बन्त सुद्धोह।
त्रिन ज्यों तन धन तिन तज मानिनि माया माह। —'रा० वि०', १८।५५

१४ ठमके भरगी ढाल, सहणाई बाज सुरग।
धुर दमामा घोर, सीधूड़ो टागी श्रव। —'गो० वा० क०', छं० ३८

हरर ने योरा के कुञ्ज का रणा मत्त कर दिया ।"[1] चन्द्रशेखर ने जुझाऊ बाजा के साथ उड़िया के मारू राग का सुनना का, वीर और कायरों पर प्रकार की भांति भिन्न भिन्न प्रभाव दिखाया है ।[2] कवि मान के शब्दों में—'सिन्धु और गौरी राग के श्रवण से शरीर कपने लग, धन और गृहिणी आदि के माया मोह को तृण-तुल्य त्रिच्छिन्न कर देते थे तथा उनमें एक अपूर्व उत्साह का सचरण हो जाता था ।[3]

सैनिकों के अंग त्राण

योद्धाओं तथा अश्व और गजों के विविध शरीरांगों की रक्षा के लिए इस्पात की कड़ियों अथवा चद्दरों से निर्मित अनेक प्रकार के उपकरणों का प्रयोग किया जाता था । शोधार्थी को भिन्न भिन्न पुरातत्व संग्रहालयों के अधिकारियों ने एक ही उपकरण के भिन्न भिन्न नाम बताए थे, जिससे प्रतीत होता है कि स्थान भेद से इन उपकरणों के नामों में प्रादेशिकता का पुट रहता था ।

(क) टोप कुंडी, कुलह और खोल—शीश की रक्षा के लिए पहने जाने वाले लौह उपकरणों में टोप कुंडी, कुलह और खोल का प्रयोग किया जाता था । ये शिरस्त्राण रूपाकार में बहुत भिन्न न होते हुए भी कदाचित स्थल भेद के कारण ही पृथक पृथक नामों से अभिहित किए जाते थे । इन्हें पगड़ियों के ऊपर पहना जाता था ।[4]—जो स्वयं भी टोप और कुंडी आदि के टूट जाने पर कुछ सीमा तक शीश को प्रहारों से सुरक्षित रखती होगी । टोप का प्रयोग—पृथ्वीराज[5] रासो, राजविलास,[6] सुजानचरित,[7] हम्मीर[8] रासो हम्मीर हठ[9] प्रतापविरुदावली[10] और आल्हखण्ड[11] में प्रदर्शित किया गया है । रासा भगवन्तसिंह[12] और जगनामा[13] में कुंडी का प्रयोग दिखाया गया है जबकि चन्द्रशेखरकृत हम्मीरहठ और आल्हखण्ड में कुलह का प्रयोग चित्रित किया गया है । कवि जान ने इनके स्थान पर खोल का प्रयोग दिखाया है ।[14]

---

१ से ३—दे० 'प्रता० वि०' छं० १८२०, ह० ह०, च० छं० १८२०, 'रा० वि० १८।८५

४ 'सुरख पगड़ी है माथे पर लोहे कुंडी लई औधाय ।' —'आ० ४२।१७

५ 'तुर टोप टूक सुउड्डत दीसै । मना चद तारा नव हथ्थरीस ।'

—'पृ० रा०', का०, ५३१।८५

६ सिर टोप सज्जि तनुत्राण सच । प्रकटे सुबधि हथियार पच ।'

—'रा० वि०, ६।१८

७ + + + झिलम टोप जजीर जिरह लुटिम्य मस्तानें । —सु० च०', ६।२।३२

८ से १३—दे० ह० रा छं०, ७५० ह० ह० च० ३२८, प्र० वि०' छं० ५६, 'आ० ८३७।११ रा० भ०, छं० ६४ 'जग०, पृ०, ७६०

१४ राग जिरह तन सज्जि के । खोल सिर पर दित्त ।'

—'आलि० की पृ०', छं० २८

झिलम—लोहे की कड़ियों से बुनी हुई झालर झिलम कहलाती थी, जिसका तीन रूपों में प्रयोग चित्रित किया गया है। पृथ्वीराज रासो में वीर अपनी पगड़ियों पर झिलम डालते हैं।[1] कवि पद्माकर[2] और ग्वाल[3] ने झिलिम से वीरों के शरीरों को मंडित प्रदर्शित करते हुए, उसका जिरह के अर्थ में प्रयोग किया है क्योंकि अन्य कवियों ने उस अर्थ में जिरह शब्द प्रयुक्त किया है। यह तथ्य भी उल्लेख्य है कि पद्माकर ने झिलम शब्द का तो कई बार प्रयोग किया है जबकि जिरह शब्द का मात्र एक बार प्रयोग किया है।[4] झिलिम का तीसरा प्रयोग टोप के साथ सम्बद्ध है। कवि चन्द ने टोप झिलम[5] सूदन ने झिलिम-टोप[6] चन्द्रशेखर ने झिलिम घटाटोप'[7] जोधराज ने जिरह-टोप[8] तथा आल्हाकार ने 'झलरिहा टोप',[9] शब्दों का प्रयोग किया है जिससे प्रतीत होता है कि इन टोपों में झिलम या जिरह जुड़ी हुई थी। भरतपुर के पुरातत्व संग्रहालय में शोधार्थी को बताया गया था कि जिस टोप में गर्दन की रक्षा के लिए जंजीर जुड़ी रहती थी, वह झिलम टोप कहलाता था। विलियम इरविन ने मुंह से झिलम हटाने सम्बन्धी निर्देश के आधार पर कहा है कि वह मुख की रक्षा के लिए भी प्रयुक्त की जाती थी।[10] कवि पद्माकर के भी एक उल्लेख से ऐसा ध्वनित होता है कि झिलम मुख के आगे और झनझना रही थी।[11] अनुमानतः जब टोप के पार्श्वभाग की भाँति उसमें आगे की ओर भी जंजीरें जड़ी रहती थीं और यह झिलम मुख की रक्षा करती थी। आईन ए अकबरी' में शस्त्रास्त्र और अंग त्राणों का विवरण देते हुए क्रम-संख्या चौंतीस पर 'जिरह-कुलह' का उल्लेख किया गया है तथा विलियम इरविन के अनुसार चित्रों की सूची में प्लेट नं० १३ की सं० ४५ पर उसका चित्र दिया गया है।[12] हमारे मत में जिरह कुलह' का ही हिन्दी में 'झिलम टोप' कहा जाता था, जिसमें जिरह झिलम का और कुलह टोप का द्योतन करती है। श्रीधर ने जंगनामा

१ "इत सूरमा पाग प झिलम डारै। उतै झुंडर रभ भागैं सवारैं।"
— पृ० रा०', का० २५६४।२६४

२ "जानत रन इनमैं पहिर झिलमैं हिलमिल दिरम उमग भर।'
—वही, छ० ८६ और भी दे० प्र० वि०', छ०, ५६, १८६, १९५ २०१

३ "हथ्यारों पर सबके जिलह चढ रहीं है, सभट्टा के तन यों झिलम मढ रहीं है।"
—'ह० ह०' ग्वाल० छ० ६७

४ से ९—दे०, 'हि० व० वि०' छ०, ७८, पृ० रा०', का०, २५९२।६४०, 'सु० च०', ६।२।३२, 'ह० ह०', च० १७५ 'ह० रा०', ४६१, 'आ०', ५३७।११

१० 'द आर्मी आफ दि इण्डियन मुगल्स', पृ० ६६

११ "झिलमि झुमि भार भौंर की भलाभली
मनौं उमचि चाउ सो चमकि चचला चली।" —'प्र० वि०', छ० ७३

१२ 'द आर्मी आफ दि इण्डियन मुगल्स', पृ० ६८

मे इसे झिलिम कुडी कहा है।[1]

घूघ तथा डिमाक या नाक चून—वस्तुतः टोपा म भी नाक की रक्षा के लिए लोहे नाक जुडी रहती थी, किन्तु मस्तक और नाक की रक्षा के लिए घूघ नामक एक अन्य कवच का भी प्रयोग किया जाता था। विलियम इरविन ने आईन ए अकबरी म खोघी नामक कवच के विविध पाठान्तरों—घोरवो, घुघी और घूघी की कल्पना करते हुए उसे सिर पर कई तहें करके बाँधे जाने वाला कपड़ा बताया है।[2] इसी प्रकार कवि गोरेलाल ने मस्तक पर लाहे की घूघ बँधी होने तथा उसमे लोह की नाक लगी होने का स्पष्ट उल्लेख करते हुए, उसे एक ऐसा मस्तक त्राण दिखाया है जिसम लोहे की नाक भी जुडी रहती थी।[3] अनुमानतः घूघ का प्रयोग तभी किया जाता होगा जब शीश पर मात्र झिलम डाल रखी हो अथवा ऐसी कुली पहन रखी हो जिसम नाक न जुडी होती होगी। कवि पद्माकर न नाक चून या डिमाक चून नामक कवच का प्रयोग दिखाते हुए कहा है कि उसम स लगा नाक नासिका की भी शोभा को हर लेती थी।[4] इससे प्रतीत होता है कि यह अंग त्राण भी कवि गोरेलाल द्वारा उल्लिखित 'घूघ' से मिलता जुलता रहा होगा। विलियम इरविन ने नाक चून या डिमाक चून नामक किसी कवच का उल्लेख तो नही किया है, किन्तु उन्होने विविध अंग त्राणो का सूचक फारसी का जो शेर उद्धृत किया है, उसम 'चून शब्द' भी मिलता है। अतत यह निर्देश भी अप्रासंगिक न होगा कि आईन ए अकबरी की भूमिका म उसके चित्रो का स्पष्टीकरण करते हुए घूघ स नाम साम्य रखने वाले घूघवा नामक कवच को लोहे की कडियो से बुना हुआ ऐसा कोट बताया गया है जो अकेला ही सिर, बाजुओ और वक्ष स्थल आदि शरीरांगो की रक्षा करता था।[5] अर्थात इसकी बनावट की विशेषता यह थी कि इसम शीश बाहु और वक्ष स्थल आदि के रक्षक भाग परस्पर सलग्न रहते। यदि 'घूघ घूघवा का ही सक्षिप्त रूप था, तो समझ म नही आता कि, गोरेलाल ने घूघ का मस्तक पर बाधने का उल्लेख कैसे किया है? सभावना यही

१ ' झिरि झिलिम कुडी कुरी कुरी किरि गई बखतर की किरी।''
—'जग०', प० ७६०

२ 'द आर्मी आफ दि इण्डियन मुगल्स', पृ० ६५

३ अरुन रग आनन छवि लीन। माथ घूघ लोह की दीन।
घूघहि नाक लाह की लागी। छाती छटा छूट छवि जागी।''
—'छ० प्र०', २२।८

४ (क) "धर नाक चून न जे होत ऊन। सहैं जे न सूनें भए फूलि दून।''
— प्र० वि०', छ० ५८

(ख) "अलोप टोप कै अटोप चाइ चोप सा धर,
डिमाक नाक चून के कि नाक नाक सा हर।'' —वही छ० ७४

५ 'आईन ए-अकबरी', भा० ३, भूमिका, पृ० २४

है कि घूघ और घूघवा भिन्न भिन्न कवच रहे होगे।

जिरह और बख्तर—जिरह और बख्तर बनावट की दृष्टि से पृथक पृथक प्रकार के अंग त्राण थे। इन दोनो के मध्य मुख्य व्यावर्तक लक्षण यह था कि जिरह तो लौह-कड़ियो से बुना कुर्ता जैसा अंगत्राण होता था, जबकि बख्तर जिरह जैसा कुर्ता होने पर भी उसमे चार आईने जुड़े रहते थे।[1] चार आईनो से अभिप्राय धातु की चार चद्दरो से है जो दोनो बाजुओ और वक्ष स्थल की सुरक्षा के लिए जिरह मे जुड़ी रहती थीं। इन चद्दरो के नीचे आड़ी सलाखें भी लगी रहती थी जिससे किसी शस्त्र या अस्त्र का आघात नहीं आ सकता था, जब वह उस चद्दर, सलाखो तथा लोहे की कड़ियो का विदीर्ण करने की क्षमता रखता हो।[2]

परमाल रासो,[3] वीरचरित्र[4] और राजविलास[5] मे जिरह अथवा बख्तर का स्पष्ट निर्देश करने के स्थान पर योद्धागण सिलह सनाह, कवच या तनत्राण का प्रयोग करते चित्रित किए गये हैं जिससे स्पष्ट होता है कि उन्होने जिरह अथवा बख्तर धारण कर रखे होगे। पृथ्वीराज रासो[6] छत्रप्रकाश[7] और प्रतापसिंह विरुदावली[8] मे बख्तरो के प्रयोग पर प्रकाश डाला है। सुजान चरित्र[9] और प्रताप रासो[10] मे जिरह और बख्तर का साथ साथ उल्लेख किया गया है, जबकि आल्हकार ने बख्तर के नीचे दो जिरहें पहनने की प्रथा दिखाई है।[11] आल्हखण्ड मे अन्यत्र यह भी निर्दिष्ट किया गया है कि अष्टधातु के मिश्रण से तैयार की गई कड़ियो से निर्मित जिरहो पर बन्दूक की गोलियो का भी दुष्प्रभाव नही पड़ता।[12] जंगनामा मे जिरहों के फाड़ने तथा बख्तरो के छोड़ने का चित्रण किया गया है[13] तथा अन्यत्र सैनिक बख्तर पोश बताए गये हैं।[14] कवि पद्माकर[15] और सदानन्द[16] ने कुछ सैनिको जिरह-मात्र ही पहने चित्रित किये हैं जो कदाचित बख्तरों का मूल्य अधिक होने के कारण, जिरहो का ही उपयोग करते होगे। जिरह और बख्तर के संदर्भ मे यह निवेदन अप्रासंगिक न होगा कि संतत ग्रीवा से लेकर पैरो तक के शरीरागो की रक्षा करने की दृष्टि से, लौह-कड़ियो के स्थान पर इस्पात की चद्दरो के गोताखोरो की पोशाक

---

१ "चह्र आईने खुनद मिग़फ़ार ओ जोशनम।
चून बारी ना करद अख्तर रोशनम।"
—'द आर्मो आफ दि इण्डियन मुगल्स', पृ० ६६ पर उद्धृत।

२ आधार्थी को भरतपुर और अलवर के पुरातत्व सग्रहालयो मे जिरह और बख्तर के मध्य यही अंतर बताया गया था।

३ से ११—दे०, 'प० रा०', २१।६०, 'वी० च०', १२।१४, 'रा० वि०, ८।१६, 'पृ० रा०' का० ८६।४४१, 'छ० प्र०' ७।२ 'प्र० वि०', ८६, 'सु० च०', ३।११६, 'प्र० रा०', छ० ८४, 'आ०', ४२।१४

१२ से १६—दे०, 'आ०', ६०८।१८, 'जग०, ६५ ६६, वही, पृ० ६८४, 'हि० ब० वि०', ७८, 'रा० म०', ६५

जैसे अंगत्राणों का भी निर्माण किया जाने लगा था। अलवर म्यूजियम में महाराज होलकर राव का एक ऐसा ही कवच रखा है, जिसके सभी हिस्से परस्पर संलग्न हैं और उसे पहन लेने पर शरीर का कोई सा भी अंग असुरक्षित नहीं रह जाता।

चिलता—हिम्मत बहादुर विरुदावली में कवि पद्माकर ने चिलता नामक अंग त्राण को प्रति प्रहार से काट देने वाले योद्धाओं की सराहना होने का उल्लेख किया है[१] जिससे उसका किसी ऐसी वस्तु से निर्मित होना ध्वनित होता है, जिस पर तलवार का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता था। पद्माकर ने प्रतापसिंह विरदावली में सैनिकों के शरीर चिलताओं से जकड़े हुए चित्रित किए हैं[२] जिससे स्पष्ट होता है कि यह शरीर से चिपटा रहने वाला अंग त्राण होता था। कवि सूदन ने दिल्ली की लूट में चिलताओं की भी लूट दिखाकर, उनके प्रयोग पर प्रकाश डाला है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने चिलता को किमख्वाब के वस्त्र में रुई भरकर बनाए जाने वाला ऐसा अंगरक्षा बताया है जिस पर लोहे के परत जुड़े रहते थे तथा रुई में मगर की पसलियाँ भी भरी रहती थीं।[३] विलियम इरविन ने चिलता में चालीस पर्तें होने का अनुमान किया है तथा अभिमत व्यक्त किया है कि उसे अन्य अंगत्राणों के ऊपर पहना जाता था।[४]

दगला—दगलाधारी सैनिकों का कवि पद्माकर ने उल्लेख किया है।[५] विलियम इरविन के अनुसार— दगला जिरह बख्तर अंगत्राणों के नीचे पहना जाता था तथा इसमें रुई भरी रहती थी। मुगल सेना में दगला का बहुप्रचलित नाम 'जामा ए फताही' था जिसमें नामानुरूप गुण का विकास करने के लिए उस पर कुरान की आयतें लिखवा ली जाती थीं।[६]

कोठा—कवि पद्माकर ने कोठे बाँधे हुए तथा अपने कंधों पर तलवारें रखकर युद्धस्थल में घमासान मचाने वाले सैनिकों का कई बार उल्लेख किया है।[७] पद्माकर ने कोठों को कोठे पर बाँधना[८] तथा तन में कसना[९] चित्रित किया है जिससे स्पष्ट होता है कि वह कड़ियों के स्थान पर चद्दरों से निर्मित लघुकाय अंगत्राण होता था और उसके नामकरण के अनुरूप उसकी मुख्य उपयोगिता वक्ष स्थल और उसके उपरि भाग की रक्षा करने में होती थी। कवि मान ने भी वीरों की पीठ पर कोठी

१-२—दे०, 'हि० ब० वि०, छं० १८६, 'प्रता० वि०', छं० ८६

३ से ७—दे० 'कला और संस्कृति', पृ० २६६ 'द आर्मी ऑफ दि इण्डियन मुगल्स', पृ० ६६, 'प्रता० वि०, छन्द ५८, द आर्मी आफ दि इण्डियन मुगल्स', पृ० ६६, 'सु० वि०', छन्द ५७ ७३, २७

८ हु काठ कोठ बध काठ बधि ओठ चब्बही।" —'प्र० वि०, ७३

९ "कोठ तन कसि-कसि घोर सु धँसि धमि हवत हसि हँसि हेरत है।" —'प्र० वि०', ८७

सुशोभित होने का उल्लेख किया है।[1] विलियम इरविन का यह मत हम उपयुक्त नहीं प्रतीत होता कि कोठी जिरह की भाँति एक लम्बा कोट होता था, जिसे वक्ष स्थल पर बाँधी जाने वाली प्लेटों के नीचे पहना जाता था।[2]

जोशन—कवि गंग ने जोशन का उल्लेख करते हुए तलवार को क्रमश जोशन, जिरह और नीमजामा (अंगत्राणों के नीचे पहना जाने वाला जामा) काटते प्रदर्शित किया है,[3] जिससे स्पष्ट होता है कि जोशन जिरह के ऊपर पहना जाता होगा। केशवदास जी ने वीरों को बख्तर और जोशनों से सज्जित दिखाया है।[4] विलियम इरविन ने इसे छाती पर बाँधी जाने वाली प्लेट बताया है।[5] कदाचित् यह कोठे का का ही उर्दू रूपान्तर था।

कठ सोभा—कंठ शोभा नामक कवच गदन की रक्षा के लिए बाँधा जाता था। पृथ्वीराज रासो में वीरों के टोपों के साथ साथ उनकी ग्रीवाओं में अष्टमी के चन्द्राकार वाले 'कंठ शोभा' नामक ग्रीवा त्राणों का चित्रण किया गया है।[6]

सहसमेखी दस्ताने—कुहनी से लेकर उँगलियों तक के बाहु भाग की रक्षा के लिए दस्तानों का प्रयोग किया जाता था जिनके निर्माण में चद्दर और कड़ी दोनों का प्रयोग होता था। पृथ्वीराज रासो में दस्तानों के साथ साथ हाथ[7] शब्द का भी प्रयोग मिलता है। हम्मीर रासो[8] और प्रतापसिंह विरुदावली[9] में तो मात्र 'दस्ताने' शब्द का उल्लेख मिलता है, जबकि सूदन ने दस्तानों के साथ सहसमेखी' विशेषण का भी प्रयोग किया है।[10] कदाचित इन दस्तानों में सहस्र कड़ियाँ जुड़ी रहती होंगी, जिससे उनका अभिधान भी सहसमेखी पड़ गया था।

राग—राग नामक कवच टाँगों की रक्षा के लिए प्रयोग किया जाता था।

---

१ 'किन विट्ठि साहे ठलकन्ति ढल्लै।
  किनलाह कोठी हठै भग्ग हल्लै।" —'रा० वि०', १०।२८

२ द आर्मी आफ दि इण्डियन मुगल्स', पृ० ६६

३ "तुंड काटि मुंड काटि जोशन जिरह काटि,
  नीम जामा जीन काटि जिमि आनि ठहरी।" —'गं० क०', छन्द ३०१

४ "चलत भई चरचौंध बाँधि बख्तर वर जोसन।" —'र० ब०', छन्द ३८

५ दे०, द आर्मी आफ दि इण्डियन मुगल्स, पृ० ६८

६ 'सुप कंठ सोभा तर टोप सोभा।
  ससी अष्टमी अद्धय मान लोभा।" —'पृ० रा०', का० ५०।३१६

७ "तिन हाथ से हाथ सज्ज उपाई।
  तिन की मयूष रवि होइ लाई।" —'पृ० रा०' का० ५०।३१६

८ "धरि वीर कर दस्तान। अच्छरिय मद्दी पान।" —'ह० रा०', छन्द ७५३

९ 'पहिरि दस्ताने माहन तानें भट विरभाने चाइ चढ।" —प्रता० वि०', छं० ८७

१० 'सिप्पर सिरी सनाह सहसमखी स्ताने।" —सु० च०', ६।२।३२

पृथ्वीराज रासो में वीरों को जंजीरों से निर्मित 'राग' बाँधे चित्रित करने के साथ साथ, शाहू गोरी द्वारा मीर-गुम्बीर को दिए गए गज को राग, गज और पाखर से सज्जित दिखाया गया है।[1] इससे स्पष्ट होता है कि राग योद्धा तथा अश्व दोनों की टाँगों की रक्षा के लिए प्रयुक्त किया जाता था। परमाल रासो में सूरों को अपनी टाँगों में रासा में राग बाँधते दिखाया गया है।[2] कवि जान ने भी योद्धाओं को रागों का प्रयोग करते दिखाया है।[3] सूदन ने रागों की लूट प्रदर्शित की है, किन्तु उनके साथ भिलम टोप सिरी जिरह और पाखर एवं भगवानों का उल्लेख किया है जिनमें से कुछ मानव और कुछ पशुओं के लिए प्रयुक्त किए जाते थे,[4] अतः यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि सूदन राग को पशुओं और मनुष्यों में से किनके लिए प्रयुक्त दिखाना चाहते थे। आईन-ए-अकबरी में इसके राक और रान दो पाठ मिलते हैं।[5] ब्लोकमन ने उनका प्रयोग अश्वों की टाँगों के लिए बताया था जिसका प्रतिवाद करते हुए विलियम इरविन ने उन्हें मानवों द्वारा प्रयोग करना सिद्ध किया है।[6] वीरकाव्य की दृष्टि से दोनों विद्वानों के मत उपयुक्त प्रतीत होते हैं।

पाखर और सिरी — वीरकाव्य में हाथी और घोड़ों को लोहे की कड़ियों की पाखरों से युक्त अथवा पक्खरत कहा गया है जिससे उन पर लोहे की कड़ियों की पाखरें पड़ी होने का पता चलता है।[8] पाखरों के अतिरिक्त हाथियों के मस्तक पर 'सिरी' नामक झालर डालने का प्रचलन दिखाया गया है।[9] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लोहे की महीन कड़ियों से बनी रक्षात्मक झूल का चार हिस्सों में बनना प्रदर्शित करते हुए अभिमत व्यक्त किया है कि मुँह को ढकने वाला भाग 'सिरी', दोनों बगलियों में लटकने वाला भाग 'पाखर' और दुम की ओर पुट्ठों को बचाने वाला भाग 'पिछाड़ी' कहलाता था।[1]

---

१ 'मौजह हुलह धरि, राग तब परि, सज्जि बग तरि कर ढार।"
— पृ० रा०', भा० ४०५।११०

२ "जो सुरतानह पाट। तुरिय सोई पल नायी।
राग बाग पष्पर समेत। तही सुरत निवाज्यो।' —वही, २०४६।१५१

३ "इत सूर राग बंधे ताइ तग।
उत अपसरा चरनिय पहिरजग।' —'पर० रा०', २१।६७

४ "राग जिरह तन सज्जिक। खोल सिरपर दित्ता।
—'अलि० की प०', छं० २८

५ "+++भिलम टोप जजीर जिरह लुट्टिय मस्ताने।
पक्खर गक्खर लक्ख राग बागे रु निपगा।" — सु० च०, ६।२।३२

६ दे०, 'आईन ए अकबरी' भा० ३, पृ० १८८

७ द आर्मी आफ दि इण्डियन मुगल्स, पृ० ७१

८ ९—दे०, 'पृ० रा०, भा० ५०१।३१६, 'ह० ह०, पृ० ११४

१० 'कला और संस्कृति, पृ० २६८

सेना को व्यूहों की आकृति में खड़ा करना

युद्धस्थल में सेना के प्राय तीन विभाग होते थे। अग्रिम भाग में स्थित दल हरावल कहा जाता था। पश्च भाग में स्थित सेना चंदोल या पुठावरि कहलाती थी जबकि दोनों की मध्यवर्ती सेना को गोल की संज्ञा से अभिहित किया जाता था। पयामसी रासो में सेना के गोल, हिरोल, चंदोल, जरणाल और वरगोल नामक पाँच भागों का उल्लेख किया गया है।[1] इनमें से हरावल में सम्मिलित सैनिकों का उद्देश्य शत्रु-दल पर प्रत्यावेग से आक्रमण करके, उसकी व्यवस्था को छिन्न भिन्न कर डालना होता था। हरावल में कदाचित् चुने हुए वीर योद्धा ही सम्मिलित रहते थे, अतः उसमें स्थान प्राप्त करना गौरव का विषय समझा जाता था। यही कारण है कि परमाल रासो में आल्हा, ऊदन और लाखन तीनों ही हरावल में रहकर युद्ध करने के तथ्य को लेकर परस्पर विवाद करते चित्रित किये गये हैं।[2] सुजान चरित में महाराज सूरजमल द्वारा सलावत खाँ से अपने पुत्रों को हरावल में स्थान प्रदान करने का निवेदन करने से भी,[3] हरावल में स्थान प्राप्त करने की महत्ता अभिद्योतित होती है।

सेना को हरावल, गोल और चंदोल के रूप में विभक्त करने के स्थान पर पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो के कुछ युद्धों में उसे व्यूहाकार खड़ा करने की पद्धति दिखाई गई है।

इन व्यूहों की रचना किन्हीं तत्त्वों पर आधृत नहीं थी, अपितु सेना को रीति विशेष में खड़ा करना ही व्यूह रचना कहलाता था। उदाहरणार्थ सेना को यदि किसी पक्षी की आकृति के अनुसार व्यूह बद्ध किया जाता था तो उसकी चोंच, पंख और नेत्र आदि के स्थानों पर प्रसिद्ध वीरों को उनकी सेनाओं के सहित खड़ा किया जाता था। इसी भाँति शकट-व्यूह की रचना करते समय, शकट के विविध अंगों के स्थान पर प्रसिद्ध योद्धा खड़े किए जाते थे। पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो में अधोलिखित व्यूहों का चित्रण मिलता है जिन्हें महाभारत से प्रभावित मानते हुए भी यह नहीं कहा जा सकता कि मध्य-युगीन युद्धों में इस प्रकार की व्यूह रचना दिखाना सर्वथा निराधार है।

शकट व्यूह—जैसा कि इसके नाम से प्रकट है, इस व्यूह में सेना को शकटाकृति में खड़ा किया जाता था। 'माधो भट्ट कथा' समय में चामुण्डराय शकट-व्यूह की रचना करता है और वह स्वयं उसके जुए के स्थान पर खड़ा होता है, कमास शकट के ढाँचे के स्थान को ग्रहण करता है, माम्म महासी उसका धुरा बनाता है तथा

---

१ 'गोल चंदोल भय जत्र काउ जरणाल बरगोल।
मनिप्रग्गांनु दीवान हव प्रमुन भया हिरोल ॥" —'पया० रा०', ७११

२ ३—द०, 'पर० रा०', २३।६७-७३, 'सु० च०', ३।५।५

मालदेव चंदन और माहा नामक वीर उनकी पद्दियां में स्थान को संभालते हैं।[1]

चक्रव्यूह—चालुकाराव से होने वाले युद्ध में महाराज वीसलदेव इस व्यूह की रचना करते हैं, जिसके प्रतिरोध के लिए चालुकाराव सर्प व्यूह का प्रयोग करते हैं।[2] सर्प की भाँति प्रवेश करने वाली महाराज चालुकाराव की सेना के मुखाग्रभाग में स्थित परमार वीरों का महाराज सामेश्वर के गढ़ों के योद्धा सामना नहीं करते, जिससे चक्रव्यूह खंडित हो जाता है।[3] रासो में राजा समर विक्रम भी इस व्यूह की रचना करते हैं। वे समस्त सेना को कुण्डलाकार खड़ी करते हैं। कुण्डल की आकृति में खड़ी की गई सेना की अगली पंक्ति में हाथी थे, उनके पीछे रथ और बन्दूक वाले योद्धा खड़े थे, उनके पीछे अश्वारोही थे जबकि मध्य भाग में पदाति सेना खड़ी हुई थी।[4] रासो में इसी प्रकार गरुड़ व्यूह[5] मयूर व्यूह[6] और चाप व्यूह[7] आदि का वर्णन मिलता है।

सेना द्वारा प्रयुक्त शस्त्रास्त्र

वीरकाव्य धारा के अधिकांश ग्रन्थों में प्रायः एक जैसे ही शस्त्रास्त्रों का प्रयोग दिखाया गया है। पृथ्वीराज रासो में वर्णित युद्धों में अधिकतर कत्ती, कुन्त, गुर्ज, गुप्ती, जम्बूरा, तलवार, तुपक, धनुष बाण, हथनालि, नागमुखी या नागदमन, यमदाढ़, शक्ति और सेल और सांग का प्रयोग चित्रित किया गया है।[8] परमाल रासो में वर्णित युद्धों में असि, असिपुत्र, अग्न्यस्त्र, आमल, केहरि नख, खजर, गदा, गुज, जजाल, तोप, तोमर, नावक के तीर पेशकब्ज, परिघ, धनुष बाण, फरसा बगुदा, बाँक, भिंडमाल, विधु बाण, सिंधिन और सेल प्रयुक्त किए जाते हैं।[9] कवि

---

१ से ३—दे०, 'प० रा०' मो० १।२३०।३१, प० रा०', का० ६०।४४६, वही, ६१।४५४ ५५

४ से ७—दे०, 'प० रा०' मो० ३।१६६।४१, 'प० रा०, का० ६४६ २३, वही, ६८६।१५६, वही, ६४७।१३

८ दे०, पृ० रा० का० १०११।१०४, वही ११४४।६८, वही, ६४८।१६, 'पृ० रा०' मो० ३।१३३।३४, वही, २।५१३।३८ आदि।

९ "चलिय बान जजाल तोप तोमर असि घल्लहि।
जाय परस्पर लरहिं मार कट्टारिन पिल्लहि।
सिंधिन अरु गुरजान परिघ विधुवानि पट्टि चलि।
भिण्डपाल असिपुत्र बाँक बगुदानहिं आमल।
गहि पेसकब्ज फरसा सुलिय खजर मारन आइयव।
अग्न्यसस्त्र रजक घलिय जोगी या वन चालियव।'
—'प० रा०, १०।८६४ और भी देखिए—वही, २७।१४४, वही, ३।४६, ५।६८

जान ने करवाल, जमधर, तोप और बन्दूकों का।[1] केशव ने सैनिक खग, कजुवा, तलवार, तुपक, धनुष बाण, बरछी, बरछा और साँग के प्रयोग करते चित्रित किए हैं।[2] कवि सूदन ने अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक शस्त्रास्त्रों की नामावली दी है। उनके अनुसार युद्धों में सैनिक—कुहुक-बाण, करसुवा, जजाल, जजीरा, तलवार, तमचा, तुबल, तुफंग, तुपक तोप, तोमर, दुधारा, पट्टा, बल्लम, बगुदा, बरछी, बरछा, बाँक, बिछुआ, साँग, सुतरनाल, सेल, हथनाल और हथनाला का प्रयोग करते थे।[3] भूषण ने मुख्यतः कत्ता, पजा, बीछू और धनुष बाणों का उल्लेख किया है।[4] जोधराज ने कटार, कमान खग, चद्दर, जम्बूर, तबल तुपक, ताडा बरछी, बघनखा, सेली और हथनारि का प्रयोग दिखाया है,[5] जबकि गोरेलाल ने कत्ता कुहुक-बाण, धनुष-बाण, सुतरनाल, सेल और हथनारिका।[6] इसी तरह कवि गंग[7] ने कुहुक बाण और चन्द्रबाण के, चन्द्रशेखर[8] ने अर्ध अर्ध चन्द्र बाण, छाँडा, गुरदा, चद्दर, छुरी जरजाल, जमूम तमचा, तुपक, तोडा, दुधारा, दुनाली और बन्दूकों का, श्रीधर[9] ने करची, तोप, मगरची, बन्दूक, रहकला और हथनाला के, कवि मान[10] ने कटार, कृपाण, कुहुक-बाण, कुत, तोप, धनुष बाण, नारि, नेजा, बन्दूक और मुट्ठी के, तथा लालकवि[11] ने कटार, गुज, छुरी, जुनब्बी, खगा, तोप, पिस्तौल, धनुष बाण, नागफेनि के भाले, मुष्टि (मूठ) शेरबच्चा, सिराही और सिथिनियों के प्रयोग पर प्रकाश डाला है। रासा भगवन्तसिंह में वर्णित युद्ध में जजाल, जुनब्बी, धनुष-बाण, रामचगी, साग, सिरोही, सुतरनाल और हथनाला का प्रयोग किया जाता है।[12] पद्माकर ने महाराज हिम्मत बहादुर अनूपसिंह के सैनिक अलमानी, अमक्बरी, असफी, उचावा, ऊना, कौंचनि, खुरासानी गुरदा, जिहजी, जुनब्बी, जुनैद-खानी, तक डबरी, ताद-तगा, दल निधानी, दुबाही, नादौर, फुलाबा फर्रुखसाही, बरदमानी, बगुरदा, बाँक, मगरबी, मानासाही, मिसरी, लीलम, सहरदार, सिराही, सैहती और हलब्बी आदि नामक तलवारों का[13] तथा कडाबीन, करनाल, चद्दर, जजाल, तमची, तमचा, तोप, भसुडी, मुंगरा, राम चगा और शेरबच्चा नामक अन्य अस्त्रों का प्रयोग करते चित्रित किए हैं।[14]

आयुधों के सम्बन्ध में यह तथ्य भी उल्लेख्य है कि किसी वीर योद्धा की युद्धार्थ पूर्णसज्जा के लिए, छत्तीस आयुधों से सज्जित होना इतना को प्राप्त था।

---

१ से ३—दे०, 'कवा० रा०', छन्द ३४१, ३४२, ४२६, 'वी० च०', ५।६१, ५।६५, ८।२६, ८।४५, १३।३३, 'सु० च०', ४।४।८, ५।४।१४

४ से ११—दे०, शि० भू०', ६३,६६, 'ह० रा०', प० १८०, 'छ० प्र०', १६।१०, 'ग० क०', ३०६, ह० ह०, च० ११६, जग०, ७० ७१, 'रा०वि०', ३।८४, 'अा०', ३।८४ १६।११-१४, वही, १८।१३, २१।१७ आदि।

१२ से १४—दे० 'रा० भग०', छन्द ६८ ७३, हि०ब०वि०', छन्द १९२ से २०१, वही, ६५ ७१,

पृथ्वीराज रासो,[1] ययामर्ता रासा,[2] राजविलास[3] और हम्मीर रासो[4] में सैनिकों के छत्तीस आयुधों से सज्जित होने का उल्लेख करके उक्त तथ्य की अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। पृथ्वीराज रासो में उनकी नामावली भी दी गई है, जो इस प्रकार है—

१—असि, २—शूल, ३—पाश, ४—परशु ५—असनी, ६—शक्ति, ७—सूल, ८—तोमर, ९ भल्ली, १०—कृपाण, ११—नालीक (नलिका), १२—नाराच, १३—शर, १४—चक्र, १५—सांग, १६—वज्र, १७—गदा, १८—दंड, १९—मुद्गर, २०—भिंडिमाल, २१—हल २२—मूसल २३—सेल २४—नागवल्ल, २५—खड्ग, २६—छुरिका २७—कत्ती, २८—करन, २९ वनी, ३०—कुंत, ३१—फलवर, ३२—कनीका, ३३—भुसुंडी ३४—दुस्फोट, ३५—सब और ३६—परिघ।[5] कवि सूदन ने दिल्ली की लूट के समय आयुधों की जो नामावली दी है, वह इससे बहुत कुछ साम्य रखती है अतः प्रतीत होता है कि सूदन के मानस में छत्तीस आयुधों का ही परिगणन करना रहा है। सूदन ने यथालिखित शस्त्रास्त्रों का उल्लेख किया है—

१—तुपक, २—तीर, ३—तलवार, ४—तमचा, ५—तगा ६—तोमर, ७—तुबल ८—तुफंग ९—दाव १०—पट्टा, ११—परशु, १२—पासि (पाश ?), १३—बिछुआ, १४—चाक १५—बल्लम, १६—बरछा, १७—बरछी १८—धनुष, १९—बुगदा, २०—गुप्ती, २१—गुज, २२—दाद, २३—यमकील, २४—कतारी २५—घूल, २६—अंकुश २७—छुरी और २८—कुठार।[6]

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी चौदहवीं शताब्दी में रचित 'पृथ्वीचन्द चरित' और वर्णरत्नाकर' नामक ग्रंथों में छत्तीस दण्डायुधों का उल्लेख मिलने का निर्देश किया है। डॉ० अग्रवाल ने पृथ्वीचन्द चरित के आधार पर उनकी जो नामावली दी है—उसके मणिक अरल, शविष्ट, कण्य कपन, प्रलय, काल और द्रुस का पूर्वोक्त सूचियों में उल्लेख नहीं मिलता।[7] यह अंतर सम्भवतः काल और देश के भेद पर आधृत है।

वीरकाव्यधारा के समस्त ग्रंथों में उल्लिखित शस्त्रास्त्रों की हम अधोलिखित नामावली प्राप्त होती है—

अलेमानी अंगरेजी असि, असिपुत्र, अहिगर्बी, अकबरी, असनी, आमल, उचाका, ऊना, ऊटनाल कमान कत्ता, कटारी, कड़ाबीन, कनकनीका, कुंत, कुठार, कृपाण कुहुक-बाण, केहरि कोचनि, नख, खजुवा, खखुवा, खरी खग खांडा, खुरासानी, गदा, गनाला गरबी, गुप्ती, गुज गुरदा चक्र, चद्दर, चद्रबाण, छुरी, जरजाल,

---

१ से ४—दे० 'पृ० रा० का० ६१७।२४, वया० रा०', छंद २६४, 'रा० वि०', १८।४३, ह० रा०' वाच० प० १८०

५ स ७—दे०, प० रा०', का० ६१७।२४, सु० च०', ६।२।३२, 'कला और संस्कृति', पृ० ३०१

जमदाढ़, जजीरा, जजाल, जमधर, जमूरा, जुनब्बी, तबब्बरी, तमाचा, तबल, तलवार, तमचा, तुपक, तुफग, तुन, तगा, तोडा, ताप, तारन-तगा, तोमर, दड, दाव, दाड़, दुनाली, दुवाही, दुफ्फाट, धनुष, नारि, नावक के तीर, नादीर, नालीक, नाराच नागदमन, नेजा, परिघ, परसु पाश, पट्टा, पट्टी, पजा, पेशकब्ज, फर्रुखसाही फरसा, फरक, बल्लम, बतारी, बदमानी, बरछी, बरछा, बन्दूक, बगुदा, बघनखा, बाक, बिछुवाण, बिछुआ, मसुडी, भल्ली माला भिदमान, मुष्टी, मूगरी, मुगदर, मूसल, यमदाढ, यमधर, यमकील, रहकला, रामचगी, रूमी, लहरदार, लीलम, विलायती छुरा, वध, बर्छी, शमशेर, शक्ति, शूल, शेरबच्चा, सक, सारग, सावल्ल साग, सिधिन, सिराही, सुतरनाल, सुरती, सेल, सली, सहसी, हल, हथनाल, हथनाल, हथनारि, हलब्बी और असि।

उपर्युक्त अस्त्रशस्त्रो म से जिनके विषय म शोधक का भरतपुर, अलवर और दिल्ली क पुरातत्व सग्रहालयो से तथा एतिहासिक ग्रन्थो से जानकारी प्राप्त हुई है उनके स्वरूप और उपयोगिता विशेष पर आगे प्रकाश डाला जा रहा है। इस सदभ म यह निवेदन अनुपयुक्त न होगा कि एक ही अस्त्र को विविध राज्यो म वहाँ के शासक अथवा राज्य प्रदेश के नाम क आधार पर भिन्न भिन्न सज्ञाओ स अभिहित करन का प्रचलन था। यह प्रवृत्ति तलवारो के नामकरण में सम्बन्ध म सर्वाधिक बढी चढी थी और कवि पद्माकर ने अक्कब्बरी, तबब्बरी, पुर्तगाली, तुर्की, दरियाई, रूमी लीलम और सुरती आदि जिन तलवारो का नामोल्लेख किया है, उसम इसी प्रवृत्ति का प्रतिफलन है। इसके साथ ही तलवारो की लम्बाई के कम या अधिक होने, उसम डाली जाने वाली लाइनो या खाचो की सख्या कम या अधिक होने, उन लाइनो के तलवारो के फल म पूरे या अधूरे भाग तक जाने उनके फलो का झुकाव कम या अधिक होने तथा उनम से निकलने वाले जौहर[1] के आधार पर उनके भिन्न-भिन्न नाम रखे जाते थे। तात्पर्य यह कि विभिन्न नामो वाली तलवारो म इतना सूक्ष्म अन्तर होता था, कि उन्हे प्रत्यक्षत देखे बिना उनका अन्तर नही समझा जा सकता। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल न तेलुगू भाषा म लिखित 'खग-लक्षण शिरोमणि' नामक कृति मे तलवारो की लगभग एक सौ तीस किस्मे की होने का उल्लेख किया है।[2]

---

१ जौहर—तलवार के फल के तैयार हो जाने पर सिकलीगर उस पर मसाला रगडते हैं, जिससे उसमे चमक आ जाय। रगडने के समय फल पर विभिन्न प्रकार के निशान निकल आते हैं जो जौहर कहलाते हैं। जौहरो का अधिक होना, तलवार के लोहे की उत्तमता का सूचक होता है।

—शोधक

२ 'कला और सस्कृति', पृ० ३०२

(क) बंदूक और तोपें

(क) रामचंगी—भरतपुर म्यूज़ियम के भूतपूर्व क्यूरेटर श्री चतुर्भुजदास चतुर्वेदी के अनुसार लगभग चार गज लम्बी इस बन्दूक को पड़ों पर बाँधकर प्रयुक्त किया जाता था।

(ख) जजला, जजाल, सुतरनाल या ऊँट नाल—ऊँटों पर से चलाई जाने वाली बंदूकें जजला, जजाल, सुतरनाल या ऊँट नाल कही जाती थीं। विलियम इरविन के अनुसार तोपें चलाने से पहले ऊँटों को बिठाकर उनकी टाँगें बाँध दी जाती थीं जिससे वे तोप छूटने के समय उठ न सकें।[1] शोधार्थी को जजाल या जजला ऊँट नाल का ही अपर नाम बताया गया था, किन्तु वीरकाव्य में सुतरनाल के साथ साथ जजाल का पृथक् उल्लेख किया गया है[2] जिससे वह भिन्न प्रकार की तोप सिद्ध होती है। कदाचित् हम्मीर हठ की पादटिप्पणी में व्यक्त किया गया यह मत ही उपयुक्त है कि जजाल नामक तोप से लोहे के तारों में बंधे छुरी आदि के फल छोड़े जाते थे।[3] यह सम्भव है कि जजालों को भी ऊँट पर लादकर ले जाया जाता हो जिससे उन्हें ऊँट नाल भी कहा जाता हो।

(ग) हथनाल या गजनाल—छत्रप्रकाश की पाद टिप्पणी में ऐसी तोप जिसकी चरख को हाथी खींचें, हथनाल बताई गई है।[4] विलियम इरविन ने हाथी की पीठ पर लादकर ले जाई जाने के कारण इन तोपों का नाम हथनाल पड़ने का मत व्यक्त किया है।[5] ये तोपें कदाचित् हाथियों पर से चलाई भी जाती थीं। हथनाल घोड़ों पर ले जाई जाने वाली तोपों को कहते थे, जबकि ऐसी तोपें जिन्हें मनुष्य लादकर ले जा सकते थे, नरनाल कहलाती थीं।

(घ) शेर बच्चा—चौड़े मुँह वाली ऐसी बन्दूक बताई गई थी, जिसमें चाकू, छुरी और पत्थर आदि भरकर छोड़े जाते थे।

---

1 'द आर्मी आफ दि इण्डियन मुगल्स', पृ० १३६

२. (क) 'छुरी एक बास बिसाले जजालें। जगी जामगी, त्यों चलै ऊँटनालें।'

—'हि० व० वि०' ६६

(ख) "चली हाथनाल औ सुतरनाल घनी जजाल दानि लिया।

—'रा० भग०', ६८

३ शोधार्थी को जजाल या जजला ऊँट-नाल का ही दूसरा नाम बताया गया था, जबकि हम्मीर हठ की पाद टिप्पणी में इसका अर्थ 'लोहे के तारों में बहुत से फल छुरी इत्यादि के बंधे हुए थे जो नाल में भरकर छोड़े जाते थे' किया गया है। द० हम्मीर हठ' पा० प० ३०। कदाचित् इस प्रकार की तोपें विशेषतः ऊँटों पर से ही चलाई जाती होंगी।

४ ५—द०, छत्रप्रकाश पृ० १११, द आर्मी आफ दि इण्डियन मुगल्स, पृ० १३५

(इ) कडाबीन —यह छोटी सी बंदूक होती थी, जिसे निशाना लेकर नहीं अपितु प्रति समीप से पतंग बदलकर चलाया जाता था।

(च) पहर—प्रजनवर म इसे मशीनगन जसा अस्त्र बताया गया था, जिसम से एक साथ ही दस बारह गोलियाँ दागी जाती थी।

(छ) तुफंग —इर्विन के अनुसार—तुफंग बंदूक का ही अपर नाम था।[1]

(ज) तमचा —तमचा आजकल के बच्चों के खिलौने जसा न होकर, छोटी बन्दूक या पिस्तौल की भाँति मार करता था।

(झ) जम्बूरा —ताडदार बन्दूक जम्बूरा कहलाती थी।

(ञ) कुहुक या बान —कवि सूदन ने कुहुक या बान के चलाने के समय कुहू कुहू का शब्द होने के साथ साथ सिपाहियों म चकाचौंध पद्म जाना चित्रित किया है[2] तथा कवि जान ने उमत हाथी की पाखर म आग लग जाने का उल्लेख किया है[3] जिससे स्पष्ट होता है कि कुहक बान एक प्रकार का अग्न्यस्त्र होता था। हमे छत्रप्रकाश म दी गई यह टिप्पणी उपयुक्त प्रतीत होती है कि बान एक प्रकार का मिट्टी का नल होता था जिसकी लम्बाई बीस इच के लगभग और व्यास लगभग तीन इच होता था। इसम बारूद भरकर मिट्टी की डाट लगा दी जाती थी और बारूद से पलीता लगा रहता था। इसके साथ एक ठोस बाँस की सात आठ फुट लम्बी छड भी लगी रहती थी जो बान चलाते समय फाड दी जाती थी। पलीते के द्वारा आग पहुँचते ही यह बाण शत्रु सेना मे गिरकर चक्कर काटने लगता था। बाँस की फटी हुई छड भी उसी के वेग से घूमती थी जिसकी मार बडी घातक होती थी। इन बाणो के उडते समय उनसे कुहू-कुहू शब्द निकलता था।[4] विलियम इर्विन ने भी कुहुक-बान को राकेट बताते हुए मत व्यक्त किया है कि उससे सहार तो अधिक नहीं होता था किन्तु शत्रु सेना म बडी अव्यवस्था फल जाती थी, क्योंकि उनके हाथी घोडे भडक उठते थे।[5]

(ट) चक्र—गोलाकार चक्र के किनारे बडी तेज धार के होते थे और उसे उसके बीच मे उगली या डण्डा डालकर शत्रु की ग्रीवा को लक्ष्य करके चलाया जाता था। डा० फौजासिह ने १७वीं १८वीं शताब्दी म भी सिखों द्वारा चक्र का प्रयोग किये जाने का उल्लेख करते हुए उसकी मार १०० से लेकर २०० गज तक बताई गई है।[6] साग, साँगी, बरछा और बरछी पूर्णत लोहे के बने भाले होते थे। बल्लम और भाले बाँस की लाठी म लोहे का फल जोडकर बनाये जाते थे। 'नेजा' का डॉ० वासुदेवशरण

१ 'द आर्मी आफ दि इण्डियन मुगल्स' पृ० ७३

२ 'कुहकत बान कुहूकुहू कहूँ होत सद् धरा धरा।
दिसि, धुधरी चकचुधरी भुस भुधरी सु वसु धरा।" —'सु० च०', ४।४।५

३ दे०, 'प्रलि० च०', ५७

४ से ६—दे० 'छ० प्र०', के पृ० १३१ पर पा० टि०, 'द आर्मी आफ दि इण्डियन मुगल्स', पृ० १५६, 'मिलिट्री सिस्टम आफ सिक्स', पृ० २३४

[illegible] के साथ [illegible] पूँगा भी [illegible] (बारूद) बनाता है।[1] [illegible] विभिन्न हथियार [illegible] मुगलकालीन [illegible] के द्वारा [illegible] है।[2] हथियार के अनुसार [illegible] भी [illegible] प्रकार का [illegible] था।[3]

(ग) धनुष बाण

[illegible] से [illegible] अस्त्रों के आविष्कार से पूर्व धनुष बाण का भारतीय युद्ध विधा में प्रमुख स्थान था। सिकन्दर के साथ आए एरियन नामक यात्री के अनुसार भारतीय सैनिकों के बाणों से ढाल और कवचों पर [illegible] भी रक्षा नहीं कर पाती थी।[4] औरंगजेब काल में आए बर्नियर नामक यात्री ने भी भारतीयों के बाण चलाने की प्रशंसा करते हुए धनुष बाण के प्रयोग की इस दृष्टि से उपयोगिता प्रकट की है कि वह दूर का निशाना [illegible] धनुर्धर [illegible] बाण छोड़ सकता है।[5] महाराज पृथ्वीराज का शब्दभेदी नीति से शत्रु को [illegible] मार डालना, तथा चक्षुहीन दशा में भी बाण गोरी की आवाज सुनकर उसका निरुद्ध कर देना,[6] उनके [illegible] कौशल का अच्छा निदर्शन है। रीतिकाल में भी [illegible] और उनके विहंगमा के वर्णन में समय [illegible] गए हैं।[7] महाराज [illegible] भी परदार [illegible] उनका वध करने वाले व्यक्ति का बाण से सिर [illegible] दिया है।[8] गोरेलाल ने अन्यत्र उनका धनुष को नम किए बिना ही उस पर प्रत्यंचा चढ़ाने में निज प्रयत्न करने पर आश्चर्य प्रकट प्रदर्शित किया है।[9] उनकी यह कमान सम्भावित डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल द्वारा निर्दिष्ट रसम को सूदकर बरर में सूत में लकड़ी पर चिपकाकर बनाई जाने वाली कमानें जैसी रही होंगी।[10] बाण या तीरों में नावक व तीर और चन्द्रबाण विशेष प्रसिद्ध थे। इनमें से नावक से तीर को एक नली में रखकर छोड़ा जाता था। नली तो धनुष में ही अटकी रह जाती थी, जबकि बाण पूर्ण वेग से जाकर लक्ष्य में धँस जाता था।

चन्द्रबाण के अग्रिम भाग में चन्द्राकृति का फल लगा रहता था। जिससे वह ग्रीवा के लक्ष्य वेग में विशेष उपयुक्त रहता था। किसी अन्य भाग में लगने पर वह दुहरा घाव करता था।

---

१ से ३—दे०, 'कला और संस्कृति', पृ० ३०७, 'द आर्मी आफ दि इण्डियन मुगल्स', पृ० ८२, वही, पृ० ८५

४ से ११—दे०, 'एंशियन्ट इण्डिया एज सीन, बाई मेगस्थनीज एण्ड एरियन', पृ० २२५, 'पृ० रा०', मो० ४।२६८।१७६, 'पृ० रा०' का०, २४६५।५४६, रा० वि०, १०।६२, छ० प्र० ६।१२, वही, ८।४ 'कला और संस्कृति', पृ० ३०१

तलवारें

(क) बगुदा—तलवार से कुछ अधिक चौड़ा और बिल्कुल सीधा शस्त्र बगुदा कहलाता था।

(ख) गुप्ती—बेंत के आकार का शस्त्र जिसकी मूठ में पेच होते थे। गुप्ती की बन्द दशा में दर्शक यही समझता था, कि यह बेंत है।

(ग) सिरोही—कम खम (झुकाव) वाली तलवार सिरोही कहलाती थी। यह बगुदा से मिलती जुलती होती थी, किन्तु इसकी चौड़ाई कम होती थी।

(घ) नागदौन की तलवार—नाग की आकृति जैसी यह तलवार नोक की ओर अधिक चौड़ी होती थी, तथा इसका सिरा चिरा हुआ दो धारों वाला होता था। इसका सिरा दांतेदार भी होता था।

(ङ) पट्टा—विलियम इरविन के अनुसार विशेषतया मुहर्रम के अवसर पर घुमाई जाने वाली कम चौड़ी और सीधी तलवार पट्टा कहलाती थी।[1] पट्टा और सिरोही में कदाचित अधिक अन्तर नहीं होता था। अलवर में बताया गया था कि इसमें हाथ की रक्षा के लिए कुहनी तक लोहे की चद्दर का खोल भी लगा रहता था।

(च) खांडा—आईन ए अकबरी में सीधी और चौड़ी तलवार खांडा बताई गई है।

(छ) तोड़ा—जिस तलवार के पूरे फल में खांचा न होकर आधी लम्बाई तक होता था, वह तोड़ा कहलाती थी।

(ज) ऊना—कम लम्बाई की तलवार ऊना कहलाती थी।

(झ) जुनब्बी—तीन लीकें या खांचा वाली तलवार जुनब्बी कही जाती थी।

(ट) तेगा—खम वाली तथा चौड़ी तलवार तेगा कहलाती थी।

खंजर या भोंके जाने वाले शस्त्र

(क) कटार—दो सीधी पत्तियों के बीच में दो आड़ी डंडी लगी रहती हैं। पत्तियों का ऊपरी सिरा खुला हुआ और नीचे का एक कमाचे से जुड़ा रहता है। इसी कमाचे में फल लगा रहता है। कटार अधिकतर शेर के शिकार में प्रयोग की जाती थी।

(ख) जमधर या यमदाढ़—चौड़े पाते का दुधारा खंजर यमधर कहलाता था। आईन ए अकबरी में इसके फल को कटार जैसी मूठ में संलग्न दिखाया गया है।

(ग) बांक—कदाचित बनावट में बांकपन के आधार पर ही इसका नाम बांक पड़ा है। आईन ए अकबरी में दिए चित्र में इसके फल में खांचे भी दिखाये गये हैं।

(घ) पेशकब्ज—यह मुख्यतया हाथियों पर से युद्ध करने वाले सैनिकों द्वारा एक दूसरे के भोंका जाता था।

---

१ 'द आर्मी आफ दि इण्डियन मुगल्स', पृ० ७७

(ङ) बाघ पजा या बघनखा—बनावट के आधार पर इस बाघ के पंज जैसी शक्ल का बनाया जाता था। किसी में तीन नुकीली कील होती थी, जबकि किसी में पाँच। इसे पंजे में फंसाकर प्रयोग करते थे।

(च) जम खाक या जमकील—यमदाढ का फल सीधा और चौडा होता था, जबकि जमकील कम चौडी और टेढे फल वाली होती थी।

गुज—विलियम इरविन के गदाकार शस्त्रों में गुज, शशबूर पियाजी, घार, गुज, टाड फासी और सेंट नामक शस्त्रों का उल्लेख किया है[1] जिनमें से वीरकाव्य में मात्र गुज का उल्लेख मिलता है। गुज का प्राय सभी कवियों ने उल्लेख करके, उसके बहुप्रचलन पर प्रकाश डाला है। इसे गदा का प्रतिरूप कहा जा सकता है। यह पूरा लोहे का होता था तथा मुख्यतया सर पर प्रहार करने के काम आता था। भरतपुर और अलवर के अजायबघरों में शोधार्थी द्वारा देखे गये गुज से छत्रप्रकाश में दिया गया चित्र नहीं मिलता। उन गुर्जों में फल वाला मोटा भाग चिरी हुई आठ कलियों वाला था किन्तु छत्रप्रकाश में गुज के फल में दस लटटू भी जुडे हुए हैं जिससे घुमाकर मारने के समय एक साथ ही कई प्रकार हो जाते होंगे। गुरु गोविन्दसिंह के शस्त्रों में जिस गुज का चित्र दिया गया है वह अन्य ही प्रकार का है और उसके सिर पर तीन लटटू जैसे जुडे हुए हैं। इससे स्पष्ट होता है कि स्थान भेद से कई प्रकार के गुज बनाए जाते थे।

युद्धस्थल में नरेशों की उपस्थिति की अत्यधिक महत्ता

आलोच्यकालीन सैनिकों में स्वामिभक्ति की धारणा बडी प्रबल होती थी और वे आपदग्रस्त स्वामी का साथ छोडना जारज पुत्रों नमकहरामों और नरकगामियों का काम समझा करते थे।[2] उनकी स्वामी का नमक खाकर उससे ऋण होने में भी दृढ आस्था होती थी[3] तथापि उनकी यह स्वामिभक्ति नमक और हलाली की धारणाएँ युद्धस्थल में स्वामी के दिखाई देते रहने तक परिसीमित रहती थी। अपने सेनानायक—जो वीरकाव्य में प्राय बादशाह ही दिखाए गए हैं—के भूपतित होने या बन्दी होते ही, विजय की सीमा तक पहुँची हुई सेनाएँ युद्धस्थल छोडकर भाग खडी होती थीं। पृथ्वीराज रासो के 'जतराव युद्ध समय' में शाह गोरी के हाथी से गिरते ही उनकी सेना उनका साथ छोडकर भाग खडी होती है।[4] इसी

१ 'द आर्मी आफ दि इण्डियन मुगल्स' पृ० ११२

२ लरहि स्वामि जो सुभट पराइय। बप सहस तन नर्क पराइय।

— पर० रा०' ४।१६४ और भी दे०, ५।१३६, ५।१४०, ५।१५० ५१

३ दे० पर० रा०' १०।५१५ २४।५६, ३१।४८, ५।१५२, ५।१७३, 'ह० ह०', प० २७१, 'र० वा० ४७, आ०', ४२।१३, ४३५।१०

४ 'पृ० रा०' वा० १०४२।६८ ६६

भाँति पहाड़राय समय में तोवरराज शाह के हाथी का मार गिराते हैं, जिससे उन्हें घोड़े पर सवार होना पड़ता है। शाह गोरी के दिखाई न देने के कारण उनकी सेना पलायन कर जाती है।[१] रासो में महाराज चालुक्यराय के साथ भी महाराज द्वारा वीरगति प्राप्त करते ही भाग जाते हैं।[२]

परमाल रासो में दिल्लीश्वर के साथ सौ घायल सैनिकों के सामने से महाराज परमाल की सेना पलायन कर जाती है, क्योंकि उनका सेनानायक ऊदल मूर्च्छित हो गया था।[३] उसमें महाराज परमाल जब युद्धस्थल से पलायन करने लगते हैं तो तहूनत सी उनके अभाव में युद्ध करने वाली सेना को निर्जीव के यन्त्र की भाँति निस्तेज बताता हुआ आल्हा को परामर्श देता है कि तुम महाराज का भेष धारण कर बलात् हाथी की अम्मारी में बिठा दो।[४] महाराज परमाल की अनुपस्थिति में युद्ध करने वाले आल्हा ऊदल की जय जय कहकर प्रशंसा किए जाने में भी, युद्धस्थल में नरेश की उपस्थिति सत्याग्रह समझने का तथ्य प्रकट रहा है।[५] इसी तरह क्यामखाँ रासा में स्वामी के अभाव में भी युद्ध जीतने वाले वीरों की बड़ी प्रशंसा की गई है,[६] तथा मोजुद्दीन के गिर पड़ते ही उसकी सेना इस प्रकार पलायन करते दिखाई है जिस तरह बरात।[७]

सुजान चरित में रत्नमर्दा पठान वजीर मनसूर की सेना का परास्त कर देता है, जिससे वजीर की सेना भाग जाती है। तभी रत्नमर्दा महाराज सूरजमल के हाथों वीरगति प्राप्त करता है और रत्नमर्दा की विजयिनी-वाहिनी अपने सेनानायक की अनुपस्थिति में भाग खड़ी होती है।[८]

राजविलास में दिवंगत महाराज जसवन्तसिंह के सैनिक महाराज राजसिंह के नायकत्व में युद्ध करने के औचित्य पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं, कि 'स्वामी के अभाव में सेना व्यर्थ है, क्योंकि योद्धाओं में स्व स्वामी के नियन्त्रण में रहकर ही पराक्रम प्रदर्शित करने का भाव जाग्रत होता है। सेनानायक के अभाव में वह निस्तेज और निष्प्रभ हो जाती है। अनाथ सैनिकों के समक्ष यह समस्या भी पैदा हो जाती है कि वे युद्धस्थल में किसका आश्रय पाकर युद्ध करें ?[९] आल्हखण्ड में भी सेनानायक के गिरते ही सेना का छिन्न भिन्न हो जाना प्रदर्शित किया गया है।[१०]

वीरकाव्य में प्रदर्शित उपर्युक्त तथ्यों की ऐतिहासिक विवरणों से भी पुष्टि होती है। श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य ने स्वामी के अभाव में सैनिकों का भाग खड़ा

---

१ से ८—दे०, 'पृ० रा०' का० १११७।१२०-२१, वही, १३२३।२२८, 'पर० रा०', ७।६६, 'पर० रा०', २३।४५ ४६, वही, पृ० ३७७, 'क्या० रा०', ४१६, वही, २६६, 'सु० च०', ४।६१३

९ 'संग्रामहि असमत्थ समथि बिन लहु हय साई।
साई बिनु कत्त सेन, तज साई ही ताई।" —रा० वि०', ११।८१

१० 'आ०', २७६।२२

होना मध्यकालीन सेनाओं की एक विशेष कमजोरी बताई है।[1] बर्नियर ने दाराशिकोह और औरंगजेब के मध्य दिल्ली सल्तनत के लिए होने वाले युद्ध में दारा की इस छोटी-सी भूल को ही उसकी पराजय का मूल कारण घोषित किया है कि दारा अपने हाथी को छोड़कर अश्व पर सवार हो गया था। अश्व पर सवार होने के कारण वह सैनिकों को दिखाई नहीं देता था। सैनिकों ने उसके मारे जाने या बन्दी होने की कल्पना करके साहस छोड़ दिया और उसकी विजय सीमा पर पहुँची हुई सेना विभ्रमग्रस्त होकर भाग खड़ी हुई थी।[3]

दण्ड-व्यवस्था

अपराधियों तथा पराजित शत्रुओं को भिन्न भिन्न प्रकार के दण्ड दिये जाते थे। केशवदासजी ने वीरचरित्र में चूत, ढीठ परदारानुरक्त, हत्यार, चोर, असत्यभाषी ठग और बटमार आदि को अनिवार्यतः दण्डित करने का विधान किया है[?] जिससे राज्य-न्याय भली प्रकार चल सके। यथारीति दण्ड देने में उन्होंने महाराज वीरसिंह देव को कुमार्गगामी कुटुम्बी लोगों तक के साथ किसी प्रकार की ढील न करने का परामर्श दिया है।[4] उन्होंने यह तो स्पष्ट नहीं किया कि किस अपराध का दण्ड था, किन्तु दस प्रकार के दण्डों का विधान गिनाया है—(१) समझा-बुझाकर छोड़ देना, (२) धिक्कारना, (३) राजदरबार में आना रोक देना, (४) अधिकार छीन लेना, (५) देश से निष्कासित कर देना, (६) रोक रखना (७) नज़रबन्द रखना, (८) (९) अंगच्छेद का दण्ड देना और (१०) प्राणदण्ड देना।[5] वीरकाव्य में युद्धबन्दियों के अतिरिक्त साधारण अपराधियों को दण्ड देने से सम्बद्ध कोई उल्लेख नहीं मिलता। हम्मीर हठ के घटनाचक्र से यह अवश्य ध्वनित होता है कि व्यभिचारियों को या तो मृत्यु दण्ड दिया जाता था अथवा वे देश से निष्कासित कर दिए जाते थे।[6] शत्रुओं को दण्डित करने की विधा दो वर्गों में विभाजित की जा सकती है—क्षमानुशीलता पर आधृत दण्ड विधान तथा शत्रु को लज्जित करने के लिए अपनाई जाने वाली

---

१ से ३—दे०, हिन्दू भारत का उत्कर्ष', भाग २, पृ० ३७५, 'ट्रवल्स इन मुगल एम्पायर', बर्नियर, पृ० ५५, ७७, 'वी० च०', ३१।४७

४ "राजा सबको दंडहि करै। जो जन पाय कुपडै धरै।
नातो गोतो कछु नहिं गनै। प्रीतम सगो न छोड़त बनै।"

—'वी० च०', ३१।५१

५ धिग्दंड बचनदंड सबेध। राजलोक आगमनि निषेध।
चौथे काढ़ि लेय अधिकार। पाँचे दीज देस निकार।
छठे रोकि राख अवलोकि। सातो घेरि देय नहिं मोकि।
आठो ताड नवम तनुभंग। दसै जीव को करै भनंग॥ —वही, ३१।५८-५९

६ दे०, 'ह० ह०', च० २६

विधियाँ। प्रथम प्रकार के दण्ड की वीरकाव्य में अधोलिखित विधियाँ प्रदर्शित की गई हैं—

(क) कोल्हू में पिलवा देना—इस अमानुषिक प्रथा का पृथ्वीराज रासो और आल्हखण्ड में चित्रण मिलता है। रासो से यह तथ्य स्पष्ट नहीं हो पाता कि, चन्द का अभिप्राय अपराधी को तिल आदि पदार्थों की भाँति पिलवाने से रहा है, अथवा "दड भरइ चक्कवै पिसुन परे कोलू वर"[1] से उसका अभिप्रेत शत्रु को बल की भाँति कोल्हू में जोतकर, कोल्हू चलवाने से रहा है? आल्हकार ने तो शत्रु को वास्तव में ही कोल्हू में पेलने की प्रथा दिखाई है।[2]

(ख) गालों को कानों तक चीर देना—दण्ड देने की इस विधि का पृथ्वीराज रासो में उल्लेख किया गया है।[3] दण्ड की यह प्रणाली आलोच्य काल के रचनाकाल में भी प्रचलित थी।[4]

(ग) मृत्यु दण्ड—केशवदासजी ने दस प्रकार के दण्ड विधानों में मृत्यु-दण्ड का उल्लेख करके आलोच्यकाल में इसके प्रचलन पर प्रकाश डाला है।[5] पृथ्वीराज रासो में तत्तारखाँ और धीर पुण्डीर को मृत्यु-दण्ड की धमकी देता है।[6] आल्हखण्ड में अपराधी को मृत्यु दण्ड देकर उसकी आँखें और कलेजा निकाल लाने की प्रथा दिखाई गई है।[7] थवेनाट नामक यात्री ने देशद्रोहियों को प्राण-दण्ड देने की इस अभिनव प्रथा का उल्लेख किया है कि उन्हें प्राण-दण्ड देने वाले दिवस पर्याप्त मात्रा में दुग्ध-पान कराकर किले के ऊपर से गिराया जाता था, जो पहाड़ियों की नुकीली चोटियों से टकराते हुए, जमीन पर गिरने से पूर्व ही मर जाते थे।[8]

(घ) नितम्बों पर दाग लगाना—दण्ड देने की यह विधि आजकल महावत के रूप में ही शेष रही है, किन्तु क्यामखाँ रासा में अलावलखाँ चौहान पराजित चौहान को पकड़कर, उसके नितम्बों पर सचमुच ही दाग लगाकर मुक्त करता है।[9]

(ङ) चक्षु निकलवा लेना—रासो में शाह गोरी महाराज पृथ्वीराज की आँखें निकलवाते प्रदर्शित किए गये हैं।[10] आल्हखण्ड में आल्हा बन्दी महाराज पृथ्वीराज की आँखें निकालते तो नहीं दिखाया गया, किन्तु वह उनकी आँखों में लील फिरा देता है। इस प्रथा को आल्हकार ने शत्रु को अपना आभारी बनाकर छोड़ने के अर्थ में प्रचलित दिखाया है।[11]

---

१ 'पृ० रा०', मो० ४।१०२।५४

२ "लवे जाव को ढेवा ने तब कोल्हू म दयो दबाय।
ठाढा पिराग दओ कोल्हू मैं पाछे मूड लओ कटवाय।" —'आ०', १०५।२४-२५

३ एही गल्ह सुनत। गाल फारो लगि कना। —'पृ० रा०', का० २०४५।१३९

४ से ११—दे०, 'जानककालीन भार० स०', पृ० ६५, 'वी० च०', ३।५६, 'पृ० रा०', का० २०४५।१३९, 'इण्डियन ट्रैवल्स आव थवेनाट एण्ड करी', पृ० ६८, 'आ०', ३१७।६, 'क्या० रा०', ४५६, 'पृ० रा०', का० २३७३।१६३१, वही, ६२।१२२-२३

(घ) कैदी को वहक में गिराकर नमक का पानी भरवा देना—आल्हखण्ड में बन्दियों के कष्टों को बढ़ाने के लिए उन्हें दहका (भूगर्भ स्थित बन्दीघर) में नमक का पानी भरवा देने की प्रथा दिखाई गई है, जिनमें वे बन्दी बनाकर रखे जाते थे।[1]

(छ) हरे बाँसों से पिटाई कराना—आल्हखण्ड में आल्हा, ऊदल को,[2] और गजराजा मलिखान को,[3] उनको खम्भों से बाँधकर हरे बाँसों से पिटाई कराते दिखाए गये हैं।

लज्जित करने के लिए अपनाई जाने वाली दण्ड-व्यवस्था

शत्रु को चूड़ियाँ पहनाकर या पूर्ण स्त्री वेष में मुक्त करना—हम्मीर रासो में जोधराज ने चौहान वंश के वीर कृत्यों का वर्णन करते हुए कहा है कि महाराज पृथ्वीराज ने मुहम्मद गोरी को सात बार कैद किया था और उससे दण्ड वसूल न करके मात्र चूड़ियाँ पहनाकर बन्धन मुक्त कर दिया था।[4] आल्हखण्ड में महाराज पृथ्वीराज के सामंत चौंड़ा को उसके महोबे पर आक्रमण करने आने के समय कैद कर लिया जाता है। मलिखान उसे चूड़ी, बीछिया लहँगा, लुगुरा तथा चूनरी आदि पहनाकर पूर्णतया स्त्री वेश धारण करा देता है तथा उसके दण्ड बाँधकर पालकी में बिठा देता है। पालकी को ले जाने वाले हरकारों को आदेश दिया जाता है कि वे महाराज पृथ्वीराज के समक्ष डोला रखते हुए यह संदेश दें कि चौंड़ा ने महोबे को लूट लिया है और यह उनकी पुत्री चन्द्रावलि का डोला है।[5] पराजित योद्धाओं की अवमानना के लिए यह विधि प्राचीनकाल में भी प्रचलित थी। हुएनत्सांग के साक्ष्य पर डॉ० गौ० ही० ओझा ने लिखा है कि सोलंकी नरेश अपने पराजित सेनापति को दण्ड नहीं देते थे, अपितु स्त्री की पोशाक भेंट करते थे, जिससे लज्जित होकर उसे आत्म घात करना पड़ता था।[6]

पुत्री का डोला अथवा सेवा के लिए पुत्र की माँग रखना—वीरकाव्य में ऐसे प्रसंगों की प्रचुरता है, जिसमें शत्रु-नरेशों की पुत्रियों के डोले या तो बलात् लूट लिए जाते थे[7] अथवा उनसे उनकी माँग रखी जाती थी।[8] बहुत से क्षीण बल नरेश अपनी ओर से भी पुत्री का डोला देकर आश्रयदाता के प्रीति भाजन बनने की चेष्टा करते

---

१ से ५—दे० 'आ०' ३६।१७६, वही, ३१४।४६, वही, १६६।१५१६, 'ह० र०', छंद ४१२, आ०', ४२६।१६

६ दे०, 'राजपूताना का इतिहास', जिल्द ३, भाग १, पृ० ८४

७ 'लर बहुत ही भोमिया मरे होइ घन घाइ।
बँधकर आनी तिन सुता डारे धूर मिलाइ।" —'क्या० रा०', ७६६

८ 'महिमा मागोल दीज निकारि। पुनि सहित दह देवल कुमारि।
दीज तुरत दिल्ली पठाइ। मत वर आप हाथहि बढ़ाइ।"
—'ह० ह०', च० ८२, और भी दे०, ह० रा०', ६६३, 'प० रा०', २३।४९

थे।[1] विशेषत: श्यामसखा रासा में कवि जान ने अनेक हिन्दू नरेश इसी भावना से मुगल शासकों को स्व पुत्रियों के डोले सौंपते चित्रित किए हैं।[2] कहना न होगा कि इस रूप में डोले की माँग करना अथवा शत्रु भय से डोला प्रदान करना विवाह के पवित्र बंधन की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। संधि के रूप में शत्रु की प्रसिद्ध नर्तकियों को प्राप्त करना भी इसी कोटि में आता है।[3] शत्रु-पुत्री अथवा उसकी नर्तकी की उपस्थिति विजेता के अहं को परितुष्ट करती होगी जबकि पराजित नरेश के मानस में इससे सदैव हीनता का संचार होता रहता होगा।

पृथ्वीराज रासो में अन्तिम युद्ध से पूर्व शाह गोरी महाराज पृथ्वीराज से आधा पंजाब और सेवक के रूप में राजकुमार रैनसी की माँग रखकर संधि करने का प्रस्ताव भेजते हैं।[4] इसी भाँति कवि ग्वाल ने शाह अलाउद्दीन का, महाराज हम्मीरदेव को उनके पुत्र का घास खोदने के लिए माँगने का निर्देश किया है।[5] मुगलकाल में शत्रु के पुत्र को जमानत के रूप में स्व-दरबार में रखने की प्रथा व्याप्त थी। बर्नियर के इस उल्लेख से शत्रु के पुत्र और पुत्री को ही नहीं, अपितु पत्नियों को भी जमानत के रूप में रखने की प्रथा का पता चलता है कि यदि अपने पिता जहाँगीर के समझाने बुझाने को दारा ने स्वीकार न कर लिया होता तो वह औरंगजेब के सहायक मीर जुमिला द्वारा जमानत के रूप में सौंपे गये पुत्रों का वध कर देता तथा उसकी पुत्री और पत्नियों से वेश्या वृत्ति कराने लगता।[6]

---

१ 'चिति बापा बीर चित, नृप इन दे निज धीय।
बंधन बंधे पमके, कौन अनुग स्वकीय।" —'रा० वि०' १।१६६

२ "नरहर नाहर दल सजे नरि ना सके निदान।
नाहरखाँ कौ दी सुता, गहै चरन चहुवान।"
—'श्या० रा०' ७८४, ४७६, ५८२, ६३६, ७१५ १६

३ महाराज पृथ्वीराज द्वारा 'करनाटी' और शाह गोरी द्वारा चित्ररेखा नामक वेश्याओं को लेकर संधि करने का पीछे उल्लेख किया जा चुका है। शाह अलाउद्दीन द्वारा महाराज हम्मीरदेव से 'चंद्रकला' नामक वेश्या की माँग रखी जाती है। आल्हखण्ड में माहो नरेश दस्सराज और बच्छराज की 'लाखा पातुर को लूटकर ले जाते प्रदर्शित किया गया है—
"लाखा पातुर दस्सराज की सो ल गया बघेलो राय।' — आ०, ३७।६

४ पृ० रा०', का० २२४३।७८७ ८८, वही, २२४४।७९७

५ माँगा सहजादा आपका है घास खोदन को,
बेटी आपकी सोच है ब्याह किय आपना।"
—'ह० ह०', ग्वाल, छन्द ११०

६ दे०, 'ट्रैवल्स इन मुगल एम्पायर', पृ० ४२

उमराव और सामंतों को जागीर प्रदान करना

संघ-व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए केन्द्रीय शासक की सेना में उमराव और सामंतों की संघ-टुकड़ियों की बहुलता होने का पीछे उल्लेख किया जा चुका है। इन उमराव और सामंतों को केन्द्रीय शासक की ओर से संघ-संगठन के लिए जागीरें प्रदान करने की प्रथा थी।

महाराज पृथ्वीराज के अधीनस्थ सौ सामंतों में से छः स्वयं भी विविध प्रदेशों के राजा तथा अन्य माडलिक और सामंत बताए गए हैं।[1] राजा, माडलिक और सामंत आदि ऐसी उपाधियाँ थीं, जो कुलक्रमानुसार राज्य की वार्षिक आय के आधार पर निश्चित की जाती थीं।[2] महाराज पृथ्वीराज अपने कुछ वीरों को जागीरें प्रदान करके सामंत नियुक्त करते भी चित्रित किए गए हैं। बताया है कि ऊँचे गवाक्ष से कूदकर महाराज के हाथ में से गिरे खिन्न का बीच में ही लपक लेने वाले लोहाना को वे, आजानुबाहु की उपाधि, ग्वालियर रणथम्भौर और आड़ला के मौजों के पाँच हजार ग्रामों का पट्टा, अठारह हाथी, पाँच सौ अश्व तथा पाँच सौ ऊँट, पाँच सौ दासियाँ प्रदान करते हुए अपना सामंत नियुक्त करते हैं।[3] जब स्तंभ के भेदन में सफल होने वाले एकमात्र वीर चंद पुण्डीर को भी महाराज पृथ्वीराज पाँच हजार ग्रामों का थाना (जागीर) तथा हाथी के चिह्न वाली ध्वजा के प्रयोग की अनुमति प्रदान करते हुए अपना सामंत नियुक्त करते हैं।[4] इसी तरह कनक परमार को वे दस हजार ग्रामों का पट्टा सौंपते हैं,[5] तथा महाराज भोलाभीम से रुष्ट होकर आने वाले उनके भाइयों को कुछ ग्रामों का पट्टा करते चित्रित किए गए हैं,[6] जिसके मूल में उन्हें अपना सामंत बनाना ही रहा होगा।

पृथ्वीराज रासो में सामंतों की जागीरें प्राय वंशानुक्रमण से सामंतों के वंशजों

---

१ "सत मे पट राजत सम राज। तिनके जुब नाम कहोंति क्रम।"
—'पृ० रा०', का० ६७४।६२, वही, ४१७।१८६, वही, १७१८।९५९, वही, १७१९।९६१, वही, १७१९।९६२, वही, १७१९।९६७

२ "डॉ० राजबली पाण्डेय के अनुसार—जिस राजा के राज्य में प्रजा को पीड़ित किए बिना प्रतिवर्ष एक लाख (रुपए) संचित होता था, उसे सामंत कहते थे। इसी रीति से तीन लाख से दस लाख की आय तक माडलिक, बीस लाख की आय तक राजा और पचास लाख रुपए प्रतिवर्ष आय वाले शासक को महाराज कहा जाता था। इसके आगे एक करोड़ की आय तक स्वराट, दस करोड़ तक सम्राट्, बीस करोड़ तक विराट, तथा पचास करोड़ रुपए की आय वाले शासकों के आधिपत्य में सप्तद्वीपा पृथ्वी मानी जाती थी।"
— हिंदी साहित्य का बृहत् इति०', भाग १, पृ० ७५

३ से ६—द०, 'पृ० रा०', का० २७७।८-११, वही, २०२४।४०-४१, वही, १७१६।९६३, वही, २८५।३०

को मिलने की पद्धति दिखाई गई है। कन्नौज के युद्ध में महाराज पृथ्वीराज के जो सामत खेत रहते हैं, वे उनके पुत्रों को उनकी परम्परागत जागीर में कुछ और अभिवृद्धि करके सामंत नियुक्त करते हैं।[1] उसमें उद्दंड अथवा विश्वासघात करने वाले सामंतों की जागीरें अपहृत करने की भी प्रथा दिखाई गई है। शाह गोरी को कैद करने वाले धीरपुण्डीर के विषय में उन्हें बताया जाता है कि वह अनेक प्रकार की दर्पोक्तियाँ करता है। महाराज उससे जागीर छीन लेते हैं, तथा उसे अपने राज्य से निष्कासित कर देते हैं।[2] जागीर छीनने से सम्बन्ध रखने वाला अन्य उदाहरण उनके प्रमुख सामंत कैमास से सम्बद्ध है। अपनी करनाटी नामक वेश्या से कैमास के अवैध-सम्बन्ध होने के कारण वे उसका वध तो कर ही देते हैं, उसके पुत्र के नाम जागीर भी तभी करते दिखाए गए हैं जबकि कवि चन्द उन्हें कैमास की अपूर्व स्वामिभक्ति का स्मरण दिलाता है।[3] रासो में उल्लिखित सामंतों के सम्बन्ध में यह तथ्य भी उल्लेख्य है कि दिल्लीश्वर द्वारा स्वराज्य से निष्कासित धीरपुण्डीर को शाह गोरी आठ हजार ग्रामों की जागीर सौंपने का प्रलोभन देकर स्वपक्ष में मिलाने की चेष्टा करते हैं, किन्तु अपने उद्देश्य में कृतकृत्य नहीं होते।[4] इसके विपरीत महाराज पृथ्वीराज द्वारा भरे दरबार में छड़ी मारकर अपमानित किया गया[5] हाहुलि हम्मीर शाह गोरी से मिल जाता है और अंतिम युद्ध में शाह गोरी की ओर से ही युद्ध करते चित्रित किया गया है।

मुगल राज्यों के उमराव हिन्दू सामंतों के ही प्रतिरूप थे। उमरावों को मिलने वाली जागीरों से सम्बन्धित तथ्यों पर प्रकाश डालने से पूर्व मनसब के विषय में दो शब्द अपेक्षित हैं, क्योंकि ऊँचे या नीचे मनसब के आधार पर ही अधिकारी उमराव कहलाते थे। डॉ० जदुनाथ सरकार ने 'मनसब' को पद या ओहदा बताया है।[6] विलियम इरविन के अनुसार 'मुगल शासन में पत्रवाहकादि और साधारण सैनिकों जैसे महत्वहीन राज्य-कर्मचारियों के अतिरिक्त अन्य समस्त अधिकारियों के मनसब निश्चित रहते थे, चाहे वे कर्मचारी सैनिक सेवा से सम्बन्ध रखते हों अथवा नागरिक शासन-व्यवस्था से।'[7] इन मनसबों के आधार पर ही उन्हें संख्या विशेष में अश्वारोही

---

१ से ४—दे०, 'पृ० रा०', का० १६५३।२४६६-२५०२, वही, २०६२।२६६, वही, १५०६।३२१, वही, २०६४।४१०

५ 'दरबार मटी अदब्ब वडाई। छरी छरी सीम हम्मीर राई।'

—'पृ० रा०', का० २३७४।१६३५

६ 'The Arabians say Mansib, in Persia and India, the word is pronounced mansab It means a post, an office hence mansabdar an officer, but the word is generally restricted to high officials — Ain i Akbary, Vol II, P 247, Footnote by Dr J N Sarkar

७ दे०, 'द आर्मी आफ दि इण्डियन मुगल्स', पृ० ३

दल रखना पडता था और उन्हे अधिक या कम वेतन दिया जाता था। इन मनसबदारो की तीन श्रेणिया थी—दो सौ से लेकर चार सौ घुडसवारो तक का मनसब पाने वाले अधिकारी मनसबदार मात्र ही कहलाते थे। पाँच सौ स लेकर पच्चीस सौ तक का मनसब पाने वाले अमीर या बहुवचन मे उमराव कहलाते थे। इसी प्रकार तीन हजार से लेकर सात हजार तक का मनसब पाने वाले अधिकारी अमीर ए आज़म, बहुवचन म उज्जाम, उमराव ए किबार या शासन के स्तम्भ कह जाते थ।[1] इन मनसबदारो मे से ऐसे मनसबदार या अमीरो को जो सौ स य सेवा से सम्बद्ध हाते थे उन्हे अपने मनसब के अनुसार निश्चित मात्रा मे अश्वारोही सना रखनी पडती थी[2] और उन सनिका का व्यय भार वहन करने के लिए राज्य की ओर से अधिकतर जागीरें प्रदान करने की प्रथा थी। अपनी जागीरा के वे एक प्रकार से केन्द्रीय शासक की भांति ही शासक होते थे। इरविन ने जागीरो को राज्यो के अ तगत उपराज्यो की सज्ञा प्रदान की है,[3] तथा अभिमत व्यक्त किया है कि छोटी के स्थान पर बडी जागीरें प्राप्त करने के लिए उत्कोच भी प्रदान की जाती थी।[4] वीरकाव्य म मनसब प्रदान करने, उसमे बढ़ोत्तरी करने आदि तथ्यो के आधार पर अमीरो स अनेक प्रकार के राज्य-कार्यों के कराने का चित्रित किया गया है।

पृथ्वीराज रासो मे मनसबदार शब्द का प्रयोग तो नही मिलता किन्तु उसमे शाह गोरी के यहाँ अनेक मीर और उमराव दिखाए गए हैं।[5] शाह गोरी द्वारा धीर पुण्डीर को आठ हजार ग्राम का पट्टा करके अपने पक्ष म मिलने के प्रयास का पीछे उल्लेख किया जा चुका है, जिससे अनुमान किया जा सकता है कि उन्होने अपने मीर और खानो को भी इसी प्रकार जागीरें सौंप रखी होगी।[6] क्यामखां रासो म मोटेराव से उसके पुत्र को मुसलमान बनाने के लिए मांगते समय, शाह फीरोजशाह द्वारा यह प्रलोभन दिया जाता है कि इस मैं पाँच हजारी मनसब प्रदान करूंगा।[7] उसम मीरा नामक उमराव का शाह स यह निवेदन करते चित्रित किया गया है कि आप मेरी मृत्यु क उपरान्त क्यामखां का ही मनसब और मेरी सम्पत्ति प्रदान करना, क्योकि मरे

---

१ 'द आर्मी आफ दि इण्डियन मुगल्स', पृ० ६

२ "डॉ० गौ० ही० ओझा के अनुसार पाँच हजारी मनसबदार को ३३७ घोडे, १०० हाथी, ८० ऊँट, २० खच्चर और १६० गाडियाँ रखनी पडती थी और उसका मासिक वेतन ३०,००० रुपय होता था।"
—द०, 'राज० का इतिहास', जि० ३, भा० १, प० २०५

३ ४—दे०, 'द आर्मी आफ दि इण्डियन मुगल्स पृ०, १५ १६

५. (क) "उम्मरा मीर सब मिल आय। दिप्पनह धीर पजह पराइ।"
—'पृ० रा०', का० २०३२।८४

(ख) "सब उमराव बुलाई ढिग। मतो मद्धि सुबिट्'न।" —वही, २२४८।८२०

६-७—द०, क्या० रा०', १४०, वही, १५६

सभी पुत्र अयोग्य हैं।[1] युद्धो मे विजयी होकर आने वाले क्यामखां[2] और दौलतखां[3] की मनसबो म बढोत्तरी की जाती है। अलिफखां[4] और दौलतखां[5] के मनसब म उनकी स्वीकृति लेकर कुछ ऐसे स्थानो की भी जागीरें सम्मिलित की जाती है, जहा के भूमिया (भूमिधर या जमीदार) उपद्रव करते रहते थे।

वीरचरित्र म सम्राट अकबर महाराज वीरसिंह देव के अग्रज राजा राम का यह प्रलोभन देते हैं कि यदि तुम अपने भाई इद्रजीत और वीरसिंह देव के उपद्रवो को शान्त कर दोगे तो मैं तुम्हें पाँच हजारी मनसब प्रदान करूँगा।[6]

छत्रप्रकाश म शाह औरंगजेब दाराशिकोह के विरुद्ध उनकी सहायता करने वाले महाराज चपतिराय को बारह हजारी मनसब प्रदान करते हैं।[7] कदाचित बारह हजारी मनसब प्रदान करना, सत्य नही है, क्योकि विलियम इरविन के अनुसार शाही वश के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को ऊचे से ऊचा सात हजारी मनसब प्रदान करने की ही प्रथा थी। तथा ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते है, जिनम किसी को आठ या नौ हजारी मनसब प्रदान किया गया हो।[8] शाह औरंगजेब की इस आज्ञा के प्रतिरोध म किया गया आदेश कि सूरजमल पर आक्रमण करो अन्यथा तुम्हारा मनसब घटा दिया जायेगा,[9] महाराज चपतिराय उनके मनसब का त्याग कर विद्रोह करते हुए आगरे पर आक्रमण करते दिखाये गये हैं।[10] बाद म पुन एक चतुर वकील भेजकर उस खोये हुए मनसब को महाराज छत्रसाल प्राप्त करते हैं[11] और राज्य स्थापित करने की कामना होने पर उसे पुन त्याग देते हैं।[12]

कवि भूषण ने मनसबदार, अमीर और उमराव आदि का बहुत उल्लेख किया है[13] तथा शाह औरंगजेब के दरबार म महाराज शिवाजी के क्रुद्ध होने को इस तथ्य पर आधत दिखाया है कि उनके गौरव के अनुकूल शाह के दरबार मे उन्हे उच्च मनसबदारो मे खडा करने के स्थान पर पाँच हजारी मनसबदारो के साथ खडा किया गया था।[14] भूषण ने शाह औरंगजेब के सैनिक और अमीर इस दुश्चिन्ता म भी ग्रस्त चित्रित किये है कि शाह का यह आदेश है कि वे हम महाराज शिवाजी को पराजित करके लौटने पर मनसब प्रदान करेंगे दुराशामात्र ही है, क्योकि वहाँ से हम जीवित लौटने की ही आशा नही है।[15]

१ से ५ —दे०, 'क्या० रा०', १७८, वही, ६६५, वही, ७५२, वही, ७४७, वही, ७६० ६१

६ से १३—दे०, 'वी० च०', ४।२८, छ० प्र०', १०।३, वही, ६।१३, वही, ६।१३, वही, ११।६, वही, ७।८, शि० बा०', २७, और भी दे० शि० भू०, १८६, २७२, २७६, ३२४, ७७, ६७, १५०, २६२ ३०५, ३८, ६२ आदि।

१४ 'पचहजारिन बीच खडा किया मैं उसका कुछ भेद न पाया।
भूपन यो कहि औरंगजेब उजीरन सो बेहिसाब रिसाया।" — शि० भू०', २०६

१५ 'करि मुहीम आये कहत हजरत मनसब दैन।
सिवा सरजा सो जग जूरि एहैं बचिक हैन।" —'शि० भू०', ३२४

राजविलास में कवि मान ने सामंत और उमराव शब्दों का समानार्थक प्रयोग किया है। महाराज राजसिंह के अधीनस्थ सामन्तों को कवि मान ने कभी सामन्त कहा है और कभी उमराव तथा इन दोनों शब्दों में से भी उमराव शब्द का अधिक प्रयोग किया है।[1] मान ने इस तथ्य का भी प्रकाशन किया है कि मुगल बादशाहों के अमीरों की जागीरें वंशानुक्रमण से संक्रमित होने देने के स्थान पर प्रायः जब्त कर ली जाती थी। शाह औरंगजेब महाराज जसवंतसिंह के अल्पवयस्क पुत्रों को उनके राज्य और सम्पत्ति का अधिकारी बनाने के स्थान पर अपने अधिकार में करना चाहते हैं।[2] महाराज जसवंतसिंह के सामन्तों द्वारा जब इसको 'आसुरी रीति' कहकर प्रतिरोध किया जाता है[3] तो उन्हें समझाया जाता है कि मृत उमराव की सम्पत्ति जब्त करना तो दिल्ली के शासकों की अमिट रीति है।[4] यदि तुम अच्छी सेवा करोगे तो उसके अनुरूप अन्य कोई छोटी जागीर प्रदान कर दी जावेगी।[5] राजविलास में महाराज राजसिंह भी युद्ध जीतकर आने वाले सामन्तों को ग्राम प्रदान करते चित्रित किए गए हैं।[6] बर्नियर ने मृत उमरावों की जागीरें और सम्पत्ति जब्त करने की प्रथा की आलोचना करते हुए कहा है कि इससे मृत उमराव की विधवाओं की बड़ी दुर्गति होती है तथा उनके पुत्रों को किसी मनसबदार के अधीन एक साधारण सैनिक के रूप में काम करने को विवश होना पड़ता है।[7]

राजनीतिक दृष्टि से सामन्त और उमरावों को प्रदान की गई जागीरों तथा उनकी सेनाओं को मिलाकर युद्धार्थ जाने के हानि और लाभ दोनों ही थे। मुख्य लाभ यह था कि इससे केन्द्रीय सत्ता वृहत् सेना की व्यवस्था करने के झंझट से बच जाती थी तथा राजधानी से दूरवर्ती ऐसे उपद्रवी प्रदेश जो उसके लिए सरदर्द बन रहते थे, तथा जहाँ से मालगुजारी वसूल करना दुष्कर रहता था—मनसबदारों को जागीर के रूप में प्रदान कर दिए जाने पर उनके द्वारा यन-केन प्रकारेण वश में कर लिए जाते थे। क्यामखाँ रासा में उपद्रवी भूमियाओं के दमनार्थ इस पद्धति का कई बार प्रयोग किया जाता है।[8] महाराज पृथ्वीराज द्वारा लोहाना आजानबाहु को सौंपी गई उड़च्छा (ओड़छा) की जागीर को प्राप्त करने के लिए उसे युद्ध करना पड़ता है।[9] इस प्रथा की मुख्य हानि यह थी कि केन्द्रीय शासक अपनी सैन्य शक्ति के लिए एक प्रकार से अपने सामंत और उमरावों के मुखापेक्षी रहते थे। उनके शत्रु से मिल जाने की भी सम्भावना रहती थी जिसका परिणाम बड़ा अनिष्टकर निकलता था। इतिहासकारों ने एक अन्य हानि यह भी प्रदर्शित की है कि उमराव अपने मनसबों

---

१ 'तोरि पताका तुरक के नौबति लइ निसान।
आव तौ उमराव तुम्ह प्रभु हम बचन प्रमान।" —'रा० वि०', १८।६५

२ से ६—दे० 'रा० वि०', ६।६८, वही, ६।७७, वही, ६।७३, ६।७५ वही ६।७४, वही, १२।२३, वही, १४।४१, वही, १८।१००, 'ट्रेवल्स इन मुगल्स एम्पायर', पृ० १६४, 'क्या० रा०', छं० ७६० ६१, 'पृ० रा०', का० २७८।२०

के अनुसार निश्चित मात्रा में सेना न रखकर, प्रायः एक-दूसरे के सैनिक और घोड़े माँगकर तथा भाड़े का टट्टू और आवारागर्द आदमियों को भी सिपाहियों के वस्त्र पहनाकर शाही निरीक्षण के समय सैनिकों की संख्या पूरी कर देते थे, जिससे शाही आँकड़ों में प्रदर्शित सैन्य शक्ति और उसकी वास्तविक संख्या में बहुत अन्तर होता था।[1]

सामन्तों का पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष—वीरकाव्य में क्षत्रियों के पतन के मूल कारणों में उनके पारस्परिक ईर्ष्या और द्वेष का प्रमुख हाथ मिलता है। विविध क्षत्रियों के चिंतन का आधार राष्ट्रीय अथवा राजकीय हिताहित की अपेक्षा अपने कुल विशेष की महत्ता का विभूषित करना होता था, चाहे इस ध्येय की प्राप्ति के लिए उन्हें अधम माध्यमों का भी आश्रय क्यों न लेना पड़े। इस ईर्ष्या के वीरकाव्य में बड़े अनिष्टकर प्रभाव प्रदर्शित किए गए हैं।

पृथ्वीराज रासो में लोहाना आजानुबाहु बत्तीस हाथ ऊँचे गवाक्ष से कूदकर महाराज पृथ्वीराज के हाथ से गिरे चित्र को लपकता है। महाराज उसके इस असीम साहसपूर्ण कृत्य से बड़े प्रभावित होते हैं और उसे पाँच हजार गाँवों की जागीर प्रदान करते हैं। लोहाना को सम्मानित होते देखकर चामुण्डराय, जामराय यादव आदि सामन्तों की ईर्ष्या का पारावार नहीं रहता और वे कह उठते हैं, कि अब तो (सच्चे वीरों के स्थान पर) खरगोश और लंगूरों की भाँति उछल-कूद में दक्ष पुरुषों के सम्मानित होने का समय आ गया है।[2]

रासो में लोहाना आजानुबाहु तो चामुण्डराय आदि के मात्र अमर्षयुक्त वचनों का ही शिकार बनता है, जबकि धीर-पुण्डीर को उनकी ईर्ष्या के कारण देश निष्कासन का दण्ड सहन करना पड़ता है। घटनाक्रम के अनुसार सामन्तों के बल-परीक्षणार्थ महाराज पृथ्वीराज द्वारा आयोजित जल-स्तम्भ वेधन की प्रतियोगिता में, धीर-पुण्डीर सफल होता है, जिससे प्रसन्न होकर महाराज उसे जागीर प्रदान करते हैं। चामुण्डराय आदि को इससे बड़ी ईर्ष्या होती है।[3] तथा जब धीर पुण्डीर शाह गोरी को बन्धन ग्रस्त करने की प्रतिज्ञा करता है तो उनकी ईर्ष्या पराकाष्ठा को पहुँच जाती है और जतराय जालपादेवी के पूजनार्थ गए धीर-पुण्डीर को, शाह गोरी को सूचना देकर कैद करा देते हैं।[4] गजनी से लौटे हुए पुण्डीर को वे, महाराज पृथ्वीराज के परोक्ष में बड़ी कटु उक्तियाँ कहते और विषमय ताने देते हैं।[5] शाह गोरी के आक्रमण के समय उनको यह पश्चात्ताप करते दिखाकर कि यह हमारी ही करतूत है, रासोकार ने इस आक्रमण में उन सामन्तों का हाथ प्रदर्शित किया है।[6] युद्ध में धीर-पुण्डीर शाह को कैद करके शाह को कैद करता है, जिससे उनकी ईर्ष्या और भी अभिवृद्ध हो जाती

१ 'द आर्मी आफ दि इण्डियन मुगल्स', पृ० ४५

२ से ६—दे०, 'पृ० रा०, का० २७८।१३-१४, वही, २०२७।५६, वही, २०२८।६८, पृ० रा०', मा० ४।६०६।६१, वही, २०६४।२२६

है और वे महाराज के यह कान भरकर कि शाह को बद करके धीर-पुण्डीर आपकी कानि न करते हुए ऐसी गर्वोक्तियाँ कहता है जस शकट की छाया म चलने वाला श्वान, उसके भार को वहन करन की दर्पोक्ति करे[१]—उस राज्य निष्कासन का दड दिला देते हैं।[२]

स्वय चामुण्डराय को भी चन्पुण्डीर और हाहुल से हम्मीरराय आदि की ईर्ष्या लाह की शृखलाएँ पगो म डालनी पडी थी। महाराज पथ्वीराज के इन साम तो को यह सह्य नही था कि चामुण्डराय क राजकुमार रनसी स (ये दोनो मामा भानजे थे) घनिष्ठ सम्ब ध स्थापित हो। चद पुण्डीर, इसको कलियुग का प्रताप कहकर निन्दा करता है तथा महाराज पथ्वीराज को इस सम्बन्ध म को सचेत करता है।[३] बाद मे आवश्यक परिस्थिति वश चामुण्डराय महाराज के शृगारहार नामक एक हाथी का वध कर देता है जिसको पज्जूनराव और हाहुलि हम्मीर विष वपन का माध्यम बनाकर दिल्लीश्वर से कहते हैं कि राजनीति म अपराधी को क्षमा करना दोष है, क्योकि ऐसा उद्दड व्यक्ति जिसने आज हाथी मारा है कल आपके विरुद्ध शस्त्र उठायगा।[४] परिणाम यह निकलता है कि महाराज चामुण्डराय के परो म बेडी डलवा देत हैं।[५] ये बेडियाँ शाह गोरी स अ तिम युद्ध के समय उतारी जाती हैं।[६] पहले तो चामुण्डराय बेडियाँ उतरवाने को प्रस्तुत ही नही होता[७] और कवि चन्द एव रावल समर विक्रम के द्वारा प्रशसा करने पर जब उन्हें उतरवा भी लेता है, तब भी चामुण्डराय का विक्षुब्ध हृदय कितनी तन्मयता से युद्ध कर सका होगा इसकी कल्पना की जा सकती है।

हाहुलि हम्मीर जो महाराज पृथ्वीराज से रुष्ट होकर शाह गोरी से मिल गया था शाह की ओर से युद्ध करने का कारण यह बताता है कि महाराज पथ्वीराज के दरबार म उनकी रानी इन्छिनी के भाई सलख पँवार की अधिक चलती है।[८]

महाराज पृथ्वीराज के साम तो के इन ईर्ष्याजनित घात प्रतिघातात्मक दावो के अतिरिक्त तात्कालिक नरेश सगठित होकर विदेशी शत्रु का सामना करने के स्थान पर, उसे युद्धाथ निमन्त्रित करत मिलते है। महाराज भोलाभीम को उनके मन्त्री यह परामश देते हैं कि आप महाराज पथ्वीराज से मिलकर शाह गोरी को पराजित कीजिए,[९] कि तु वे इस प्रस्ताव के सवथा विपरीत शाह गोरी की सहायता से दिल्लीश्वर को परास्त करने के लिए गजनी दूत भेजते हैं।[१०] महाराज अनगपाल भी दिल्ली राज्य वापस प्राप्त करन के लिए, शाह गोरी की सहायता लेकर महाराज पथ्वीराज पर आक्रमण करते हैं।[११] अ त म महाराज जयचन्द का उल्लख करना आवश्यक, जिनके दरबार म शाह गोरी के भाई की उपस्थिति दिखाई गई है।[१२] उनका भाई वालुकाराइ

१ स १२—दे०, प० रा०, मा० २०६२।३६५, वही, २०६२।३६६, वही, १४६५।१ २, प० रा०, का० १४६६।२७, वही १४६६।२६, वही २१६५।३७४ वही २१६७।३८३, वही २१२३।६६६, वही ४८०।२०, वही, ४६६।११७, पृ० रा०', मो० २८२०।४६, 'प० रा०', १६६२।५७५

'पज्जून चालक' नामक प्रस्ताव में शाह गोरी की ओर से महाराज पृथ्वीराज से युद्ध करते दिखाया गया है।[1]

हम्मीर रासा और हम्मीर हठ में महाराज हम्मीरदेव से पृथक शत्रुता रखने वाले उनके सुरजन या रतमल नामक बाधक मन्त्री को महाराज की पराजय का कारण चित्रित किया गया है—जो दिल्ली लौटकर जाते हुए शाह अलाउद्दीन से मिलकर, उन्हें दुर्ग के रहस्यों से अवगत करता है[2] तथा रसद समाप्त होने की मिथ्या सूचना देकर हम्मीरदेवजी को सन्धि के लिए विवश करने की चेष्टा करता है।[3]

कवि भूषण ने स्पष्ट कहा है कि हिन्दुओं के पतन का मूलकारण उनकी पारस्परिक फूट है।[4] राजविलास में शाह औरंगजेब को भयग्रस्त दिखाया गया है कि कहीं सगपन सम्बन्ध को दृष्टिगत करते हुए मारवाड़ के राठौर, उदयपुर के सीसोदिया और बूंदी के हाड़ा संगठित होकर मुझे अपदस्थ न कर दें[5]—किन्तु उन राजवंशों में इतनी सुबुद्धि और दूरदर्शिता कहाँ थी, कि संगठित होकर आक्रमण करते?

बर्नियर ने हिन्दू नरेशों को आपस में ही लड़ते रहने को मुगल शासकों की राजनीति का प्रमुख शस्त्र बताते हुए कहा है कि वे तदर्थ विविध माध्यम अपनाते हैं और हिन्दू नरेशों के संगठित होने का अवसर ही नहीं आने देते।[6]

वीरकाव्य में मुसलमानों के ईरानी और तूरानी वर्गों में वैमनस्य प्रदर्शित किया गया है।[7] इनमें से ईरानियों को महाराज सूरजमल हिन्दुओं के समर्थक या पक्षपाती अभिहित करते हैं।[8] शाह का तूरानी बख्शी भी वजीर मनसूर के विरुद्ध यही अभियोग लगाता है कि वह हिन्दुओं का पक्षपाती है।[9] ईरानी और तूरानियों के पारस्परिक ईर्ष्या के कारण की गई बख्शी की शिकायत पर अहमदशाह वजीर मनसूर को दिल्ली राज्य से निकाल देता है।[10] वजीर मनसूर महाराज सूरजमल से जाकर मिलता है और कहता है कि तूरानियों ने मेरी इज्जत लूटकर अपनी टेक रख ली है[11] जिसके प्रतिहार के लिए आप मेरी दिल्ली पर आक्रमण करने में सहायता कीजिये। अन्तत ईरानी और तूरानियों का पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष भयंकर युद्धों का कारण बन जाता है, तथा महाराज सूरजमल द्वारा भी दिल्ली की खूब लूट-पाट की जाती है।[12] डा० जदुनाथ सरकार ने अभिमत व्यक्त किया है कि ईरानी और तूरानी अमीरों में परस्पर वैमनस्य तो रहता ही था किन्तु वह पन्द्रहवीं शताब्दी के बहमनी सुल्तानों तथा अठारहवीं शताब्दी में मुगल दरबारों में बहुत बढ़ गया था जिसके बड़े बुरे परिणाम निकले थे।[13]

निष्कर्षत नरेशों के अधीनस्थ सामन्त राजा जिन पर राज्य की सुरक्षा का भार

---

१ से १३—द्रे०, 'प० रा०', का० ११७५।२, 'ह० रा०, ६४७ वही, ६५० ५१, 'भू० ग्र०' स्फु० १९, रा० वि०', ६।५६ ५८, सु० च०' ६।१।१६, वही, ६।१।१९, वही, ६।१।१७, वही, ६।१।१७, वही, ६।१।२०, वही ६।२।१४ से ६।२।५३, द्रे०, 'मुगल एडमिनिस्ट्रेशन', पृ० १४२

ग्रावत रहता था। पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष से जडीभूत मिलते हैं। उनके चिंतन का दष्टिकोण राष्ट्रीय का तो कहना ही क्या, राजकीय स्तर का भी न होकर वयक्तिक मानापवाद पर केंद्रित था। विविध नरेशो मे भी अनेक कारणो से परस्पर मनोमालिन्य रहता था और वे विदेशी शत्रु के आक्रमण के समय, सगठित होकर सामना करने के स्थान पर उसके पक्ष म मिल जाने की भूल करते मिलते हैं। हिन्दुओ की भाँति मुसलमान उमराओ मे भी जब ईरानी और तूरानी होने के आधार पर विघटन के बीज, अधिक बढ गए तो इतिहास साक्षी है कि मुगल बादशाहो को भी इसका बडा अनिष्ट प्रभाव सहन करना पडा था।

(क) सेनानायक के चयनार्थ पान के बीडे का प्रयोग—किसी काय का 'बीडा उठाना'[1] आजकल मुहावरे के रूप मे प्रयुक्त होता है जो आलोच्यकाल की एक प्रथा विशेष का स्मारक है। वीरकाव्य मे पान के बीडे सम्बन्धी दो प्रथाओ का चित्रण मिलता है। प्रथम के अनुसार वीरो के मध्य म कलश पर पाँच पानो का बीडा रख दिया जाता था और प्रस्तावित काय को करने मे स्वय को समथ समझने वाला पुरुष उसे शिरोधाय करके, उस काय के सम्पादन का भार वहन करने की इच्छा का प्रकटन कर देता था। द्वितीय विधि मे पान का बीडा सभा के मध्य न रखकर अभिप्रेत व्यक्ति को दे दिया जाता था और उसे वह काय निर्दिष्ट कर दिया जाता था, जिस हेतु उसे वह बीडा प्रदान किया गया है।

प्रथम प्रथा का परमाल रासो और आल्हखण्ड म चित्रण मिलता है। परमाल रासो म शाह गोरी के आक्रमण का समाचार सुनकर, उसके विरुद्ध सन्य सचालन करने वाले वीर के सचयन के लिए, महाराज परमाल अपने वीरो के मध्य पचास पान के बीडे रखते हैं,[2] जिसे आल्हा स्वीकार करता है।[3] आल्हखण्ड म यह प्रथा कई बार दिखाई गई है। काबुल से अश्व क्रय करके लाने वाले वीर के चुनाव के लिए महाराज चन्देल स्वण कलश पर पाँच पान का बीडा रखवा देते हैं।[4] माग की दुगमता और लूट पाट के भय से उससे बहुत से योद्धा तो किसी-न किसी बहाने से चले जात है, और अन्य निगाहें झुका लेते हैं। अन्तत उसे ऊदल उठाता है।[5] इसी भाँति बेतवा नदी के तट पर होने वाले[6] तथा गाजर म होने वाले युद्धो के सेनापतित्व के लिए पाँच पान क बीडे रखे जाते हैं, जिन्हे क्रमश लाखन[7] और ऊदल[8] उठाते चित्रित किए गये हैं।

पथ्वीराज रासो म बालुकाराइ का सामना करने के लिए बड गूजर, दाहिमा, चालुक्य, और परमार आदि कुलियो का कोई भी वीर बीडा उठाने का साहस नही करता।[9] अन्तत महाराज पथ्वीराज पज्जूनराव कछवाहे के पास बीडा भेजते हुए

---

१ से ८—दे०, 'पर० रा०', ८।१८, वही, ८।२०, 'आ०', २३४।१२, १३, वही, २३४।१४-१५, वही २३५।१-२, दे०, 'आ०', ५११ '।४वही, ४१०।५ १२, 'पृ० रा०', मो० ३।७२।५

संदेश कहला भेजते हैं कि वह चालुकाराइ को परास्त करने का भार वहन करे।[1] इसी भाँति शाह गोरी धीर पुण्डीर को कद करके लाने के लिए पान का बीडा प्रदान करते हैं।[2] परमाल रासो म हारेदास को महाराज परमाल द्वारा बीडा प्रदान करके, महाराज पथ्वीराज के सनिको को मार भगाने के लिए भेजा जाता है।[3] गोरा बादल की कथा म महारानी पद्मावती गोरा और बादल के पास बीडे लेकर जाती हैं और अपनी रक्षा की याचना करती हैं। गोरा और बादल बीडे ग्रहण करके उन्हें निश्चिन्त रहने का आश्वासन देते हैं।[4] जगनामा म श्रीधर ने पराजित ऐजुद्दीन के विषय मे यह कहकर कि—"वह आया तो पान का बीडा खाकर था, किन्तु अपना पानिप भी गँवा बठा,[5] इस प्रथा पर प्रकाश डाला है। राजविलास में युद्धार्थ आज्ञा माँगने वाले सामन्तो को महाराज राजसिंह, स्व कर से पान के बीडे प्रदान करके सम्मानित करते हैं।[6] इसी भाँति छत्र प्रकाश,[7] रासा भगवन्तसिंह[8] और अलिफखाँ की पडी[9] मे भी युद्धार्थ जाने वाले सेनानायको को पान का बीडा प्रदान करने की प्रथा दिखाई गई है, जो पान का बीडा उठाने की प्रथा का ही अवशेष प्रतीत होती है।"

(ख) वीरों के सम्मान की कुछ विशिष्ट रीतियाँ—वीरो को जागीरें और सिरोपाव देकर के सम्मानित करने के अतिरिक्त कुछ अन्य विधियाँ भी प्रचलित थीं। इनम विजेता का नरेश द्वारा उसके मार्ग म जाकर स्वागत करना उससे गले मिलना, उसके माता पिता को धन्य कहना अपनी तलवार देना अन्य वीरों की अपेक्षा शस्त्र बाँधने की किसी नई रीति की स्वीकृति देना, मुक्ता मालाए आदि प्रदान करना तथा नगाडे और ध्वजा के प्रयोग की अनुमति देना, परिगणित किए जा सकते हैं। इन सभी प्रथाओ का पृथ्वीराज रासा मे चित्रण हुआ है तथा दो एक रीति सुजान चरित मे दिखाई गई है जिससे प्रतीत होता है कि ये विधियाँ हमारे आलोच्यकाल के पूर्वार्ध के मुख्यत हिन्दू नरेशो द्वारा अपनाई जाती थी।

महाराज पथ्वीराज चालुक्यो को पराजित करके आने वाले कूरभराय के स्वागतार्थ दिल्ली से छ कोस जाकर उसकी अगवानी करते हैं और उसके स्वस्थ होने पर दान देते हैं।[1] उनकी शेर से द्वन्द्व युद्ध में शेर को पछाड देने वाले लगरीराय को वे, आधा राज्य, आधा ताम्बूल और सिंहासन के अधभाग पर बिठाने का वचन देते प्रदर्शित किए गए हैं।[11] यही सम्मान वे सजयराय के पुत्र को (जो कदाचित लगरीराय ही था) उसके द्वारा उनकी मूर्च्छाग्रस्त दशा मे, एक आँख निकालने के लिए आतुर गिद्ध से रक्षा करने की कृतज्ञता स्वरूप देते हैं। चामुण्डराय की बेडियाँ उतारने

१ से ११—दे०, 'प० रा०', मो० ३।७२।४, 'पृ० रा०', का० २०३०।७६, 'पर० रा०', ३।४०, 'गो० क०', छ० ९२ ९३, 'जग०', प० ६३७ ३८, 'रा० वि०', १८।२६ २७, छ० प्र०', १८।६, 'रा० भग०', छ० २२, 'अलिफखाँ की प०', ६, 'पृ० रा०', मो० ३।७९।७४, वही, १।२००।१८

समय वे उसे तुष्ट करने के लिए अपना खड्ग प्रदान करते हैं।[१] राजमाताओं द्वारा आरती उतारने का सम्मान गोरा बादल[२] की कथा तथा आल्हखण्ड मे आल्हा ऊदल[३] को मिलते प्रदर्शित किया गया है। हम्मीर रासो मे शाह अलाउद्दीन तो अपने सैनिकों को युद्ध से पलायन करने वालो का वध करा दिए जाने की धमकी देते हैं।[४] जबकि आल्हखण्ड मे उसके विपरीत सैनिकों को नौकर के स्थान पर भाई कहकर उत्तेजित करने की विधा का उपयोग किया गया है।[५] पृथ्वीराज रासो मे चामुण्डराय की माता की तथा परमाल रासो मे मलिखान के माता पिता को धन्य कहा गया है, जिन्होने ऐसे पराक्रमी पुत्र रत्नों को जन्म दिया था।[६] सुजान चरित मे महाराज सूरजमल को अपने विजयी सैनिकों से गले भेंट कर उनके श्रम को हरते दिखाया गया[७] है। पितृ वैर शोधन के निमित्त भोलाभीम से होने वाले युद्ध मे महाराज पृथ्वीराज निड्डुर राय को एक लाख के मूल्य वाली माला[८] तथा कन्ह को पवंग (पैर मे पहनने का कड़ा जो कदाचित स्वर्ण का रहा होगा) पहनाते[९] है। जंगनामा मे सैनिकों को दो माह का पेशगी वेतन देकर युद्धार्थ प्रोत्साहित करते दिखाया गया है।[१०] युद्ध की लूट *सामग्री तथा बंदियों से मिले दण्ड को भी वीरो मे वितरित कर देना इसी श्रेणी मे* रखा जा सकता है।[११]

नगाड़े और निशान के प्रयोग का भी विशेष वीर और सामंतो को ही अधिकार दिया जाता था। पृथ्वीराज रासो मे महाराज पृथ्वीराज चन्दपुण्डीर के नाम जागीर का पट्टा लिखने के साथ साथ उसे निशान और ध्वजा के भी प्रयोग की स्वीकृति देते हैं।[१२] निशान और ध्वजा के प्रयोग का अधिकार बादशाहों द्वारा विशेष उमरावों को ही प्रदान किए जाने की रीति थी।[१३] कदाचित यही प्रथा हिन्दू नरेशों मे भी प्रचलित रही होगी।

सिरोपाव प्रदान करना

सिरोपाव का प्रदान करना भी एक प्रकार का राजकीय पुरस्कार ही था। यद्यपि यह जागीरें प्रदान करने के समय भी दिया जाता था, तथापि विशेष शौर्यपूर्ण कृत्य करने वाले पुरुषों का मात्र सिरोपाव देकर ही सम्मानित करने की भी प्रथा थी। सिरोपाव के विषय मे यह तथ्य उल्लेख्य है कि उस पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो आदि ग्रन्थों मे जिस प्रकार विशिष्ट व्यक्तियों का ही प्रदान करने की प्रथा दिखाई गई है, वह विशिष्टता मुगल शासकों से सम्बन्धित प्रसंगों मे नहीं मिलती। विलियम इरविन ने उल्लेख किया है कि मुगल शासक खिलअत के रूप मे

१ से १३—दे० पृ० रा०' का० २६।१५।८२८, वही, २१७०।४०१, 'गो० क०', १३८ आ०, १०६।१६ १८, 'ह० रा०', ४५८, 'आ०', ७७।१८, 'पर० रा० ५।१०६ 'सु० च० १।४।११, पृ० रा०', का० १२१६।१२७, वही, १२६।११६, 'जंग०' पृ० ७३४ ३५, हि० वं० वि', १८ 'पृ० रा०', का० २०२४।४० 'द आर्मी आफ दि इण्डियन मुगल्स', पृ० ३०

वर्ष मे दो बार तो समस्त मनसबदारो को सिरोपाव प्रदान करते थे तथा अपने जन्म के अवसर पर विशिष्ट मनसबदारो को पुन खिलअत प्रदान करते थे—उनका जन्म भी वर्ष की सूर्य और चाँद के अनुसार गणना करने के कारण वर्ष मे दो बार मनाया जाता था।[1] तात्पर्य यह कि मुगलकाल मे मनसबदारो को सिरोपाव मिलना एक रूढ परिपाटी बन गई थी और उसम से सम्मान का वह भाव तिरोहित हो चुका था, जो व्यक्ति विशेष को अवसर विशेष पर सिरोपाव मिलने से अनुभव होता होगा। यह तथ्य भी ध्यातव्य है कि सिरोपाव म उसके शब्दगत अर्थ के अनुसार पैरो के लिए कुछ जूते आदि नही प्रदान किए जाते थे, अपितु वस्त्र ही दिए जाते थे और तीन वस्त्र, पाँच वस्त्र, छ वस्त्र, सात वस्त्र तथा शासक के निजी वस्त्रो के दिए जाने के आधार पर उसके पाँच विभेद होते थे।[2] विशेष शौर्य दिखाने वालो को हमारे आलोच्यकाल से पूर्व भी राजपट्ट या श्रीपट्ट के रूप म राजकीय पुरस्कार प्रदान करने की प्रथा व्याप्त थी।[3]

पृथ्वीराज रासो म महाराज पृथ्वीराज महाराज भोलाभीम के भाइयो को जागीर के साथ साथ सिरोपाव प्रदान करके सम्मानित करते हैं।[4] उनका आदेश

---

१ दे०, 'द आर्मी आफ दि इण्डियन मुगल्स', पृ० २६

२ विलियम इरविन ने पाँचो प्रकार के सिरोपावों मे अधोलिखित वस्त्रों का उल्लेख किया है—

(क) तीन वस्त्रों का—पगडी, जामा (लम्बा कोट) तथा कटि मे बाँधने का दुपट्टा।

(ख) पाँच वस्त्रो का— इसम पूर्वोक्त वस्त्रो के अतिरिक्त सिरपेच (कलगी) और तुर्रा भी दिए जाते थे।

(ग) छ वस्त्रों का—पाँच वस्त्रों वाले सिरोपाव के अतिरिक्त छोटी बाहो वाली जाकिट प्रदान की जाती थी।

(घ) सात वस्त्रो का—एक टोपी, एक लम्बा चोगा, चुस्त कोट, दो पाजामे, दो कमीजें, दो कमर मे बाँधने के दुपट्टे तथा एक सिर या गले मे बाँधने का दुपट्टा दिया जाता था।

(ङ) शाह के निजी वस्त्रो का—यह सर्वाधिक सम्मानप्रद सिरोपाव था तथा अत्यधिक कृपापात्रों को ही इसे प्राप्त करने का सौभाग्य मिल पाता था। —वही, पृ० २६

३ 'Sometimes Kshatryas got royal tiara or medals (Rajpatta or Sripatta) instead of land grants for some heroic actions as we have Mahabir Chakra etc in Military deptt of Govt of India'' — The socio religious condition of North India', P 67

४ 'पृ० रा०', ना० २८४।३१

गामचर घोंनों पर पट्टी बँधवा सन वाले कन्ह चौहान को भी[1]। बत्तीस हाथ ऊँचे गयाक्ष से कूदने वाले सोहाना आजानुबाहु[2] का भी व सिरोपाव प्रदान करते चित्रित किए गए हैं।

परमाल रासो म आल्हा उसस पराजित हो जाने वाले मनजूमनि की कदाचित वीरता पर मुग्ध होकर, सिरोपाव देता है।[3] कन्नौज स महोबा माने के लिए प्रस्तुत ऊदल को महाराज जयचन्द[4] तथा महाराज परमाल उनकी सहायताथ आए हुए नरशो को[5] सिरोपाव प्रदान करते चित्रित किए गए हैं।

ययामती रासो म शाह जलालुद्दीन, अलिफखाँ चौहान को मनसब प्रदान करते हुए अश्व और सिरोपाव दते हैं।[6] बाद म मवास के उपद्रवियो के दमनाथ विदा करते भी उसे सिरोपाव मिलता है।[7] मोटेराव द्वारा अपने पुत्र को मुसलमान बना लिए जाने की स्वीकृति देने पर, शाह फीरोजशाह की ओर स सिरोपाव दिया जाता है।[8]

जगनामा म शाह मोजुद्दीन अपने उमरावो को[9] तथा वीरचरित्र मे शाह अकबर, महाराज रामशाह को युद्ध मे जाने से पूव घोड[10] और सिरोपाव प्रदान करके युद्धाथ उत्साहित करते हैं।

सुजान चरित म अहमदशाह वजीर मनसूर को सिरोपाव देकर उपद्रवियो के दमनाथ भेजते हैं।[11] वजीर मनसूर महाराज सूरजमल को हाथी, घोडा शमशेर और सिरोपाव प्रदान करता हुआ शाह की इच्छापूर्ति के लिए घासहरे पर आक्रमण का सदेश देता है।[12] अ यत्र भी अपनी सहायता के लिए आने वाले महाराज सूरजमल को उसके द्वारा यही वस्तुएँ देते दिखाई गई हैं।[13] हम्मीर हठ म महाराज हम्मीरदेव के दुग का रहस्य बताने वाले रतमल को शाह अलाउद्दीन, सिरोपाव देकर सम्मानित करता है।[14] हम्मीर रासो मे महाराज हम्मीरदेव अपनी शरण म आए हुए मीर महिमा को पाँच लाख की जागीर और सिरोपाव प्रदान करते हैं।[15]

राजविलास मे महाराज जसवन्तसिंह से प्रत्यक्षत विरोध का साहस न कर पाने वाले शाह औरगजेब उनस छुटकारा पाने के लिए विषयुक्त सिरोपाव भेजते हैं।[16] कूटनीतिज्ञ महाराज जसवन्तसिंह को शाह के इस षडयत्र का आभास हो जाता है, अत वे उस सिरोपाव को किसी अन्य व्यक्ति को पहनाकर उसकी परीक्षा करते हैं जिसकी मृत्यु हो जाती है।[17] उसम अयत्र महाराज राजसिंह द्वारा युद्ध मे जीत

१ स १७—८०, 'प० रा०' का० २९६।१००, वही, २७८।१२, 'पर० रा०', १०।२७५, वही १०।४२८ वही २१।५५, क्या० रा०', ६७३, वही ७२४, ८३८ वही छ० १४२, जग०', प० १२५ २६, ६५८ ५९, 'वी० च०', ४।२६ सु० च०', ४।१।६ ७ वही, ४।२।१०, ह० ह०', च०, छ० २२५, 'ह० रा०' छ० ३०४ रा० वि०', ९।४७, वही, ९।५०, वही, १२।२३, १४।४१ और १८।१००

पाकर लौटने वाले कुंवर उदयभान कुंवर शक्तावत तथा अन्य सामंत सिरोपाव देकर सम्मानित किए जाते हैं।

सैनिक-पडावों पर हरम का ले जाना

पृथ्वीराज रासो में शाह गोरी तो अपनी बेगमों के साथ आक्रमणार्थ आते नहीं मिलते, किन्तु राजविलास सुजानचरित और जगनामा में शाहजादे और उमराव युद्धाभियानों के समय वेश्यायें ही नहीं अपितु अपनी बेगमें भी साथ ले जाते चित्रित किए गए हैं। युद्ध क्षेत्र के समीप हरम की उपस्थिति वस्तुतः चिन्त्य प्रतीत होती है और पराजय के समय उसको साथ लेकर पलायन करने में बड़ी अव्यवस्था फैलती होगी। इस प्रथा को मात्र इस दृष्टि से क्षम्य कहा जा सकता है कि अधिकांश युद्ध-अभियान दीर्घकाल तक चला करते थे तथा वे भी अत्यंत दूरवर्ती स्थानों पर—अतः ऐसी दशा में अपने हरम को साथ ले जाना ही अधिक उपयुक्त समझा जाता होगा।

राजविलास में शाहजादा अकबर चित्तौड़ के पडाव स्थल पर अपने साथ, वेश्यायें और हरम को ले जाता है और नित्यप्रति वेश्या-नृत्य प्रेक्षण और भोग विलास में मग्न रहता है।[1] अनंतर कुंवर जयसिंह उस पर रात्रि में आक्रमण करते हैं, जिससे उसकी बेगमों की बड़ी दुर्दशा होती है।[2] सुजानचरित में अहमदखाँ पठान और उसके साथी अपनी पत्नियों और संतति के साथ युद्धार्थ कूच करते प्रदर्शित किए गए हैं।[3] जगनामा में कहा गया है कि कुछ सैनिक बड़ा गुमान करते हुए अपनी बेगमों को साथ लाए थे, किन्तु युद्ध की मार से त्रस्त होकर उन्हें छोड़कर पलायन कर गए हैं[4] और वे बेचारी हाय हाय मचाती हुईं सुधा को याद करती हुई अश्रुपात कर रही हैं। परमाल रासो में धनपाल नामक नरेश को आक्रमण के समय अपना रनिवास लाते दिखाया है जो उसकी पराजय होने पर लौट जाता है।[5] विजयी पक्ष द्वारा शत्रु-पत्नियों की लूट पाट करना एक साधारण घटना भी थी। राजविलास में कवि मान ने दयालदास द्वारा मालपुरे के शाही थाने की लूट का वर्णन करते हुए कहा है कि जब लूट-सामग्री का वितरण किया गया तो बहुत से लोगों को दो दो स्त्रियाँ भी प्राप्त हुई।[6] विद्यापति ने तुर्क सैनिकों की प्रवृत्ति पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि वे जिस दिशा में निकल पड़ते थे, उस दिशा के राजाओं के रनिवास की स्त्रियाँ बाजारों में बिकने लगती थीं।[7] इस प्रसंग में यह तथ्य उल्लेख्य है कि महाराज शिवाजी ने अपने सैनिकों को इस प्रवृत्ति से बचाने के लिए यह नियम बना दिया था कि जो भी सैनिक दासी, वेश्या या औरत युद्ध में साथ ले जायगा, उसका शिरच्छेद कर दिया जायगा।[8]

---

१ से ८—दे०, रा० वि०, १८।८, वही, १८।९४, 'सु० च०', ४।३।१६, 'जग० प० ६०२ ६०४, पर० रा०', ६।१२३, 'रा० वि०', १७।३७, 'कीर्ति०', पृ० ६०, 'एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया', भा० २, पृ० ५२१

शत्रु-देश मे सन्यासी-वेशी गुप्तचर भेजना

पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो मे सन्यासी और सूफियो का वेश धारण किए हुए गुप्तचर शत्रु देश के रहस्यो को ज्ञात करते चित्रित किए गए हैं। महाराज पृथ्वीराज को शाह गोरी के आक्रमण की पूर्व सूचना[1] चार ऐसे गुप्तचर देते हैं, जिनके शरीर भस्म मंडित थे, सिरो पर जटा जूट बंधे हुए थे तथा जिन्होने मग चर्म के लगोट कस रखे थे।[2] महाराज पृथ्वीराज की राज्य दशा की सूचना लेने आने वाले शाह गोरी के गुप्तचरो का भी प्रहरीवेश दिखाया गया है।[3] अन्यत्र शाह गोरी के गुप्तचरो को सूफी फकीरो के वेश मे भारत आते प्रदर्शित किया गया है।[4] अनेक दरबारो मे परिभ्रमण करने वाले भाटो को भी पृथ्वीराज रासो मे शत्रु रहस्यो के अनावरण के हेतु प्रयुक्त करने की प्रथा दिखाई गई है, माधो भाट इसी उद्देश्य से दिल्ली आता है और अपने पट भाषा ज्ञान और वाक् चातुरी से महाराज पृथ्वीराज सहित उनके दरबारियो पर मोहिनी सी डाल देता है।[5] दिल्ली-दरबार के प्रत्येक वृत्तांत से अवगत होकर वह उन्हे शाह गोरी को जा कहता है और आक्रमण का उपयुक्त अवसर बताता है। परमाल रासो मे सन्यासी वेशी गुप्तचरो का महाराज पृथ्वीराज द्वारा मलिखान की सैन्य सज्जादि की जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रयोग किया जाता है।[6] क्यामखाँ रासा मे शाह बाबर को भारत पर आक्रमण करने से पूर्व एक कलन्दर के वेश मे यहाँ की राजनीतिक दशा का ज्ञान प्राप्त करने आते दिखाया गया है,[7] जिसे डॉ० दशरथ शर्मा ने काल्पनिक माना है।[8]

उपर्युक्त विवरण के विषय मे यह निवेदन अप्रासंगिक न होगा कि आचार्य कौटिल्य ने साधु सन्यासी वेशी गुप्तचरो के प्रयोग पर बड़ा बल दिया है।[9] इस वेश मे आने वाले गुप्तचरो को अभीष्ट सिद्धि मे सफलता की महती सम्भावनाएँ रहती होंगी, क्योकि साधु-सन्यासी और फकीरो की साधारणतया सर्वत्र पहुँच रहती है। पृथ्वीराज रासो से यह तथ्य भी प्रकाश मे आता है कि इन ढोंगी साधुओ के गुप्तचर होने का पता मात्र बादशाह या नरेशो को ही होता था और उनके दरबारी भी वस्तुस्थिति से अनभिज्ञ रहते थे। इसका प्रमाण यह है कि ये साधुवेशी गुप्तचर आरम्भ मे नरेशो को वास्तविक सन्यासियो की तरह आशीर्वाद देते तथा धार्मिक तत्त्वो का विवेचन करते प्रदर्शित किए गए हैं।[1]

धर्म-द्वार से निष्क्रमण

धर्म-द्वार प्रदान करना आलोच्यकाल की उस प्रथा का परिचायक है जिसमे

१ से १०— दे० 'एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया', भाग २, पृ० ५२०।१२ १३, वही ५२०।१८, 'पृ० रा०', मो० ३।५२७।६६ ७०, 'पृ० रा०, का० ६१२।६२, वही, ६०४।१२, 'पर० रा०' ५।४५ 'क्या० रा० छं० ५१७, 'क्यामखाँ रासा' के टिप्पण—पृ० ११६, 'कौट० अर्थ०', पृ० २६, 'पृ० रा०', का० ५२०।६-१०

दुर्ग मे घिरे शत्रुओ द्वारा धर्म की शपथ लेकर यह विश्वास दिलाने पर कि वे जाते हुए कोई उपद्रव न करेंगे अभय प्रदान करके दुर्ग से निकल जाने दिया जाता था। कविराज मोहनसिंह ने इन आत्मसमर्पण करने वाले पुरुषो के निष्क्रमण हेतु दुर्ग म एक छोटा सा दरवाजा रखने की परिपाटी प्रदर्शित की है।[1] जीवन मरण की परिस्थिति समुपस्थित होने पर धर्म-द्वार की याचना तो की जाती थी किन्तु उससे निष्क्रमण करने वाले बडी हेय दृष्टि से देखे जाते थे।

पृथ्वीराज रासा मे शाह गोरी की विशाल वाहिनी हाँसी दुर्ग को घेर लेती है। शाह गोरी दुर्ग मे घिरे सामन्तों के पास सदेश भेजते हैं कि वे युद्ध मे जूझने अथवा धर्म-द्वार से निष्क्रमण म से कोई सा भी एक मार्ग अपना सकते हैं।[2] सामन्तो म धर्म-द्वार से निष्क्रमण के सम्बन्ध म मन्त्रणा होती है जिसका कुछ सामन्त यह कहकर विरोध करते हैं कि यह कृत्य क्षत्रिय मर्यादा के प्रतिकूल है।[3] वे यह तक भी देते हैं कि धर्म द्वार से वे ही पुरुष निकलते हैं जो जारज सन्तान हुआ करते हैं।[4] धर्म द्वार से निष्क्रमण को अधम मानने की धारणा आगे चलकर भी अभिव्यक्त होती है जब चामुण्डराय जतसिंह और कन्ह चौहान आदि सामन्त, जिन्होने इस मार्ग का अनुसरण किया था, बडी लज्जा और आत्मग्लानि का अनुभव करते हैं।[5] महाराज पृथ्वीराज उनके इस कृत्य को देवगति की प्रबलता के कारण हुआ बताकर उन्हे जसे-तसे प्रबोधित कर पाते हैं।[6]

धर्म-द्वार से निष्क्रमण की प्रथा का वीरचरित्र, शिवा बावनी और छत्रप्रकाश म भी उल्लेख किया गया है। महाराज वीरसिंह देव, राजसिंहजी को ओडछे के दुर्ग म घेर लेते हैं।[7] कवि केशव ने राजसिंहजी अश्रुपूरित नत्रो स, महाराज वीरसिंह देव स धर्म-द्वार की याचना करते प्रदर्शित किये हैं।[8] महाराज वीरसिंह देव उनकी इस प्रार्थना को स्वीकार करके उन्हे अभय प्रदान कर देते हैं तथा दुर्ग से सुरक्षित निकल जाने देते हैं।[9] वीरचरित्र म कुमार भारथसाहि को भी अपने साथी कृष्णराय को सौंप देने की शर्त पर कृपाराम द्वारा धर्म द्वार से निष्क्रमण की सुविधा प्रदान की जाती है, जबकि उनके साथी कृष्णराय का शिरच्छेद कर दिया जाता है।[10]

भूषण ने महाराज शिवाजी का अनेक गढ पतियो को भिक्षुको की भाँति धर्म द्वार से निष्क्रमण की याचना करने पर, अनाहत छोड़ना प्रदर्शित किया है।[11]

छत्रप्रकाश म महाराज छत्रसाल अपने पिता के विरोधी धँधेलो की गढ़ी को घेरकर मारकाट आरम्भ कर देते हैं। अन्तत धँधेले धर्म द्वार से निष्क्रमण की याचना करके पलायन कर जाते हैं।[12] गोरेलाल ने युद्ध म आहत शत्रु का जीवन-दान प्रदान

१ से १२—द०, 'पृ० रा०', मो० भा० ३, पृ० ३२४, वही, ३।३२४।३, वही, ३।३२८।१०, वही, ३।३३०।१३, वही, ३।३४२।३७, वही, ३।३४३।३८, 'वी० च०, ८।५५, वही, ८।५६।५८, वही, ८।५६, वही, १४।५८-६०, 'शि० बा०', छ० ३५, 'छ० प्र०', १३।४

करने को भी धर्म द्वार देना कहा है। साहकुली की ओर से युद्ध करने वाले नद महाराज के घायल होकर गिरने पर, तुर्क सेना उन्हें युद्धभूमि मे ही पड़ा छोड़कर पलायन कर जाती है। महाराज छत्रसाल का उन पर दया आ जाती है और वे उन्हें धर्म द्वार देते हुए उनके प्राण बचा लेते हैं।[१]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि 'धर्म द्वार' आलोच्यकालीन युद्धों के उज्वल पक्ष का प्रतीक है, जिसमें क्षीण बल शत्रुओं की व्यर्थ ही नृशंस हत्या न करके उन्हें जीवन दान प्रदान कर दिया जाता था। पृथ्वीराज रासो के असिधर्मा क्षत्रियों का धर्म द्वार से निष्क्रमण में अपमान अनुभव करना, उनके चरित्रौदात्य का प्रतीक है।

वीरो का जौहर करना

सामान्यतया शत्रु चंगुल से बचने के लिए वीरांगनाओं द्वारा किए जाने वाले आत्मदाह को जौहर की संज्ञा प्रदान की जाती है किन्तु पृथ्वीराज रासो मे मरणांतक युद्ध करने के आकांक्षी वीरो के विशेष प्रकार की साज सज्जा में युद्धार्थ निष्क्रमण को भी जौहर कहा गया है। रासो मे महाराज पृथ्वीराज के पुत्र 'रेनसी' के दिल्ली-दुर्ग को मुस्लिम आक्राता घेरकर उसे तोड़ने मे समर्थ हो जाते हैं।[२] चिंतित कुमार रेनसी अपने कुलपुरोहित से मन्त्रणा करते हैं जो उन्हें युद्ध करते हुए मुक्ति लाभ करने का परामर्श देते हैं।[३] कुलगुरु के परामर्श के अनुसार कुमार अपने साथी राजपूतो के साथ जौहर करने का निश्चय करते हैं[४] और कुसुम्भी रंग के वस्त्र पहन कर शत्रुओं पर टूट पड़ते हैं।[५] उनकी सेना अल्प थी अतः अत्यन्त पराक्रम प्रदर्शित करते हुए भी उनकी विजय नहीं हो पाती और सभी राजपूत सैनिक रण समाधि ले लेते हैं।

परमाल रासो मे राजकुमार ब्रह्मा द्वारा मरणांतक युद्ध करने के निश्चय को जौहर के स्थान पर 'आवध' युद्ध करने का निश्चय[६] कहा गया है। राजकुमार ब्रह्मा और उसके साथी, अपनी ग्रीवा और भुजाओं में रुद्राक्ष की मालाएँ धारण करते हैं, तथा शरीरांगों मे केसर मलकर, युद्धार्थ प्रयाण करते हैं।[७] इसी भाँति आल्हा और उसका दल बाजुओं में रुद्राक्ष की माला तथा ग्रीवा में शालिग्राम पहन कर मरण का खेल खेलने जाते प्रदर्शित किए हैं।[८]

मरण का प्रन लेकर युद्धार्थ टूट पड़ने वाले वीरो की विचित्र वेश भूषा का विदेशी यात्रियो ने भी उल्लेख किया है। बर्नियर ने राजा रामसिंह और उनके सैनिकों को पीले वस्त्र पहन कर जूझने चित्रित किया है। इस तथ्य को और स्पष्ट करते हुए कान्स्टेबल ने पाद टिप्पणी मे कहा है कि राजपूत योद्धाओं में यह प्रथा थी कि वे अपने मरण के निश्चय को अभिव्यक्त करने के लिए अपने हाथ और मुखो पर हल्दी का लेप चढ़ाकर आते थे। यन्त्र-तत्र वे पीले वस्त्रो मे भी युद्धार्थ आते थे, जो उनके महादेव के अनुयायी होने का प्रतीक होता था।[९]

---

१ स ६—७०, छं० अ० २३।८, 'पृ० रा०' का० २४६२।१४४, वही, २४६२।१४६, वही, २४६३।१४७ वही, २४६७।१८०, 'पर० रा०' २६।२४, 'पर० रा०, २६।२६, वही, २७।४०,४५, ट्रेवल्स इन दि मुगल एम्पायर', बर्नियर, पृ० ५२

निष्कर्ष

शासक और शासित का अन्योन्य के प्रति दृष्टिकोण सदभाव पर आधृत था। नरेश अपनी प्रजा की पीड़ा को दूर करने के लिए तत्पर रहते थे। प्रजा नरेशों में ईश्वर का अंश विद्यमान समझती थी तथा उनके मुख दर्शन और नाम के जाप को पुण्यकर समझती थी। नरेशों में देवांश मानते हुए भी दुराचारी शासकों के स्वेच्छाचार को निर्विरोध सहन करने के स्थान पर, प्रजाजन सामूहिक रूप से राज त्याग की धमकी आदिक माध्यम अपनाते थे। प्रजा की आहों में अत्याचारी नरेशों का वंशोन्मूलन कर देने की शक्ति समझने की धारणा के कारण नरेशों को स्वतः ही सन्मार्ग की ओर उन्मुख होना पड़ता था। विविध प्रकार के राजकीय निर्णयों और उथल पुथल के समय भी नागरिक अपना हर्ष अथवा रोष व्यक्त करके अपनी राजनीतिक चेतना का प्रकटन करते थे।

बहुत सी रानियाँ राज्य कार्य में सक्रिय योग ही नहीं देती थीं, अपितु शासन संचालिका तक बन जाती थीं। रानियों की तरह राज पुरोहित की भी यद्यपि मन्त्रियों में गणना करने की परम्परा तो समाप्त हो चुकी थी, तथापि राज मन्त्रणाओं में उसके परामर्श का महत्त्व होता था। प्रजा राज पुरोहित को अपने यजमान नरेश पर सर्वाधिक नैतिक प्रभाव समझती थी और उससे आशा करती थी कि वह जनता के दुःख-दर्द नरेश को बताते हुए उन्हें दूर कराने की चेष्टा करेगा। तन्त्र मन्त्र का ज्ञाता होने की दृष्टि से भी राज-पुरोहित की नरेशों की दृष्टि में अतीव महत्ता होती थी। वह अपने यजमान नरेश की काया को मन्त्र कवचों के द्वारा शस्त्राघात से सुरक्षित बनाने तथा युद्धस्थल में मन्त्रों का प्रयोग करके विपक्षी दल को हतोत्साहित करने की चेष्टा करता था। हाँ, पुरोहित का तन्त्र मन्त्रविद् होना परवर्तीकाल में नहीं दृष्टिगत होता जबकि राजकीय मन्त्रणाओं में उससे परामर्श लेने की परम्परा ज्यों-की त्यों विद्यमान थी।

प्रधान या प्रधानमन्त्री के अधिकार क्षेत्र में अनेक प्रकार के कार्य रहते थे। नरेशों की अनुपस्थिति में वह राज्य कार्य की देखभाल करता था, संधि और विग्रह से सम्बद्ध वार्ताओं के नियमन में उसका प्रमुख हाथ रहता था तथा महत्त्वपूर्ण दौत्यकर्म के लिए भी प्रायः प्रधान ही भेजा जाता था। इसके अतिरिक्त राज्य कोष की अध्यक्षता, गुप्तचर विभाग का नियमन तथा शस्त्रास्त्रों की व्यवस्था भी उसके

अधीन होते थे। राजकीय मन्त्रणाओं में प्रधान से अवश्य परामर्श लिया जाता था। हाँ, यह तथ्य ध्यातव्य है कि प्रधानमंत्री एक प्रकार से समस्त राज्य-कार्यों पर आँख रखता था और ऐसा कोई निश्चित नियम न था कि सभी प्रधानों के अधीन पूर्वोक्त विभाग अवश्य ही रहते हों। उनके परामर्शों को स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करना भी नरेशों की स्वेच्छा पर निर्भर रहता था। क्यामखाँ रासा आदि ग्रंथों में 'प्रधान' शब्द का बहुवचन में प्रयोग किया गया है, जिससे ज्ञात होता है कि उससे प्रधानमंत्री के स्थान पर मंत्रीमात्र का बोध होने लगा था।

हिंदू दरबारों का प्रधान ही मुगल दरबार में वजीर कहा जाता था। वह भी 'प्रधान' की तरह बादशाहों का प्रमुख परामर्शदाता होता था। प्रधान की तरह शनै-शनै वजीर भी प्रधानमंत्री का अभिसूचक न रहकर मंत्रीमात्र का द्योतन करता था। कदाचित् वजीर के मंत्री अर्थक प्रयोग के कारण ही शाह अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के काल में उसे वकील कहने का प्रचलन था। भंडारी या दीवान कोषाध्यक्ष होता था। मीरबख्शी का कार्य मनसबदारों को वेतन प्रदान करने और उसका लेखा जोखा रखना था। प्रमुख सेनापति स्वयं नरेश या बादशाह ही होते थे।

आलोच्यकालीन सेनाओं के मुख्य अंग चार ही थे, किन्तु परम्परागत रथ सेना का स्थान, उन रथ या यानों में ले जाई जाने वाली तोपों ने ले लिया था। रथों को युद्ध-सामग्री के वहन तथा संचार-व्यवस्था के लिए प्रयुक्त किया जाता था, उनमें बैठकर युद्ध करने का प्रचलन नहीं था।

युद्धस्थल में सेना की स्थिति की दृष्टि से उसके तीन भाग होते थे। अग्रिम दल को हरावल, मध्यभाग को गोल तथा पृष्ठभाग को पुठावरि या चदोल कहा जाता था। हाथियों का दल की अग्रिम पंक्ति में रखकर रक्षा-पंक्ति का निर्माण करने का प्रचलन था। उनकी सूंडों में जंजीरें भी दे दी जाती थीं, जिन्हें घुमाकर वह शत्रु-सेना में खलबली मचा देते थे। नरेशों की सवारी में हाथी की विविध उपयोगिता रहती थी। उस पर से वह अपनी समस्त सेना पर दृष्टिपात कर सकता था, जबकि ऊँचे हाथी पर सवार नरेश उनके सैनिकों को भी दृष्टिगत होते रहते थे। वीरकाव्य में नरेशों के दिखाई न देने पर उनके सैनिक हतोत्साहित होकर पलायन करते चित्रित किए गये हैं, अतः सेना को दिखाई देने की दृष्टि से अश्वारोहण की अपेक्षा, नरेशों का गजारोहण निश्चय ही उपयोगी रहता था। अश्वारोही सैनिकों की संख्या अन्य प्रकार के सैनिकों की अपेक्षा अधिक होती थी। तदर्थ देश विदेश से अनेक प्रकार के अश्व क्रय किये जाते थे।

युद्धारम्भ से पूर्व योद्धा अनेक प्रकार के कवचों का प्रयोग करते थे, जिनके निर्माण में इस्पात की चद्दरों और लौह कड़ियों तथा रेशमी वस्त्रों का प्रयोग होता था। पागों पर डाली जाने वाली लौह-कड़ियों से निर्मित जालों झिलम कहलाती थी। इनके ऊपर कूंडी या टोप पहने जाते थे। जब मुख और ग्रीवा की रक्षा के लिए झिलम टोप में ही संलग्न कर दी जाती थी तो यह शिरस्त्राण झिलम टोप कहलाता था। इन

टोपा म भी नाक की रक्षा के लिए एक लौह पत्ती जुडी रहती थी किंतु 'घूघ' नामक एक अन्य मस्तक त्राण का भी प्रयोग किया जाता था। पदमाकर ने इसी ग्रंथ मे 'डिमाक-नाक चून' तथा नाक चून का प्रयोग दिखाया है। ग्रीवा की रक्षा के लिए 'कंठ-शोभा नामक ग्रीवा त्राण बांधा जाता था। ग्रीवा से नीचे, टखनो तक के शरीरांगो को शस्त्राघातो से सुरक्षित रखने के लिए लौह कडियो से निर्मित 'जिरह' नामक कुर्ता जसा कवच पहना जाता था। यह जिरह ही हिंदी म झिलम कही जाती थी। इस जिरह या झिलम मे जब वक्ष स्थल और पीठ की रक्षा के लिए चार ऐसे लौह-तवे भी लगा दिय जाते थे, जिनके नीचे आडी सलाखें लगी रहती थीं, तो यह कवच बख्तर कहलाता था। अधिक सुरक्षा की दृष्टि से सम्पन्न योद्धा जिरहों के ऊपर बख्तर पहना करते थे तथा अन्य अपनी स्थिति के अनुसार मात्र जिरह या बख्तर का भी प्रयोग करते थे। बख्तर का छोटा रूप कोठा' कहलाता था, जो चद्दर का बना होता था और वक्ष तथा उदर की रक्षा करता था। जोशन कदाचित् कोठे का ही उर्दू रूपान्तर था। दगला और चिलता नामक कवचो के निर्माण मे कच्ची रेशम, रूई और मगर की पसलियां आदि का प्राधा य रहता, जिनके द्वारा ऐसे कवच बनाए जाते थे, जिन पर शस्त्राघात का बहुत कम प्रभाव पडता था। कुहनी से उँगलियो तक के बाहु भाग की रक्षा के लिए सहसमेखी दस्ताने पहने जाते थे, जबकि टाँगो की रक्षा के लिए पहने जाने वाला कवच 'राग' कहलाता था। अश्व और हाथियो पर भी लोह की कडियों से बुनी हुई रक्षात्मक झूलें डाली जाती थी, जो पाखर कहलाती थी।

आलोच्यकालीन शस्त्रास्त्रों मे धनुष-बाण का बहु प्रचलन था। बाणो म द्वितीया के चन्द्र-जसी आकृति का फल लगाकर अथवा उन्हें नली आदि म रखकर छोड़ने से उनकी प्रहार-क्षमता म अभिवृद्धि कर ली जाती थी। ज्वलनशील पदार्थों से युक्त कुहुक बान जसे अग्न्यस्त्रो का भी प्रयोग किया जाता था, जो संहार के साथ-साथ शत्रु दल मे बडी अव्यवस्था पदा कर देत थे। श्रीकृष्ण के सुदशन चक्र' के प्रतिरूप 'चक्र' नामक अस्त्र का भी प्रयोग किया जाता था जिसम उँगली या डडा डालकर चलाने पर वह सौ स लेकर दो सौ गज तक मार करता था। सेल साँग तया बरछा और बरछी पूणतया लाहे निर्मित भाले होते थे, जिनका भार, उनकी संहार-क्षमता को अवश्य ही द्विगुणित कर देता होगा। आलोच्यकालीन अस्त्रों म विविध प्रकार के तोप, तमचो और बन्दूक आदि का भी प्रयोग होता था। शुतुरनाल, ऊँटनाल, जजरवा या जजाल नामक तोपें ऊँटो पर से चलाई जाती थी। तमचे, बच्चो के खिलौने न होकर छोटी बदूकें थी। कडाबीन की बदूक आँख से निशाना लेकर चलाए जाने के स्थान पर पैंतरा बदलकर चलाई जाती थी।

शस्त्रो मे गुज आदि गदाकार शस्त्र प्रयुक्त किये जाते थे। जिरह और बख्तरो को चीरने के लिय नुकीले शास्त्रो का प्रयोग किया जाता था। यमधर, बिछुआ, पजा-क्टार आदि शस्त्र घापने के काम आते थे। तलवारो की अनेक किस्मे थीं। उनके नामो मे भिन्नता का आधार, उनकी लम्बाई या चौड़ाई म अतर होना, उनके फल

का अनुपात कम या अधिक होता । उनके पक्ष में काम आई लाशों की संख्या तथा उनके निधन में प्रवेश का नाम मात्र लक्ष्य रहते थे । यह रूढ़ि व्याप्त थी कि युद्धार्थ पूर्णतया सज्जित और का सुशील आयुधों से सज्जित होना चाहिए ।

निशान और ध्वजाओं का सेना से अटूट सम्बन्ध था । केन्द्रीय नरेश या बादशाह की सेना में विभिन्न ऐसे सामन्त और उमराओं की सैन्य-टुकड़ियाँ सम्मिलित होती थीं, जिन्हें प्राय अपनी ध्वजाओं और निशानों के रखने का भी अधिकार होता था । अत युद्धक्षेत्र में विभिन्न भागों में अनेक प्रकार की ध्वजाएँ फहराती दृष्टिगत होती थीं । 'निशान' या नगाड़ों का युद्ध के प्रसंग में कई उद्देश्यों से प्रयोग किया जाता था । उनकी ध्वनि विशेषों से सैनिकों को युद्ध-सज्जा का संदेश दिया जाता था । उन्हें बजाकर प्रस्थान करती हुई सेना रोकी जाती थी तथा उनकी ध्वनि विशेष से विजय की सूचना दी जाती थी । विजयी पक्ष की पराजित शत्रु के ध्वजा निशानों को लूटने से गौरव-वृद्धि होती थी जबकि उनका लुट जाना बहुत ही अपमानजनक समझा जाता था ।

युद्ध-सज्जा के समय अनेक प्रकार के रण-वाद्यों से ओजात्मक ध्वनियाँ या राग निकाले जाते थे । इन्हें सिन्धु, मारू और गौरी नामक रागों की संज्ञाएँ दी जाती थीं । इन रागों के प्रभाव से योद्धा अपने तन मन धन और गृहिणी आदि के माया मोह से विमुक्त होकर एक अपूर्व युद्धोन्माद से झूमने लगते थे । युद्धरागों के उन्मादक प्रभाव को और भी अधिक अभिवृद्ध करने के लिए ढाढ़ी जागरे, चारण और भाट ओजस्वी कड़खे सुनाते थे । इनसे ऐसा दृश्य समुपस्थित हो जाता था कि कायरों के तो अंग विकम्पित होने लगते थे, जबकि वीरों के शरीर अदम्य उत्साह के कारण फूल उठते थे और उनके कवचों की कड़ियाँ तड़कने लगती थीं ।

आलोच्यकाल के युद्ध कारणों पर दृष्टिपात करते हुए क्षोभ होता है कि उनमें से अधिकांश मिथ्या स्वाभिमान और पारस्परिक राग द्वेष पर आधृत रहते थे । दिग्विजयार्थ निकले नरेश पराजित नरेशों के राज्यों को अपने राज्यों में नहीं मिलाते थे । वे उनसे अपनी अधीनता स्वीकार कराकर और भेंट मात्र ग्रहण करके उनके शासन को पूर्ववत् चलने देते थे । जिससे इन युद्धों का कोई स्थायी लाभ न होता था । इन्हें गृह के तुच्छार्थ व्यय के रक्तपात के अतिरिक्त और क्या संज्ञा दी जा सकती है ? विवाहावसरों पर भी प्राय युद्ध होते रहते थे । ये युद्ध नितान्त काल्पनिक नहीं हैं और हमें तो इन युद्धों में होने वाले रक्तपात के लिए शास्त्रकार दोषी प्रतीत होते हैं जिन्होंने क्षत्रियों के लिए विवाह के आठ प्रकारों में से युद्ध प्रधान 'राक्षस विवाह पद्धति' को प्रशस्त बताया है । आनुवंशिक रूप में चलने वाली शत्रुता में भी भारतीय नरेशों के सैन्य बल का बड़ा ह्रास होता था । अन्य युद्ध कारणों के मूल में प्रजा वत्सलता शरणागत रक्षा, ईर्ष्या-द्वेष स्वाधिकार की प्राप्ति, धर्म का प्रचार एवं धर्म की रक्षा आदि कारण रहते थे ।

बन्दी नरेशों को मुक्त करने के शर्त स्वरूप उनसे अश्व गज और द्रव्य की

माँग के अतिरिक्त उनकी पुत्रियों के डोले भी माँगने की प्रथा बहुत प्रचलित थी। शत्रु के कष्ट से त्राण पाने के इच्छुक नरेश अपनी ओर से भी इनसे विवाह सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करते थे। बन्धक के रूप में शत्रु-पुत्रों का भी सेवार्थ माँगने का प्रचलन था। शत्रु को लज्जित करने के लिए उसके नितम्बों पर वस्तुतः ही दाग लगाने की प्रथा थी। अन्य दंडों में शत्रु के नेत्र निकलवा लेना, उसे खंदक में गिराकर उसमें नमक का पानी भरवा देना तथा उसे कोल्हू में पिलवा देना आदि दण्ड प्रणालियाँ प्रचलित थीं।

यदि कहा जाय कि आलोच्यकाल वीर-पुरुषों के लिए स्वर्णिम युग था तो अतिशयोक्ति न होगी। 'वीर भोग्या वसुन्धरा' की उक्ति हमारे आलोच्यकाल के संदर्भ में अन्य कालों से अधिक सत्य थी। और रासो का यह उद्धरण कि धरा के उपभोग के लिए सुन्दरता, उच्चकुलीनता या अन्य उदात्त गुण आवश्यक नहीं हैं अपितु वह तो अश्व की टापों पर स्थित रहती है जिसे मात्र कुशल अश्वारोही प्राप्त कर सकता है पूर्णतया चरितार्थ भी मिलती है। वीर-पुरुषों को उत्कर्ष के अनेक अवसर उपलब्ध थे। अपने पराक्रम के आधार पर वे जागीर प्राप्त करके सामंत नियुक्त हो सकते थे। मुगलकाल में भी शौर्य के आधार पर उच्च मनसब प्राप्त करना और फिर वेतन रूप में जागीर प्राप्त करके उसके ऐश्वर्यों का उपभोग करना, यह भी वीर-पुरुषों के ही लिए सम्भव था।

आलोच्यकालीन राजनीतिक जीवन से सम्बद्ध कुछ विशेष रीतियों पर भी वीरकाव्य से प्रकाश पड़ता है। इनमें से प्रथम है, वीर ललनाओं की अमरगाथा से सम्बद्ध साका या जौहर की प्रथा जिसमें वे शत्रु के हाथों भ्रष्ट होने की अपेक्षा अपनी इह लीला समाप्त करना वरण्य समझती थीं। कदाचित यह प्रथा हमारी आलोच्य कालीन गर्हित राजनीतिक दशा में ही विशेष प्रचलित हुई जिसके कारणों को भी वीरकाव्य में अभिव्यक्ति मिली है। कीर्तिलता और रणमल छंद नामक कृतियों में तुर्क सेना में ऐसे धगड़ों की प्रधानता दिखाई गई है जिन्हें न दीन दुनिया की चिन्ता थी और न जोरू-बच्चा की। वे मदिरामत्त होकर आठों याम खाते पीते रहते थे। दया उन्हें छू तक न गई थी और शत्रु-पत्नियों को पकड़कर बाजारों में बेचना उन्होंने अपना व्यवसाय बना रखा था। तात्पर्य यह है कि इन्हीं कारणों से जौहर प्रथा का प्रचलन बढ़ा होगा जबकि हिन्दू नरेशों के पारस्परिक युद्धों में जौहर करने की आवश्यकता ही न पड़ती होगी।

स्त्रियों की तरह पुरुषों में भी जौहर करने की प्रथा थी। जब वे अपनी पराजय की संभावना देखते थे तो वे बन्धनग्रस्त होकर नाना प्रकार की यातनाएँ सहन करने की अपेक्षा समरांगण में वीरगति प्राप्त करना श्रेयस्कर समझते थे। अतः तुलसीदल और शालिग्राम आदि बाँधकर तथा मरण-वरण की आकांक्षा से वे शत्रु के दल पर टूट पड़ते थे।

महत्वपूर्ण युद्धों का नायकत्व करने वाले वीरों का चुनाव करने के लिए पान

के बीड़े का प्रयोग करने की भी प्रथा थी। राजदरबार में कलश के ऊपर पान का बीड़ा रख दिया जाता था, जिसे उस युद्ध का भार वहन करने का इच्छुक वीर उठाकर अपनी स्वीकृति को प्रकट कर देता था। इसी प्रथा से सादृश्य रखने वाली दूसरी परिपाटी यह थी कि शासक अपनी ओर से ही किसी योद्धा को मनोनीत करके उसे पान का बीड़ा, कलगी एवं चीर प्रदान करके सेनापतित्व का भार सौंप देते थे। ये प्रथाएँ विशेषतः राजपूत-नरेशों से ही सम्बद्ध थीं। इसी भाँति संन्यासियों के वेश में गुप्तचर भेजने, युद्धाभियानों के समय हरम ले जाने तथा प्राण भिक्षा माँगते हुए धम [illegible] निष्क्रमण आदि की प्रथाएं प्रचलित थीं।

आधार ग्रन्थ-सूची

ग्रन्थ का नाम	सपादक	प्रकाशक
१ पथ्वीराज रासो	सपा० वि० मो० पाण्ड्या तथा डॉ० श्यामसुन्दर दास	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९०४ ई०
२ पृथ्वीराज रासो	कविराज मोहनसिंह	साहित्य सस्थान, राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर, २०१२ वि०
३ परमाल रासो	डॉ० श्यामसुन्दर दास	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९७६ वि०
४ कीतिलता	स० डॉ० बाबूराम सक्सेना	इडियन प्रेस, लिमिटेड प्रयाग, १९८६ वि०
५ रणमल छन्द ६ राव जत सी री रासो	स० डा० दशरथ ओझा, डॉ० दशरथ शर्मा के 'रास और रासान्वयी काव्य' मे सकलित	नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, २०१६ वि०
७ – नरहरि और तानसेन के प्रशस्ति परक स्फुट छन्द	स० डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल 'अकबरी दरबार के हिन्दी कवि' के परिशिष्ट मे प्रकाशित	लखनऊ विश्वविद्यालय, २००७ वि०
८ गग-कवित्त	बटेकृष्ण	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, २०१७ वि०
९ रतन बावनी १० वीरचरित्र ११ जहाँगीर जस चन्द्रिका	स० प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, केशव ग्रथावली भाग ३ मे प्रकाशित	हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद, १९५९ ई०
१२ क्यामखाँ रासा १३ अलिफखाँ की पडी	प्रधान स० पुरातत्त्वाचार्य, जिनविजय मुनि	राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर, जयपुर, २०१० वि०

के बीड़े का प्रयोग करने की भी प्रथा थी। राजदरबार में ब
रख दिया जाता था, जिसे उस युद्ध का भार वहन कर
अपनी रणोत्सुकता का प्रकटन कर देता था। इसी प्रथा
परिपाटी यह थी कि शासक अपनी ओर से ही किसी
पान का बीड़ा, कलगी एवं चीर प्रदान करके सेनापति
प्रथाएँ विशेषतः राजपूत-नरेशों से ही सम्बद्ध थीं। इ
कुम्पाघर भेजने, युद्धाभियानों के समय हरम से जाने
रा रिप्नमण आदि की प्रथाएं प्रचलित थीं।

	ग्रंथ का नाम	संपादक	प्रकाशक
२९	हम्मीरहठ	अप्रकाशित	
३०	भगवन्तराय की विरुदावली	अप्रकाशित	
३१	श्री भगवन्तराय खीची का जगनामा	अप्रकाशित	

सहायक ग्रन्थ-सूची

संस्कृत

१	अग्निपुराणम्	मनसुखराय मोर	गोपाल प्रिंटिंग वर्क्स, कलकत्ता, १९५७
२	काव्य प्रकाश	सं० वि० ग० आप्टे	आनन्दाश्रम मुद्रणालय, १९२१ ई०
३	कौटिलीय अर्थशास्त्र	अनु० पं० गंगाप्रसाद शास्त्री	महाभारत कार्यालय, मालीवाड़ा, दिल्ली, २०१० वि०
४	भर्तृहरि शतकत्रयम्	सं० दा० ध० कोसँबी	भारतीय विद्याभवन, बंबई
५	महाभारत	अनु० पं० गंगाप्रसाद शास्त्री	महाभारत प्रकाश मंडल, दिल्ली
६	रस गंगाधर	सं० मथुरानाथ शास्त्री	निर्णय सागर प्रेस, बंबई, १९३९ ई०
७	वाल्मीकि रामायण	सं० नारायण स्वामी अय्यर	मद्रास, १९३३
८	वाचस्पत्यम्	सं० ताराताथ भट्टाचार्य	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, २०१८ वि०
९	शब्द कल्पद्रुम	सं० राधाकान्त देव	वही, १९६१ ई०
१०	साहित्य दर्पण	सं० शालिग्राम शास्त्री	मोतीलाल बनारसीदास, १९६१ ई०
११	स्मृति संदर्भ	—	५ क्लाइव रोड, कलकत्ता, १९५२ ई०
१२	हलायुध कोश	सं० जयशंकर जोशी	उत्तरप्रदेश सरकार, लखनऊ, २०१४ वि०

	ग्रन्थ का नाम	सम्पादक	प्रकाशक
१४	गोरा बादल की कथा	पं० अयोध्याप्रसाद शर्मा	तरुण भारत ग्रन्थावली कार्यालय प्रयाग, १९९१ वि०
१५	शिवराज भूषण	ब्रजरत्नदास	रामनारायण लाल, इलाहाबाद, १९३० ई०
१६	शिवा बावनी		
१७	छत्रसाल दशक		
१८	छत्रप्रकाश	डा० श्यामसुन्दर दास	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सन् १९०३ ई०
१९	राजविलास	सं० डा० मोतीलाल मेनारिया	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सन् १९०३ ई०
२०	जगनामा	सं० राधाकृष्ण दास, किशोरीलाल गोस्वामी	वही
२१	हम्मीर रासो	सं० डा० श्यामसुन्दर दास	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९०८ ई०
२२	सुजानचरित	सं० राधाकृष्ण दास	वही १९८० वि०
२३	करहिया को रायसो	—	नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भा० १०, १९८६ वि०
२४	हिम्मत बहादुर विरुदावली	पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, 'पद्माकर ग्रन्थावली' में प्रकाशित	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१६ वि०
२५	प्रतापसिंह विरुदावली		
२६	प्रतापरासो	—	दी विराय राय रिसर्च कालेज अलवर की पत्रिका १९६२ ६३ में प्रकाशित
२७	हम्मीरहठ (चन्द्रशेखर वाजपेयी कृत)	जगन्नाथदास रत्नाकर	इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग
२८	आल्हखण्ड	सी० ए० इलियट	माहेश्वरी बुक डिपो, फर्रुखाबाद सं० २००६ वि०

	ग्रन्थ का नाम	सपादक	प्रकाशक
२९	हम्मीरहठ	अप्रकाशित	
३०	भगवन्तराय की विरुदावली	अप्रकाशित	
३१	श्री भगवन्तराय खीची का जगनामा	अप्रकाशित	

सहायक ग्रन्थ-सूची

संस्कृत

१	अग्निपुराणम	मनसुखराय मोर	गोपाल प्रिंटिंग वर्क्स, कलकत्ता, १९५७
२	काव्य प्रकाश	सं० वि० म० आप्टे	आनन्दाश्रम मुद्रणालय, १९२१ ई०
३	कौटिलीय अर्थशास्त्र	अनु० प० गगाप्रसाद शास्त्री	महाभारत कार्यालय, मालीवाडा, दिल्ली, २०१० वि०
४	भर्तृहरि शतकत्रयम्	सं० दा० प० कोसंबी	भारतीय विद्याभवन, बबई
५	महाभारत	अनु० पं० गगाप्रसाद शास्त्री	महाभारत प्रकाश ट्रस्ट, दिल्ली
६	रस गगाधर	स० मथुरानाथ शास्त्री	निर्णय सागर प्रेस, बबई, १९३९ ई०
७	वाल्मीकि रामायण	स० नारायण स्वामी अय्यर	मद्रास, १९३३
८	वाचस्पत्यम	स० तारानाथ भट्टाचार्य	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस २०१८ वि०
९	शब्द कल्पद्रुम	स० राधाकान्त देव	वही, १९६१ ई०
१०	साहित्य दर्पण	सं० शालिग्राम शास्त्री	मोतीलाल बनारसीदास, १९६१ ई०
११	स्मृति सदर्भ	—	५ क्लाइव रोड, कलकत्ता १९५२ ई०
१२	हलायुध कोश	स० जयशकर जोशी	उत्तरप्रदेश सरकार, लखनऊ, २०१४ वि०

	ग्रंथ [redacted] नाम	संपादक	प्रकाशक
३४	समाज शास्त्र-परिचय	प्रो० रामलाल सिंह	रतन प्रकाशन मन्दिर, आगरा, १९५८ ई०
३५	सामाजिक विचारक	अनु० रघुराज गुप्त	भारती भवन, देहरादून, १९६० ई०
३६	हिन्दी शब्द सागर	डॉ० श्यामसुन्दर दास	काशी ना० प्रचारिणी सभा, १९२८ ई०
३७	हिन्दू संस्कार	डॉ० राजबली पाण्डेय	चौखम्बा प्रकाशन, विद्याभवन, वाराणसी, २०१४ वि०
३८	हिन्दी वीरकाव्य	डा० टीकमसिंह तोमर	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९५४ ई०
३९	हिन्दी वीरकाव्य	डॉ० उदयनारायण तिवारी	भारती भंडार, लीडर प्रेस इलाहाबाद, २०१२ वि०
४०	हिन्दू सभ्यता	डॉ० राधाकुमुद मुखर्जी	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, १९५५
४१	हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता	डॉ० बेनीप्रसाद	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, १९३१
४२	हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग १	डॉ० राजबली पाण्डेय	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
४३	हिन्दू भारत का उत्कर्ष	चिन्तामणि विनायक [redacted]	ज्ञानमंडल यन्त्रालय काशी, सं० १९८६ वि०
४४	हिन्दी भारत का अन्त अर्थात् मध्ययुगीन भारत, भाग ३	वही	वही, सं० १९८५ वि०
४५	राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग २	अगरचन्द नाहटा	प्राचीन साहित्य शोध-संस्थान, उदयपुर, १९४७ ई०
४६	हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों का अठारहवाँ त्रैमासिक विवरण, १९४१ ४३	पं० विश्वनाथ प्रसाद	ना० प्र० सभा, काशी, २०१५ वि०
४७	हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण		नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०२१ वि०

११

	ग्रन्थ [redacted] नाम	संपादक	प्रकाशक
३४	समाज शास्त्र-परिचय	प्रो० रामलाल सिंह	रतन प्रकाशन मन्दिर, आगरा, १९५८ ई०
३५	सामाजिक विचारक	अनु० रघुराज गुप्त	भारती भवन, देहरादून, १९६० ई०
३६	हिन्दी शब्द सागर	डॉ० श्यामसुन्दर दास	काशी ना० प्रचारिणी सभा, १९२८ ई०
३७	हिन्दू संस्कार	डॉ० राजबली पाण्डेय	चौखम्बा प्रकाशन, विद्याभवन वाराणसी, २०१४ वि०
३८	हिन्दी वीरकाव्य	डॉ० टीकमसिंह तोमर	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९५४ ई०
३९	हिन्दी वीरकाव्य	डॉ० उदयनारायण तिवारी	भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २०१२ वि०
४०	हिन्दू सभ्यता	डॉ० राधाकुमुद मुखर्जी	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, १९५५
४१	हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता	डॉ० बेनीप्रसाद	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, १९३१
४२	हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग १	डॉ० राजबली पाण्डेय	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
४३	हिन्दू भारत का उत्कर्ष	चिन्तामणि विनायक [redacted]	ज्ञानमंडल यन्त्रालय काशी, सं० १९८६ वि०
४४	हिन्दी भारत का अन्त अर्थात् मध्ययुगीन भारत भाग ३	वही	वही, सं० १९८५ वि०
४५	राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, भाग २	अगरचन्द नाहटा	प्राचीन साहित्य शोध-संस्थान, उदयपुर, १९४७ ई०
४६	हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों [redacted] अठारहवाँ त्रैमासिक विवरण, १९४१ ४३	प० विश्वनाथ प्रसाद	ना० प्र० सभा, काशी, २०१५ वि०
४७	हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण		नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०२१ वि०

ग्रन्थ का नाम	सपादक	प्रकाशक
8 Alberuni s India	Dr Edward C Sacha	K P T Trubner & Co London, 1914
9 Caste In India	J H Hutton	Oxford University Press, 1961
10 Contemporary Sociological Theories	Sorokin	Happer & Brothers, New York, 1928
11 Encyclopedia of Social Sciences	Editor n Chief, R A Seligmann	The Macmillan Co New York, 1935
12 Early Chauhan Dynasties	Dr Dasharath Sharma	S Chand & Co Ltd, Delhi, 1959
13 International Dictionary	Webster	H O Houghton & Co Cambridge, 1945
14 Indian travels of Thevent and Careri	Ed Dr S N Sen	The National Archives of India, New Delhi, 1949
15 Memories on the history, Folklore and distribution of the races of the North Western Provinces of India	Sir Henry, M Elliot	Trubner & Co, London, 1869
16 Mogul India	N Manucci	John Murray Albemarle street, London, 1907
17 Mughul Administration	Dr Jadu Nath Sarkar	M C Sarkar & Sons, Calcutta, 1952
18 Military History of India	Sir Jadu Nath Sarkar	M C Sarkar & Sons, Calcutta, 1960

	ग्रन्थ का नाम	सपादक	प्रकाशक
19	Military History of Sikhs	Dr Fauza Singh Bajwa	Moti Lal Banarasi Dass, Delhi 6.
20	Society & Culture in Mughul age	Dr P N Chopra	Shiv Lal Aggarwal & Co, Agra, 1955
21	The Socio economic history of India	Dr Bharat Pd Majumdar	Farma K L Mukhopadhyay, Calcutta, 1960
22	Society	R M Maciver and H C Page	Macmillan & Oo, London, 1957
23	Social life in North India	Dr B N Sharma	Typed copy in the Delhi University Library
24	Theories of Society—Vol II	Talcott Parsons	The Free Press of, Glencol America—1961
25	The army of the Indian Mughuls	William Irvine	Eurasia Publishing house, New Delhi, 1962
26	The Mughul Emp re	Dr Asirbadi Lal Srivastava	Shiv Lal Aggarwal and Co Agra, 1959
27	The Socio Religious Condition of North India	Dr Vasudeva Upadhyay	Chowkhamba Skt Series, Banaras, 1964
28	Travels in the Moghul Empire by Francios Bernier	Edtd Archibald constable	Archibald constable and Co, Parliament Street, S W, 1891
29	Travels in India by J B Tavernier—Vol II	Edtd William Crooke	Oxford University Press, 1925

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४४	१३	घनापेक्षा	घनापेक्षी
४६	६	सामेश्वर	सोमेश्वर
४६	३२	उप्द्रवाही	उप्द्रुवाही
५१	५	बांमन	बैमन
५२	२६	बुदक	बुदकद।
५३	१६	अभिदान	अभिमान
५७	१२	प्रियाकुवरि	प्रियाकुँवरि
५७	२१	घम	कम
५७	३०	जगगु	जगतु
५८	५८	क्षत्रिय	क्षत्रियो
६१	१४	दधिपर	दधिपट
६१	२५	काम	नाम
६३	२३	पौरव	पौरष
६४	२७	वाजिन	वाजित्र
६८	२	बटादुर	बहादुर
७३	२०	मैंठ	मूठ
८०	३२	घर	धर
८३	ˋ१७	कार्याघर	कार्याधार
८४	३	शूदो	शूद्रो
८४	७	यजोपवीत	यज्ञोपवीत
८४	१३	कुक	कुक
८५	२३	आगे	बागे
८६	१०	होम	डोम
८६	१८	डालन	ढालन
८६	२४	आप	माय
८६	ˈ२७	द्व० प्र०	छ० प्र०
८८	१६	शुद्धावसरो	युद्धावसरो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८८	२४	बालुकाराड्	बालुकाराड्
८८	३०	रंभ्य	रंभ्य
८९	२६	घर	घर
९०	२४	भट्टु	भट्टु
९०	३२	नीति वें	नीच जाति वें
९४	२	भ्रष्ट	भ्रष्ट
९४	४	दौडते	छोडते
९४	१४	में	से
९४	२१	मेव	भेव
९५	९	मुसलान	मुसलमान
९६	२७	गरुज	गरुम
९६	२९	कथान	कथान
९६	३२	मकट	मकट
९७	१०	नजववान।	नजबपान
९७	१७	तक्षर	तत्तार
९७	१७	बदली	बलकी
१०२	२९	तपेस	तपोस
१०२	१७	रनखी	रनसी
११४	१८	घगड	धगड
१५०	२४	हको।	हको
१७१	४	भरग	चरग
१७८	२७	भममसी	प्रथमयी
२२७	८	प्रियाकुवरि	प्रियाकुवरि।
२३०	१८	लाख	लाखन
२३१	३	गेंठि	गठि
२३१	१२	दाहिनी	दाहिमी
२४५	२७	माणे	भाय
२४७	४	स्वचित्रो	स्व चित्त।
२५६	२५	मुरण	मुरज
३२५	२०	कलयुग	कलियुग
३३६	१७	प्रववतादि	प्रवालादि।
३४३	१७	निष्कप	निकप।
३५०	२०	तल	तेल।
३७०	२१	माशामों	माझामो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३७०	२६	प्रजा	प्रजा जा
३७३	१३	सोथी	सोती
३७८	२२	मन्त्रिन	मन्त्रिर
३८१	१५	हृपति	हृपति
३८४	३	सोधा	गीती
३८५	२	अधिकार	अधिकारी
३८६	१७	तद्गीन	तद्गीनकार
३८९	२८	आतस्वर	आतारस्वर
३९१	५	को	ने
३९४	१०	कटन	कटर
३९८	२४	गूप	गूपं
४०७	२४	मध्र	मध्य
४०८	३	आभे	पाते
४०९	१	अमपर	अमपर
४०९	२	के	का
४०९	१०	हृतनारिका	हृतनारि का
४०९	१०	करि	करि
४०९	११	अर्थ	/
४०९	१२	अमुग	अमुगा
४०९	१६	निविनिर्त	निपिनिर्त
४०९	२१	तप उसी	तपस्वी
४१०	७	निरिमान	निरिमाम
४११	१	अमधर	अमधर
४११	६	निरम न	निम्नान
४१३	१ ७ १२	अवमा	अवरवा
४१३	१३	[illegible]	[illegible]